ऋग्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

भाग ६

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(षष्ठ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड्, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २०००	सं० १९९२ वि०	मूल्य ४) रुपये

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-विषय-सूची

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः ।

नवमे मण्डले प्रथमसूक्तादारभ्य

सू० [१]—यहां से पावमान सौम्य नवम मण्डल प्रारम्भ होता है। सोम पवमान का वर्णन। बालक के समान विद्या के गर्भ से विद्या-निष्णात उत्पन्न शिष्य का वर्णन। सोम और इन्द्र के अनेक सम्बन्ध। सोम—जीव, नव ब्रह्मचारी, वर, उत्तम सुख, राजा, आदि का वर्णन। (२) सभापति सोम। पक्षान्तर में सोम ओषधि के गुण। सोम के कर्त्तव्य। उसके अनेक रूप। (६) सोम—विद्यार्थी, सूर्यदुहिता विद्या। (७) सोम सेनापति, स्वसा सेना। अध्यात्म में, दश योषा दश इन्द्रियें। (८) ऐश्वर्य-भाजन सोम गो-वत्सवत् गुरु शिष्य का वर्णन और। राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य। शूर इन्द्र के कर्त्तव्य ॥ (पृ० १–५)

सू० [२]—सोम पवमान। गुरु-शुश्रूषु ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में राजा वा अध्यक्ष शासकों के कर्त्तव्यों का वर्णन। ओषधिवत् मधुर, प्रिय होने का उपदेश। (४) नदी और समुद्रों के तुल्य विद्या-वाणियों से शासक वा विद्वान् की शोभा। (५) समुद्रवत् अध्यक्ष का वर्णन। (६) न्याय शासक के कर्त्तव्य। (८-१०) ऐश्वर्यवान् प्रभु से प्रार्थनाएं, स्तुतिएं। (पृ०५–८)

सू० [३]—साम पवमान। विजिगीषु राजा सोम। उसके कर्त्तव्य। उसका अभिषेक। (५) उसका कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य। (६) अभिषेक होने का अन्य अभिप्राय। सोम-सवन विधि से राज्याभिषेक के कर्त्तव्यों की सूचना। (७) राजा का प्रयाण, विजय और अभिषेक प्राप्ति। (१०) शासन का पवित्र कार्य। दण्डधारा और खड्गधारा दोनों का समान सदुपयोग। पक्षान्तर में राजहंसवत् पक्षी के तुल्य आत्मगति का वर्णन। इस पक्ष में सुपर्ण-आत्मा, द्रोण जलकुण्ड, उसकी विद्या से शुद्धि, उसका संन्यास-मार्ग। और आत्मा का लिङ्गशरीर में विचरण और मुक्तिमार्ग का अनुधावन। (पृ०८–१२)

सू० [४]—पवमान सोम। राजा से जैसे वैसे प्रभु से प्रजा की प्रार्थना। (२) राजा वा शासक के कर्त्तव्य, प्रजा के बल की वृद्धि, ज्ञानवृद्धि और दुष्ट दमन। (४) ईश्वरप्राप्ति, राज्यपद, प्राप्ति के लिये अभिषेक, (६) उससे उत्तम प्रार्थनाएं। दीर्घजीवन, ज्योति-दर्शन की प्रार्थना। (७) राजा को ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (९) प्रजाओं का राजा को बढ़ाने का उपदेश। (पृ० १२–१५)

सू०[५]—पवमानसोम। प्रजा प्रिय उत्तम राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् राजा और परमेश्वर वा प्रभुपरक योजना। बलीवर्द और अग्नि के दृष्टान्त से राजा के अनेक कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) प्रजानुरंजक राजा। (४) कुशाओं के तुल्य शत्रु के उच्छेदन का कार्य। (४)द्वारों के तुल्य सेनाओं के कर्त्तव्य। (६) रात्रिदिनवत् स्त्री पुरुषों के प्रति सूर्यवत् अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा का वैश्य वर्ग को अपनाना (८) भारती, सरस्वती, इडा इन तीन देवियों का वर्णन। ये प्रजा के तीन वर्ग हैं। (९) सूर्य के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। इन्दु, इन्द्र, हरि, पवमान, प्रजापति आदि इन नामों का स्पष्टीकरण। परमेश्वर के प्रति इन विशेषणों की योजना। (१०) हरे वृक्ष के

राजा के कर्त्तव्य । (४) समुद्रवत् राजा के कर्त्तव्य । (५) राजा की आवश्यक नियुक्ति, उसका महान् कार्य । (६) सात प्राणों में आत्मा के तुल्य प्रकृतियों में राजा की स्थिति । (७) युद्धादि में राजा का प्रजा-रक्षण का कर्त्तव्य । अध्यात्म में आत्मा का वर्णन । (८) राजा का प्रजाशिक्षण का कर्त्तव्य । (९) राजा दानशील हो । (पृ० २८–३१)

सू० [१०] पवमान सोम । स्नातकों और नवाभिषिक्त शासकों को उपदेश । (२) शिल्पियों के हाथों में रथों के समान श्रमियों के आश्रय शासकों की स्थिति । (३) नवाभिषिक्तों के कर्त्तव्य । (४) विद्वान् उपदेशकों का सर्वत्र विचरण । (५) सूर्यवत् राजा की स्थिति, किरणों के तुल्य उसके अधीन शासक प्रजा रक्षक आदि । राजा की विभूति । (६) विद्वानों का कर्त्तव्य । प्रभु वाणी के ज्ञान का प्रसार । (७) विद्वत्-संघ बनाने का उपदेश । (८) नयनों के आश्रय रूप सूर्य के तुल्य अध्यक्ष की स्थिति । (९) ज्ञानी की दीर्घदर्शिता । (पृ० ३१–३४)

सू० [११]—पवमान सोम । तेजस्वी पुरुष की गुण स्तुति । (२) विद्वानों का राजशक्ति से सहयोग । उसका उत्तम फल । (३) राजा वा प्रभु से सर्वपदार्थों से शक्ति प्राप्ति की कामना । (४) विद्वान की वाणी का आदर । (५) योग्य पुरुष का अभिषेक (६) सोमाभिषव और सोम-सवन, तथा उत्तम अध्यक्ष का आश्रय ग्रहण । (७) अध्यक्ष का कर्त्तव्य, दुष्ट-दमन कर प्रजा में शान्ति-स्थापन । (८) प्रजा पालनार्थ अध्यक्ष का स्थापन । (९) अध्यक्ष प्रजा को उत्तम ऐश्वर्य और दृढ़ सहयोग दे । (पृ० ३४–३७)

सू० [१२]—पवमान सोम । आचार्य-कुल में विद्या निष्णात शिष्य और न्याय शासन में अध्यक्ष सोम-पुरुषों का स्थापन । (२) माता और वत्सवत् शिष्य जनों का गुरु जनों से सम्बन्ध । (३) विद्वान् शिष्य के तुल्य नवाध्यक्ष का नवाभिषेक । उसी के सदृश उसकी प्रतिष्ठा । (५)

अभिषेक के साथ ऐश्वर्य प्राप्ति। (६) समुद्र और मेघ के तुल्य शास्य-शासकों के कर्त्तव्य, प्रजा के बल, ज्ञान की उन्नति। (८) विद्यार्थीवत् अभिषिक्त पदाधिकारी को आगे बढ़ने का उपदेश। (९) वह ऐश्वर्य को धारण करे। (पृ० ३७–४०)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१३] पवमान सोम। विद्यास्नातक का वर्णन। (२) विद्वान् का अध्यक्ष पद पर स्थापन। (३) विद्वानों का पवित्र कर्त्तव्य सर्व-साधारण को उपदेश करना। (४) राजा से फल प्राप्त करने की प्रार्थना। (५) अध्यक्ष प्रजा को सम्पन्न करे। (६) तीव्रवेग अश्वों के समान वीरों, विद्वानों का कर्त्तव्य। (७) माता और बच्चे के दृष्टान्त से अध्यक्षों का प्रजा के प्रति रक्षा का कर्त्तव्य। (८) अध्यक्ष का दुष्टदमन करने का कर्त्तव्य। (पृ० ४०–४३)

सू० [१४]—पवमान सोम। तरङ्गस्थ पुरुष के दृष्टान्त से अध्यक्ष की उन्नत पद प्राप्ति। (२) पांचों जन-संघों से अध्यक्ष का प्रस्ताव समर्थन। (३) उसके अभिषेक में सब की प्रसन्नता। (४) राजा का देश को निष्कण्टक करने का कार्य। (५) सूर्यवत् तेजस्वी का अभिषेक और उसकी शुभ्र कीर्त्ति। (६) उसकी लोकप्रिय प्रकृति। (७) उसके अधीन प्रबल सेना और वीर पुरुष। (८) प्रजा की शासक के प्रति स्वीकृति। (पृ० ४३–४६)

सू० [१५]—पवमान सोम। राजा का आगे उन्नति-पथ में प्रयाण। (२) उसका लोक हितार्थ कार्य। (३) राजा को सत् शिक्षण। यूथपति नर वृष के समान सदा सैन्यबल रखने का उपदेश। (५)

सुसज्जित सेनापति का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (७, ८) वीर का अभिषेक। (पृ० ४६–४८)

सू० [१६]—पवमान सोम। अभिषेक करने का मुख्य प्रयोजन, शत्रुओं के संघर्ष से विजय प्राप्ति। (२) अध्यक्ष का गुण दानशीलता (३) शासक के पवित्र पद के योग्य पुरुष के आवश्यक गुण, सर्वोपरि अजेय होना। (४) उसकी सभा-भवन में सभाध्यक्ष पर स्थिति। (५) राष्ट्रपति का आदर। (६) अध्यक्षपद का ग्रहण और (७) अधीनों पर अनुशासन। (पृ० ४८–५०)

सू० [१७]—पवमान सोम। दुष्ट शत्रुओं के नाशकारी वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। उनके अदम्य तीव्र जलप्रवाहों के तुल्य वेग से आक्रमण और प्रयाण। (३) निष्णात पुरुष की पवित्र पद पर प्राप्ति। (४) अभिषेक योग्य पुरुष के समान देहों में जीव की दशा। (५) देह में आत्मा का शासन। (६) प्रभु की स्तुति। (७) उपासना। (८) ज्ञान की प्रार्थना। (पृ० ५०–५३)

सू० [१८]—पवमान सोम। सोम परमेश्वर का वर्णन। सर्व-धारक, सर्वपालक प्रभु। (३) सर्वरक्षक। (४) सब ऐश्वर्यों का स्वामी। (५) माता पितावत् प्रभु। (६) सर्वोपदेष्टा। (पृ० ५०–५५)

सू० [१६]—पवमान सोम। प्रभु से धनैश्वर्य की याचना। शक्ति वाले जीव और प्रभु। (३) प्रकृति का स्वामी प्रभु, सर्वोपदेष्टा प्रभु। (४) मेघ और भूमि के तुल्य प्रकृति परमेश्वर की जगत-सर्ग में कारणता। (५) जगत्-सर्गकारी प्रभु ने प्रकृति को कैसे गर्भित किया। पक्षान्तर में—गौ, सांड और राज प्रजा के व्यवहार का स्पष्टीकरण। (६,७) शत्रुनाश की प्रार्थना। (पृ० ५५–५८)

सू० [२०)—पवमान सोम। वीर पुरुष को उत्तम पद प्राप्ति।

(२) उसकी दानशीलता। (३) विद्वान् से ज्ञान की याचना। (४) अन्न-धन की प्रार्थना। (५) सन्मार्ग के नेता से उत्तम वाणियों की प्रार्थना। (६) सेनाध्यक्ष का वर्णन (७) अध्यक्ष का पवित्र पद। (पृ० ५८—६०)

सू० [२१]—पवमान सोम। सोम ईश्वर के भक्त जन। उनका योद्धाओं के समान उद्योग। (२) उनके गुण। (३) उनका प्रभु के प्रति विविध प्रस्थान। (४) अश्वों के समान उनकी आगे बढ़ कर ऐश्वर्य प्राप्ति। (५) वीरों से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (६) ज्ञान के सञ्चय का आदेश। (७) साधक की ब्रह्मपद प्राप्ति (पृ० ६०–६२)

सू० [२२]—पवमान सोम। वीरों, विद्यार्थियों, विद्वानों का रथों के तुल्य उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना। (२) वायुओं के समान उदार होना। (३) विद्वानों का ज्ञानपूर्वक कर्म करना। (४) उनका अनथक जीवन-मार्ग में चलना। (५) उनकी उत्तम पद प्राप्ति। (६) जीवों की नाना लोक तथा परम पद तक की गति। (७) सर्वसञ्चालक प्रभु। (पृ० ६२–६४)

सू० [२३]—पवमान सोम। विद्वानों, वीरों के समान जीवों की उत्पत्ति। (२) जीवों की सांसारिक मनुष्यों के समान उच्च नीच पद की प्राप्ति। मनुष्यों का अपने बीच तेजस्वी पुरुष को जन्म देना (३) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (४) उपासकों का परमेश्वर की ओर गमन। (५) परमेश्वर का प्रभु पद। व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, जगत् का का सञ्चालक। (६) प्रभु के परम रसपान से प्राप्त जीव की बड़ी शक्ति। (पृ० ६४–६६)

सू० [२४]—पवमान सोम। परमेश्वर के भक्त साधकों की उन्नति की ओर गति। (२) जलधाराओं से उनकी उपमा। (३) वीर के समान जीव को उन्नति पथ पर अग्रसर होने का उपदेश। विपथगामी

इन्द्रियों के जय का उपदेश। (४) परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश। (६) आनन्दमय परम पावन प्रभु। (७) परमपावन, परम रक्षक प्रभु। सूक्त में एक सोम प्रभु और अनेक सोम जीवों का वर्णन। (पृ० ६६–६९)

सू० [२५]—सोम पवमान। सर्वदुःखहारी 'हरि' प्रभु से प्रार्थना। आत्मा, जीव और आत्मा प्रभु का वर्णन। (२) जीव का देह में आने का कारण। (३) सर्वश्रेष्ठ क्रान्तदर्शी व्यापक आत्मा। (४,६) साधनाओं के पश्चात् उपासक को मोक्षलोक की प्राप्ति। (पृ० ६९–७१)

सू० [२६]—पवमान सोम। परमेश्वर का अति सूक्ष्म बुद्धि से विचार विमर्श करने का उपदेश। (२) प्रभु की स्तुतिकारिणी वेदवाणियां। (३) धारणावती बुद्धि द्वारा भगवान् की प्राप्ति। (५) योग-समाधि द्वारा ज्योतिः स्वरूप प्रभु की प्राप्ति, साक्षात्कार। (६) उसी की उपासना, स्तुति, प्रार्थना आदि। (पृ० ७१–७२)

सू० [२७]—पवमान सोम। स्तुत्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य पुरुष के गुण। (३) उसका कर्त्तव्य। (४) उसका प्रभाव। (५,६) उसकी सूर्य के समान स्थिति। (पृ० ७२–७४)

सू० [२८]—पवमान सोम। मुख्य रक्षक पद के योग्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य के कर्त्तव्य। (३) उसका अभिषेक। (४,५) उसको ऐश्वर्य पद प्राप्ति, तेज और प्रभाव। (६) उसका कर्त्तव्य, दुष्टों का दमन। (पृ० ७४–७६)

सू० [२९] सोम पवमान। आत्मा की देह में राष्ट्र में राजा के समान स्थिति। (३) सातों प्राणों के स्वामी आत्मा की साता प्रकृतियों के स्वामी राजा से तुलना। आत्मा 'सप्ति' का वर्णन। (३) राजा के समान आत्मा के साधनों का वर्णन। (४) आत्मा को लोकजय का उपदेश। (५) निन्दकों से रक्षा की प्रार्थना। (६) ऐश्वर्य शक्ति आदि

की प्रार्थना। पक्षान्तर में—तीव्र रसों से विद्युत्, यांत्रिक बलों को उत्पन्न करने आदि विज्ञान का संकेत। (पृ० ७६–७८)

सू० [३०]—सोम पवमान। बलवान् शासक की राष्ट्र शोधक घोषणा। (२) शासक के कर्त्तव्य। (३) प्रजा के बीच शासन-बल की उत्पत्ति। पक्षान्तर में—जलधारा से यान्त्रिक बल पैदा करने का संकेत। (४) वेगवान् जल के तुल्य शासक के कार्य। (६) बल-वृद्ध्यर्थ बलवान् नेता के अभिषेक का उपदेश। (पृ० ७८–८०)

सू० [३१]—पवमान सोम। देह में प्राणों का कार्य। राष्ट्र में विद्वानों और वीरों का कार्य (२) उत्तम शासकवत् आत्मा के शासन का वर्णन। (४-५) उत्तम विद्वान् का शासन। अध्यात्म शासन की तुलना। (पृ० ८०–८२)

सू० [३२]—पवमान सोम। वीरों और विद्वान् स्नातकों के कर्त्तव्य। (३) हंसवत् विवेकी कर्त्तव्य। हंस परमेश्वर। (४) सिंहवत् ज्ञानेच्छुक का कर्त्तव्य। सिंहवत् धर्माध्यक्ष का कर्त्तव्य। (५) पतिव्रता स्त्रीवत् स्वामी के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। (६) उत्तम बुद्धि की प्रार्थना। (पृ० ८२–८४)

सू० [३३]—पवमान सोम। जंगल के महिषों वा जलतरंगों के समान, शासकों का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में–प्राणों के बीच जीव की स्थिति। (२) विद्वान् शिष्यों के ज्ञान-वितरण की सत्पात्र में दान देने वालों के अन्नादि दान से उपमा। (३) राष्ट्र के कार्य के लिये योग्य विद्वानों का तैयार होना। (४) वाणियों का गौओं वा धनुष की डोरियों के समान उद्गम। (५) माता के तुल्य विद्वानों का उपदेश कार्य। (६) धनार्थी को उपदेश। (पृ ८४–८६)

सू० [३४]—पवमान सोम। वीर आक्रामक नेता के कर्त्तव्य।

उसी प्रकार देह-बन्धन नाशक योगी को उत्तम पद प्राप्ति का वर्णन। (२) प्रभु की प्राप्ति के लिये विद्वानों का सत्संग। (३) उनका सत्कार। (४) सर्वोपरि पुरुष का स्थान। (५) मेघों के तुल्य अभिषेक्ता जनों के कर्त्तव्य। (६) जिज्ञासु के कर्त्तव्य। (पृ० ८६–८८)

सू० [३५]—पवमान सोम। प्रभु से ऐश्वर्य और प्रकाश की प्रार्थना सेनापति के प्रति प्रजाजन की प्रार्थना। (४) न्याय-शासक के कर्त्तव्य। (५,६) उसके प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। (पृ० ८८–९२)

सू० [३६]—पवमान सोम। शत्रुपीड़क सेनापति का कण्टक-शोधन कार्य। शासक के राष्ट्र के प्रति अनेक कर्त्तव्य। (४) उसका बल के आश्रय सर्वोपरि अभिषेक। (५) सर्वैश्वर्य-प्राप्ति। (पृ० ९०–९२)

सू० [३७]—पवमान सोम। उपास्य प्रभु के गुण। (२) उसका हृदय में प्रकट होना। (३) पावन प्रभु। (४) प्रकाश स्वरूप प्रभु। (५) सर्वशक्तिमान् शक्तिप्रद। (६) सत्पात्र में प्रभु का प्रकाश। (पृ० ९२–९३)

सू० [३८]—पवमान सोम। मेघवत् रसवर्षी प्रभु। (२) भक्त की भावनाओं का प्रभु तक जाना। (३) महान् राजा के तुल्य महान् प्रभु। (४) व्यापक प्रभु (५) सर्वदर्शी आनन्दमय प्रभु। (पृ० ९२–९४)

सू० [३९]—पवमान सोम। बुद्धिमान् पुरुष के कर्त्तव्य। (२) अन्यों के प्रति उसके कर्त्तव्य। (२) परमधाम प्राप्ति, ज्ञान प्राप्ति (४) जीव की प्रभु में निमग्नता। (५) उपासित प्रभु का उपास्य के हृदय में आविर्भाव। (६) समबुद्धि उपासकों के लक्षण। (पृ० ९५–९७)

सू० [४०]—पवमान सोम। विद्वान् ज्ञानी की स्तुति। जीव को परमेश्वर की ओर जाने का उपदेश। परमेश्वर से बलों की और ऐश्वर्यों की प्रार्थना, याचनादि। (पृ० ९७–९९)

सू० [४१]—पवमान सोम। विद्वान् परिव्राजकों के कर्त्तव्य। अज्ञान दूरकर ज्ञान का प्रचार करें। (२) आदरणीय रक्षक। दुष्ट दमन करने का उपदेश। (३) साधक के भीतरी आनाहत नादों के मेघ-गर्जवनत् श्रवण और विद्युत् के तुल्य दीप्तियों की प्रतीति। ईश्वर वा राजा से प्रजा की ऐश्वर्य याचना। (५) पालन करने की प्रार्थना। मेघ के समान वाणी द्वारा प्रभु वा स्वामी का प्रजा को प्राप्त होना। (पृ० ९९–१०४)

सू० [४२]—पवमान सोम। सर्वसंञ्चालक, सर्वोत्पादक प्रभु सर्व· सुखप्रद है। (२) सर्वज्ञानप्रद प्रभु। (३) ऐश्वर्यवान् वीर राजाओं का युद्ध के लिये प्रयाण। (४) पवित्रपद में स्थित का कर्त्तव्य। (६) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (पृ० १०१–१०२)

सू० [४३]—पवमान सोम। प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। सर्वशासक प्रभु। उससे सुखों और बलों की याचना। (पृ० १०२–१०४) इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः ॥

सप्तमोऽष्टकः। प्रथमोऽध्यायः ॥

सू० [४४]—पवमान सोम। मुख्य अयास्य प्राण की उपासना। सर्व-शासक की स्तुति। (४)–(६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० १०५–१०७)

सू० [४५]—पवमान सोम। परमेश्वर से प्रार्थना। (५) मिलकर ईश्वर स्तुति करने का उपदेश। उससे ज्ञान, बल की याचना। (पृ० १०९–११०)

सू० [४६]—पवमान सोम। कुशल पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वर के प्रति ब्रह्मचारिणी कन्या के तुल्य, ब्रह्मचारियों का गुरु के प्रति उत्सुकता

पूर्वक गमन । (३) तेजस्वी पुरुषों का राजा के बल वृद्धि करने का कर्त्तव्य । वीरों और ब्रह्मचारियों को समान वावय से आगे बढ़ने और वीर्य-रक्षा का उपदेश । (५) ऐश्वर्यवान्, धनदाता के कर्त्तव्य । (६) दश प्रकृतियों प्रजाओं का शासक के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १०९–११०)

सू० (४७)—पवमान सोम । शास्ता का उत्तम कर्म के अनुसार उन्नत पद । उसके कर्म और ऐश्वर्य । (३) उत्कृष्ट बल वीर्य । (४) सर्वपोषक राजा शासक, सेवकों को भृति, वेतन आदि का देने वाला हो । (पृ० १११–११२)

सू० [४८]—पवमान सोम । सूर्य के तुल्य सर्वोपरि शासक से प्रजा का धनों के निमित्त प्रार्थना करना । विजेता शासक से याचना । (२) अध्यात्म में आत्मा की उपासना । (३) सर्वकामपूरक प्रभु । (४) ज्ञानियों को ज्ञानप्रद प्रभु । (५) वह महान् सर्वद्रष्टा सर्वप्रद है । (पृ० ११२–११३)

सू० (४९)—पवमान सोम । सुखवर्षी प्रभु । वाणीदाता प्रभु वा स्वामी । (३) स्वामी से यज्ञ द्वारा वृष्टि और परमेश्वर से वाणी द्वारा ज्ञानप्रकाश की प्रार्थना । (४) जलधारा से अन्न के तुल्य वाणी से ज्ञानप्राप्ति की प्रार्थना । परमेश्वर वत् राजा से राक्षसों के नाश की प्रार्थना । (पृ० ११३–११५)

सू० [५०]—पवमान सोम । विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य ज्ञानोपदेश और शस्त्र प्रयोग । (२) परमेश्वर से तीनों प्रकार की वाणियों का प्रादुर्भाव । पक्षान्तर में राजा के अभिषेक में वेदत्रयी का उपयोग । (३) अभिषेक, योग्य पुरुष के गुण । अर्चना योग्य के कर्त्तव्य । उसका राष्ट्र-शोधन का कर्त्तव्य । (पृ० ११५–११७)

सू० [५१]—सोम पवमान । विद्वान् का योग्य व्यक्ति को अभि-

षिक्त करना। तेजस्वी पुरुष का अभिषेक करना चाहिये। (२) क्षमा-शील राजा के अन्न जल के आश्रित प्रजाजन। (४) उत्तम राजा और प्रबन्धक के कर्त्तव्य, प्रजापालन और वर्धन। (५) अभिषिक्त होकर उसकी प्रभाव और बल के द्वारा पवित्र पद की प्राप्ति। (पृ० ११७–११८)

सू० [५२]—पवमान सोम। शासक और प्रजाजन के परस्पर कर्त्तव्य। वह बल-शक्ति बढ़ावे। (३) विजेता का राज्याभिषेक। (४) वहुतसों के चुनने पर प्रधान पद की प्राप्ति। (५) उसका कर्त्तव्य शुद्ध व्यवहार का चलाना है। (पृ० ११८–१२०)

सू० [५३]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। प्रजा-समृद्ध्यर्थं बलवान् राजा की स्थापना। (पृ० १२०–१२२)

सू० [५४]—पवमान सोम। प्रभु से ज्ञान प्राप्ति। प्रभु सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वद्रष्टा, एवं सूर्यवत् सात प्रकृतियों में राजा की स्थिति। (३) सर्वोपरि प्रभाव एवं सर्वोपरि राजा।

सू० [५५]—पवमान सोम। प्रजा के प्रति राजा के सत् कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर से प्रार्थनाएं। राजा के कर्त्तव्य, उत्तम आसन पर स्थिति, प्रजा को नाना सम्पदा का देना और शत्रु-नाश। (पृ०१२२–१२३)

सू० [५६]—अभिषेक्य के कर्त्तव्य। पवमान सोम। (पृ० १२२–१२३)

सू० [५७)—पवमान सोम। मेघवत् शासक के कर्त्तव्य। शत्रु-दमन, सर्वसाक्षी, सब को सन्मार्ग दिखाना आदि अनेक कर्त्तव्य। (पृ० १२५–१२६)

सू० [५८]—पवमान सोम। प्रभु की वाणी द्वारा उपासना। उसके सहस्रों ऐश्वर्य। (पृ० १२६–१२७)

सू० [५९]—उत्तम शासक के कर्त्तव्य । प्रजा के चित्त को स्वच्छ रखे, सब बुरे कार्यों से प्रजा को बचावे, सब को अपने वश करे ।

सू [६२]—पवमान सोम । राजा के कर्त्तव्य । राजा को शत्रु नगरों के तोड़ने का उपदेश । पक्षान्तर में नाड़ियों के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश (३) अश्ववित् से अश्वों की प्राप्ति । राजा अभिषिक्त होकर प्रजा का मित्र होकर रहे । (५) वह प्रजा को सुख दे । (६) शासक और प्रभु का वर्णन । अति उदार का अभिषेक, उसकी सूर्यवत् स्थिति । उसके अनेक कर्त्तव्य । (१०) राजा के प्रताप का सर्वपालन का महत्व (११) ऐश्वर्य का राज्य में समान विभाग । (१२) इन्द्र पद के योग्य पुरुष । (१३) सब कोई उसकी शरण हों । (१५) प्रजा में ऐश्वर्य के साथ २ शान्ति स्थापन करे । (१६) जगत् उत्पादक के तुल्य राष्ट्र में राजा का तेजस्वी पद । (१७) राजा का दयामय कर्त्तव्य, (१८) उसका सर्वोत्तम तेज । राजा के अनेक कर्त्तव्य । (२३) वीरों के कर्त्तव्य, उनके उत्साह योग्य कार्य । (२५) उसके कण्टक-शोधन का कार्य । उसके कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजा की मान-रक्षा । (पृ० १८९-१३८)

सू० [६२]—पवमान सोम-उत्तम पदों पर अभिषिक्त अनेक जन । उनके कर्त्तव्य । (४) बलवान् शासक के कर्त्तव्य । (५) अभिषिक्त का वर्णन । (६) उसको सजाने आदि का प्रयोजन, भय से रक्षा । (७-१०) उसका विद्वानों के प्रति कर्त्तव्य । (११-१४) वह सर्वबन्धु हो । राष्ट्रैश्वर्य की वृद्धि करे । राजा के ईश्वरवत् कर्त्तव्य । (१५) विद्वान् कुलवान् को राजा करें । (१६) राजा के प्रयाण का प्रकार । (१७) राजा का जैत्ररथ । त्रिबन्धुर रथ की अध्यात्म और राजनीति पक्ष में व्याख्या । युद्ध और दुष्ट दमन के लिये बलवान् और ज्ञानी पुरुष का स्थापन । (१९) अभिषेक घट के तुल्य राष्ट्र में अभिषिक्त राजा की शोभा । (२०) राष्ट्र के सब उत्तम जन उसके पोषक हों । (२१) बहुश्रुत

पुरुष का अभिषेक करो। (२२) मुख्य शासक के नीचे अनेक गौण शासक हों। (२३) शासके कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। (२४) बलशाली बनने के लिये, योग्य नाना कलाविदों से ज्ञान प्राप्त करे। (२७) अन्य प्रजाओं को ज्ञान धनादि से समृद्ध करे। (२८) प्रभुवत् राजा की विभूति का प्रदर्शन। (२९) वृष्टियों के समान अधीनों के प्रति राजा की आज्ञा-वाणियों का प्राप्त होना। (२९) विद्वान् कैसे वी वान् ऐश्वर्यवान् को इन्द्रपद के लिये अभिषेक करें। राज्यासन पर अभिषिक्त पुरुष प्रजाजन के लाभा ही बल धारण करे। (पृ० १३८–१४८)

सू० [६३]—सोम पवमान। राजा प्रजा को समृद्ध करे। (२) प्रजा को समृद्ध के ही अपना सैन्य बल बढ़ावे। (३) वह बड़ा सैन्य बल का स्वामी होकर राष्ट्र में बराबर विचरे। (४) विद्वानों वा भावी परि-व्राजकों का आश्रमों से आश्रमान्तर में प्रवेश (५) वीरों और विद्वानों का सबको आर्य, श्रेष्ठ बनाते हुए दुष्टों को दण्डित करते हुए, विद्वान शासकों का आगे बढ़ाना। (७) राजा का राष्ट्र शोधन का कर्त्तव्य। (८) राज्यकार्य में आकाशयानों का प्रयोग। प्रजा का सन्मा में चलाना राजा का कार्य। (१०) वीर, शत्रुवारक पुरुष का पदाभिषेक। पक्षान्तर में विद्यार्थी विद्वान् का स्नातक होना (११) राजा प्रजा को इतना अपार समृद्धिशाली बनावे कि शत्रु उसका अन्त ही न कर सके। (१२) उसके ऐश्वर्य में सहस्रों गौएं वा अश्वारोही आदि हों। (१३) मेघ के तुल्य अभिषेचनीय प्रजा की स्थिति (१४) किरणों वा जलों के समान शासकों के कर्त्तव्य। (१५) उनका राष्ट्र-शोधन का पवित्र कार्य। पक्षान्तर में—आचार्य से शिक्षित शिष्यों के कर्त्तव्य। (१६) अभिषिक्त का सूर्यवत् पद। (१७) जलों और ओषधिरसों के तुल्य राजा का अभिषेक, उसके परिशोधन के तुल्य हो। (१८) उसके कर्त्तव्य, समृद्धि प्राप्ति। (१९) संग्राम-कुशल के समान बल, अन्न, ज्ञान आदि में श्रेष्ठ पुरुषों का भी भिन्न २ उत्तम पदों

पर अभिषेक । (२०) परिव्राजकादि के तुल्य अन्य अभिषिक्तों के कर्त्तव्य । (२१) सर्वोत्पादक प्रभु का गुण-स्तवन । (२२) उसके 'वायु' पद की व्याख्या । (२३) विद्वान् ऐश्वर्यवान् का अपार ज्ञान-सागर प्रभु में प्रवेश । (२४) उसको दुष्ट प्रवृत्तियों और नाशक बुरे व्यक्तियों को त्यागने और दूर करने का कर्त्तव्य । (२५) विद्वानों का कर्त्तव्य दया से सबको सत्य ज्ञानों का वितरण करें । (२६) राष्ट्र-शोधक जनों का कर्त्तव्य । (२७) वायु वा जल धाराओं के तुल्य सोम, शासकों की विद्यास्थानों से उत्पत्ति । (२८) विद्वानों का कर्त्तव्य, दुष्टों का नाश । (२९) वीर शासक का कर्त्तव्य । (३०) उसका सर्वैश्वर्य-धारण । (पृ० १२७–१४८)

सू० [६४]—सोम पवमान । राजा के कर्त्तव्य । उसके मेघवत् कर्त्तव्य । (३) रथ के अश्व के तुल्य उसका राष्ट्र-चक्र प्रवर्तन का कर्त्तव्य । (४) प्रमुख पुरुषों को ज्ञान, बल, धन आदि की प्राप्तयर्थ नियुक्ति । (५) शासकों और दीक्षित वा स्नातक पुरुषों के वेष आदि का श्लिष्ट वर्णन । (६) विद्वानों का गुरुओं को दक्षिणा दान । (७) प्रचारकों का किरणों के तुल्य कर्त्तव्य । (८) विद्वान परिव्राट् का समुद्र के तुल्य अगाध ज्ञानी होने का उपदेश । (९) परिव्राजक को देश देशान्तर भ्रमण का उपदेश । (१०) आत्मावत् शासक जन का कर्त्तव्य । (११) विद्वान् और धर्माध्यक्ष के कर्त्तव्य । उसके किये उपदेश का सत्-फल । अन्यों को सत्-ज्ञान और शिक्षा प्राप्त हो । (१२) अभिषिक्त दयालु पुरुष के पवित्र कर्त्तव्य (१३) वाणी और जल धारा से स्नात को उत्तम पद प्राप्ति । (१४) छाज के समान उसके सत्यासत्य विवेक का कर्त्तव्य । (१५) विवेक से राजत्व पद और प्रभु पद की प्राप्ति । (१६) उत्तम कर्मनिष्ठ पुरुषों का उत्तम गम्भीर पद व प्रभु को प्राप्त होना । ज्ञान वाणियों द्वारा परम-पद प्राप्ति । (२०) ज्ञानी को प्रभु-पद-प्राप्ति के अवसर, में काम क्रोधादि का त्याग । राज्यपद प्राप्ति के काल में मूर्खों के त्याग का उपदेश ।

(२१) ज्ञानी और अज्ञानी लोगों की ऊर्ध्वगति और अधःपतन। (२२) मरुत्वान् इन्द्र की प्राप्ति के लिये विद्वान् को आदेश। (२३) विद्वान् उसको ज्ञान-वाणियों से परिष्कृत करें। (२४) विद्वान् के ज्ञान का और राज के वचन का सब श्रवण करें। (२५) शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य, ज्ञानपूर्वक वाणी का प्रयोग करे। (२६) वह सर्व-पालक वाणी का प्रयोग करे। (२७) वह सर्वप्रिय होकर अभिषिक्त हो। (२८) वह शक्ति से ही स्तुत्य हो (२९) उसको सैनिक के समान सदा सज्जन रहने का आदेश। (३०) वानप्रस्थ के अनन्तर संन्यास का आदेश। संन्यासी का सूर्यवत् पद। (पृ० १५७–१६६)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [६५]—पवमान सोम । वरणीय वर। कन्याओं को चन्द्रवत् आल्हादक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को वरण करने का उपदेश। (२) विवेकी, योग्य-विद्या स्नातक ऐश्वर्य प्राप्त करे। (३) विद्वान् की सेवा करे, वह संयम से जीवन बितावे। (४) वह मेघवत् वीर्यवान्, सेक्ता, बली, हृष्टपुष्ट पवित्राचार हो। सब उसका आदर करें। (५) शस्त्र आदि से शोभित होकर राजा वा वीर के तुल्य गृहस्थ में प्रवेश करे। स्नान कर, स्वच्छ हो रथ में चढ़ने के तुल्य वह विद्या आदि गुणों से स्नात और सुशोभित होकर गृहस्थ में पैर रखे। (७) वरार्ह पुरुष की राजा के तुल्य स्तुति हो (८) वीर पुरुष की स्तुति। (९) उसकी सर्वप्रियता। (१०) देह में वीर्य के तुल्य बलवान् राष्ट्र में शासक के कर्त्तव्य। वह अपने से बड़े के शासन में रहे। (११) राजा को ऐश्वर्य के लिये प्रेरणा। (१२) वह अपने अधीनों को प्रेरित करे। (१४) प्रजा के प्रतिनिधियों रूप कलशों से राजा का राज्याभिषेक। (१५) बलशाली का प्रधान निर्णायक पद पर अभिषेक और

उसका न्याय-कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मा का आनन्द-रस-दोहन और इन्द्रियों का दमन। (१६) सेनापति और राजा का सर्वोपरि प्रयाण योग्य होना। (१७) राजा से गौ आदि ऐश्वर्यों की प्रार्थना। (१८) मनुष्यों के पालनार्थ राजा का अभिषेक, वह प्रजा के बल, धन और तेज को बढ़ावे। (१९) राजा का श्येनपक्षी के समान तेजस्विता का मार्ग। (२०) समस्त प्रजा के सेवक के तुल्य राजा को उत्तम उद्योग से उत्तम २ अधिकार प्राप्ति। (२१) प्रजा की अगली सन्तति की उन्नति के लिये उसको सहस्रों के धन की प्राप्ति का आदेश। (२२) नाना अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। वे सब प्रजा के दुःख-निवारणार्थ ही हों। अध्यक्ष शासकों पर भी एक अति विद्वान् जमदग्नि पुरुष की नियुक्ति। (२३) अभिषिक्तों का आकाश में नक्षत्रवत् प्रजाओं में स्थिति। (२७) उसकी स्तुति वा प्रस्ताव और उस का वरण। वरण योग्य पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० १६७–१७५)

सू० [६६]—पवमान सोम। प्रभु परमेश्वर का वर्णन। वह सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, मित्रों का मित्र, परम वन्दनीय है। (२) वह सर्वप्रकाशक है। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (३) सूर्यवत् प्रभु। (४) सब सुखों और शक्तियों का दाता प्रभु। (५) सर्वप्रकाशक प्रभु। (६) सर्वशासक, वाणियों का परम लक्ष्य है। (७) प्रभु, उपासित होकर जीव का सुखदाता आनन्दप्रद है। (८) वेद के सातों छन्द उसकी स्तुति हैं (९) वह प्रभु वेदों से एक मात्र स्तुत्य है। (१०) पक्षान्तर में वेदज्ञ का वर्णन। ईश्वर के सृष्ट लोकों का प्रसार। (११) राष्ट्र में शासक पद पर कोश से पुष्ट राजा की स्थापि। (१२) उपासकों के तुल्य शिष्यों का गुरु-सेवन। (१३) शिष्य के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। (१४) प्रभु शासक के सख्य की कामना। (१५) उत्तम शासक का महान् शास्तृ-पद। (१६) पराक्रमी को विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१७) अति पराक्रमी, अति शूर

अतिदानी प्रभु। (१८) प्रभु को मित्र-भाव के लिये वरण। (१९) उससे रक्षा बलादि की याचना। (२०) पुरोहित का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। उसकी महागृह, महाप्राण से उपमा। (२१) ज्ञानवान् तेजस्वी बल की प्रार्थना। (२२) सर्वद्रष्टा से प्रार्थना। (२३) विशेष अध्यक्ष की उत्तम उद्योग के लिये नियुक्ति। (२४) उसका कर्त्तव्य अज्ञान नाश। (२५) दुष्टों के नाशक तेजस्वी के उत्तम गुणों का स्वतः-प्रकाश। (२६) वही सब गुणों से शोभित होता है। (२७) उसके कर्त्तव्य। उत्तम वीर्य धारण करे, दयालु हो। पक्षान्तर में इन्द्र प्रभु, की परस्पर प्राप्ति। देह के अधिष्ठाता जीव की जीवन-क्रीड़ा,और परमानन्द के लिये प्रभु की पुकार। इसी प्रकार प्रजा का राजा को पुकारना। (३०) प्रभु से जीवन दान की प्रार्थना। (पृ० १७६–१८४)

सू० [६७]—पवमान सोम। उत्तम शासकों का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सेनापति का वर्णन। (४) उत्तम विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य उनके अनेकानेक कर्त्तव्य। (७) उनका कण्टक-शोधन कार्य। ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (८) वह प्रशास्ता, इन्द्रपद पाकर सर्वोपकारी हो। अभिषेक योग्य के प्रति अन्यों के प्रोत्साहन और उपदेश। (१०) उत्तम पुरुष ही विवाह योग्य वर हो। (११) वही मधुपर्क योग्य होता है।(१२) वैसा ही तेजस्वी पुरुष कन्याओं का पति होने योग्य है। (१३) विद्वान् का कार्य, उत्तम ज्ञान, धन, प्रदान करे। (१४) स्वच्छ पवित्र होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम गृह में प्रवेश करे। (१५) वीर राजा का बल-प्रयोग। उसका श्येनवत् आक्रमण। (१६) उसका अन्नादि ऋद्धि के लिये उद्योग। (१७) अभिषिक्तों का सब की रक्षा के लिये सज्ज रहना। (१८) विद्यार्थी का वीर के सदृश कर्त्तव्य। उत्तम शिक्षा पाकर शासन पद के योग्य होना। राष्ट्र का कण्टक-शोधन करने वाले के कर्त्तव्य। वह किनको दण्ड दे। (२३–२७) तेजस्वी ज्ञानी लोग सबको पवित्र करें। (२८)

शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य। (२९) उत्तम अन्न जल, आदि दुग्ध आदि की वृद्धि करना। (३०) अन्यायी की दुर्दशा, और भूमियों का सत्कार। (३१) पावमानी ऋचाओं के अध्ययन का महत्व। (पृ० १८५–१९४)

सू० [६८]—पवमान सोम। दुधार गौओं के समान विद्वानों के कर्त्तव्य। वे ज्ञान धारा को प्रवाहित करें और शुद्ध ज्ञान को धारण करें। (२) ज्ञानवान् अध्यक्षों के कर्त्तव्य। घोषणा और उपदेशों से ज्ञान-आदेश प्रसारित करें। पवित्र शास्ता पद पर रहकर भीतरी बाहरी शत्रुओं का नाश करें। (३) सभापति व प्रजाओं के प्रति शासक का कर्त्तव्य, उनको बढ़ाना। (४) माता पिता की सेवा और अपने शक्ति-मान् होने का उपदेश। (५) ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी का विद्या-गर्भ से उत्तम जन्म। (६) स्नातकों का अभिषेक। (७) परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में—राजा का राज्याभिषेक। (८) प्रभु की स्तुति, प्रार्थना। (९) परमेश्वर सर्वव्यापक, उसकी उपासना, पक्षान्तर में राजा के अभिषेक का वर्णन। (पृ० १९४–२००)

सू० [६९]—सोम पवमान। परमेश्वर की उपासना। उसकी मन्त्रों द्वारा स्तुति, उसके द्वारा प्रभु की प्राप्ति। (४) सर्वशासक परमेश्वर। (६) सर्वदुःखहारी प्रभु। (७) सूर्य की रश्मियों के तुल्य जगत् की पालक शक्तियों का महान् कार्य। (७) राजा के अधीन भृत्य शासकों के कर्त्तव्य। (८) ईश्वर से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (९) महारथियों के समान स्नातकों के कर्त्तव्य, (१०) सोम शिष्य के कर्त्तव्य। (पृ० २००–२०६)

सू० [७०]—पवमान सोम। विद्यार्थी के लिये वेदविद्या का दोहन पक्षान्तर में परमेश्वर का वेदों का प्रकाशित करना। (२) ब्रह्मचारी के लिये भिक्षावृत्ति, ब्रह्मचर्य पालन, (३–४) विद्योपार्जनार्थ गुरुगृह में वास,

और प्रभु की आराधना। (५) ब्रह्मचारी का राजा के तुल्य नियमबद्ध होकर राजा के दुष्ट दमन के तुल्य अन्तः शत्रुओं का दमन। (६) प्रभु के उपासक परिव्राजक की लोक-सेवा। (७) ब्रह्म-जिज्ञासु पुरुष के कर्त्तव्य। ज्ञानमयी कन्था का धारण। (८) ज्ञानी का आमरण अभिषेक और मधुपर्कादि से आदर। (९) उत्तम विद्वान् से ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। शिष्य की ज्ञान-गर्भ से उत्पत्ति। (पृ० २०६—२११)

सू० [७१]—पवमान सोम। दान दक्षिण आदि की व्यवस्था। उससे उत्तम शासकों की उत्पत्ति। (२) अनुशासक पुरुष वा उपदेशक का कर्त्तव्य। उसका आदरणीय पितृ तुल्य पद। (३) स्नातक का माननीय आदरयोग्य पद। (४) सभापति राजा के तुल्य प्रधान विद्वान् का आदर। (५) प्रधान अध्यक्ष पर दशावरा परिषत् की योजना। सभा के निश्चयानुसार अध्यक्ष के अधिकार। (६) उसको सर्वोपरि आसन ग्रहण की प्रेरणा। (७) राष्ट्र-शासकवत् सर्वेश्वर प्रभु का वर्णन। उसका अनादि शासन। (८) प्रजा द्वारा चुने अध्यक्ष का उत्तम शासन। विद्वान् शास्ता का मधुपर्कादि से सत्कार। (९) राजा वा सेनापति का प्रबल और दयापूर्ण शासन। (पृ० २११—२१६)

सू० [७२]—पवमान सोम। अभिषेक योग्य पुरुष के विशेष गुण उसके कर्त्तव्य। (२) मधुपर्कादि से उसका समुचित आदर और उसके गुण स्तवन और उत्साह प्रदान। उसका लोकमत के अनुसार शासन से शान्ति प्राप्ति। उत्तम शासक के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (५) सेनापति सोम। उसका प्रोत्साहन। (६) गुरु विद्वान् से ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश। उसके चरणों में जिज्ञासुओं का आगमन। (७) सोम का स्वरूप, सर्वोपरिशासक बल का रूप। (८) त्यागी तपस्वी साधक का उच्च प्रकाशमय परलोक को प्राप्त करने का उपदेश। (९) राजा और प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० २१६—२२१)

सू० [७३]—पवमान सोम। जगत्स्रष्टा की स्तुति। प्रभु ने मस्तक के तीन भाग बनाये, वही सत्य की नौका के समान पार करने वाली है। (२) परमेश्वर की स्तुति करने वाले, उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं। (३) ज्ञानधारक गुरु का वर्णन। (४) प्रभु के उपासकों का वर्णन। पक्षान्तर में गुरु के अधीन वेदाध्यायी जनों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (५) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्यार्थियों के कर्त्तव्य। वे तेजस्वी होकर दुष्टों का नाश करें। (६) विद्वानों और अविद्वानों के भिन्न २ मार्ग। (७) प्रभु का पथ पवित्र वेदज्ञान के अभ्यास से वाणी का पवित्र होना और विद्वानों के सद्गुण। (८) न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु परमेश्वर का न्याय शासन। (९) न्यायी की वाणी पर आश्रित यज्ञ। अजितेन्द्रिय का अधःपतन। (पृ०२२१—२२६)

सू० [७४]—पवमान सोम। प्रभु से शरण की याचना। पक्षान्तर में नव जात शिशु का जन्म और उनके निमित्त माता पिता की गृहादि की कामना। (२) सर्वाश्रय पालक, सर्वव्यापक, सर्वपालक सर्वसुखदाता प्रभु। (३) भूलोक का रक्षक सूर्य और जल का वर्णन। अध्यात्म में प्रभु और आत्मा का वर्णन। कालमय प्रभु का अन्न जगत है। प्रभु ही सब का परममार्ग है। (४) सूर्य द्वारा जलवृष्टि का वैज्ञानिक रहस्य। (६) सूर्य की दिव्य शक्तियां (७) जलवृष्टि का रहस्य। (८) वीर के तुल्य प्रभु परमेश्वर का कृपायुक्त व्यवहार और परम स्तुत्य प्रभु। (९) प्रभु का परमानन्द रस (पृ० २२६—२३१)

सू० [७५]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। (२) वेद-वाणी, वक्ता और ज्ञान-रक्षक के कर्त्तव्य। (३) अभिषेचनीय तेजस्वी और विद्यानिष्णात पुरुष का वर्णन। (४) उसकी सर्वप्रियता। (५) उत्तम ज्ञानवान् और अध्यक्ष का वर्णन। (पृ० २३१—२३४)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [७६]—सोम पवमान। सर्वोत्पादक प्रभु का वर्णन। (२) महान् शासकवत् परमेश्वर का वर्णन। (३) जगद्-उत्पादक का वर्णन। (४) वही वेद-ज्ञान का प्रकाशक है। (५) वही जीव के समस्त कोशों को बनाता, स्वयं प्रकाशमय, कृपालु और रक्षक है। (पृ० २३४–२३७)

सू० [७७]—पवमान सोम। वज्रवत् बलशाली आत्मा। (२) प्रभु सर्वशासक, सर्वव्यापक, सब जात्रों का सन्मार्ग पर चालक है। (३) ज्ञानी पुरुषों के कर्त्तव्य। (४) प्रभु का अपूर्व शासन। (५) सर्व-कामनाप्रद प्रभु। (पृ० २३७–२४०)

सू० [७८]—पवमान सोम। शासक राजा के कर्त्तव्य। (२) उत्तम शासक शास्त्रोपदेशक के कर्त्तव्य। अभिषेक योग्य राजा का वैभव। (३) शासकवत् प्रभु का वैभव। (४) सर्वजित् शासक और प्रभु। (५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य, शत्रु का नाश कर प्रजा को अभय देना। (पृ० २४०–२४२)

सू० [७९]—पवमान सोम। उत्तम विद्वानों का वर्णन। (२) उत्तम वीरों का वर्णन। (३) परमेश्वर की महती शक्तियां। (५) उत्तम सेव्य स्वामी प्रभु। (पृ० २४२–२४४)

सू० [८०]—सोम पवमान। अध्यक्ष वा उत्तम उपदेष्टा का वर्णन। (२) हृदय-व्याप्त ज्ञानप्रद, जीवनदाता प्रभु। (३) उसकी अनेक कृपाएं। सर्व-कामदुघा प्रभु। अभिषेक योग्य के तुल्य प्रभु का वर्णन। (पृ० २४४–२४७)

सू० [८१]—सोम पवमान। प्रभु के आनन्द की तरङ्गें। (२) सर्वधारक, सर्वज्ञ प्रभु। (३) प्रभु से ज्ञान बल की याचना। (४) उससे उत्तम संगी तथा उत्तम जनों के प्राप्ति की याचना। (पृ०२४७–२५०)

सू० [८२]—पवमान सोम। जगत्-शासक और राष्ट्र-शासक का वर्णन। (२) मेघवत् विजेता और प्रभु का वर्णन। (३) शास्य और शासक की स्थिति। (४) जीव को प्रभु का आश्रय लेने का उपदेश। (पृ० २५०–२५३)

सू० [८३]—तपस्या द्वारा प्रभु के पद की प्राप्ति। (२–३) मुक्त परमहंसों का वर्णन। प्रभु के शासन में जीवों की स्थिति। यजमानवत् प्रभु का वर्णन। शत्रुविजय के अनन्तर राज्य की वृद्धि के समान मोक्ष पद की प्राप्ति। (पृ०२५३–२५६)

सू० [८४]—सोम पवमान। विद्वान् असंग, ज्ञानी, सर्वोपकारी, अन्यों को ज्ञान-धन देने वाला हो। (२) सोम परमेश्वर के गुणों का वर्णन। वह सर्वाध्यक्ष, तेजःस्वरूप, सर्वप्रेमी है। (३) सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। (४) सर्ववशी प्रभु। सर्वस्तुत्य, सर्वसुखप्रद प्रभु। (पृ०२५६–२५९)

सू० [८५]—पवमान सोम। उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (२) कण्टक-शोधक के कर्त्तव्य। (३) दयालु प्रभु वा परमेश्वर वा शासक का वर्णन। (४) विजयी राजा के गुण। (५) उसके अभिषेक होने की योग्यता। (६) शासक को उत्तरोत्तर वृद्धि का आदेश। (७) प्रजाओं द्वारा राजा की स्तुति, उसी प्रकार प्रभु के प्रति भक्तजनों का जाना। (८) विजयी से प्रजाजन की विजय। पक्षान्तर में मुक्तात्मा के देह-बन्धन में न गिरने का संकेत। (९) सूर्यवत् सभापति का पद। उसके कर्त्तव्य। (१०) विद्वानों को प्रभु की प्राप्ति। (११) वेदवाणियों द्वारा प्रभु की स्तुति। (१२) सर्वोपरि शक्ति प्रभु। उसका सूर्यवत् वर्णन। (पृ० २६९–२६५)

सू० [८६]—सोम पवमान। राजा के वीर सर्दार के तुल्य परमेश्वर और उपासकों का वर्णन। (२) राजा के सैनिकोंवत् उपासकों के कर्त्तव्य। (३) अश्ववत् भक्त विद्वान् का प्रभु की ओर बढ़ना। (४) आत्मोपसना

आत्म-साधना। (५) सर्वव्यापक प्रभु। (६) व्यापक प्रभु की हृदय में परिशोध। (७) यज्ञमय जगच्चक्र का प्रवर्त्तक प्रभु। उसकी हृदय में प्रतीति। (८) व्यापक प्रभु और आत्मा का तुल्य वर्णन। (९) मातृवत् प्रभु का भक्त का बालवत् उपसेवन। (१०) आत्मा का वर्णन। (११) षोडशकल आत्मा हरि का वर्णन। (१२) आत्मा का शूरवत् अभिषेक। (१३) आत्मा की पक्षी के तुल्य संसार-गति का वर्णन। (१४) ज्ञानी आत्मा का स्वतन्त्र लोकों में विचरण। (१५) सुखप्रद स्वामी प्रभु। (१६) आत्मा परमात्मा का परस्पर सख्य-भाव। प्रभु के अधीन नियमबद्ध होकर कामनाओं से प्रेरित आत्मा का षोडशकल देह में प्रवेश। (१७) एकाग्रचित्त होकर परस्पर मिलकर प्रभु की स्तुति का उपदेश। (१८) उत्तम सम्पद्, बल, वीर्य आदि की प्रार्थना। (१९) प्रभु की अद्भुत रचना। देह और उसकी रचना, उसके सूक्ष्म २ परमाणुओं में व्याप्ति। (२०) आत्मा में भी व्यापक परमेश्वर। (२१) उसका कर्म बन्धन-दाहक ज्ञान का प्रकाश करना। (२२) आत्मा की अनेक देहों में गति। सर्वाश्रय प्रभु की शरण का उपदेश। (२३) गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मार्ग में जाने का उपदेश। (२४) सर्वस्तुत्य और शरणयोग्य प्रभु। (२५) वेदाभ्यास। (२६) आत्म-परिशोधन पूर्वक ज्ञान के अभ्यास से ऐश्वर्य पद की प्राप्ति। (२७) प्रजाओं और सेनाओं द्वारा राजा का अभिषेक। पक्षान्तर में वेदवाणियों से प्रभु की स्तुति और शुद्धजनों से प्रभु की प्राप्ति। (२८) जगत् का राजा महान् प्रभु। (२९) वह समुद्रवत् अपार, सर्वज्ञ सर्वेश्वर है। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (३०) सर्वधारक प्रभु। (३१) उपदेष्टा की उत्तम गति। (३२) स्तुतियों का लक्ष्य प्रभु। (३३) विद्वान् का मेघ के सदृश प्रशस्त मार्ग। (३४) अभिषेकयोग्य की ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (३५) ज्ञाननिष्ठ के अभिषेक के तुल्य आत्मा का स्वच्छ होने का वर्णन। (३६) सेनापति को सेनाओं के तुल्य विद्याशास्ता को जिज्ञासु

शिष्यों की प्राप्ति। (३७) ज्ञानी पुरुष का अनेक लोगों और वेदवाणियों से ज्ञान प्राप्त करना। (३८) प्रभु से ऐश्वर्यों और सुखों की याचना। (३९) सर्वोपास्य सर्वप्रद प्रभु। (४०) उपदेष्टा के कर्त्तव्य। गुरु-शिष्य के परस्पर कर्त्तव्य। (४१–४२) आचार्य और प्रभु के शिष्य और जीवों के प्रति दया का वर्त्ताव। शास्य-शासकवत् सम्बन्ध। (४३) उपासकों का योग-साधना द्वारा प्रभु का साक्षात्। (४४) देह से देहान्तर में कैंचुली से सर्पवत् जाने वाले आत्मा का ज्ञानोपदेश। (४५) प्रभु और आत्मा का वर्णन। (४६) जगत्-धारक प्रभु। (४७) ईश्वर की महती शक्तियां। (४८) ईश्वर स्तुति, ज्ञान-प्रार्थना।

सू० [८७]—पवमान सोम। परमेश्वर की उपासना। (२) सर्वाश्रय प्रभु। राजा के समान परमेश्वर की महान् शक्ति। (३) पूज्य विद्वान्, उसका कर्त्तव्य, आत्म ज्ञान। (४) उपासक ज्ञानी का वर्णन। (५) उपासकों के कर्त्तव्य। सवारों की वीरों से तुलना। (६) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य। (७) अभिषेचित को उपदेश वीर के समान विद्यानिष्णात के कर्त्तव्य। (८) शासक गुरु से मेघगर्जनावत् ज्ञान वाणी का शिष्य को प्राप्त होना। (९) ज्ञान-संञ्चयार्थ गुरुकुलोपसना का उपदेश। (पृ० २८६–२९२)

सू० [८८]—पवमान सोम। शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य। शुश्रूषु शिष्य का रूप। गुरु के शिष्य रूप भूमि के प्रति कृषक के तुल्य ज्ञान-बीज वपनादि कार्य। (२) रथ के अश्वों के समान शिष्यों को इन्द्रिय दमन का उपदेश। पक्षान्तर में देह में आत्मा का दिग-दर्शन। (३) विद्या-व्रत-स्नातक का विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृह में आवर्त्तन अर्थात् लौटना और उसका गृहाश्रम में प्रवेश। (४) व्रतनिष्ठ विद्वान् का विजयी सेनापति के तुल्य आत्म-विजय। (५) जलों में प्रशान्त अग्नि के तुल्य शिष्य की वनस्थों के बीच ज्ञान-प्राप्ति, और उपदेष्टा होने का आदेश। (६)

मेघस्थ धाराओं के तुल्य विद्वानों का आनमन और उनका प्रभु वा जनों के प्रति गमन । (७) विद्वान वा राजा का अन्यों को बिना पीड़ा दिये आना और विजय करना । (८) राजा के अनेक कर्त्तव्य । (पृ० २९३–२९६)

सू० [८९]—पवमान सोम । विद्वान् विद्या-क्षेत्र में आगे बढ़ें । उसका मातृवत् गुरुगर्भ में वास । (२) राष्ट्रपति के तुल्य देह में आत्मा और जीव का वेदवाणी पर आरोहण और उन्नति और पिता प्रभु का उस पर अनुग्रह । (३) सिंहवत् उद्योगी को प्रजादि सम्पदाओं की प्राप्ति । (४) सिंहवत् उद्योग, अश्ववत् बलवान् की, नायक पद पर नियुक्ति और उसका अभिषेक । (५) उसको अनेक शक्तियों की प्राप्ति । (६) सर्ववशी प्रभु । (७) इन्द्र-पदोचित पुरुष के कर्त्तव्य । (पृ० २९६–२९९)

सू० [९०]—पवमान सोम । साधक पुरुष की ईश्वर प्राप्ति की साधना । (२) सर्व-शक्तिमान् प्रभु, सर्वरक्षक का वर्णन । (३) आत्म साधक के वीर के तुल्य कर्त्तव्य । (४) उत्तम शासक के कर्त्तव्य । (५) प्रभु के प्रसादन का उपदेश । (६) आत्मपावन का उपदेश । (पृ० २९८–३०२)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [९१]—पवमान सोम । वाग्मी नेता के तुल्य वाक्पति का वर्णन । (२) उपास्य आत्मा का स्वरूप । (३) सर्वज्ञानोपदेष्टा प्रभु । उत्तम उपदेष्टा वेदज्ञ का वर्णन । (४) अग्निवत् तेजस्वी, राष्ट्र-शोधक वीर के कर्त्तव्य । (५) प्रभु से सन्मार्ग की याचना । (६) प्रभु से ज्ञान प्रकाश की प्रार्थना । (पृ० ३०२–३०५)

सू० [९२] पवमान सोम । प्रभु की उपासना । उत्तम सेनापति के

कर्त्तव्य। अध्यात्म में इन्द्रियाध्यक्ष आत्मा का वर्णन। (३) हृदय में परम-देव की प्राप्ति। (४) प्रभु के अंगभूत ३३ देव, उसकी ज्ञानप्रद सात छन्दो-वाणियां। (५) प्रभु का परम पावन रूप। (६) सिंहवत् पराक्रमी शासक का अभिषेक। (पृ० ३०५—३०८)

सू० [९३]—पवमान सोम। अभिषेक-प्राप्त राजा के तुल्य देह में आत्मा की स्थिति। (२) बालकवत् देह में आत्मा का शक्ति-संचय। (३) गो-वत्सवत् देही का ज्ञानवान् और पुष्ट होना। आत्मा का इन्द्रियों पर प्रभुत्व। उपास्य से ऐश्वर्य आदि की कामना। (पृ० ३०८—३११)

सू० [९४]—पवमान सोम। आभूषणों के समान आत्मा में गुण, वाणी, स्तुति आदि की उपमा। सूर्य-रश्मियों के तुल्य उसकी प्रजाएं, और पशु-पालक के तुल्य प्रभु का प्रजावर्धन का कार्य। (२) आनन्दमय प्रभु का दो प्रकार का वर्णन। ज्ञान रूप से, और काम्य रूप से। (३) ज्ञानप्रद प्रभु का राष्ट्रपति के समान शासन। (४) विजेता के समान तेजस्वी की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (५) ईश्वर से अन्न बल, समृद्धि आदि की याचना। (पृ० ३११—३१३)

सू० [९५]—पवमान सोम। वानप्रस्थ में विद्वान् जिज्ञासु के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) न्यायऋत वाणी को बढ़ाने का विद्वानों का कर्त्तव्य। (३) तरंगों और प्रजाओं के तुल्य गुरु-वाणियों का वर्णन। (४) पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर परमेश्वर में आनन्द लाभ करने का उपदेश। (५) योग्य, विद्यानिष्णात शिष्य का कर्त्तव्य, ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना है। (पृ० ३१४—३१६)

सू० [९६]—पवमान सोम। सेनापति का वर्णन। (२) सेनापति के अश्वों और अधीन पदाधिकारियों का सुभूषित करना। महारथी का वर्णन। (३) उसका रण में प्रयाण। (४) उसका उद्देश्य, प्रजा का

सुख कल्याण । (५) स शासक प्रभु । (६) सर्वोपदेष्टा का वर्णन, वह कैसा है । अध्यात्म में आत्मा और उसके इन्द्रियगण का वर्णन । उसके ब्रह्मा, कवि, श्येन, स्वधिति आदि नाम। इन्द्रियों के देव, कवि, विप्र, मृग, गृध्र, वन आदि नाम । उत्तम शासक उपदेष्टा और आत्मा का वर्णन (८) वीर विजेता के तुल्य आत्मा का वर्णन । (९) देह में आत्मा के तुल्य सर्वशासक प्रभु और राष्ट्रपति राजा का वर्णन। (१०) परमात्मा का मेघ के तुल्य वर्णन, वही वेद-ज्ञान का दाता है । (११) जगत्-शासक प्रभु और राजा से प्रजाओं की प्रार्थना । (१४) विद्वान् और वीर के कर्त्तव्य । (१५) सर्वप्रिय शासक । (१६) राजा शासक के कर्त्तव्य । वीर प्रजा जनों के शासक के प्रति कर्त्तव्य । (१७) उसका अभिषेक और परम पद प्राप्ति । (१८) उपदेष्टा के कर्त्तव्य । सेनापतिवत् आत्मा का वर्णन । (२०) वीर युवा अश्व के तुल्य आत्मा का देहों में संक्रमण । (२१) तेजस्वी के कर्त्तव्य । (२२) अभिषेकयोग्य के कर्त्तव्य । (२३) स्नातक के गृहाश्रम-धारणवत् राजा का राष्ट्र-भार का धारण । (२४) उत्तम शासक, गृहपति और राजा के समान कर्त्तव्य । (पृ० ३१६–३३८)

सू० [९७]—पवमान सोम । तेजस्वी शासक के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य । वह धन, बल, और पशु सम्पदा की गृहपात के समान वृद्धि करे । (२) सेनापति के सभापतिवत् कर्त्तव्य । (३) अभिषिक्त के कर्त्तव्य । (४) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) जीव का राजावत् वर्णन । उसका परमपद की ओर प्रयाण । (६) आत्मा का वीर सेनापतिवत् वर्णन । (७) विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य । (८) परमहंसों की प्रभु-शरण-प्राप्ति, पक्षान्तर में आंगूष्य हंस आत्मा और वृषगण का विवरण । (९) अवर्णनीय महान् प्रभु । (१०) विद्वान् और वीर राजा के कर्त्तव्य । (११) जीव का जिज्ञासु शिष्यवत् वर्णन । (१२) दश अमात्यों पर मुख्य राजा के समान दश प्राण युक्त आत्मा का वर्णन । (१३) राजसभा के स्वामिवत् आत्मा

का वर्णन । (१४) अभिषेक योग्य विद्वान् उपदेष्टा, सत्कारयोग्य शासक का वर्णन । (१५-१९) उसके कर्त्तव्य । (२०) मुमुक्षु जनों का वर्णन । (२१) उत्तम शासक विद्वान् के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (२९) अग्रणी विद्वान् के कर्त्तव्य । (३६) ऐश्वर्य पदाधिकारी के कर्त्तव्य । (३९) उपास्य प्रभु का वर्णन । (४२) विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (४८) उसके कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य । (५०) प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (५३) दयालुता पूर्ण कर्त्तव्य । (५४) दुष्टों का दमन करे । प्रजा को ऐश्वर्य दे । (५६) मेधावी का माता पिता से भी अधिक मान्य पद । (५७) परमानन्द रस वाले प्रभु की उपासना । (पृ० ३१८-३५६)

सू० [९८)—सोम पवमान । तेजस्वी के कर्त्तव्य । (२) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य । राजा के कवचवत् रक्षण कार्य । (३) उसका राजकीय भव्य वेश । और उच्च आसन । (४) उसके कर्त्तव्य । (६-७) पांचों प्रजाओं से उसका अभिषेक । (९) उसके प्रति जनसभाओं के कर्त्तव्य । (१०) उसके कर्त्तव्य और जिम्मेवारियां । उत्तम अनेक पदाधिकारियों के कर्त्तव्य । (१२) कैसे को पदाभिषिक्त करें । (पृ० ३५६-३६०)

सू० [९९]—पवमान सोम । वीरता और स्तुति का पात्र, शासक । उसका स्तुत्य पद । उसका प्रयाण उसका प्रजाओं द्वारा अभिषेक पक्षान्तर में-प्रभु की उपासना, वरण और स्तुति । (६) अध्यात्म में आत्मा का वर्णन । उपास्य आत्मा वा प्रभु का प्रजाओं में शक्ति-वितरण । देहगत हृदय व आत्मा का वर्णन । (पृ० ३६०-३६३)

सू० [१००]—पवमान सोम । गौवों के बछड़े के प्रति प्रेम के सदृश परमेश्वर के परम प्रेमरस का आस्वादन । (२) प्रभु से प्रार्थनाएं । (४) वाणियों का लक्ष्य प्रभु । (५) विद्वान् का राज्य पद पर अभिषेक ।

उसके प्रजा आदि के प्रति कर्त्तव्य । (७) उसका स्तुत्य पद । (८) सूर्यवत् उसका वर्णन । (९) प्रभु का विश्व-धारण । (पृ० ३६३-३६६)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पवमान सोम । आत्मा की उन्नति के लिये त्याज्य लोभी पुरुष का त्याग और तृष्णालु चित्त का दमन । (२) अभिषिक्त शासक और परिव्राजक का कर्त्तव्य । (३) आत्मा का शासकवत् प्रतिपादन । (४) शासकों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य । (५) प्रभु की उपासना का उपदेश । (६) आत्मा और परमात्मा में मित्रता का सम्बन्ध । (७) पूषा प्रभु और पूषा आत्मा । (८) वेदवाणियों और विद्वानों का स्तुत्य और प्राप्य लक्ष्य प्रभु है । (९) उसकी साधना और साक्षात् करने का उपदेश । (१०) परम पावन विद्वानों का वर्णन । (११) उनके कर्त्तव्य । (१२) उनके उत्तम गुण । (१३) आत्मा की साधना के पूर्व लोभादि को विजय करने को उपदेश । (१४) माता पिता वा प्रिय पतिवत् प्रभु । (१५) विश्वाध्यक्ष विश्वधारक प्रभु । (१६) सब वाङ्मय के ऊपर मेघवत् प्रभु । (पृ० ३६६–३७२)

सू० [१०२]—पवमान सोम । जगत् के शासक प्रभु की आज्ञा-वाणी वेद । (२) यज्ञमय प्रभु का रम्य रूप । (३–४) विद्वान् प्रभु की स्तुति उपदेशादि करे । प्रभु के अधीन सब जीव प्रेम से रहें तो उत्तम है । (६) सर्वोपास्य प्रभु । (७) महायज्ञ के निर्माता अनादि तत्व आत्मा और प्रकृति । (८) प्रभु से शुद्ध निष्पाप होने की प्रार्थना । (पृ०३७३-३७५)

सू० [१०३]—पवमान सोम । सेवकवत् नियमपूर्वक देव-उपासना करने का उपदेश । (२) व्यापक प्रभु । (३) स्तुत्य अन्तर्यामी प्रभु । (४) सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वनेता, सर्वदुःखहारी है । (५) अविनाशी, विद्वान्, अमृत प्रभु । (६) परम पावन व्यापक प्रभु । (पृ० ३७५–३७७)

सू० [१०४]—सोम पवमान । सबको मिलकर उपासना करने का

उपदेश । (२) वाणियों से व्यापक प्रभु की उपासना करो । (३) उपासना और ज्ञान का फल बल, ज्ञान, तेज, और शान्ति सुख प्राप्ति है । (४) प्रभु से वेदवाणियों द्वरा अपनी अभिलाषाएं प्रकट करना । (५) मार्गदर्शी ज्ञानी प्रभु है । (६) छली, वंचक को दूर करने की प्रार्थना । (पृ० ३७७-३७९)

सू० [१०५]—पवमान सोम । व्यापक प्रभु की स्तुति । यज्ञों द्वारा उपासना । वाणियों से ज्ञान द्वारा प्रभु का साक्षात्कार । (३) उपासित प्रभु सुख देता है । (४) बल देता है, पक्षान्तर में शुद्ध राजा की स्थापित । (५) सर्वमित्र दानशील दयालु प्रभु । (६) दुष्टों से बचने की प्रार्थना । (पृ० ३८०–३८२)

सू० [१०६]—पवमान सोम । देह में वीर्यों के तुल्य राष्ट्र में सर्वसुख साधक विद्वानों की प्रभु की उपासना । (२) यथार्थ ज्ञान के लिये प्रभु की उपासना । (३) आश्रय योग्य प्रभु । (४) प्रभु सर्वद्रष्टा, सर्वसुख दाता । (५) सर्वलोक नियन्ता, सब की एक मात्र गति सर्वद्रष्टा उससे सुखों की याचना । (६) उसकी उपासना । (९) बन्धन-मोचन के लिये प्रभु की उपासना । (१०) गुरुवत् प्रभु की उपासना । (११) उसका स्तुति । (१२) हृदय में प्रभु का आविर्भाव । (१४) साक्षात् प्रभु प्राप्ति । (पृ० ३८२–३८६)

सू० [१०७]—पवमान सोम । अभिषेक-योग्य पुरुष का वर्णन । (२) अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य । उसकी उत्तम गुण-स्तुति । (३) अध्यक्ष के गुण और कर्त्तव्य । (५) उसका उत्तम पद प्राप्त करते हुए सुपरिक्षित होना । (६) वह अनालसी होकर उच्च पद पावे । (७) सर्वशास्ता प्रभु । वा गुरुओं का गुरु कवि है । (८) पक्षान्तर में अभिषिक्त राजा से तुलना । (९) समुद्रवत् रस-सागर प्रभु । (१०) साधक विद्वान् को मोक्ष मार्ग का उपदेश । (११) स्तुत्य आत्मा । (१२) सर्व-प्रेरक पूर्ण प्रभु । (१३) रथ के तुल्य रसवान् प्रिय आत्मा । (१४) रस-

सागर प्रभु की ओर विद्वानों का मार्ग। (१५) दिनरात्रिवत् जगत् की उत्पत्ति-प्रलय करने वाला प्रभु। (१६) व्यवस्थापक प्रभु। (१७) मेघवत् आनन्दवर्षी प्रभु। (१८) विद्वान् परिव्राजक के कर्त्तव्य उसकी दीक्षा, पक्षान्तर में राजा के अभिषेक का दिग्दर्शन। (१९) प्रभु से इन्द्रिय रूप शत्रुओं द्वारा गिरने से बचने की प्रार्थना। (२०) प्रिय परमात्मा से मोक्ष की याचना। (२१) ऐश्वर्य याचना। (२) प्रभु का दर्शन। (२३) प्रभु को ज्ञान-प्रदान। (२४) सुखप्रद प्रभु और उसकी ज्ञान-वाणियों से स्तुति। (२५) ज्ञानियों को मोक्ष-लाभ। (२६) आत्मा का गर्भ में प्रवेशवत् आनन्दमय कोश में प्रवेश। (पृ० ३८६–३९७)

सू० [१०८]—सोम पवमान। स्तुत्य आत्मा से सुख की आशंसा। उसका वर्णन। परम पावन से प्रार्थनाएं। (४) अमृतत्वरूप मोक्ष की ओर (५) अमृतत्व की प्राप्ति। (६) आत्मा में स्तुति-प्रेरक प्रभु। (७) सर्वसञ्चालक अव्यक्त प्रभु की उपासना। (८) राजावत् आत्मा की उपासना। (९) प्रभु से आनन्दमय कोष में प्रवेश करने में बाधक मध्यमकोशों के खोलने की प्रार्थना। पक्षान्तर में सेनापति का वर्णन। (१०) सेनापति और परमेश्वर प्रजापति का वर्णन। (११) समस्त ऐश्वर्य के स्वामी से प्रार्थना का उपदेश। (१२) सर्वप्रकाशक पिता प्रभु। (१३) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु। सर्वगुरु प्रभु को स्वीकार करना। (१५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (१६) सागरवत् प्रभु सब का परम लक्ष्य। परमेश्वर सर्वाश्रय स्तम्भ। (पृ० ३९७–४०४)

सू० [१०९]—पवमान सोम। जीव को प्रभु की प्राप्ति का उपदेश। (२) सद्भावना। (३) परम रसरूप प्रभु। (४) सूर्यवत् सुख-रसवर्षी प्रभु। (५) उससे अनेक प्रार्थनाएं, (६–७) विश्वकर्त्ता प्रभु। (८) सर्वसुखपद प्रभु। (९) ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (११) रसप्रद प्रभु (१२) उसका ध्यानाभ्यास। (१४) प्राणायाम साधन। (१५)

प्रभु के परम रस की प्राप्ति । (१६) उसका साक्षात् । (१८) साधक को उपदेश । (१७) साधना का मार्ग । (२०) परम सुखार्थ ज्ञानोपासना । (२१) आत्मा का शोधन । (२२) परमेश्वर प्राप्त्यर्थ तपः-साधना । (पृ० ४०४–४१०)

सू० [११०] सोम पवमान । वनस्थ और संन्यस्त जनों के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर, राजा, विद्वान् के कर्त्तव्य । (५) कूप के तुल्य श्रम से प्रभु की प्राप्ति । (६) प्रभु स्तुति । (७) प्रभु के साक्षात् के लिये जितेन्द्रियता की साधना । (८) प्रभु-कृपा से प्रभु की प्राप्ति । (९) सर्वोत्पादक प्रभु सोम । (१०) पावन प्रभु की प्राप्ति, (११) सर्वशासक तेजस्वी दयालु । (१२) दुर्गम-तारक प्रभु । (पृ० ४१०–४१५)

सू० [१११]—पवमान सोम । राष्ट्रशोधक राजा के तुल्य आत्म-शोधक विद्वान् का वर्णन । (२) आत्मा और राजा का बलवान् होना, (३) साधक का वीर के तुल्य उद्योग । (पृ० ४१५–४१७)

सू० [११२]—पवमान सोम । नाना बुद्धियों और नाना कर्म के करने वालों में तरखान विद्वान् और वैद्य के तुल्य ऐश्वर्य के पद की ओर न बढ़ने का उपदेश । (२) वाणकार के समान वाणों, वा शस्त्र-बल से ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश । (३) अनेक उद्योग, व्यवसाय वालों का प्रमुख राजा द्वारा परस्पर संघटन । अध्यात्म में—नाना कर्म करने वाले अंगों का परस्पर ऐक्य । (४) अश्व-गाड़ी मन्त्री-राजा और युवा-युवति के दृष्टान्त से योग्य व्यक्ति को अनुरूप ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश । (पृ० ४१७–४१९)

सू० [११३]—पवमान सोम । शस्त्रबल पर राजा का राज्य की रक्षा का कर्त्तव्य । (२) वह वेद द्वारा न्यायानुसार शासन करे । (२) सेना और सामन्त आदि उसे पुष्ट करें । (४) वह पुरोहित आदि उत्तम कार्य-

कर्त्ता जनों द्वारा प्रजा को सत्य की शिक्षा करे। (५) प्रभु के ऐश्वर्यों के तुल्य राजा के ऐश्वर्य। और राजा का दुष्टों के नाश का कर्त्तव्य। (६) चाहने योग्य ऐश्वर्यपद। विद्वानों से शासित राज्य हो। (७) अमृत लोक का वर्णन। (८) प्रभु से अमृत होने की प्रार्थना। (९) ज्योतिर्मय लोकों में अमृतत्व प्राप्ति। (१०,११) सुखमय लोकों में अमृतत्व की प्रार्थना। (पृ० ४१९–४२४)

सू० [११४] पवमान सोम। उत्तम गृहपति, उत्तम प्रजावान् का लक्षण। उत्तम शासक, प्रजा-पालक का आदर-पूजा करने का आदेश। (३) सात आदेष्टा, सात सचिवादि साहाय्य से राज्य का देहवत् शासन। (४) राजा का कर्त्तव्य। प्रजा की सब कष्टों से रक्षा। (पृ० ४२४–४२६)

इति पावमानं सोम्यं नवमं मण्डलम्।

अथ दशमं मण्डलम् (सू० १–४५)

सू [१]—अग्नि। सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य, शत्रु विजय। विद्वान् का कर्त्तव्य ज्ञान-प्रसार। (२) अरणियों में अग्नि और माता पिता में बालकवत् स्व-पर सैन्यों और शास्य शासक वर्गों में राजा की स्थिति। (३) सूर्य के तृतीय आकाशवत् ज्ञानी का तृतीय आश्रम का सेवन और ज्ञान-प्रसार। अध्यापन का कर्त्तव्य। (४) काष्ठाग्निवत् राजा का वर्धन। (५) ज्ञानी व बलशाली की ज्ञान बल प्राप्त्यर्थ उपासना। (६) तेजस्वी राजा का अग्निवत् होकर भी सत्संग करना। (७) राजा का पुत्रवत् पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अग्नि आत्मा वा प्रभु। (पृ० ४२७–४३०)

सू० [२]—अग्नि। राजा के कर्त्तव्य। उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। (४) राजा और विद्वान् हमारी अज्ञान द्वारा हुई त्रुटियों को पूर्ण करें। (५) यज्ञ का उपदेश। (६) गुरु के पास विद्वान् होकर अन्यों को ज्ञान दे। (७) विद्वान् स्वयं गृहपति और कुलपति होकर पितृयाण मार्ग से कर्म करे। (पृ० ४३०–४३४)

सू० [३]—अग्नि। प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् होकर उषा के स्वीकारवत् स्त्री से विवाह कर गृहस्थ होने का उपदेश। (२) सूर्य के तुल्य, गुरु-गृह में विद्वान् स्नातक हो पक्षान्तर में राजा-प्रजा का सम्बन्ध। (३) सूर्य उषावत् गृहस्थ के कर्त्तव्यों और राजा प्रजा के कर्तव्यों का वर्णन। (४) प्रकाशयुक्त किरणों के तुल्य वीरों, विद्वानों का वर्णन। (५) सूर्यवत् प्रचण्ड प्रखर राजा का तेज। (६) राजा के किरणों के तुल्य विद्वान् और गर्जनावत् आज्ञा वचनों का वर्णन। (७) गृहस्थ युवा युवति के गृह-तन्त्र के तुल्य राज्यतन्त्र की तुलना। राजा के कर्तव्य। (पृ० ४३४–४३७)

सू० [४]—अग्नि। प्रपावत् रस-सागर प्रभु। (२) शीत-पीड़ित के लिये अग्नि के तुल्य शरणयोग्य प्रभु। (३) पृथिवी के पुत्र के तुल्य पृथ्वी को राजा का पुत्रवत् पालन-पोषण। (४) मूढ़ जन तेजस्वी की महिमा को नहीं जानते। अग्नि के समान विश्पति राजा का जिह्वा से भूमि का भोग। (५) अग्नि के तुल्य राजा की उत्पत्ति। राजा के श्लिष्ट विशेषण। (६) बाहुओं के तुल्य राजा की सेनाओं के कर्तव्य। (७) राजा की वाणी प्रजा की वृद्धि करे और राजा उनके सन्ततियों की रक्षा करे। (पृ० ३३७–४४१)

सू० [५]—अग्नि। राजा और प्रभु का उत्तम वर्णन। (२) प्रतिष्ठितों, विद्वानों के कर्तव्य। (३) बालक को माता के तुल्य प्रजा राजा

का पालन करे। उसका परस्पर व ँन और, प्रभु विषयक ज्ञान साधना। (४) अन्नार्थी कृशकों आदि के तुल्य धनार्थी जनों को सूर्यवत् राजा की अपेक्षा। (५) सात प्राणों सहित आत्मा के तुल्य राष्ट्रपति का वर्णन। (६) ऋषियों की उपदिष्ट, सात मर्यादाएं। उनके उल्लंघन से पाप। मध्यस्तम्भ के समान राजा की स्थिति। (७) उत्तम अध्यक्षवत् प्रभुसर्वाश्रय। (पृ० ४४१–४४६)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [६]—अग्नि आचार्य का वर्णन। उसके अधीन उपनीत शिष्य की प्राप्ति और वृद्धि। (२) प्रकाश से भानुवत् सबको धर्म का शिक्षक गुरु। (३) प्रभु और सेनापति का वर्णन। (४) सर्वश्रेष्ठ स्तुत्य, ज्ञानी पुरुष। (५) बहुश्रुत तेजस्वी पुरुष की सत्कार सहित संगतिका उपदेश। सभ्यता शिष्टता आदि का उपदेश। (६) ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष के कर्त्तव्य। वह सबका रक्षक हो। (७) तेजस्वी ज्ञानी का अन्यों सब से बढ़ना, सत्संग से ज्ञान प्राप्ति। (पृ० ४४७–४५०)

सू०० [७]—अग्नि। प्रभु से कल्याण और रक्षा की प्रार्थना। (२) स्तुत्य और मनोगम्य प्रभु। (३) प्रभु, पिता, बन्धु, भाई, मित्र है। वही सर्वोपास्य है। (४) समृद्धि की प्रार्थना, परमेश्वर के अनुग्रह की विभूति। (५) यज्ञाग्निवत् प्रभु की स्तुति। उसी प्रकार मथे अग्नि के समान ही राजा का प्रदुर्भाव। (६) प्रभु का आत्मयज्ञ। (७) प्रभु से बल, आयु, जीवन आदि की याचना। (पृ० ४५०–४५३)

सू० [८]—अग्नि। महान् प्रभु का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य। (२) महान् और देह गत आत्मा का समान वर्णन, (३) विराट्, सर्वोपरि महान् प्रभु का वर्णन। (४) लोकधारक प्रभु। पक्षान्तर में

देह के प्रभु आत्मा और गृह्य अग्नि का वर्णन। (५) नेत्रवत् प्रकाशक प्रभु। वह नौकावत् तारक, सर्वश्रेष्ठ है। वह ज्ञानदाता है। (६) विराट् विश्व-यज्ञ का चालक व्यापक प्रभु सबका शिरोवत् है। वही जगत् को भी प्रलयकाल में लीलता है। (७) इन्द्र परमेश्वर की व्यवस्था में रह कर जीवों का देह-बन्धनों में आना। (८) इन्द्र परमेश्वर की देह में अद्भुत रचना। शीर्षगत तीन प्रकार के प्राण-च्छिद्रों का निर्माण। (पृ० ४५३–५२९)

सू० [९]—आपः। आप्त जनों के कर्त्तव्य। जलों से उनकी तुलना। जलों का रोगों को, और आप्तों का दुर्भावों और पापों को दूर करने का कर्तव्य। (पृ० ४५८–४६०)

सू० [१०]—यम, यमी। स्त्री पुरुषों का यम, यमी रूप। उनका सख्य भाव। सन्तान उत्पत्ति के प्रति उनका कर्तव्य। पुत्रोत्पादन का प्रयोजन। वैवस्वत यमयमी का रहस्य। (२) पुत्रों के कर्तव्य। (३) पुत्रार्थिनी स्त्री की अभिलाषा। पाणिग्रहीता पुरुष से ही सन्तान हो। (४) निः-सन्तान स्त्री पुरुषों के पुत्र न होने में कारण पर विचार। (५) असमर्थ पुरुष से समर्थ स्त्री की सन्तान प्राप्ति का आग्रह। (६) पुरुष का अज्ञानवश हुई भूल को अपनी असमर्थता बतलाना। (७) रथ-चक्र के जोड़े की तरह पत्नी का स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति कर गृहस्थ चलाने का संकल्प। (८) पुरुष का स्त्री को अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने का 'नियोग' अर्थात् आदेश देना। (९) पुत्रार्थिनी स्त्री की स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति की प्रबल इच्छा। (१०) भावी सन्तानों को लक्ष्य कर अन्य पुरुष से क्षेत्रज पुत्र प्राप्त करने का पुनः आदेश। (११) पुत्रार्थिनी के आग्रह का कारण। (१२) असमर्थ पुरुष की भ्रातृतुल्यता। भगिनी से संग करना पाप। (१३) स्त्री का परीक्षार्थ पुरुष के प्रति आक्षेप-वचन। पुरुष की अन्तिम आज्ञा। परस्पर सन्तानोत्पादन में कारणवश

असमर्थ स्त्री पुरुषों के लिये नियोग-विधान का प्रतिपादन। (पृ० ४६०–४६७)

सू० [११]—अग्नि। सूर्य के समान राजा वा गृहपति के कर्तव्य। (२) विद्युत् के तुल्य विदुषी स्त्री की अभिलाषा। उत्तम गृहपति के कर्तव्य। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। पक्षान्तर में प्रजा-राजा का उत्तम सम्बन्ध। (४) उत्तम प्रजाओं द्वारा उत्तम पुरुष का नायकवत् वरण। (५) शासक को ऐश्वर्य के तुल्य प्रजाप्रिय होने का उपदेश। (६) उषा-सूर्य के दृष्टान्त से शासक के कर्त्तव्य। राजा के अधीन सेनापति का राष्ट्र-धारण सामर्थ्य। (८) राजा सेनापति और सभापति के कर्तव्य। वे परस्पर अपमान तिरस्कार आदि न करते हुए मिलकर राष्ट्र-कार्य करें। पक्षान्तर में—गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों की योजना भी जाननी चाहिये। (पृ० ३६७–४७२)

सू० [१२]—अग्नि। प्रधानपद पर स्थित के कर्तव्य। (२) धूमकेतु अग्नि तुल्य राजा के कर्तव्य। (३) पृथिवी के तुल्य राजा के उदार कर्तव्य। (४) माता पिता गुरु आदि से प्रार्थना। उनका कर्त्तव्य। (५) शासक के कर्तव्य, उसका वेदवत् सत्य व्यवहारवान् सत्यवक्ता होने का आदेश। (६) अविज्ञेय परम रहस्य। उसके ज्ञान का आदेश। (७) सूर्यवत् सर्वशासक प्रभु की उपासना। मुक्ति के अविज्ञेय ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा। (पृ० ४७२–४७६)

सू० [१३]—हविर्धान। स्त्री पुरुषों को वेद-धर्म का उपदेश। स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (२) योगमार्ग का वर्णन, ज्ञानारम्भ के समान ही ब्रह्मज्ञान का शिक्षा। अमृत-प्राप्ति का मार्ग, (५) राजा के भृत्यों के तुल्य आत्मा के प्राणों का वर्णन। (पृ० ४७६–४७८)

सू० [१४]—यम। नियन्ता राजा का सत्कार योग्य पद। सत्कार योग्य यम, राजा, आचार्य, गुरु, विवाह्य आदि। (२) मार्गदर्शी उत्कृष्ट पुरुष

की नियन्तृ-पद पर स्थापना। उसके कर्त्तव्य। पूर्व पिता पितामहादि के मार्गानुसरण का उपदेश। (३) ज्ञानी मार्गदर्शी पुरुषों को संतृप्त वा प्रसन्न करने का उपदेश। (४–५) राजा का विद्वानों के प्रति कर्तव्य। (६) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का सत्कार उनके अधीन रहने का उपदेश। (७) पितृजन उनके उपदेश किये मार्गों पर आगे बढ़ने का आदेश। (८) सत्संगति और गृहस्थ का उपदेश। पक्षान्तर में—आवागमन पथ में विचरते जीव को उपदेश। (९) राष्ट्र भूमि को उत्तम बनावें। पक्षान्तर में योग साधन का उपदेश। चतुरक्ष शबल दो सारमेयों और पितरों का स्पष्टीकरण। (११) प्रभु से मुक्ति की प्रार्थना। पक्षान्तर में राजा के दो प्रकार के सैन्यों का वर्णन। (१२) यम नाम राजा के दो प्रकार के सैन्यों का वर्णन। अध्यात्म में-प्राण और अपान के बल से दीर्घ-जीवन का उपदेश। (१४) राजा का आदर। (१४) उसके राज्य में निवासियों का कर्त्तव्य। (१५) राजा और ज्ञानदर्शी विद्वानों के प्रति सत्कार। (१६) प्रभु में छः महती शक्तियां। त्रिष्टुप् गायत्री आदि समस्त वेद के छन्दों, मन्त्रों की परमेश्वरपरक संगति होने से उनकी उसमें स्थिति। (पृ० ४७९–४८६)

सू [१५]—पितरः। समस्त मनुष्यों को उन्नति करने का उपदेश। (२) प्रजा-पालक जनों के कर्त्तव्य। (३) ज्ञानियों का आदर, उनसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति। आदर योग्यजन। (४) आदरणीय जनों के उचित आदर का उपदेश। बर्हिषद् पितृगण (५) सौम्य पितृगण उनके कर्त्तव्य। (६) माता, पिता, गुरुओं का ज्ञानोपदेश का कर्त्तव्य। उनका आदरणीय स्थान। (७) प्रजापालक जनों के कर्तव्य। (८) ज्ञानी सोम्य पितर, उनके कर्त्तव्य। यम, नव गृहस्थ। (९) वेदज्ञ विद्वान् पितर, उनकी सेवा। (१०) विद्वान् पितर उनके शिष्य, देव। (११) अग्निष्वात्त पितरों के कर्तव्य। (१२) अग्नि तेजस्वी राजा। उसका पितरों, प्रजा-पालक अध्यक्षों को देह-पोषणार्थ देने योग्य वेतन, स्वधा का देना। (१३–१४) अग्नि

दग्ध, अग्निदग्ध, पितरों का विवेचन। उनके सत्संग से शक्ति प्राप्त करने का उपदेश। अनेक प्रकार के पूज्य जन। (पृ० ४८७–४९३)

सू० [१६]—अग्नि। विद्यासम्पन्न आचार्य। उसके शिष्य के शिक्षण में क र्व्य। विद्यार्थी का तप और विद्या में परिपाक। स्नातक होने के अनन्तर पुनः शिष्य का मा बाप के घर में आगमन। (१–२) व्रतचर्या आदि से विना पक्ववीर्य हुए गृहस्थादि आश्रम में प्रवेश का निषेध। (३) स्वस्थ रहने के लिये भिन्न २ इन्द्रियों का युक्त मार्ग में उपयोग। (४) तप द्वारा आत्मा की शुद्धि। सत्संग द्वारा आत्मोन्नति का उपदेश। (५) विद्यार्थी का तपोव्रत के अनन्तर पितृ-गृह में आवर्तन। (६) विषैले कीट, पतङ्गादि के दंशों से निवृत्ति और रोगनाश का उपदेश। (७) उत्तम वस्त्र-धारण और स्वस्थ रहने का उपदेश। (८) गुरु का कर्त्तव्य सन्मार्ग में प्रवर्त्तन। विद्यादि के योग्य पात्र शिष्य का लक्षण। (९) गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा पोप, अज्ञान आदि का दूर करना। (१०) दुष्टों को दूर करने का उपदेश। (११) समिधा हाथ में लेकर शिष्य को गुरु के समीप जाना। (१२) गुरुजनों के प्रति अवरों का सेव्य भाव। (१३) तड़नापूर्वक शिष्य को ज्ञान, आचार और सद्-गुणों का आश्रय बनाने का उपदेश। (१४) शान्तिप्रद विद्या का वर्णन। (पृ० ४९३–४९९)

सू० [१७]—सरण्यू। परमेश्वर द्वारा प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति। और पुरुष का स्त्री से सन्तान उत्पत्ति और संसार का व्यवहार तथा माता का महामान्य पद। सूर्य उषा का वर्णन। (२) प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति, आकाश की उत्पत्ति। (३) यास्क के मतानुसार, ज्ञानमयी वाणी का वर्णन। (४) पूषा। पशुपालवत् पालक और प्रभु के कर्मों का वर्णन। (५) सर्वपोषक प्रभु रक्षा और सन्मार्ग की याचना। (६) सर्वफल दाता प्रभु पूषा। (७–९) सरस्वती। ज्ञानमयी वेदवाणीवत् सरस्वती नाम से प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में विदुषी का अंगीकार। उसके कर्त्तव्य। (१०)

आपः । आप्त जनों के कर्त्तव्य । उनसे पाप-मोचन की प्रार्थना । (११) सूर्य और ऋतुओं वा मासों के दृष्टान्त से आत्मा और प्राणों का वर्णन । द्रप्स, नाम मूल भूत सर्वजगदुत्पादक परम तत्त्व का वर्णन । (१२) प्रभु के दिये सोम रस का स्वरूप । यज्ञपक्ष में सोमाहुति हुए । (१३) सर्वोत्पादक तत्त्व द्रप्स सोम । (१४) शुद्धि करने की प्रार्थना । (पृ० ५०७—५१८)

सू० [१८]—मृत्यु । दीर्घजीवन का उद्देश्य । देवयान और पितृयाण मार्ग । (२) मृत्यपद का लोप । दीर्घ-जीवन का उपदेश । (४) मनुष्य की परम आयु १०० वर्ष । (५) सब दीर्घजीवी हों, अल्प आयु में मृत्यु न हों । (६) जीवन की नसैनी । (७) स्त्रियें पति-वियुक्त न हों । वे सदा मान-आदर पद का पावें । पति के बाद भी स्त्री पुत्रादि के पालन के लिये जीवित रहे । पुत्र न हो तो नियोग से पुत्रोत्पत्ति करले । (८) मृत पुरुष के हाथ से पुत्र को अधिकार प्राप्त हो । उत्तराधिकारी भी पूर्वजों के समान विजयी हों । उत्तराधिकार के चिन्ह राजदण्ड के समान 'धनुष्' है । (१०) भूमि, आदि की प्राप्ति और शत्रुओं से रक्षा । (११) पक्षान्तर में स्त्री आदि के कर्त्तव्य । (१२) भूमि गृह आदि सुख सामग्री की प्राप्ति । (१३) उत्तराधिकारी को उपदेश । (१४) वाण के पीछे लगे पंखों के तुल्य सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ५०७—५१०)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१९]—अग्नि, सोम, आप, गावः । तेजस्वी और धनवान् अध्यक्षों और उनके अधीन सम्पन्न प्रजाओं के परस्पर कर्त्तव्य । (२) ोपाल के तुल्य प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य । (३) प्रजाओं के कर्त्तव्य । क्षान्तर में—अध्यात्म में इन्द्रियों की चेष्टा और प्रभु और मुक्त जीवों का वर्त्तमान । (४) जीवों का आवागमन । (५) जीवों के लोक-लोकान्तर में आने जाने पर ईश्वरीय व्यवस्था । (६) उसका गोपालवत् वर्त्तन । जीव का मोक्षादि से भी आना । (७) प्रभु का न्याय और सम व्यवहार ।

(८) प्रभु का उत्तम शासन । अध्यात्म में—इन्द्रिय-दमन का उपदेश । (पृ० ५१४–५१७)

सू० [२०]—अग्नि । प्रभु से सत्पथ की प्रार्थना । (२) उत्तम मातृवत् प्रभु । (३) वृत्तिदाता शासक । (४) सूर्यवत् शासक राजा के कर्त्तव्य । (५) अग्निवत् उत्तम पदस्थ विद्वान् के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में ज्ञानी मुमक्षु का परम पद की ओर गमन । (६) यज्ञ और परम पुरुष की उपासना । उनका फल । (७) जीवनप्रद प्रभु की उपासना । (८) उत्तम पुरुषों का कर्त्तव्य, प्रभु की उपासना में रहना । (९) प्रभु का उत्तम शासन । (१०) उसकी श्रद्धा पूर्वक उपासना । (पृ० ५१८–५२७)

सू० [२१]—अग्नि । प्रभु की उपासना । (२) यज्ञ । महान् प्रभु की स्तुति प्रार्थना । (३) महान् प्रभु और राजा के आधार पर प्रजा के नाना व्यवहार । महान् प्रभु । (४) महान् प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । योग्य पुरुष के लक्षण । शासक प्रभु का वर्णन । उस की स्तुति । (पृ ५२१–५२५)

सू [२२]—इन्द्र । परमेश्वर का निरूपण । (३) पिता के तुल्य प्रभु । (४) राजा के तुल्य देह में आत्मा की रीति (६) देह-प्राप्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा । (७) उदार प्रभु से ज्ञान, बल आदि की याचना । (८) दुष्टनाश की प्रार्थना । (९) भूमिवत् सर्वपालक-पोषक प्रभु । (१०) प्रेरक प्रभु और शासक । (११) शूरवीर के कर्त्तव्य । (१२) शक्तिशाली से अपने कार्यों का सफलता की प्रार्थना । (१३) उत्तम कर्मों के लक्षण । (१४) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से भूमि के समान प्रजा की समृद्धि की वृद्धि । राजा के प्रजा-वृद्ध्यर्थ कर्त्तव्य । (१५) राजा को प्रजाक्षय न कर उनके पालन का उपदेश । (पृ० ५२२–५३२)

सू० [२३]—इन्द्र । महारथी सेनापति के कर्त्तव्य । (२) राष्ट्रपति के कर्त्तव्य, उसकी प्रजा के नर-नारियों के आधार पर समृद्धि । (३)

राजा को राष्ट्र का चिरकाल के लिये स्वामी होने का उपदेश। (४) मेघ से वृष्टि के तुल्य राजा की प्रजा पर उदार वृष्टि। मेघ के तुल्य उसका वर्त्तन। (५) राजा का परम पौरुष, परुषभाषी दुष्टों का दमन। (६) दाता प्रभु की स्तुति और गोपतिवत् उसकी याद। (७) परम स्नेही सखा प्रभु। (पृ० ५३२–५३६)

सू० [२४]—इन्द्र। प्रजा को पुत्रवत् पालन करने का आदेश। (२) महान् प्रभु की शरण। (३) पाप से बचाने की प्रार्थना। (४–६) दो अश्वी। पति-पत्नी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। विवाहितों के पालनीय धर्म। (पृ० ५३६–५३९)

सू० [२५]—सोम। महान् प्रभु से सुख-समृद्धि की प्रार्थनाएं। (४) सर्वशरण्य प्रभु। (५) प्रभु की कृपा से उत्तम देह-प्राप्ति। (६) (६) सर्वरक्षक प्रभु। (७) प्रभु से अपने पर दुष्टों के शासन न होने की प्रार्थना। (८) द्रोही से रक्षा की प्रार्थना। (१०–११) सर्वदाता प्रभु। (पृ० ५३८–५४३)

सू० [२६]—पूषा। सर्वपोषक प्रभु। सर्वस्तुत्य प्रभु। (४) सर्वसाधक, संचालक, शोधक प्रभु। (५) फलदाता, सर्वसंचालक दुःखहारी, (६) प्रकृत्यादि का स्वामी। (७) सब ऐश्वर्यों का स्वामी, सर्वप्रेरक है। (८) सर्वमित्र, अनादि आत्मा, ध्रुव अविनाशी, सबका बलप्रद। (९) वह महान् शक्तिशाली, सर्वैश्वर्यप्रद है। (पृ० ५४३–५४७)

सू० [२७]—इन्द्र। ऐश्वर्यवान् प्रभु का स्वात्म-वर्णन। ऐश्वर्यवान् के कर्त्तव्य। (२) इन्द्र पद पर स्थित राजा के प्रति कर्त्तव्य। (३) अप्रातम दुष्ट-नाशक प्रभु। शत्रु के प्रति राजा के कर्त्तव्य। (५) प्रभु और राजा का अप्रतिहत सामर्थ्य। (६) राजा के कर्त्तव्य। निन्दकों का दमन। (७) सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु। (८) जीवों की प्रभु-शासन में गौवों की तरह स्थिति। (९) कर्मफलभोगी जीवगण। (१०) अन्धी

अचेतन प्रकृति से प्रभु की श्रेष्ठता। (१२) सौभाग्यवती वरवर्णिनी स्त्री के समान ईश्वराधीन प्रकृति का वर्णन। (१३) प्रकृति में प्रभु का अद्भुत व्यापन। ईश्वर का प्रकृति-व्यापन मात्र ही भोग है। (१४) प्रभु का मातृत्व। और अपने में प्रकृति के बने जगत् को लीलना। गौ के प्रात परमात्मा का गौ के तुल्य स्नेहपूर्ण अनुग्रह। (१५) राजावत् भोक्ता आत्मा के आठों प्राणों की देह में केन्द्रित व्यवस्था। (१६) दश प्राणों में एक आत्मा की व्यवस्था, (१७) आत्मा, दशों प्राण, और उनमें दो मुख्य प्राण, अपान, और देह में रुधिर आदि की व्यवस्था। (१८) अग्नि-वत् आत्मा का वर्णन। (१९) जगत् का अनादि-सञ्चालक प्रभु, उसका सृष्टि-निर्माण। (२०) उसका जीवों की सृष्टि बनाना। सूक्ष्म शरीरादि से जीवसर्ग की व्यवस्था। जगत् के सञ्चालक प्रभु का महान् ऐश्वर्य। (२२) जीव को प्रभु का व्यापक भय। (२३) परम कारणरूप परमाणुमय प्रकृति से स्थूल जगत् की उत्पत्ति और जीवों की रक्षण-व्यवस्था, (२५) प्रभु की प्राणदात्री शक्ति। सर्वज्ञ और मुक्तिदाता प्रभु। (पृ० ५२७–५५६)

सू० [२८]—इन्द्र। देह का मुख्य शासक आत्मा। मुख्य शासक के कर्त्तव्य। (३) उत्तम शासक के कर्त्तव्य और अनेक वीर पुरुषों के अभिषेक। (४) प्रभु और राजा का महान् सामर्थ्य। (५) प्रभु का अगम्य रूप और मङ्गलजनक उपदेश। (६) सर्वोपरि शासक का सर्वातिशायी बल। (७) उसका शत्रु-नाश करना कर्त्तव्य। (८) शत्रु नाश का उपाय और वीर सैनिकों का कर्त्तव्य। (९) वे कैसे निर्भय हों। वे उत्साह से बड़े बली का भी मुकाबला करें। (१०) वेतन-भोगी वीर सैनिकों का सशस्त्रास्त्र रहकर सदा तैयार रहने का कर्त्तव्य। ब्राह्मणों और विजार पशुओं के नाशकों को दण्ड हो। (१२) शाकाहारी शान्त पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। 'वसुक्र' की व्याख्या। (पृ० ५५९–५६५)

सू० [२९]—इन्द्र। राष्ट्र-रक्षार्थ एक नायक के अधीन उत्तम

जनों के दल की स्थापना। (२) तीनों शक्तियों से युक्त शतपति नायक महारथि का स्थापन। उसके अधीन सेना का प्रयाण। (३) प्रभु की वा शासक की समर्चा की उत्सुकता। (४) प्रभु के लिये भक्त की उत्सुकना-पूर्वक अनुग्रह की याचना। (५) उससे मोक्ष-याचना। प्रभु की बनाए आकाश और पृथिवी विश्व के माता पिता के तुल्य हैं। (७) राजा का मधुपर्क से आदर करने का आदेश। (८) राजा शासक का व्यापक सामर्थ्य उसके सख्य-भाव की कामना। इसी प्रकार प्रभु को समझना। (पृ० ५६५—५६९)

सू० [३०]—आपः, अपां नपात्। प्रभु वाणी की कामना, उससे महान् ऐश्वर्य की याचना। (२) परस्पर मिलाकर गृहस्थ बनाने का उपदेश। उन्नत का आश्रय लेकर प्रबल शत्रुओं का नाश करने का उपदेश। (३) रक्षार्थी लोगों का महापुरुष का आश्रय लेने और उसके आदर का उपदेश। (४) मेघ और विद्युत् के तुल्य तेजस्वी महापुरुष का वर्णन। (५—६) गृहस्थ के तुल्य राजा प्रजा का परस्पर प्रसन्नता का व्यवहार। (६) संकट से रक्षा करने वाले का आदर करने का आदेश। (८) समुद्र नदीवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (९) नदी सूर्यवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (१०) उत्पादक प्रकृति के समान स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (११) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१२) आप्त प्रजाओं के कर्त्तव्य। (१३—१४) उत्तम स्त्री-जनों के कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। ईश्वरो-पासन, यज्ञसम्पादन। (पृ० ५६९—५७७)

सू० [३१]—विश्वेदेव। (१) आचार्य का उपासन। उसका सत्परिणाम। (२) गुरु-शुश्रूषा और मनोदमन, वाग्-दमन श्रेष्ठ कर्म का उपदेश। (३) ध्यान, धारणा, सदाचार और गुरुवत् प्रभु की उपासना का उपदेश। (४) जीवार्थ जगत्-सर्ग, ईश्वर का जीवोपकारार्थ ज्ञान-प्रकाश। (५) सब ज्ञान वालों से ज्ञान प्राप्त करना। (६) प्रभु की वेदवाणी, उसको ग्रहण करने का आदेश। (७) सृष्टिविषयक प्रश्न

आकाश और भूमि कहां से बने । (८) सर्वधारक प्रभु । वही आकाश और पृथ्वी का कर्त्ता है । (९) सूर्य और वृष्टि के दृष्टान्त से प्रभु के जगत्सर्जन का वर्णन । अग्नि से प्रकाशवत् उसका प्रकृति से संसार का रचना । (१०) गो-वृषभ के दृष्टान्त से ब्रह्म द्वारा प्रकृति का जगत् को उत्पन्न करना । (११) प्रभु का उत्तम स्वामित्व । (पृ० ५७७—५८३)

सू० [३२]—विश्वेदेव । उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । सत्संग (२) यज्ञों द्वारा प्रभु की आर्चना और सत्फल । (३) पिता पुत्र और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से जीव के लिये समस्त ऐश्वर्य का वर्णन । (४) गौओं वा बैलों और माता पिता वाद्य-यन्त्रादि के दृष्टान्तों से अध्यक्ष में प्रमातृ शक्ति के शासन का वर्णन । (५) अद्वितीय प्रधान पुरुष का सूर्यवत् दुष्टदमनकारी और ज्ञान-दाता विद्वानों के सत्कार का उपदेश । (६) आर्चना से आत्मज्ञान की प्रार्थना । उससे उपदिष्ट होने की प्रार्थना । (७) आत्मज्ञान के निमित्त अज्ञानी ज्ञानी की उपासना करें । पक्षान्तर में क्षेत्रवित् और कृषक तथा आत्मज्ञ-अनात्मज्ञ पक्षों का विवरण । (८) जीवरूप अग्नि की गति । (९) षोडश-कल आत्मा वा गुरु की उपासना । (पृ० ५८३—५८८)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [३३]—विश्वेदेव । प्रभु की शरण याचना । भक्त का प्रभु से व्यथाओं का निवेदन । सौतों से पीड़ित स्त्री के तुल्य उसकी हार्दिक वेदना । (३) मानसी चिन्ताओं से पीड़ित भक्त की प्रार्थना । (४) अन्तर्यामी, भयदायक जनों के नाश की प्रार्थना, सुनने वाले प्रभु का वरण । (५) अनेक सुखों के दाता प्रभु की स्तुति । (६) सुखद वाणियों के उपदेष्टा प्रभु का स्तवन । (७) प्रजारक्षक का अतिथिवत् आदर । पक्षान्तर में

उपदेष्टा गुरु के अधीन ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (८) आत्मा का ऐश्वर्य। (९) उसका शतायु जीवन। (पृ० ५८८–५९३)

सू० [३४]—अक्षकृषि प्रशंसा अक्षकितव-निन्दा। जूए के अक्षों के तुल्य प्रलोभन देने वाले इन्द्रियों का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यक्षों का निर्देश। जूएख़ोर के दारिद्र्य और अधःपतन। इन्द्रिय लम्पट की बुद्धिहीनता। (३) जूए के दुष्परिणाम। जूआख़ोर का अपने सम्बन्धी जनों से द्वेष, कलह और उसके प्रति सबकी तरफ से उपेक्षा। (४) जूएख़ोर की दुर्दशा। उसकी और इन्द्रिय लम्पट के गृहस्थ, स्त्री की भी दुर्दशा। सबकी किनाराकशी। (५) जूएख़ोर की व्यसनमग्नता उसका घोर अधःपतन। (६) जूएख़ोर के समान धनार्थी विवाद-कलही का वर्णन। और काम्यसुखार्थ आत्मा की इन्द्रियों के बीच स्थिति। (७–८) उत्तम अध्यक्षों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (९) नीच अध्यक्षों का वर्णन, उसके दोष। (१०) उच्छृंखल द्यूत व्यसनी की दुर्दशा। (११) कितव। अन्यों का छीन झपट लेने वाले का अन्तस्ताप। उसकी दुर्दशा। (१२) सर्वश्रेष्ठ राजा का आदर। (१३) द्यूत का निषेध और कृषि की प्रशंसा। (१४) अध्यक्षों को सदुपदेश। (५९३–६००)

सू० [३५]—विश्वेदेव। शिष्यों, जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य। (२) उत्तम माता पिता और गुरु जनों की इच्छा। (३) माता पितावत् राजा, राजसभा से रक्षा की प्रार्थना, विदुषी माता और राज्य की पोलिस सेना वा प्रभु-शक्ति आदि से पाप को रोकने की प्रार्थना। (४) उत्तम प्रभुशक्ति के कर्त्तव्य। क्रोध त्याग का उपदेश। ब्रह्मज्ञान को धारण करने की प्रार्थना। (५) उत्तम विदुषी स्त्रियों के कर्त्तव्य। वे गृहों का सब प्रकार से पालन करें। (६) प्राभातिक सूर्य रश्मियों का रोग-नाशक गुण। अग्निवत् तेजोमय से सुख-कल्याण की प्रार्थना। (७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। प्रभु का ऐश्वर्य-सम्पादक ज्ञानवाणी, वेद का उपदेश। (८)

ज्ञानी के उदय और ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। (९) द्रोहरहित पुरुषों का सत्संग। ज्ञानप्रकाशकों की शरण में रहकर ज्ञान-प्राप्ति। (१०) विद्वानों का किरणों के तुल्य आदर। यज्ञ में ऋत्विजों की तरह सात विद्वानों की राष्ट्र में स्थापन। अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक प्रभु से कल्याण की प्रार्थना। (११) वृद्ध ज्ञानी पुरुषों से यज्ञ-रक्षा की प्रार्थना और प्रभु से कल्याण-याचना। (१२) विद्वानों से ज्ञानोपदेश की याचना। (१३) बलवानों और सम्पन्नों से रक्षा-याचना। ज्ञानियों से ज्ञानी की याचना। (१४) विद्वान् तेजस्वी और सम्पन्नों की निर्भय शरण। (पृ० ६०१–६०८)

सू० [३६]—विश्वेदेव। दिन रात्रिवत् कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुषों तथा आदरणीय पुरुषों का सत्कार। (२) उत्तम पुरुषों से रक्षा की प्रार्थना। उनसे पाप से बचने की प्रार्थना। उपदेष्टा ज्ञानी और प्रबल क्षत्रिय दुष्टों के नाश और उत्तम सुख की प्रार्थना। (५) राजा की सूर्यवत् स्थिति। पूज्यों की आर्चना, ज्ञान धनादि की वृद्धि। (६) तेजस्वी, उत्तम स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (७) प्रभु की आत्मदेह में प्राणापान की प्राप्ति। देह में से बल ज्ञान आदि की याचना। (८) प्रभु की उपासना। (९) उसकी अर्चना, भजन आदि। (१०) आत्मज्ञान के श्रवण का उपदेश। विजयप्रद ज्ञान, कर्म, बल आदि की याचना। (११) वीर पुरुष, वीर भोग्य ऐश्वर्य की कामना। (१२) प्रभु के परम सुख, और निष्पापता की कामना। (१३) प्रभु के व्रत में लगे श्रेष्ठ पुरुषों से ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। (१४) सर्वत्र प्रभु की भावना। (पृ० ६०८–६१४)

सू० [सू० ३७] विश्वेदेव। सर्वश्रेष्ठ प्रभु के सत्य ज्ञान और उससे प्रभु का स्तवन। (२) सर्वाश्रय सत्य-वचन से रक्षा की आकांक्षा। (३) सूर्य के उदयास्त के तुल्य आत्मा स्वप्न-जागरण और जन्म-मरण। प्रभु के ज्ञान-ज्योति से कष्टों के नाश की प्रार्थना। (५) प्रभु से उत्तम आचरणोपदेश की प्रार्थना। (६) माता पिता आदि आप्त जनों से सुखी

जीवन की प्रार्थना। (७) प्रभु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना। (८) प्रभु के चिरकालिक साक्षात् की याचना। (९) दुःखहारी प्रभु से निष्पाप होने की प्रार्थना। (१०) प्रभु से शान्ति की याचना। (११) विद्वानों से सर्व-सुख कल्याण की कामना। (१२) अपराधी को दण्ड देने की प्रार्थना। (पृ० ६१४–६२०)

सू० [३८]—इन्द्र। सूर्य मेघवत् प्रबल राजा के कर्त्तव्य। दुष्ट दमन। प्रजा को समृद्ध करना। (२) सूर्य के तुल्य राजा प्रजा में ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि करे। (३) हम दुष्ट शत्रु के विजेता हों, (४) विजयी, ऐश्वर्य-वर्धक राजा को हम सदा चाहें और पावें। (५) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् और आत्मा का वर्णन। वह सन्मार्ग में चलावें, निन्दित मार्ग से न चलावें, निन्दित मार्ग से हटावें वह मुक्त, असंग वा जितेन्द्रिय हों। पक्षान्तर में—जितेन्द्रियता से ब्रह्मचर्य के बाद स्नातक का गृहाश्रम में प्रवेश। (पृ० ६२०–६२३)

सू० [३९]—दो अश्वी। जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। उत्तम उपदेष्टा को पालक रूप से स्वीकार करना। (२) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्योपदेश कर प्रजापोषक उद्योग धन्धे करें। ऐश्वर्य की वृद्धि करें। (३) वे दोनों सदा सत्याचरणी हों, भूखों को अन्न दें, छोटे जीवों की रक्षा करें, निर्बलों को पालें, पीड़ितों की चिकित्सा करें। पक्षान्तर में वैद्य के कर्त्तव्य, उदर रोगी, अपस्मारी, नेत्र-विकल, राजयक्ष्मी, कृश आदि की चिकित्सा करे। (४) स्त्री पुरुषों के रथकार के समान कर्त्तव्य। वे उत्तम राजा को अधिकार दें। उत्तम नायक को पुनः उत्साहित करें। (५) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के वैद्यों के तुल्य कर्त्तव्य, रोगों की चिकित्सा करें, वे रक्षा का कार्य करें, सत्य को धारण करें। (६) विद्या पारंगत माता-पिता, गुरुजनों के कर्त्तव्य। उनसे ब्रह्मचारिणी की ज्ञान वा पालन याचना। (७) माता पिता को शुद्ध कन्या का नियमानुसार योग्य से विवाह

करने का आदेश । (८) वे विद्वानों को पालें, दुःखियों का दुःख से उद्धार करें । (९) विद्या में निष्णात स्त्री-पुरुष जीव को कष्ट से उबारें । (१०) प्राण उदान के तुल्य वे वीर पुरुषों को आने वाला सामर्थ्य दें । (११) वे रथी सारथिवत् जिसको बड़ी पालक शक्ति सौंपे वह पाप से दूर रहे । (१२) वे रथों से यातायात करें । (१३) वे रथों से पर्वतादि देशों में भी जावें आवें । दुष्टों के पञ्जों से प्रजा की रक्षा करें । (१४) ऐसे व्यक्तियों के हाथों ही प्रजा को सौंपे जो जितेन्द्रिय और शक्तिशाली हों । (पृ० ६२३–६३१)

सू० [४०]—दो अश्वी । जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । उनका रथ निर्विघ्न चले । (२) वे अपने कार्यों को नियत कालों में व्यवस्थित करें, नैत्यिक नैमित्तिक कार्यों का ध्यान रखें, (३) वे प्रातः स्तुति करें और अपने शक्ति और अधिकारों को सदा प्राप्त करें । (४) सूर्य मेघवत् उनके कर्त्तव्य । वे सिंहों के समान रक्षक वीर हों, शिक्षित हों । (५) सभाओं के नायकों के कर्त्तव्य । वे राष्ट्रहित और हिंसक के नाश के लिये उद्यत रहें । (६) उत्तम स्त्री पुरुषों के शासन कर्त्तव्य । मुख से मधुर बोलें, गृहणीवत् प्रजा-सभा के कर्त्तव्य । (७) सभा सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (८) विद्वान् स्त्री पुरुष अचेत, सेवक, विधवा, ज्ञानदाता और उपदेष्टा आदि का पालन करें और अपने इन्द्रियों का दमन करें । (९) स्त्री के कर्त्तव्य । उत्तम पुत्र प्राप्त करे, अपने सामर्थ्यानुसार उन्नत पद पावे, जलधाराओं के तुल्य तेजस्वी पुरुष को प्राप्त हो, सौभाग्यवती हो । इसी प्रकार प्रजा भी चाहे कि उसका राजा उत्तम हो । (१०) पति के घर जाते हुए स्त्री को पितादि बन्धुओं से बिछुड़ते हुए न रोने का उपदेश । क्योंकि पति के गृह को जाने में उसका उद्देश्य पवित्र और अधिक उत्तम है । उसमें वह रोना अमङ्गल है । (११) युवा-युवतियों का गृहस्थ-प्रवेश के पूर्व माता पितादि से योग्य शिक्षा की प्रार्थना । (१२) वर वधू

को माता पिता आदि का उपदेश, वे अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण रखें। शुभ कार्य, गुण आदि धारण करें। (१३) उत्तम अन्न और ज्ञान से तृप्त हों, ऐश्वर्यवान् हों, उत्तम पुरुष को गुरु बनावें। उत्तम आश्रय करें। (१४) प्रसन्न रहें, उत्तम विद्वान् का सत्संग करें। (पृ० ६३०-६३९)

सू० [४१]—दो अश्वी। त्रिकाल शक्तियुक्त प्रभु की स्तुति। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) योगाभ्यास द्वारा प्रभु का ध्यान करें, और यज्ञ करें। (३) उत्तम ज्ञानी आचार्य का सत्संग करें, वेद ज्ञान का रस प्राप्त करें।

सू० [४२]—इन्द्र। उत्तम धनुर्धर के समान स्वयं प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। विद्वान् हृदय में परमेश्वर को धारण करे। सुखी हों। (२) गौ के तुल्य प्रभु की सेवा करो। प्रभु के प्रति सखि-भाव का उपदेश। (३) उत्तम पालक प्रभु। उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) विवाद के अवसर पर राजा शासक की पुकार। युद्धादि में सेनापति की आवश्यकता, उसके समान सर्वत्र प्रभु के सहाय की आवश्यकता। उपासक को प्रभु प्रेम करता है। (५) प्रभु पर विश्वासी के निर्विघ्न मार्ग। (६) हमारे स्वामी से शत्रु भय करें। (७) राजा शत्रु का दूर से ही नाश करे। (८) उत्तम शास्ता राजा के कर्त्तव्य। भले को पीड़ा न दे। (९) मनुष्य को कितव के तुल्य विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१०) प्रभु और राजा से अज्ञान और धनों के विजय की प्रार्थना। (११) प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ६४१-६४६)

सू० [४३]—इन्द्र। पति को स्त्रियों के तुल्य प्रभु को स्तुतियां प्राप्त हों। समस्त स्तुतियों का एक मात्र लक्ष्य प्रभु है। (२) राजावत् प्रभु की स्तुति। प्रभु में मन का अनुराग। (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। उसके प्रजा के प्रति अन्नादि को समृद्ध करने और बल बढ़ाने का कर्त्तव्य। (४) उत्तम २ नायकों का समर्थ पुरुष को आश्रय रूप से अपनाना।

(५) द्यूतकार के समान प्रजा को कृतकर्मा कुशल पुरुषों के संग्रह का उपदेश। जिससे वह सदा बलशाली बना रहे। (६) राजा प्रजा के सुखों का सदा ध्यान रक्खे और शत्रुओं का विजय करे। (७) समुद्र के समान राजा बलवान् राजा का सर्वाश्रय पद। (८) क्रुद्ध सांड के समान प्रजाओं वा शत्रुओं के राजा का उग्र रूप। उसका शासन। सेनाओं और प्रजाओं का जल का सा स्वभाव। राजा मनुष्यमात्र के हित के लिये पराक्रम धारण करे। (९) राजा स्वयं दुधार गौ के समान प्रजा को ऐश्वर्य दे। तेजस्वी निष्क्रोध होकर भी चमके। हृदय में शुद्ध, तेजस्वी उत्तम आचरण वाला हो। (१०) प्रआ अन्नादि से सम्पन्न, ज्ञानी, धन सम्पन्न हो। (११) राजा उसकी सब ओर से रक्षा करे। राजा प्रजा का सख्य हो। (पृ० ६४६ ६५२)

सू० [४४]—इन्द्र। राजा के कर्त्तव्य, राजा न्याय से शासन करे शत्रुओं और दुष्टों का नाश करे। पक्षान्तर में गृहपति के कर्त्तव्य। (२) राजा का रथ और सैन्य दृढ़ हों, प्रजा संयमी हों। समस्त सैन्य उसके हाथ में हो। (३) बलवान् जन राजा के रक्षक हों। (४) प्रजा बलशाशी राजा को चाहें। वह उनकी वृद्धि करे। (५) राजा से प्रजाकी समृद्धि याचना। (६) देवोपासक जन यशोभजन होते हैं और उपासना न करने वालों का अधःपतन हाता है। (७) अजितेन्द्रियी का अधःपतन और जितेन्द्रियों की उन्नति। (८) प्रभु का प्रसाद और कोप। उसका गर्जनवत् उपदेश। (९) प्रभु से दुष्टों के नाशक बल की याचना। (१०) अज्ञान दुर्भिक्ष आदि का विजय। (११) परमेश्वर से सर्वतोभद्र रक्षा की याचना। (पृ० ६५३–६५८)

सू० [४५]—अग्नि। मुख्याग्नि सूर्य, अध्यात्म में प्राण। जाठर, और भौम ये तीन अग्नियें। उनसे दीर्घायु की प्राप्ति। (२) तीन लोकों में विद्यमान् उसके तीन रूप। उसका एक निगूढ़ रूप। (३) ज्ञानद्रष्टा

अग्नि । पक्षान्तर में राजा रूप अग्नि । (४) आकाश रथ विद्युद् अग्नि । उसके समान राजा का वर्णन । उसके तुल्य विद्वान् । सूर्यवत् राजा का कर्त्तव्य । (५) प्राभातिक सूर्यवत् राजा का स्वरूप । और उसके कर्त्तव्य । (७) तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । (८) आत्मा रूप अग्नि का प्रकाश । उसका अग्नि के तुल्य ही जीवन रूप ज्वलन । (९) उसका सुख-प्राप्ति के निमित्त परिसेवन । (१०) शिष्य रूप अग्नि का वर्णन, उसको गुरुवत् प्रभु का उपदेश । प्रभु का सर्वव्यापक तेज । जीवन रूप अग्नि, उसका प्रभु शक्ति से ही अनेक जीव रूप से उत्पन्न होना । (११) सर्वैश्वर्यप्रद सर्वज्ञानप्रद प्रभु । (१२) सर्वहितकारी, वैश्वानर अग्नि । सर्वरक्षक, ज्ञानमय माता पिता गुरु आदि विद्वान् जनों से उत्तम उत्तम वीर्य, धन, पुत्रादि की याचना । (पृ० ६५८–६६४) इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति सप्तमोऽष्टकः ।

शुद्धाशुद्ध-पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२५	४	उसके धर्मों को	उनके धर्मों को
६९	२०	वायु प्रत्येक	वायु अर्थात् प्रत्येक
९४	१३	होते हैं	होती हैं
९६	२२	विश रूप	विशेष रूप
९७	७	(हरिः)	(हरिम्)
१५९	९	शुशोभित	सुशोभित
१८४	६	अश्ववत्	अश्नवत्
११८	१४	कलशों के	कलशों अर्थात् देहों वा लोकों के
२२४	१२	निर्मूंछ	निर्मूल
२५१	३	शाशक	शासक
२७०	६	दधाति (धारण)	(दधाति) धारण
३०९	३	प्रजा प्रजाओं	प्रजाओं
३०९	११	इन्द्रिगण	इन्द्रियगण
३२०	१६	प्रभु के	शत्रु के
३२८	४	श्रायु	आयु

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
		पृष्ठ-संख्या २५२–२६८	३५२–३६८
३६५	२	सुखपात्री	सुखदात्री
४१७	१८	प्रकार है	प्रकार
४२२	२५	बिनाश	विनाश
४३३	६	उत्यु	अत्युत्तम
४९७	११	अनों	जनों
५८३	१६	पुरुष	पुरुष के
५८५	१३	प्रातृशक्ति	मातृशक्ति
६१६	१३	आप्रकाशित	अप्रकाशित

पृ० ४८६ में मन्त्र (१६) का उत्तरार्ध—(त्रिष्टुप् गायत्री) त्रिष्टुप्, गायत्री और (छन्दांसि) अन्य छन्द (सर्वा ता) वे समस्त (यमे आहिता) उसी नियन्ता में आश्रित हैं अर्थात् उन सब का परम तात्पर्य उसी प्रभु में चरितार्थ होता है ।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः ॥

नवमे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ।

[१]

अथातः पावमानसौम्यं नवमं मण्डलम् ॥ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३, ७—१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) विद्यादि से स्नान करने हारे ! निष्णात ! एवं विद्यादि में उत्पन्न होने हारे ! अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने हारे ! तू (इन्द्राय पातवे) उत्तम ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (सुतः) अभिषिक्त है । तू (स्वादिष्ठया) अति स्वादु, मधुर (मदिष्ठया) अति अधिक आनन्द देने वाली, (धारया) वाणी से (पवस्व) अन्यों के प्रति प्राप्त हो । अन्यों से मधुर, सुखजनक वाणी से व्यवहार कर ।

उत्पन्न हुआ बालक गर्भ से, विद्यार्थी विद्या-गर्भ से तथा प्रत्येक दीक्षित आश्रम से आश्रमान्तर जाने के लिये प्रथम अभिषेक करता है ।

इसी प्रकार प्रत्येक अधिकारी अपने पद पर नियुक्त होने के पूर्व अभिषिक्त होता है। वे सब ही 'सोम' कहाते हैं। इस समस्त सोम-प्रकरण में सामान्यतः ये सभी 'सोम' लक्षणया वर्णित जानने चाहियें। प्रकरणानुसार एकमात्र पक्ष विशेष रूप से दर्शाया जावेगा। अध्यात्म में जगदुत्पादक, जगत्प्रेरक प्रभु भी 'सोम' है। और उसका महान् ऐश्वर्य तथा उसका दर्शन करने वाला इन्द्रियों का स्वामी, ऐश्वर्यों का भोक्ता जीव भी 'इन्द्र' पद से वाच्य है। जहां उत्पन्न होने वाला जीव 'सोम' है वहां 'इन्द्र' शब्द से जगत् का ऐश्वर्य और उसका स्वामी प्रभु स्वयं संगृहीत होते हैं। 'सोम' नव ब्रह्मचारी के साथ इन्द्र, और अग्नि आचार्य के वाचक होते हैं, 'सोम' गृहस्थाभिलाषी वर है तो 'इन्द्र' ऐश्वर्य है, जब वह 'इन्द्र' है तो 'सोम' गृहस्थ के उत्तम सुख समझे जाते हैं। वनस्थ विद्वान् एवं प्रभुपरायण अभ्यासी, मुमुक्षु वा परिव्राजक 'सोम' पवमान पद से वर्णित होते हैं। उनके विशेषणों द्वारा उनका विशेष वर्णन होता है। यज्ञ में सोम ओषधि-विशेष का रस भी गृहीत होता है। याज्ञिक पक्ष की इस भाष्य में, प्रायः अन्यों द्वारा वर्णित होने से पिष्टपेषणवत् उपेक्षा की गयी है। अनेक स्थलों पर सोम अन्न एवं सामान्य ओषधि वाचक भी है। जो यथास्थान संकेत से बतलाया जावेगा।

इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् आज्ञापक राजा भी राष्ट्र को कण्टक-शोधनादि द्वारा पावन करने से 'पवमान सोम' कहा जाता है। देह का राजा जीव, ब्रह्माण्ड का स्वामी ईश्वर और आश्रम का गुरु, गृह का गृहपति आदि सभी 'सोम' कहे जाते हैं। उन सबका समान कर्तव्य और पद होने से एक समान वर्णन जानना चाहिये।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

भा०—(विश्व-चर्षणिः) सब का द्रष्टा (रक्षोहा) दुष्टों का नाश

करने वाला, विद्वान् (अयः-हतम्) सुवर्णादि से बने (योनिम्) आसन पर (द्रुणा अभि) द्रुतगामी सैन्य से परिष्कृत होकर (सधस्थे) एक साथ बैठने के सभा भवन में (आ सदत्) सबके सन्मुख विराजे। (२) 'सोम' ओषधि देह-शोधन और रोग नाश करने से 'विश्वचर्षणि और रक्षोहा' है। वह लोहांश से व्याप्त देह को द्रुतगामी रुधिर अंश से प्राप्त हो।

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

भा०—तू (वरिवः-धातमः) श्रेष्ठ ऐश्वर्य को धारण करने वाला, (मंहिष्ठः) उत्तम दाता और (वृत्रहन्-तमः) अज्ञान, शत्रु, रोगादि का उत्तम नाशक (भव) हो। तू (मघोनाम्) धन सम्पन्नों को (राधः पर्षि) धन प्रदान करता है।

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (महानां देवानां) बड़े २ विद्वान्, तेजस्वी जनों की (अन्धसा) उत्तम धन आदि ऐश्वर्य, और अन्न द्वारा (वीतिम् अभि अर्ष) कामना को पूर्ण कर और (वाजम्) बल (उत श्रवः अभि अर्ष) और ज्ञान, यश भी प्राप्त करा।

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! दयार्द्र! हम (दिवे-दिवे) दिन प्रतिदिन, (त्वाम्) तुझको (अच्छ चरामसि) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं। (नः) हमारा (तत् इत्) वह तू ही (अर्थम्) धनवत् प्राप्य है। (नः आशसः) हमारी सब आशाएं और कामनाएं तुझ पर ही आश्रित हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से दुही गई, प्रदान की गई विद्या वा पदवी (ते) तुझ (परिस्रुतं सोमं) अभिषिक्त सोम विद्यार्थी को (शश्वता) सनातन नित्य (वारेण) वरण करने योग्य (तना) विस्तृत ज्ञानैश्वर्य से (पुनाति) पवित्र करती है ।

(२) हे सौम्य युवक ! (सूर्यस्य दुहिता) तेजस्वी पिता की कन्या (ते परिस्रुतं सोमं) तेरे निषिक्त वीर्य को (वारेण) वरणीय (शश्वता तना) स्थायी उत्तम पुत्र रूप से (पुनाति) प्राप्त करे । (३) सूर्य की पुत्री श्रद्धा का अभिप्राय वह उत्तम ज्ञानी पुरुष की सत्य विद्या, सत्य ज्ञानधारण कराने से 'श्रद्धा' है ।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥

भा०—(तम् ईम्) उसको (अण्वीः) प्राणधारिणी (दश योषणः) दसों दिशा की प्रेमयुक्त प्रजाएं (समर्ये) मनुष्यों से सहित राष्ट्र में (आ गृभ्णन्ति) उस अभिषिक्त को अपनाती हैं । और वे (स्वसारः) स्वयं उसको प्राप्त वा शत्रु को सुख से उखाड़ फेंकने में समर्थ सेनाएं (पार्ये दिवि) पालन करने योग्य, प्रकाश-तेज से युक्त पद पर स्थापित करती हैं । (२) अध्यात्म में दश इन्द्रियें सूक्ष्म रूप होकर उस जीव को अपना रही हैं ।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

भा०—(अग्रुवः) आगे आने वाले, प्रमुख प्रजाजन, (ईम्) सब ओर से (बाकुरम्) तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशवान् (दृतिम्) पात्र के समान ऐश्वर्य को ग्रहण करने वाले (त्रि-धातु) तीनों प्रकार से (वारणं) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ (मधु) मधुर स्वभाव से युक्त (तम्)

उसको (हिन्वन्ति) बढ़ाते और (धमन्ति) अधिक तीक्ष्ण करते और उसका यशो-गान करते हैं।

अभीऽ३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

भा०—(अघ्न्याः धेनवः शिशुम्) न मारने योग्य, गौवें जिस प्रकार बालक को (पातवे) दूध पिलाने के लिये (श्रीणन्ति) अपने साथ मिलाती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् सत्य-ज्ञानदर्शी आचार्य, गुरु की (अघ्न्याः धेनवः) न नाश होने वाली सत्य वाणियां (पातवे) पालन करने के लिये (सोमम् शिशुम्) शिशु विद्यार्थी को (अभि-श्रीणन्ति) प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा को अहन्तव्य प्रजाएं गौवत् ऐश्वर्य पद देने के लिये सब ओर से एकत्र होती हैं।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य इत् मदेषु) इस अभिषिक्त राजा के (मदेषु) आनन्दोत्सवों में प्रसन्न होकर (शूरः इन्द्रः) शूरवीर, शत्रुनाशक सेनापति (विश्वा वृत्राणि) समस्त शत्रुओं को (आ जिघ्नते) नाश करता है और वह (मघा च मंहते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२]

मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री। २, ३, ५, ७—९ गायत्री। १० विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या। इन्द्रमिन्दो वृषाविश ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) इस प्रकार से विनीत होकर गुरु की परिचर्या करने वाले ! हे (सोम) विद्यार्थिन्! ब्रह्मचारिन् ! सोम्य ! ज्ञानोपासक ! तू (देव-वीः) ज्ञान दाता को प्राप्त होने वाला होकर (पवित्रं) पवित्र

करने वाले (इन्द्रम्) तत्वदर्शी, वाणी के नियमों को खोल कर बताने वाले गुरु को (रंह्या) वेग से, अनालसी होकर (अति पवस्व) अपने को खूब पवित्र कर। और तू (वृषा) बलवान् होकर (इन्द्रम् आविश) उस आचार्य को प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा देव, विद्वानों को प्राप्त कर पवित्र इन्द्र-पद को प्राप्त करे और बलवान् होकर ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पद पर विराजे।

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) आह्लादकारक ! ऐश्वर्यवन् ! सोम्य ! तू (वृषा) बलवान् (द्युम्नवत्तमः) अति तेजस्वी होकर (महि प्सरः) बहुत उत्तम ज्ञान का (आ वच्यस्व) अभ्यास कर। और (धर्णसिः) धारणशील होकर (योनिम्) गुरु-गृह में (आ सदः) रह। राजा भी धनैश्वर्य-सम्पन्न बली होकर प्रजा को बड़ा सुख दे, अपने आसन पर दृढ़ रहे।

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—(सुतस्य) अभिषिक्त, शुद्ध-पवित्र, परिष्कृत (वेधसः) जिस विद्वान् कार्यकुशल पुरुष की (धारा) वाणी, ओषधि लता के समान (प्रियं मधु) प्रिय और मधुर वचन (अधुक्षत) प्रदान करे। वही (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञान और कर्मवान् पुरुष (अपः वसिष्ट) आप्त प्रजाजनों पर अध्यक्ष रूप से रहे।

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (महान्तं महीः आपः सिन्धवः) महान् समुद्र के प्रति बड़ी २ तीव्र जलधारा और नद (अनु अर्षन्ति) जाते हैं और वह (गोभिः वासयिष्यते) गमनशील नदियों और जलों से पूर्ण हो जाता है

उसी प्रकार (यत्) जब हे सोम विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष ! तू भी (गोभिः) उत्तम ज्ञानयुक्त वाणियों, भूमियों वा चमकीले, तेजोयुक्त वस्त्रों द्वारा (वासयिष्यसे) आच्छादित किया जाय तब (त्वा महान्तं) तुझको महान् जान कर (अनु) तेरे पीछे (आपः) आप्त प्रजाएं और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले अश्वारोही जन भी (अर्षन्ति) चलें।

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(समुद्रः) समुद्र के समान सर्वाश्रय, (दिवः विष्टम्भः) भूमि का विशेष स्तम्भवत् आश्रय, और (धरुणः) धारण करने वाला (सोमः) सौम्य स्वभाव का वीर्यवान् पुरुष (अस्मयुः) हम प्रजाओं को चाहने वाला होकर (अप्सु) जलों में स्नात पुरुष के समान (पवित्रे) पवित्र राज्य-कार्य में (मामृजे) अभिषेक किया जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६॥

भा०—(वृषा) बलवान् प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, (हरिः) दुःखों और मन का हरण करने वाला, (महान्) गुणों में श्रेष्ठ, (मित्रः न) स्नेही जन के समान (दर्शतः) व्यवहारों का द्रष्टा, न्याय-शील, शासक (सूर्येण सं रोचते) सूर्य के समान तेज से भली प्रकार प्रकाशित होता है।

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अपस्यवः) कर्मों का उपदेश करने वाली, (गिरः) ये वाणियां (ते ओजसा) तेरे सत्य पराक्रम से (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध-पवित्र, अलंकृत होती हैं (याभिः) जिन से तू (मदाय) प्रजा के हर्ष के लिये (शुम्भसे) सुशोभित होता है।

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥

भा०—(मदाय) आनन्द, हर्ष और स्तुति और (घृष्वये) शत्रु जनों से संघर्ष प्राप्त करने के लिये (लोककृत्नुम्) उत्तम लोकों के बनाने वाले (तं त्वा) उस तुझ से ही हम (ईमहे) याचना करते हैं । (तव प्रशस्तयः महीः) हे प्रभो ! तेरी ही बड़ी उत्तम स्तुतियां हैं ।

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा वाले मेघ के समान तू भी (इन्द्रयुः) ऐश्वर्ययुक्त, राजपद की अभिलाषा करता हुआ (पर्जन्यः) सब सुखों, रसों का दाता, सब शत्रुओं का पराजय-कर्त्ता होकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मध्वः धारया) मधु वा मधुर जल की धारा के समान शीतल, मनोहर, हर्षप्रद ज्ञान की वाणी से (पवस्व) हमें पवित्र कर ।

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञस्य) पूज्य पद के लिये (पूर्व्यः) सब गुणों से पूर्ण, सर्वप्रथम पूजने योग्य, (आत्मा) आत्मा के समान प्रिय है । और तू ही (गोषाः) गौवों, भूमियों, वाणियों का दाता, सेवन करने वाला, (नृषाः असि) मनुष्यों का स्वामी (अश्वसाः वाजसाः) अश्वों, बलों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का भोक्ता राष्ट्र के आत्मा के तुल्य (असि) है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

शुनःशेप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १९ गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी, सूर्यवत् कान्तिमान् (अमर्त्यः) अन्य मनुष्यों में असाधारण (पर्णवीः इव) पक्षी के समान वेग से जाने वाले रथों से जाता हुआ (द्रोणानि अभि आसदम्) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (दीयति) प्रयाण करता है ।

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी (पवमानः) राष्ट्र का कण्टक-शोधन करता हुआ, (अदाभ्यः) किसी से हिंसित या पीड़ित न होकर (विपा) विशेष पालक शक्ति से (कृतः) समर्थ होकर (ह्वरांसि) कुटिलाचारी जनों को (अति धावति) पार कर जाता है, उनको जीत कर प्रजा को अपने वश करता है ।

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) यह दानशील, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष (पवमानः) सबको पवित्र शुद्ध करने हारा, (विपन्युभिः) विशेष स्तुति करने वालों और विविध व्यवहार कुशल और (ऋतायुभिः = ऋतयुभिः) सत्य न्याय की कामना करने वाले जनों द्वारा (पवमानः) अभिषिक्त होकर (हरिः) सबका दुःखहारी जन (वाजाय) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि के लिये (मृज्यते) परिष्कृत और अभिषिक्त किया जाता है ।

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः शूरः) वह शूरवीर (सत्वभिः) अपने बलों और बलवान् पुरुषों द्वारा (विश्वानि वार्या) समस्त उत्तम २ ऐश्वर्यों को

(यन् इव) मानो प्राप्त ही करता हुआ (पवमानः) स्वयं पवित्र करता हुआ (सिषासति) सबमें न्यायपूर्वक विभक्त करे ।

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति ।

आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—(एषः) वह (देवः) तेजस्वी पुरुष (पवमानः) राष्ट्र को दुष्ट पुरुषों से कण्टक शोधनवत् स्वच्छ करता हुआ, शत्रु के प्रति प्रयाण करने के लिये उद्यत होकर (रथर्यति) रथों, रथारोही सैन्यगण की कामना करे और उनको (दशस्यति) अभिमत वेतनादि भी दे । और (वग्वनुम्) उत्तम वचन (आविः कृणोति) प्रकट करे । इति विंशो वर्गः ॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) वह (देवः) दानशील, तेजस्वी, विजिगीषु राजा, (विप्रैः) विद्वानों से (अभि-स्तुतः) सब प्रकार से स्तुति किया जाकर (रत्नानि दधत्) नाना रत्नों, ऐश्वर्यों और धनों को धारण करता हुआ (दाशुषे) अपने को अधीन समर्पण करने वाला राष्ट्र के हितार्थ (अपः वि गाहते) अभिषेचनीय जलों में स्नान करता है, उसी प्रकार वह प्राप्त प्रजाजनों में भी विचरता है । राज्याभिषेक काल में समस्त जल समस्त प्रजाओं के प्रतिनिधि होते हैं । और इसी प्रकार यज्ञ में 'वसतीवरी' जलों का पात्र द्रोणकलश भी प्रजारूप जलों से पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि कहा जाता है । रहस्य स्पष्टीकरण देखो यजुर्वेद (अ० १०) आलोकभाष्य अभिषेक-प्रकरण ।

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।

पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

भा०—(एषः) वह (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ, एवं शत्रु पर आक्रमण करता हुआ वीर (धारया) वाणी वा शस्त्र की धारा वा अश्वादि की

धारा गति से (रजांसि) समस्त लोकों को (तिरः) पराजित करता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (दिवं वि धावति) विजयार्थ विशेष वेग से जाता है।

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः ॥ ८॥

भा०—(एषः) वह (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ (सु-अध्वरः) उत्तम अंहिसनीय, स्वयं हिंसा रहित, (अस्पृतः) किसी से न पराजित होने वाला, वीर पुरुष (रजांसि तिरः) रजोगुणों से मुक्त वा ऐश्वर्यों को दूर तक परे फेंकता हुआ, (दिवं वि आसरत्) विजयार्थ विविध दिशाओं में प्रयाण करता है।

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ॥९॥

भा०—(एषः देवः) वह विजिगीषु पुरुष (प्रत्नेन जन्मना) अपने सनातन से प्राप्त जन्म अभिषेकादि संस्कार द्वारा (देवेभ्यः) उसे चाहने वाले और विजयेच्छुक पुरुषों के लिये (सुतः) अभिषिक्त होकर ऐश्वर्य प्राप्त करके, (हरिः) सब प्रजा का चित्त हरण और दुःख दूर करके (पवित्रे) प्रजापालक, दुष्ट दमन रूप पवित्र पद पर (अर्षति) आता है।

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(एषः उ स्यः) यह वह है जो (पुरुव्रतः) बहुत से व्रतों, कर्मों का पालन करके स्वयं (जज्ञानः) नया जन्म लेता हुआ, (इषः) नाना उत्तम कामनाओं सेनाओं और उपभोग्य अन्नादि को भी (जनयन्) पैदा करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया पवते) वाणी से सबको पवित्र करता, (धारया पवते) अभिषेक जल धारा से पवित्र किया जाय और (धारया पवते) धर्म की दण्ड-धाराओं तथा खड्ग की धाराओं से सत्यासत्य और मित्र-शत्रु का विवेक करता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

इस ही सूक्त में श्लेष-वृत्ति से—परिव्राजक तथा उत्पादक परमेश्वर और जन्म लेने वाले जीव का भी बड़ा रोचक वर्णन है। जैसे—(१) 'पर्णवी' मुमुक्षु, राजहंस और पक्षी आत्मा। 'द्रोण' जलकुण्ड, नाना शरीर। (२) 'विपा' वाणी। 'ह्वरांसि' मानस कौटिल्य और जीव के तिर्यग् मार्ग। परिव्राजक हंस आत्मा नित्य। (३) 'हरिः' आत्मा शोधन किया जाता है विद्या और तप से। (४) परिव्राट्, पवित्र सा करता हुआ ज्ञान वितरण करता है। (५) वह उत्तम उपदेश करता है, (६) जलों में संन्यास-काल में मज्जन करता है। आत्मा (आपः) लिङ्ग शरीरों में विचरता है। (७, ८) रजः, राजस भावों को त्याग करके विचरता है, (९) पवित्र मुक्तिमार्ग, परमेश्वर में जाता है (१०) वाणी से सबको पवित्र करता है, आत्मा 'धारा', वेद वाणी से पवित्र होता है। इति दिक्। इसी प्रकार सर्वत्र योजनाएं जाननी चाहियें, विस्तार-भय से नहीं लिखते हैं।

[४]

हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ १० गायत्री। २; ५, ८ ९ निचृद् गायत्री। ६, ७ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सना॑ च सोम॒ जेषि॑ च॒ पव॑मान॒ महि॒ श्रवः॑ ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे वा राज्याभिषेक विधि से पावन किये जाने हारे! तू हमें (महि श्रवः सन च) बड़ा भारी ज्ञानोपदेश, यश और धन प्रदान कर। स्वयं प्राप्त कर और (जेषि च) विजय कर। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें उत्तम २ धन सम्पन्न करा।

सना॒ ज्योतिः॒ सना॒ स्व१॒॑र्विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू हमें (ज्योतिः सन) प्रकाश दे,

(स्वः सन) सुख दे । (विश्वा च सौभगा सन) सब प्रकार के ऐश्वर्य दे । (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सबसे श्रेष्ठ और ऐश्वर्यवान् बना ।

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (दक्षम् सन) बल, ज्ञान दे । (क्रतुम् सन) कर्म सामर्थ्य दे । (उत) और (मृधः जहि) हमारे हिंसाकारी दुष्टों को दण्ड दे । (अथ) और (नः) हमें (वस्यसः कृधि) उत्तम श्रेष्ठ धन का स्वामी बना ।

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवितारः) पवित्र करने और अभिषेक करने हारे विद्वान् जनो ! आप लोग (पातवे इन्द्राय सोमम्) परम पालक परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा के समान (इन्द्राय पातवे) परम पालक ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद के लिये इस (सोमम्) अभिषेक योग्य, उत्तम वीर्यवान्, बली, ब्रह्मचारी पुरुष को (पुनीतन) अभिषेक द्वारा पवित्र करो । वह (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें उत्तम धनसम्पन्न करे ।

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं से (नः) हमें (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वदर्शक, प्रकाशयुक्त शासक वा विद्वान् के अधीन (आ भज) रख, (अथा नः वस्यसः कृधि) और हमें उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी और श्रेष्ठ बना । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—(तव क्रत्वा) तेरे ज्ञान और (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और शिक्षाओं से हम (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम् पश्येम) सूर्य के समान तेरे प्रताप, और ज्योतिर्मय आत्म-स्वरूप को देखें, चिरजीवी हों। (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्यर्षं स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (स्वायुध) उत्तम युद्धोपकरणों वाले ! उत्तम शस्त्र-अस्त्रों के स्वामिन् ! तू (द्वि-बर्हसं) प्रजा राजा दोनों लोकों को बढ़ाने वाला (रयिम् अभि-अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

भा०—हे शासक ! तू (सासहिः) शत्रु-विजयी और (अनपच्युतः) अपराजित, दृढ़ रह कर (समत्सु) संग्रामों में (रयिम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य का लाभ कर। (अथा नो० इत्यादि) हमें सर्वश्रेष्ठ, धनसम्पन्न बना।

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र को शत्रु नाशन आदि द्वारा पवित्र करने और अभिषेकादि से अपने आप को पवित्र करने वाले, (वि-धर्मणि) विविध धर्मों वाले, राष्ट्र वा विविध उपायों से राष्ट्र के धर्मों के निर्णय देने वाली 'विधर्मा' नाम राजसभा के बीच (त्वां) तुझको विद्वान् जन (यज्ञैः अवीवृधन्) आदर सत्कारों से बढ़ावें, तुझे उत्साहित और अधिक शक्तिशाली बनावें। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सब से श्रेष्ठ, सम्पन्न, धनधान्य पूर्ण कर।

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषेक योग्य जलों से क्लिन्न या स्नान करने हारे ! ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (चित्रम्) आश्चर्यकारक, उत्तम, अद्भुत, (विश्वायुम्) सब जीवन भर तक साथ देने वाले, वा सर्वजन हितकारक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा । (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें सबसे अधिक धन-धान्य पूर्ण कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४–६ गायत्री । ३, ७ निचृद् गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् । ९, १० अनुष्टुप् । ११ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति ।
प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥ १ ॥

भा०—(समिद्धः) खूब तेजस्वी, (विश्वतः पतिः) सब प्रकार से प्रजाओं का पालन करने वाला, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, वा अभिषेक द्वारा अपने को पवित्र करता हुआ (प्रीणन्) सबको प्रसन्न करता है और वह (वृषा) बलवान्, उत्तम प्रबन्धक, प्रजा पर सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करता हुआ, (कनिक्रदत्) हर्ष ध्वनि, गर्जना और घोषणाएं देता हुआ, (वि राजति) विशेष राजावत् शोभा प्राप्त करता है । (२) इसी प्रकार तेजस्वी, (सोमः) ब्रह्मचारी, बलिष्ठ, विद्वान् स्नातक होकर स्त्री का सर्वस्व पति हो । (३) वैसा ही परमेश्वर विश्वतः-पालक है ।

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति ।
अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ २ ॥

भा०—(तनून-पात्) अपने देह वा बल को न गिरने देने वाला

बलिष्ठ बलीवर्द जिस प्रकार (शृङ्गे शिशानः) दोनों सींग पैने करता हुआ टक्कर लेने के लिये (अर्षति) आगे बढ़ता है और जिस प्रकार (पवमानः) वेग से बहता वायु (तनूनपात्) प्राण से देह को न गिरने देता हुआ भी (अन्तरिक्षेण रारजत्) अन्तरिक्ष में विराजता है और (पवमानः तनूनपात्) जैसे, पावक अग्नि, (शृङ्गे शिशानः) दो ज्वालाएं तीक्ष्ण करता हुआ अन्तरिक्ष में चमकता है उसी प्रकार (तनूनपात्) विस्तृत व्यापक राष्ट्र का अधःपतन न होने देने वाला, (पवमानः) अभिषिक्त एवं कण्टकशोधक राजा वा सेनापति (शृङ्गे) हिंसाकारिणी, अगल बगल की दो सेनाओं को सींगों के समान (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (अर्षति) आगे बढ़े और वह (अन्तरिक्षेण) स्व और पर दोनों पक्षों वा दोनों सैन्यों के बीच में विराजे।

ई॒ळेन्यः॒ पव॑मानो र॒यिर्वि रा॑जति द्यु॒मान् ।
मधो॒र्धारा॑भि॒रोज॑सा ॥ ३ ॥

भा०—(ईडेन्यः) अति पूज्य, प्रजा को अतिप्रिय, (पवमानः) अभिषेक योग्य, (रयिः) ऐश्वर्यवत् सुखों का दाता (रयिः = रजिः) प्रजा का अनुरञ्जन करनेवाला, (द्युमान्) तेजस्वी, (मधोः) बल की, (धाराभिः) धाराओं से और (मधोः धाराभिः) ऋग्वेद की वाणियों द्वारा (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से भी (राजति) विराजता वा राजा बनता है।

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा॒ पव॑मानः स्तृ॒णन्हरिः॑ ।
दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते ॥ ४ ॥

भा०—(देवः) तेजस्वी, दानशील, सूर्यवत् राजा (देवेषु) विद्वानों और तेजस्वी लोगों के बीच या उनके अधीन (ओजसा) बल पराक्रम से (प्राचीनम्) अपने आगे आये (बर्हिः स्तृणन्) उच्छेद्य शत्रु को कुशा के समान काटता और भूमि पर बिछाता हुआ, इस प्रकार (पवमानः) राष्ट्र

का कण्टक शोधन और अपना अभिषेक करता हुआ, (हरिः) सेना को साथ लिये (ईयते) आगे बढ़े । अथवा—(प्राचीनम्) आगे विनय-भाव से स्थित (बर्हिः) प्रजा जन को विनय से झुकाता हुआ, पराक्रम के कारण अभिषिक्त होकर, अधिकार-दाताओं के बीच उपस्थित होता है ।

उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः ।
पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(बृहद्-द्वारः) बड़ी २ फाटकों के समान विशाल, उदार (हिरण्ययीः) सुवर्णादि से सजी वा लोहमय हथियारों से सजी, (देवीः) धन-विजयाभिलाषिणी सेनाएं (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर (पवमानेन) पूर्वोक्त अभिषेक योग्य, कण्टकशोधक राजा के साथ ही (सु-स्तुताः) उत्तम रीति से प्रशंसित होकर (आतैः) अपने पराक्रमों से (उत् जिहते) उत्तम पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति ।
नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषिक्त होता हुआ राजा (सु-शिल्पे) उत्तम शिल्पों से सम्पन्न, (बृहती) बड़ी गुणयुक्त, (मही) पूज्य, (नक्तोषासा न) रात्रि और दिनवत् (दर्शते) अति दर्शनीय, नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान अधिक भूषणों से रहित पुरुष और उषावत् कान्तियुक्त स्त्री, अथवा उषस् अर्थात् दिन के समान तेजस्वी पुरुष और रात्रिवत् लज्जाशील, नाना नक्षत्रों से सुभूषित चन्द्रवत् उज्ज्वल मुख से युक्त स्त्री दोनों वर्गों को वह (वृषण्यति) बलवान् करे, दोनों वर्गों का हित चाहे ।

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे ।
पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानः इन्द्रः) अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवान् (वृषा)

बलवान् पुरुष, (उभा देवा) दोनों तेजस्वी, (नृ-चक्षसा) मनुष्यों के द्रष्टा, (दैव्या) देवों के हितैषी (होतारा) दानशील धन-कुबेर और ज्ञान-सागर दोनों विद्वान् और व्यवहारकुशल ब्राह्मण और वैश्य वर्गों को (हुवे) स्वीकार करे, आदर से सत्कार करे।

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक योग्य राजा की (भारती, सरस्वती मही इडा) भारती, सरस्वती और इडा (तिस्रः) तीनों (सुपेशसः) उत्तम रूपवती (देवी) ज्ञान, धन, और मान देने वाली प्रजाएं (नः इमं यज्ञम् आगमन्) हमारे इस यज्ञ, सत्संग और पूज्य पुरुष को भी प्राप्त हों। भारती, साधारण प्रजाजन, 'सरस्वती' उत्तम ज्ञानवान् वर्ग, और 'इडा' अन्नप्रद कृषक वर्ग, वा स्तुति आदि से मान देने वाले, अधीन भृत्य पोष्य वर्ग।

त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥ ९ ॥

भा०—(त्वष्टारम्) सूर्य के समान तीक्ष्ण, तेजस्वी, (अग्रजाम्) अग्रासन पर विराजमान (गोपाम्) भूमि के पालक, (पुरोयावानम्) सबसे आगे प्रयाण करने वाले को मैं (आ हुवे) आदर से पुकारता हूं कि वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्दु' है। वह (इन्द्रः) सूर्यवत् देदीप्यमान होने से 'इन्द्र' है वह (वृषा) सुखों का वर्षक होने से 'वृषा' है (हरिः) प्रजा के दुःख हरने से 'हरि' है। वह (पवमानः) अभिषिक्त और कण्टक शोधक होने से 'पवमान' और (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है। इसी प्रकार परमेश्वर भी सर्वस्रष्टा होने से 'त्वष्टा', सर्व प्रथम होने से 'अग्रजा', दयार्द्र होने से 'इन्दु', ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र', सुखवर्षी

होने से 'वृषा', पाप भयहारी होने से 'हरि', परम पावन होने से 'पवमान', चराचर प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है।

वनस्पतिं पवमानमध्वा समङ्ग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥ १० ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे ! (मध्वा धारया) जल की धारा से जिस प्रकार (सहस्र-वल्शं हरितम् वनस्पतिं समंजते) हज़ारों कल्लों वाले हरे पेड़ को सींचा जाता है उसी प्रकार तू (वनस्पतिं) ऐश्वर्यों, तेजों के पालक, वटादिवत् आश्रितों के पालक (सहस्र-वल्शं) सहस्रों शाखाओं से युक्त, (हरितम्) हरे भरे, भवभय-दुःखहारी, (हिरण्ययम्) हित और रमणीय, सुवर्णादि से आढ्य, (भ्राजमानं) तेजस्वी राष्ट्रकुल को (मध्वा धारया) मधुर वचन, अन्न, ज्ञान और धारा अर्थात् दण्ड-विधान रूप वाणी और जलधारा नहर आदि से (सम अङ्धि) अच्छी प्रकार उज्ज्वल कर, पूजित कर और सेचन कर ।

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(वायुः) वायुवत् बलशाली, (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक, (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वप्रकाशक, (अग्निः) अग्रणी नायक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वर्ग (विश्वे देवाः) सब विद्वान् वीर (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतियुक्त होकर (पवमानस्य) उक्त अभिषेक योग्य, प्रजा को पावनकारक राजा के (स्वाहा-कृतिम्) उत्तम वाणी धन आदि दान एवं मान को (आ गत) प्राप्त हों । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३–६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (वारेषु) वरणीय पदों, और वारण करने योग्य शत्रुओं के बीच में भी (अस्मयुः) हमारा प्रिय, (अव्यः) रक्षक, स्नेही और (देवयुः) विद्वान् वीरों को चाहता हुआ, (वृषा) बलवान् होकर (मन्द्रया धारया) हर्षजनक वाणी से (पवस्व) हमें प्राप्त हो । हमें पवित्र कर ।

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर ।
अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् है, (इति) इसलिये ही तू (त्यं मद्यम्) उस हर्षजनक (मदं) आनन्द को (अभि क्षर) सब ओर प्रवाहित कर और (वाजिनः अर्वतः) वेगवान्, बलवान्, शत्रुहिंसक जनों को भी प्रजा के रक्षार्थ (अभि क्षर) सब ओर भेज ।

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥

भा०—हे शासक ! (त्यं) उस (पूर्व्यं मदं) सर्वश्रेष्ठ आनन्द को (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ और (वाजम् उत श्रवः) ऐश्वर्य, अन्न और ज्ञान वा यश को भी (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ तू (पवित्रे) राष्ट्र भर को पवित्र करने वाले, शुद्ध-पवित्र राज्य पद पर (आ अर्ष) प्राप्त हो ।

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥

भा०—(द्रप्सासः इन्दवः) द्रुत वेग से जाने वाले, स्नेहार्द्र जन (अपः न) जलधाराओं के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से (अनु असरन्)

ऐश्वर्यवान् राजा का अनुसरण करें और वे भी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, शत्रुहन्ता वीर को (पुनानाः) अभिषेकादि से पवित्र करते हुए उसको कलङ्कित न होने देते हुए (इन्द्रम् आशत) राज्य-कार्य को प्राप्त हों।

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश ।
वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यम्) जिस (वाजिनम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् (अत्यविम्) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, (वने क्रीडन्तम्) ऐश्वर्य में शत्रु-हनन के संग्राम आदि कार्य में रमण करने, वा उसे क्रीडावत् अनायास करने वाले पुरुष को (अत्यम् इव) अश्व के समान ही (दश) दशों दिशाओं की (योषणः) प्रेमयुक्त प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषिक्त करती हैं हे राष्ट्र ! तू (तम् इन्द्रम् आशत) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को ही प्राप्त कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये ।
सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥

भा०—(तम्) उस (वृषणं) बलवान्, सुखादि की वर्षा करने वाले, (रसं) बलवान् (सुतं) अभिषिक्त पुरुष को (मदाय) प्रजाजन के हर्ष और (भराय) भरण पोषण के लिये (देव-वीतये) विद्वानों, वीरों की रक्षा करने के लिये (गोभिः सं सृज) उत्तम वाणियों और भूमियों से युक्त कर, उसकी स्तुति कर और उसे भूमियों का अध्यक्ष बना। अथवा, उसे (गोभिः संसृज) उत्तम अश्वों से युक्त कर।

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।
पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य) इसका (पयः) बल, वीर्य (पीपयत्) खूब परिपूर्ण हो जाता है, तब वह (देवः) दानशील, तेजस्वी पुरुष (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) अपनी धारण शक्ति और वाणी वा खड्गधारा के बल से (देवाय इन्द्राय) विजयोत्सुक, तेजस्वी, दानशील

ऐश्वर्य पद के लिये (पवते) आगे बढ़ता है, और सब के समक्ष पवित्र या अभिषिक्त किया जाता है।

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः।
प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥

भा०—वह स्वयं (आत्मा) आत्मा के समान सामर्थ्यवान् कर्ता होकर (यज्ञस्य) परस्पर दान-आदान-सत्संग के मध्य में (सुतः) अभिषिक्त होकर (रंह्या) वेग से (सु-स्वानः) उत्तम रीति से ऐश्वर्यवान् होकर (सु-स्वानः) उत्तम उपदेश से युक्त, निष्णात होकर (पवते) पवित्र होता है, और (प्रत्नं) सनातन से चले आये (काव्यम्) विद्वानों से बनाये वा परमेश्वरोक्त नित्य वेद की मर्यादा की (नि पाति) अच्छी प्रकार रक्षा करता है।

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये।
गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥ २७ ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, वा ऐश्वर्य पद का स्वामी होकर हे (मदिष्ठ) अतिस्तुत्य ! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र या अभिषिक्त होता हुआ, (वीतये) रक्षा वा तेजस्वी होने के लिये (मदं दधिषे) स्तुत्य गुण को धारण कर और (गिरः) वेदवाणियों को भी (गुहा चित्) अपनी बुद्धि में (दधिषे) धारण कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५—९ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।
विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥

भा०—(सु-श्रियः) उत्तम शोभायुक्त, सम्पन्न, (इन्दवः) स्नेही ऐश्वर्ययुक्त जन (ऋतस्य पथा) सत्य के मार्ग से ही (अस्य) इसके (ऋतस्य) सत्य ज्ञान वेद के (योजनम्) योग अर्थात् प्रयोग को (विदानाः) जानते हुए, (धर्मन्) धर्म मार्ग में ही (असृग्रम्) स्वयं चलें। वा (धर्मन् असृग्रम्) धर्मों, नियमों का निर्माण करें।

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते।
हविर्हविष्षु वन्द्यः॥ २॥

भा०—(हविःषु) आह्वान करने योग्य, आदरपूर्वक आमन्त्रित जनों में (वन्द्यः) स्तुति योग्य (हविः) सर्वोत्तम आमन्त्रित होकर राजा ही (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (मध्वः धाराः प्र गाहते) जल की धाराओं को ज्ञान की धारा, वाणियों के समान खूब उत्तम रीति से विगाहन करे, उनसे स्नान करे और वह (महीः अपः) पूज्य जलों के तुल्य आदरणीय प्रजाजनों को भी (वि गाहते) विशेष रूप से प्राप्त करे उनमें भी विचरे, उनके सुखदुःखादि में सम्मिलित हो।

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद् वने।
सद्माभि सत्यो अध्वरः॥ ३॥

भा०—(अग्रियः) अग्रासन के योग्य (वृषा) उत्तम प्रबन्धक, (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, (अध्वरः) प्रजापीड़नादि से रहित, दयालु, अहिंसक, पुरुष (वने) ऐश्वर्य पर स्थित होकर (सद्म अभि) अपने विराजने के आसन और सभा के सन्मुख (युजः वाचः अव क्रदत्) योग्य उपकारक वाणियों का उपदेश करे।

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति।
स्वर्वाजी सिषासति॥ ४॥

भा०—(यत्) जो (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् होकर (नृम्णा) नाना ऐश्वर्यों को वा मनुष्यों के चित्तों को (वसानः) अपने वश

करके (परि अर्षति) प्राप्त करता है वह (वाजी) बलवान् पुरुष ही, (स्वः सिषासति) सब कुछ देता, सुख-समृद्ध राज्य को प्रदान करता है। (२) इसी प्रकार (यत् वसानः नृम्णा काव्या अर्षति सः कविः वाजी स्वः सिषासति) जो गुरु के अधीन रहकर विद्वानों के बनाये विद्या-धनों को प्राप्त करता है वह स्वयं मेधावी, ज्ञानी होकर अन्यों को ज्ञान-प्रकाश प्रदान करता और सुख प्राप्त कराता है।

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(यद् ईम्) जब इसको (वेधसः) विद्वान् लोग (ऋण्वन्ति) सन्मार्ग में प्रेरित करते और उपदेश देते हैं तब वह (पवमानः) स्वयं पवित्र होकर राष्ट्र आदि को भी दुष्टों का नाश कर पवित्र करता हुआ (स्पृधः अभि पवमानः) अपने स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण करता हुआ (राजा इव विशः सीदति) राजा के समान समस्त प्रजाओं पर अध्यक्ष होकर विराजता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति।
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

भा०—(हरिः) मनोहर, पराक्रमी पुरुषोत्तम (प्रियः) सर्वप्रिय, होकर (अव्यः वारे) भूमि के रक्षक के वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ पद पर (सीदति) विराजता है और वह (रेभः) स्वयं उत्तम विद्वान् उपदेष्टा, आज्ञापक होकर (मती) ज्ञानमयी बुद्धि था वाणी द्वारा सबको ज्ञान का सेवन कराता है।

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति।
रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥

भा०—(यः अस्य धर्मभिः) जो इसके धर्मों से (रण) आनन्दित होता है वह (वायुम् इन्द्रम्) वायु, बलवान्, इन्द्र, ऐश्वर्यवान् और

(अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (मदेन साकं) सहर्ष (आगच्छति) प्राप्त होता है । अथवा (यः मदेन साकं वायुम् इन्द्रम् अश्विना आगच्छति अस्य धर्मभिः रण) जो सोम सहर्ष, ज्ञानी, तत्वदर्शी, उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को प्राप्त होता है, हे मनुष्य ! तू उसके धर्मों, कर्त्तव्यों वा धारण-साधनों से आनन्द लाभ कर ।

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः) मधुर, सर्वप्रिय उपदेष्टा शक्तिशाली जन की (ऊर्मयः) वाणियां, तरङ्ग के समान (मित्रा-वरुणा भगं) मित्र, स्नेही, श्रेष्ठ जन और ऐश्वर्यवान् को (पवन्ते) प्राप्त होतीं और उनको पवित्र करती हैं । (अस्य शक्मभिः) उसकी शक्तियों वा सुखों द्वारा (विदानाः) वे ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (पवन्ते) पवित्र हो जाते हैं । धमतेर्मधु । देवानां मोदयितुः इति सा० ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि संजितम् ॥ ९ ॥ २९ ॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् ज्ञानी अज्ञानी, शास्य-शासक जनो ! आप दोनों (मध्वः) मधुर, सर्वप्रिय, सबको सुख देने वाले, (वाजस्य) ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (अस्मभ्यम्) हमें (श्रवः) श्रवण योग्य वेद-ज्ञान, अन्न और (वसूनि) नाना जीवनोपयोगी अन्य धन भी (सं जितम्) विजय करके प्राप्त कराओ । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ८ निचृद् गायत्री । ३, ४, ७ गायत्री । ६ पादनिचृद् गायत्री । ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमाः) अभिषिक्त वा वीर्यवान् जन वा ऐश्वर्य (अस्य वीर्यम् वर्धन्तः) ओषधि रसों के तुल्य इसके बल को बढ़ाते हुए, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा के (प्रियं कामम् अभि अक्षरन्) प्रिय अभिलाषा को लक्ष्य करके नदी के वेगों के समान आगे बढ़ें ।

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥

भा०—(पुनानासः) स्वयं अभिषेकादि से पवित्र, युद्धार्थ दीक्षित होकर (चमू-सदः) सेनाओं के अध्यक्ष पद पर स्थित नायक जन (वायुम्) बलवान् मुख्य सेनापति और (अश्विना) अश्वों पर सवार दो प्रधान नायकों को (गच्छन्तः) प्राप्त होते हुए (ते) वे (नः सुवीर्यम्) हमारे उत्तम बल को (धातु) धारण करें ।

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र और अन्यों को पवित्र करता हुआ, (हार्दि) सब के हृदयों का प्रेमपात्र होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वा तत्वदर्शी तेजस्वी जन को (राधसे) धनैश्वर्य प्राप्त करने और (ऋतस्य योनिम्) न्याय सत्य व्यवहार के स्थान प्रधान-आसन पर (आसदम्) विराजने के लिये (चोदय) प्रेरित कर ।

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वा दश क्षिपः मृजन्ति) तुझे दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं अभिषिक्त करती हैं और (सप्त धीतयः) सातों

वेद की छन्दोमय वाणियां वा सातों प्रकृतियां तुझे (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं। (विप्राः अनु अमादिषुः) विद्वान् पुरुष तेरी निरन्तर प्रतिदिन स्तुति करें, तुझे प्रसन्न करें। राष्ट्र में राजा, अमात्य, भूमि, कोश, सेना, दुर्ग ये ७ प्रकृतियां हैं।

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—(मेष्यः अति सृजानम्) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने या मेढ़े के समान टक्कर लेने वाली शत्रु-सेना के ऊपर रहते हुए (त्वा) तुझको (देवेभ्यः मदाय) वीरों और विद्वानों के हर्ष के लिये (गोभिः) उत्तम स्तुति वाणियों से हम (सं वासयामसि) अच्छी प्रकार बसावें, उत्तम वस्त्र अलंकरादि से आच्छादित करें, वा (गोभिः) अभिषेक जल-धाराओं से आच्छादित करें था वेगवान् (गोभिः) अश्व-सैन्यों सहित सुरक्षित करें।

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

भा०—(कलशेषु पुनानः) कलशों में स्थित जलों से अभिषिक्त हुआ (हरिः) उत्तम पुरुष, (अरुषः) तेजस्वी और रोषरहित सौम्य स्वभाव होकर (गव्यानि वस्त्राणि) स्तुति योग्य वस्त्रों, वा भूमि के राज्योचित वस्त्रों, अलंकार को (परि अव्यत) धारण करे।

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयावन् ! स्नेहयुक्त ! तू (नः मघोनः आ पवस्व) हमारे उत्तम धनवानों को प्राप्त हो और उनको पवित्र या उत्तम पदों पर अभिषिक्त कर। तू (नः विश्वा द्विषः अप जहि) हमारे समस्त द्वेषी अप्रीति-कर अमित्रों को दण्डित कर। और (सखायम्) मित्र को (आ विश) प्राप्त कर।

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः पृथिव्याः अधि) आकाश से पृथिवी के ऊपर (वृष्टिं) जलवृष्टि के समान, (द्युम्नम्) उत्तम अन्न, धन की (परि स्रव) सब ओर से और सब ओर वर्षा कर । हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः पृत्सु) हमारी प्रजाओं वा संग्रामों में (सहः धाः) बल प्रदान कर ।

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (स्वर्विदम्) समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (इन्द्र-पीतं) ऐश्वर्य के पालक वा भोक्ता (नृचक्षसं) सब मनुष्यों के द्रष्टा, अध्यक्ष, (त्वा) तुझ को प्राप्त करके (प्रजाम्) उत्तम सन्तति और (इषम्) उत्तम अन्न को (भक्षीमहि) प्राप्त करें । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३—५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी लोगों के समान कर्म करने हारा पुरुष (सुवानः) अभिषिक्त हो । वह (हितः) पद पर नियुक्त होकर (नप्त्योः) अपने से सम्बद्ध शास्य शासक जनों के (प्रिया) प्रिय (दिवः वयांसि) ज्ञानों और बलों को (परि याति) प्राप्त करता है ।

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥

भा०—(पन्यसे) स्तुति करने वाले, वा व्यवहारज्ञ (अद्रुहे) द्रोह रहित प्रजाजन के लाभ के लिये और उसके (क्षयाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (जुष्टः) सेवित एवं प्रीतियुक्त होकर (चनिष्ठया) उत्तम (वीती) नीति वा प्रकाश से (प्रप्र अर्ष) आगे बढ़ ।

ससूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥

भा०—(सुनुः मातरा) माता पिताओं को पुत्र के समान, (सः) वह (जातः) उत्पन्न होकर ही, (शुचिः) शुद्ध, सरल व्यवहारवान्, (महान्) गुणों में महान्, (सूनुः) प्रजा का शासक होकर (मही) बड़ी, (ऋत-वृधा) सत्य, न्याय से बढ़ने वाले (जाते) राजा के उत्पादक शास्य, शासक दोनों वर्गों को (अरोचयत्) चमकाता , एवं दोनों को प्रिय लगता है । राजा को अर्थ, कामादि सब उपधाओं में शुद्ध होना उचित है । वह ईमानदार और पवित्र आचारवान् हो तभी सर्वप्रिय हो सकता है ।

स सप्त धीतिभिर्हिता नद्यो अजिन्वदद्रुहः ।
या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥

भा०—(याः) जो (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (एकम्) एकमात्र (अक्षि) क्षीण न होने वाले समुद्र के समान अथाह, गम्भीर एवं (अक्षि) चक्षुवत् सर्वदर्शी शासक को (ववृधुः) बढ़ाती हैं, (सः) वह भी उन (सप्त) सातों प्रकार की (नद्यः) सम्पन्न प्रकृतियों को (धीतिभिः) अपने धारण पोषण और पालन आदि कर्मों से (अजिन्वत्) पूर्ण और तृप्त, प्रसन्न करता है ।

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राष्ट्रजन ! (तव व्रते) तेरे कार्य के लिये, (ताः) वे प्रजाएं (सन्तम्) बलवान् (अस्तृतम्) न मारे

जाने वाले, (युवानम्) युवा (इन्दुम्) सोमवत् सर्वैश्वर्यवान्, स्नेहार्द्र जन को (महे) बड़े भारी कार्य के लिये (अभि आदधुः) सब के समक्ष अग्रासन पर स्थापित करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

भा०—(अमर्त्यः) जिस प्रकार अमृत, नित्य आत्मा (सप्त पश्यति, अतर्पयत्) सात प्राणों को देखता, और तृप्त करता है। उसी प्रकार (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, और (वावहिः) सब को अपने में आश्रित रूप से धारण करनेवाला होता है। वह (सप्त) सातों (देवीः) व्यवहार-कुशल, विदुषी प्रकृतियों वा प्रजाओं को (पश्यति) देखता है और वही (क्रिविः) कूप के समान (अतर्पयत्) सब को अन्न जल से तृप्त करे। राजा अन्न-करदात्री भूमियों और प्रजाओं को जल और अन्न से तृप्त करें। कृषि करावे और नहरें कूप आदि बनवावे।

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या ।
तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥

भा०—(पुमः) हे पुमन्! हे नरों, नायकों के स्वामिन्! हे (सोम) उत्तम शासक! तू (कल्पेषु) शस्त्रों के द्वारा छेदन-भेदन के अवसरों, संग्रामों में (नः अव) हमारी रक्षा कर। और (तमांसि) अन्धकार के समान दुःखदायी विघ्नों के समान (तानि योध्या) उन नाना युद्ध करके दूर करने योग्य शत्रु-सैन्यों को हे (पुनान) अभिषिच्यमान! तेजस्विन्! तू (जंघनः) दण्डित कर, दूर कर। 'कल्पेषु'—कल्पः कल्पनं क्लृप्तिः खण्डनम् इति यावत्। (२) अध्यात्म में—हे सोम! तू (तमांसि) अपनी सब अभिलाषा को प्राप्त कर।

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८॥

भा०—(नव्यसे) अति स्तुत्य और (नवीयसे) सदा नवीन, नित्य (सूक्ताय) उत्तम वचन के (पथः) ज्ञान के मार्गों को (साधय) हमारे

लिये बतला, उनका हमें उपाय दर्शा। और (प्रत्नवत्) पूर्व के समान (रुचः) अपनी कान्तियों और इच्छाओं को (रोचय) प्रकाशित कर और अन्यों को अच्छी लगने वाली अपनी रुचियें प्रकट कर।

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत्।
सना मेधां सना स्वः ॥ ६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे! हे शोधक! दोष-नाशक! तू (वीरवत्) वीर पुरुष के समान पराक्रम से (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और अन्न, और (गाम् अश्वम्) गौ और अश्व (रासि) प्रदान कर। तू (मेधां सन) उत्तम बुद्धि दे और (स्वः सन) सुख प्रदान कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८ निचृद् गायत्री। ३, ५, ७, ९ गायत्री। ४ भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः।
सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(रथाः इव) वेगवान् रथों और (अर्वन्तः न) अश्वों के समान (स्वानासः) अधिक स्वन अर्थात् ध्वनि करते हुए (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण के उत्सुक (सोमासः) विद्यार्थी और (श्रवस्यवः सोमासः) यश के इच्छुक पदाभिषिक्त जन (राये प्र अक्रमुः) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये कदम बढ़ावें। इसी प्रकार विद्यार्थी जन स्नातक हो जावें, तब वे (राये) ज्ञान-प्रदान और धनोपार्जन के लिये अगला कदम उठावें, स्वयं विद्या-निष्णात होकर अन्यों को ज्ञान प्रदान करें।

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः।
भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥

भा०—(हिन्वानासः भरासः रथाः इव) आगे बढ़ते हुए और वेग से मनुष्यों को ढोकर ले जाने वाले रथ जिस प्रकार (कारिणाम्) कर्मकुशल पुरुषों के (गभस्त्योः) हाथों में रहते, उनकी बागडोर सदा उनके हाथों में रहती है उसी प्रकार (भरासः) प्रजा के भरण पोषण करने वाले जन भी सदा (कारिणाम्) कर्म करने में समर्थ, श्रमशील, कुशल जनों के (गभस्त्योः) बाहुओं पर उनके बाहुबल पर (दधन्विरे) स्थापित और पोषित होते हैं।

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभिः॒ सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते ।
य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभिः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(सोमासः) स्नातक वा अभिषिक्त पदाधिकारी जन भी (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं से (राजानः) राजाओं के समान और (सप्त धातृभिः यज्ञः) सात छन्दों रूप वाणियों से यज्ञ के समान (सप्त धातृभिः) सर्पणशील व्यापक (गोभिः) वाणियों से (अञ्जते) कान्ति और तेज से प्रकट होते हैं।

परि॑ सु॒वाना॑स॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा ।
सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त, ज्ञान रस से युक्त, स्नेहार्द्र जन (सुवानासः) विद्या, व्रत और पदाधिकार में अभिषिक्त वा स्नान करते हुए (सुताः) और अभिषिक्त होकर भी (मदाय) आनन्द देने के लिये (बर्हणा गिरा) बड़ी वेदवाणी और (धारया) धारणा वा लोक वाणी से (परि अर्षन्ति) सर्वत्र विचरण करें।

आ॒पा॒नासो॑ वि॒वस्व॑तो॒ जन॑न्त उ॒षसो॒ भग॑म् ।
सूरा॒ अण्वं॒ वि त॑न्वते ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—(विवस्वतः) विविध ऐश्वर्यों और प्रजाओं के स्वामी के (आ-पानासः) चारों ओर के रक्षक (उषसः) प्रतापी, कान्तिमान्, तेजस्वी,

जन (उषसः भगम्) सेव्य सूर्य को उषाकालों के समान (भगम्) सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त राजा को (जनन्त) प्रकट करते हैं और (सूराः) विद्वान् लोग ही उस (विवस्वतः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा के (अण्वं) गान योग्य यश को (वि तन्वते) विविध प्रकार से फैलाते हैं। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रत्नाः) पुराने (कारवः) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान्, कर्मकुशल (आयवः) ज्ञानी मनुष्य, (वृष्णः) सब सुखों के वर्षक (हरसः) सकल दुःखहारी प्रभु की (मतीनां) मननीय वेद-वाणियों के (द्वारा अप ऋण्वन्ति) द्वारों को विवृत करें, उनके गूढ़ मर्मों की व्याख्या करें। अथवा (मतीनां कारवः) उत्तम वाणियों के उपदेष्टा ज्ञानी लोग, बलवान् दुःखहारी प्रभु की प्राप्ति के (प्रत्ना द्वारा) सनातन प्राप्ति के मार्गों को (अप ऋण्वन्ति) बराबर खोलते रहा करें। सदा अन्यों को ईश्वर-प्राप्ति के उपाय खोल २ कर बतलाया करें।

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः ।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥

भा०—(सप्तजामयः) सात वा समवाय या संघ बना कर रहने वाले बन्धु जनों के समान (होतारः) ज्ञानदाता, (समीचीनासः) सम्यक् ज्ञानवान् हो कर, शिर में सात प्राणों के समान वा यज्ञ में सात विद्वान् होताओं के समान (एकस्य पदम्) एक स्वामी के उच्च पद को पूर्ण करते हुए (आसते) विराजें। 'सप्त'—सपन्ति समवायेन वर्त्तन्ते इति सप्तानः।

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा ।
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥

भा०—(सूर्ये सचा चक्षुः चित्) सूर्य के आश्रय, जिस प्रकार चक्षु

संगत रहती है उसी प्रकार मैं (नः) अपने लोगों के (नाभा) नाभि या केन्द्र स्थान में (नाभिम्) सब को एकत्र बांध रखने वाले केन्द्र रूप व्यक्ति को (आ ददे) मैं स्वीकार कर लूं। और मैं (कवेः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के (अपत्यम्) सन्तानवत् शिष्य को (आ दुहे) प्राप्त करूं। जैसे यजुर्वेद में लिखा है 'ऋषिम् आर्षेयम्०' इत्यादि।

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ६ ॥ ३५ ॥

भा०—(सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुष (गुहा हितम्) बुद्धि में विराजमान (दिवः प्रिया पदम्) तेजोमय प्रभु के प्रिय, रम्य परम स्वरूप को (अध्वर्युभिः) अपने अविनाशी सामर्थ्यों से और (चक्षसा) दर्शन और वेद-वचन से (अभि पश्यति) सर्वत्र देखता है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[११]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६ निचृद् गायत्री । ५—८ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप लोग (पवमानाय) सब को पवित्र करने वाले, वा स्वयं अपने आप पवित्र होने वाले अभिषेकवान् (इन्दवे) दयालु एवं प्रकाशयुक्त, तेजस्वी (अस्मै) इस पुरुष के (उप गायत) गुणों का वर्णन करो जो (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों, वीरों का सब प्रकार मान, दान द्वारा आदर करता है।

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥

भा०—(अथर्वाणः) शान्तिजनक अहिंसक जन (ते देवाय) तुझ तेजस्वी पुरुष के (देवं) प्रकाशक (देवयु) विद्वानों के अभिमत, उनके रक्षक (पयः) पोषण बल को (मधुना) ज्ञान वा अन्नादि से (अभि अशिश्रयुः) परिष्कृत करते हैं। राजा में बल है तो विद्वानों में ज्ञान है। विद्वान् ही उसका सहयोग करके उस के बलैश्वर्य को ज्ञानसम्पन्न करें। उस को अन्धा बैल न बना रहने दें।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! तेजस्विन्! तू (सः) वह (नः) हमारे (गवे) गौ आदि पशु के लिये (शम्) शान्तिदायक हो। (नः जनाय शम्) हमारे मनुष्यों के लिये शान्तिदायक हो। (नः अर्वते शम्) हमारे अश्वों के लिये कल्याण और शान्तिकारक हो। हे राजन्! तू (ओषधीभ्यः शम्) ओषधि, अन्नादि वनस्पतियों के लिये भी शान्तिकारक हो। ये सब हमें उत्तम रूप से सुखदायक हों।

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।
सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (बभ्रवे) सब के पालन पोषण में समर्थ (स्व-तवसे) स्वयं वा ऐश्वर्य से बलशाली, (अरुणाय) तेजस्वी, अन्यों से अपराजित (दिवि-स्पृशे) ज्ञान में चरम सीमा तक पहुंचे हुए या तेजोमय विजय वा परम पद में स्थित (सोमाय) ऐश्वर्ययुक्त जन के (गाथम्) वाणी या स्तुति की (अर्चत) अर्चना या आदर करो या उस के गुणों की स्तुति करो।

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।
मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(हस्त-च्युतेभिः) आप लोग हाथों या कुशल पुरुषों से

सञ्चालित (अद्रिभिः) मेघों के समान शस्त्रास्त्र वर्षाओं वा जल-धारा वर्षी कुम्भों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) शासक को (पुनीतन) पवित्र करो। और (मधौ) सब को आनन्द देने वाले, मधुर प्रकृति वाले पुरुष के ऊपर (मधु) जल को (आधावत) प्रवाहित करो, उसी के अधीन ज्ञान, बल का आधान करो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त, स्नेहार्द्र, तेजस्वी पुरुष के प्रति (नमसा इत्) नमस्कार द्वारा (उप सीदत) उपासना करो। (दध्ना इत्) धारण सामर्थ्य से (अभि श्रीणीतन) उस का आश्रय लो, और (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के राज्यासन पर उसे (अभि दधातन) स्थापित करो। (२) ओषधि पक्ष में—सोम को अन्न, दहि आदि से मिलाओ (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में रक्खो। और उस का सेवन करो।

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवन् ! शासक ! प्रभो ! तू (अमित्रहा) स्नेह न करने वालों को नाश करने वा दण्डित करने वाला, (विचर्षणिः) विशेष रूप से सब का द्रष्टा और (देवेभ्यः) नाना कामना वाले मनुष्यों के लिये (अनु-काम-कृत्) उनकी इच्छाओं को निरन्तर पूर्ण करता हुआ, (गवे) भूमि के लिये (शं पवस्व) शान्ति-सुख की धारा बहा।

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! वीर्यवन् ! तेरा (इन्द्राय)

ऐश्वर्य पद को प्राप्त करने और (पातवे) पालन करने के लिये, और (मदाय) सुख, आनन्द लाभ के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जाय। तू (मनः चित्) सब के मनों को जानने वाला, और (मनसः पतिः) सब मनों का पालक स्वामी है।

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! परमानन्ददायक ! हे (इन्दो) दयालो, स्नेहार्द्र ! हे (पवमान) पवित्र करने हारे, परम पावन ! तू (नः) हमें (सुवीर्यं रयिम्) उत्तम बलप्रद ऐश्वर्य (रिरीहि) प्रदान कर। और (नः) हमें (इन्द्रेण युजा) शत्रुहन्ता, तेजस्वी सहयोगी से युक्त कर वा ऐश्वर्ययुक्त सहयोगी राष्ट्र से युक्त कर। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

[१२]

आसितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—
१, २, ६—८ गायत्री। ३—५, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

भा०—(सोमाः) बलवान् (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, प्रजास्नेही, (मधुमत्तमाः) अति उत्तम ज्ञान और बल से युक्त जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (ऋतस्य सादने) सत्य न्याय के भवन में (असृग्रम्) तैयार या नियुक्त किये जावें। इसी प्रकार सोम, अति ज्ञानवान् विद्यार्थी, ब्रह्मचारी (ऋतस्य सादने) वेदाध्ययन के स्थान, गुरु-गृह में तैयार होते हैं। वे इन्द्र, आचार्य के ज्ञान को खूब धारण करते हैं।

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—(गावः मातरः वत्सं न) गोमाताएं जिस प्रकार बछड़े को देख कर उसे प्रेम से पुकारती हैं उसी प्रकार (सोमस्य पीतये) ब्रह्मचारी के पालन के लिये (विप्राः) विद्वान् जन (वत्सं इन्द्रं) उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा वा अपने अधीन ब्रह्मचारियों को रखने वाले ज्ञानदर्शी विद्वान् को लक्ष्य कर (अभि अनूषत) उत्तम स्तुति करते हैं ।

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

भा०—(सोमः) वीर्यवान्, ब्रह्मचारी (गौरी अधि श्रितः) वेद-वाणी में तपोनिष्ठ हो कर (विपश्चित्) विद्वान् होकर (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्र की उच्चतम तरङ्ग के सदृश (सादने) उत्तम आसन पर गुरुगृह में (मदच्युत्) अन्यों को आनन्ददायक होकर (क्षेति) रहता है । इसी प्रकार पृथिवी पर अध्यक्षवत् स्थित विद्वान् अभिषिक्त जन हर्षप्रद होकर उत्तम पद पर विराजता है ।

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

भा०—(विचक्षणः) विविध तत्त्वों का द्रष्टा, (सोमः) विद्या-व्रत-स्नातक, (यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम ज्ञान कर्म से युक्त, (कविः) क्रान्तदर्शी है । वह (दिवः नाभा) ज्ञान, विद्या के सम्बन्ध में (अव्यः) ज्ञानी गुरु के (वारे) सब बुराइयों से वारण करने वाले गुरुगृह में (महीयते) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है । इसी प्रकार विचक्षण, सुज्ञानी, दूर-दर्शी जन (दिवः नाभा) भूमि के केन्द्र में (अव्यः वारे) भूमि या रक्षक के उत्तम पद पर प्रतिष्ठा को प्राप्त हो ।

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः ।
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) विद्वान् अभिषेक योग्य पुरुष (कलशेषु

आ) जलों से भरे घड़ों के बीच उन के जल से स्नान करता हुआ स्थित होता और जो (पवित्रे अन्तः) पवित्र पद पर (आहितः) स्थित होता है (तम्) उस को (इन्दुः) समस्त ऐश्वर्य (परि सस्वजे) प्राप्त होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि अधि) आकाश के ऊपर विद्यमान् (इन्दुः) कान्तियुक्त विद्युत् वा आर्द्र जल युक्त मेघ, (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) जल देने वाले कोश को धारता और (वाचं प्र इष्यति) गर्जना करता है, उसी प्रकार अभिषिक्त पदाधिकारी जन (समुद्रस्य अधि विष्टपि) समुद्र के समान सैन्य और प्रजा जन के ऊपर अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ वा समुद्र अर्थात् अति हर्ष युक्त प्रजा के ऊपर अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ (मधुश्चुतं) प्रजा को अन्न, वृत्ति, वेतनादि देने वाले (कोशं) खजाने को (जिन्वत्) बढ़ाता हुआ (वाचम् प्र इष्यति) आज्ञा, या वाणी को प्रेरित करता है, वह सब पर शासन करता है। इसी प्रकार समुद्रवत् अथाह ज्ञानवान् के पद पर स्थित विद्वान् ज्ञानप्रद ख़ज़ाने की वृद्धि करता हुआ उत्तम वेद वाणी का उपदेश करता है।

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।
हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥

भा०—वह विद्वान् वा राजा (नित्य-स्तोत्रः) सदा अन्यों को उपदेश देने वाला और अन्यों से सदा प्रशंसनीय, (वनस्पतिः) ऐश्वर्यों, तेजों को पालक, सूर्यवत् तेजस्वी वा वट आदि के समान आश्रित जनों का पालक (मानुषा युगा हिन्वानः) मनुष्यों के जोड़ों, स्त्री पुरुषों की वृद्धि, उन्नति करता हुआ, (सबर्दुघः सन्) उन में बलदायक रसवत् ज्ञान का सञ्चार

करता हुआ (धीनाम् अन्तः) उनके बीच उनकी बुद्धियों और कर्मों के बीच (वाचं प्र इष्यति) वाणी की उत्तम प्रेरणा करता है।

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी (सोमः) शासक, अभिषिक्त जन (विप्रस्य धारया) विद्वान् जन की वाणी से (हिन्वानः) आगे बढ़ता हुआ, (दिवः) उत्तम कामना से युक्त प्रजा के (प्रिया पदा) प्रिय पदों को (अभि अर्षति) प्राप्त होता है। इसी प्रकार सोम, विद्यार्थी, विद्वान् आचार्य की वाणी से उपदिष्ट होकर (दिवः प्रिया पदा) विद्या के उत्तम पदों को प्राप्त करता है, नाना उपाधियों से भूषित होता है।

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥ ३९ ॥ ७ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने और पवित्र होने हारे ! (इन्दो) दीप्तियुक्त, स्नेहार्द्र ! तू (अस्मे) हमारे लिये (सहस्र-वर्चसम्) सहस्रों तेजों से युक्त, (सुआभुवम्) चारों ओर उत्तम २ भूमि-सम्पन्न और उत्तम सुखों के उत्पादक (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ धारय) सब ओर से धारण कर। इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः। इति षष्ठाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[१३]

आसितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५, ८ गायत्री। ४ निचृद् गायत्री। ६ भुरिग्गायत्री। ७ पादनिचृद् गायत्री। ९ यवमध्या गायत्री ॥

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) विद्यावान्, स्नातक (पुनानः) अभिषिक्त होकर (सहस्रधारः) बलयुक्त वा सहस्रों वाणियों का ज्ञाता होकर, (अत्यविः) पृथिवी वा सूर्य से अधिक तेजस्वी होकर (वायोः इन्द्रस्य) वायु और विद्युत् के (निष्कृतम्) पद को (अर्षति) प्राप्त होता है। वह वायु के समान प्रबल और विद्युत् के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता वा ज्ञानवान् आचार्य के पद को प्राप्त होता है।

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अवस्यवः) ज्ञान, प्रीति और रक्षा चाहने वाले प्रजागण आप लोग (देव-वीतये) ज्ञान और धन के देने वाले पुरुष को प्राप्त करने के लिये (पवमानं सुष्वाणम्) ज्ञान, शासन द्वारा पवित्र करने वाले और ऐश्वर्यादि प्रदान करने वाले (विप्रम्) विद्वान्, बुद्धिमान् की (अभि प्र गायत) उत्तम स्तुति-अर्चना करो।

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

भा०—(देव-वीतये) शुभ गुणों के प्रकाश करने और ज्ञानेच्छुक जनों की रक्षा के लिये और (वाज-सातये) ज्ञान संविभाग करने और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (सोमाः) उत्तम विद्वान् जन, (सहस्र-पाजशः) सहस्रों बलों वा ज्ञानों से सम्पन्न हो कर (गृणानाः) उपदेश देते हुए (पवन्ते) सब को पवित्र करते हैं।

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! दया स्नेहादि से आर्द्र पुरुष! राजा और तू (नः) हमें (वाज-सातये) ज्ञान, बल, वेग देने के लिये (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाओं उत्तम अन्नों और बलवती सेनाओं को

तथा (द्युमत्) तेज से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को भी (पवस्व) प्राप्त करा या हमारे ऐसे बल आदि को तू प्राप्त कर।

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त (देवासः) तेजस्वी पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते रहें। (ते) वे (नः) हमें (सहस्रिणं रयिम्) सहस्रों की संख्या में परिमित (सुवीर्यं) उत्तम बलदायक (रयिम् आ पवन्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करावें और हमारे अपरिमित धन, बल को प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये।
वि वारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥

भा०—(वाज-सातये) संग्राम में लड़ने के लिये जिस प्रकार (आशवः) तीव्र वेग से जाने वाले (अत्याः) अश्व गण (हेतृभिः हियानः) प्रेरक सारथियों से प्रेरित होकर (अव्यं वारम्) भूमि के पार (असृग्रम्) वेग से जाते हैं उसी प्रकार (हेतृभिः) धारक पोषक गुरुओं से (हियानाः) प्रेरित वा शासित होकर (वाज-सातये) ज्ञान-ऐश्वर्य को प्राप्त करने और अन्यों में प्रचारित, विभाजित, दान करने के लिये (आशवः) शीघ्रकारी, कुशल जन (अव्यं वारम् वि असृग्रम्) रक्षक के वरणीय पद को प्राप्त हों।

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

भा०—(वाश्राः धेनवः वत्सं अभि न) हंभारने वाली गौएं जिस प्रकार बछड़े के प्रति प्रेम से आकृष्ट होती हैं और (धेनवः वत्सं न) जिस प्रकार दूध पिलाने वाली माताएं (वत्सं अभि अर्षन्ति) अपने बच्चे के प्रति जाती हैं और वे (गभस्त्योः दधन्विरे) उसे अपने बाहुओं में ले लेती हैं उसी प्रकार (इन्दवः) स्नेह से आर्द्र हृदय वाले, दयालु (वाश्राः) उत्तम उपदेष्टा जन बसे हुए प्रजा जन के पास (अभि अर्षन्ति) जाते हैं और

उन को (गभस्त्योः) अपनी बाहुओं के शासन में (दधन्विरे) धारण करते हैं ।

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

भा०—(मत्सरः) सब को सन्तुष्ट करने में समर्थ पुरुष (इन्द्राय जुष्टः) ऐश्वर्यवान् शासक राजा आदि के पद के लिये नियुक्त हो । वह (पवमानः) वहां अभिषिक्त होकर (कनिक्रदत्) शासन करे । और वह (विश्वा) समस्त (द्विषः अप जहि) शत्रुओं को दण्डित करके दूर करे ।

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(हे स्वर्दृशः पवमानाः) सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले, वा सबको देखने वाले ज्ञानदर्शी जनो ! हे अभिषेक युक्त जनो ! आप लोग (अराव्णः) अराति अर्थात् शत्रु जनों को (अपघ्नन्तः) दण्डित करते हुए (ऋतस्य योनौ सीदत) सत्य, न्याय और ज्ञान के शासन के पद पर विराजो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३,५,७ गायत्री । ४,८ निचृद् गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥

भा०—(सिन्धोः ऊर्मौ अधि श्रितः) नदी या समुद्र की तरंग पर स्थित मनुष्य जिस प्रकार (परि प्र असिष्यदत्) दूर २ तक वेग से चला जाता है उसी प्रकार (पुरु-स्पृहं) बहुतों को अच्छा लगने वाले, (कारं) कार्य या रथ को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (सिन्धोः ऊर्मौ) समुद्र

के समान अपार जन संघ के बीच उन्नत पद पर (अधि श्रितः) अधिष्ठित होकर (परि प्र असिष्यत्) सब प्रकार से उन्नति की ओर जाता है ।

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥

भा०—(यदी) जब (सबन्धवः) समान रूप से सम्बद्ध, (पञ्च व्राताः) पांचों प्रकार के मनुष्य-संघ, (अपस्यवः) कर्म की इच्छा करते हैं तब वे उस (धर्णसिम्) सबके धारक पोषक को (गिरा) वाणी द्वारा (परि-कृण्वन्ति) स्तुति से सुशोभित करते हैं ।

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।
यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥

भा०—(यदी) जब वह (गोभिः) उत्तम वाणियों से (वसायते) आच्छादित, अलंकृत होता है (आत्) अनन्तर ही (विश्वे देवाः) ऐश्वर्य आदि नाना अभिलाषाओं वाले सब मनुष्य (अस्य शुष्मिणः रसे) इस बलवान् पुरुष के बल के अधीन रह कर (अमत्सत) बहुत प्रसन्न हो जाते हैं ।

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा ।
अत्रा सं जिघ्नते युजा ॥ ४ ॥

भा०—वह (नि-रिणानः) शत्रुओं को नाश करता हुआ (वि धावति) विविध मार्गों से जावे, वह देश को निष्कण्टक कर शोधन करे । और (शर्याणि) शरों से नाश करने योग्य (तान्वा) देहधारियों को (जहत्) नाश करे । (अत्र) इस कार्य में (युजा) सहायक वर्ग से वह (सं जिघ्नते) प्रेम से मिल कर रहे ।

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विवस्वतः शुभ्रः) सूर्य के शुभ्र प्रकाश के समान (नप्तीभिः युवा) बलवान् पुरुष अपने साथ सम्बद्ध प्रजाओं और

और सेनाओं के द्वारा (मामृजे) अभिषिक्त होता है वह (गाः कृण्वानः न) दूधों का सेवन करने वाले के समान स्वयं भी (गाः कृण्वानः) उत्तम आज्ञा-वाणियां प्रकट करता हुआ (निर्णिजम्) अपने रूप, वेश वा यश को भी शुद्ध, स्वच्छ और उज्वल कर लेता है । इति तृतीयो वर्गः ॥

अति॑ श्रि॒ती ति॑र॒श्चता॑ ग॒व्या जि॑गा॒त्यण्व्या॑ ।
व॒ग्नुमि॑यर्ति॒ यं वि॒दे ॥ ६ ॥

भा०—वह (अण्व्या) सूक्ष्म या मनुष्यों के हितार्थ (गव्या) वाणी से (श्रिती) आश्रय प्राप्त करने के लिये (तिरश्चता) प्राप्त जनों को भी (अति जिगाति) अपने गुणों से वश कर लेता है और उसको भी वश कर लेता है (यं) जिसके प्रति (विदे) जानने के लिये (वग्नुम् इयर्ति) वचन-उपदेश भी कह देता है । अर्थात् वह सर्वलोकप्रिय हो जाता है ।

अ॒भि क्षिपः॒ सम॑ग्मत म॒र्जय॑न्तीरि॒षस्पति॑म् ।
पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिनः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(क्षिपः) राष्ट्र में रहने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ प्रजाएं और सेनाएं (इषः पतिम्) सेनाओं के पालक, अन्नों के पालक, स्वामी को (मर्जयन्तीः) अभिषेक करती हुई (अभि सम् अग्मत) उसे प्राप्त होती हैं और (वाजिनः) बली, अश्व-सैन्य और ऐश्वर्यवान् जन उस के (पृष्ठा) पृष्ठ के ऊपर उसके पोषक होकर उसका आश्रय (गृभ्णत) ग्रहण करते हैं ।

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑शद्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा ।
वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥ ८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त ! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी, हमारा प्रिय होकर (विश्वानि दिव्यानि पार्थिवा वसूनि) सब दिव्य और पार्थिव धनों को (परि मर्मृशत्) ग्रहण करता हुआ (पाहि) हमें प्राप्त हो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) वह (इन्द्रस्य निष्कृतम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता के पद को प्राप्त होता हुआ (शूरः) शूरवीर (आशुभिः रथेभिः) वेग से जाने वाले रथों, साधनों और रथसैन्यों सहित (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धि और जन हितैषी कर्म से (याति) प्रयाण करे, आगे बढ़े ।

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२॥

भा०—(एषः) यह (बृहते) बड़े भारी (देव-तातये) विद्वानों के हित साधनार्थ (पुरू) बहुत अधिक (धियायते) ज्ञान सम्पादन तथा कार्य करना चाहता है । (यत्र) जिसके आश्रय (अमृतासः) सब अमर के समान (आसते) जीवित जागृत रूप में सुख से रहते हैं ।

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः) वह (हितः) स्थापित वा कार्य से बद्ध होकर (अन्तः) अन्तःकरण में (शुभ्रवता पथा) शुद्ध भाव से युक्त मार्ग द्वारा (वि नीयते) विशेष रूप से ले जाया जावे और शिक्षित हो (यदि) जब कि (भूर्णयः) पालक पोषक जन (तुञ्जन्ति) उसे शिक्षा दें वा वे दुष्टों का हनन करें ।

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥

भा०—(यूथ्यः वृषा) यूथपति नर जिस प्रकार (शृङ्गाणि दोधुवत्

शिशीते) सींगों को कंपाता और तीक्ष्ण किये रखता है उसी प्रकार (एषः) वह (ओजसा) बल पराक्रम से (नृम्णा) नाना धनैश्वर्यों को धारण करता हुआ, (यूथ्यः) अपने यूथ में सब से श्रेष्ठ (वृषा) बलवान् उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता, (शृङ्गाणि) शत्रु को हनन करने के साधन, अस्त्र शस्त्रों वा सैन्यों को (दोधुवत्) प्रयोग में लावे और (शिशीते) उनको सदा तीक्ष्ण बनाये रक्खे ।

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (वाजी) बलवान् ऐश्वर्यवान् (सिन्धूनां पतिः भवन्) महा नदीवत् धारा-वेग से जाने वाले अश्वों, अश्वारोहियों का समुद्र वत् स्वामी, नायक होकर (शुभ्रेभिः अंशुभिः) शुद्ध दीप्तियुक्त तेजों, गुणों से युक्त और (रुक्मिभिः) स्वर्णादि रुचिर, कान्तियुक्त आभूषणों वा आयुधों से सुसज्जित सहयोगियों सहित (एषः ईयते) वह जाता है ।

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) वह (परुषा) कठोर स्वभाव के (पिब्दना) पीड़ित करने योग्य, दुष्ट जनों को (अति ययिवान्) अतिक्रमण करके जाने वाला होकर (शादेषु) शत्रु का नाश करने वाले सैन्यों के आश्रय पर (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (अव गच्छति) प्राप्त करता है ।

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः। प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥

भा०—(महीः इषः) बहुत बड़ी २ सेनाओं को, नियोजित करने और शत्रु-सेनाओं पर बलात् आक्रमण करने में समर्थ (एतं) उस (मर्ज्यम्) अभिषेचनीय वीर को (आयवः) मनुष्य लोग (द्रोणेषु उप मृजन्ति) कलशों के बीच खड़ा कर प्रेमपूर्वक अभिषेक करें ।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(स्वायुधम्) उत्तम अस्त्र-शस्त्र-सम्पन्न उत्तम योद्धा और (मदिन्तमम्) सब को खूब प्रसन्न रखने वाले (एतम् उ त्यं) इस उस वीर को (दश क्षिपः) दशों दिशा-निवासिनी प्रजाएं और दश दिग्-विजयिनी शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली, सेनाएं और (सप्त धीतयः) सातों राष्ट्रधारक प्रकृतियें (मृजन्ति) अभिषेचित करें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ८ निचृद् गायत्री । ३—७ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते सोतार ओण्यो३रसं मदाय घृष्वये ।
सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (मदाय) आनन्द लाभ और (घृष्वये) शत्रुओं के साथ संघर्ष अर्थात् उनकी प्रति स्पर्द्धा करने के लिये (सोतारः) अभिषेक्ता जन (ओण्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य परस्पर रक्ष्य-रक्षक, शास्य-शासक वर्गों के (रसं) बलस्वरूप (ते) तुझे वे अभिषिक्त करते हैं। और तू (सर्गः न एतशः) शुभ्र वर्ण के जल वा वेगवान् छूट भागे अश्व के समान (तक्ति) जावे ।

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा ।
गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥

भा०—(क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य और बुद्धि-सामर्थ्य से (दक्षस्य रथ्यम्) बलवान् रथीवत् नायक और (अन्धसा अपः वसानम्) अन्न के बल पर आप्त प्रजाओं को आच्छादित अर्थात् पालन करने वाले (अण्वेषु) विद्वान् पुरुषों वा स्तुति-वचनों में (गो-साम्) भूमि आदि के दाता पुरुष को हम (सश्चिम) प्राप्त करें ।

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

भा०—(अनप्तम्) शत्रुओं या सामान्य प्रजाओं से अप्राप्त अर्थात् उनकी पहुंच से बाहर, सर्वातिशायी अथवा (अनप्तम्) बन्धनरहित, (अप्सु दुस्तरं) अन्तरिक्षवत् प्रजाओं में सब से अधिक अजेय, गम्भीर पुरुष को (पवित्रे) परम पवित्र पद पर (आ सृज) स्थापित करो । और उसको (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालन करने के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त करो ।

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(पुनानस्य) अभिषेक करने वाले प्रजा जन के (चेतसा) चित्त के साथ २ (सोमः) अभिषेक योग्य युवा, विद्वान्, वीर्यवान् पुरुष (पवित्रे) अन्यों को पवित्र करने के कार्य में (अर्षति) प्राप्त होता है, और उसी के (क्रत्वा) ज्ञान, सामर्थ्य, राज्य-शासन के पवित्र पद से (सधस्थम्) एकत्र बैठने के स्थान सभा-भवन में (आसदत्) विराजे ।

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राष्ट्रपते ! वा राष्ट्र ! (नमोभिः) विनयपूर्वक (कारिणः) बल के शत्रु-हनन आदि कार्य करने में समर्थ (इन्दवः सोमाः) स्नेहयुक्त अभिषिक्त जन (त्वा) तुझे (महे भराय) बड़े भारी संग्राम के लिये, वा बहुतों के भरण पोषण के लिये, आदरपूर्वक प्राप्त होते और उत्तम पद पर स्थापित करते हैं वा उत्पन्न करते हैं ।

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥

भा०—(गोषु शूरः न) भूमियों या वेगवान् अश्वों के अध्यक्ष पद

पर शूरवीर पुरुष के समान (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त आश्रित प्रजाओं और लक्ष्मियों को प्राप्त करता हुआ (अव्यये रूपे) न क्षीण होने वाले अक्षय रूप, सम्पत्तियुक्त पद पर वा स्वरूप में (तिष्ठति) विराजता है ।

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥

भा०—(दिवः धारा सानु न) आकाश की जल-धारा जिस प्रकार पर्वत के शिखर पर पड़ती है, उसी प्रकार (दिवः) तेजस्वी, (वेधसः) शासन विधान करने वाले (पवित्रे सुतस्य) राष्ट्र-पावन-कारक पद पर अभिषिक्त हुए पुरुष की (धारा) वाणी (सानु) आज्ञाकारी और वेतन-भोगी समुदाय पर (वृथा) अनायास ही (अर्षति) जाती है ।

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।
अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! बल-वीर्यशालिन् ! (त्वं) तू (आयुषु) मनुष्यों के ऊपर (तना) धन के द्वारा (विपश्चितम्) ज्ञान और कर्म में कुशल पुरुष को (पुनानः) अभिषिक्त करता हुआ (अव्यः) भूमि या राष्ट्र के रक्षक पद के (वारं) वरण करने योग्य पद को (वि धावसि) विविध प्रकार से प्राप्त होता है । इति षष्ठो वर्गः ॥

[१७]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥

भा०—(निम्नेन इव सिन्धवः) नीचे, ढालवें स्थान से जिस प्रकार बहते जल-प्रवाह, नदी-नद वेग से जाते और (वृत्राणि घ्नन्तः)

रोकों को तोड़ते फोड़ते हैं उसी प्रकार (सिन्धवः आशवः) प्रचण्ड वेग से जाने वाले अश्व-सैन्यों के स्वामी (सोमाः) नायक जन, (भूर्णयः) क्षिप्रगामी होकर (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नों और विघ्नकारी दुष्टों को नाश करते हुए (असृग्रम्) वेग से जाया करें ।

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।

इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—(वृष्टयः पृथिवीम् इव) वृष्टियें जिस प्रकार भूमि को प्राप्त होती हैं, और (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) जलों के धारक समुद्र की ओर बह जाती हैं, उसी प्रकार (सुवानासः इन्दवः सोमासः) उत्पन्न होते हुए, शासन करते हुए ये स्नेहार्द्र शासक, बलवान् पुरुष (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) ऐश्वर्यवान् वा अन्न-दाता को लक्ष्य करके जाते हैं, उस का ही शासन मानते हैं । (२) इसी प्रकार (सुवानासः सोमाः) उत्पन्न होते हुए समस्त प्राणी उसी प्रभु की शरण जाते हैं ।

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥

भा०—(अति-ऊर्मिः) अति उत्साहित होकर, (मत्सरः) अति तृप्त एवं हर्षित होकर (मदः) सब को आनन्द देता हुआ, (सोमः) ऐश्वर्य युक्त, विद्या, ज्ञान, अधिकार में निष्णात होकर (देव-युः) दिव्य गुणों वा देव, प्रभु की कामना करता हुआ (रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टों, विघ्नों का नाश करता हुआ, (पवित्रे अर्षति) पवित्र पद पर, ब्रह्म में गति करता है ।

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।

उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (कलशेषु धावति) अभिषेक योग्य पुरुष स्नान योग्य जल से पूर्ण कुम्भों के बीच में अपने को शुद्ध करता (पवित्रे परि सिच्यते) और अन्य जन पवित्र शासन कार्य के निमित्त उस का अभिषेक

करते हैं उसी प्रकार यह जीव (कलशेषु) चेतना से युक्त देहों में (आ धावति) जाता और अपने कर्मों को भोग कर स्वच्छ होता, और (पवित्रे) परम पावन ब्रह्म में और जो अधिक (परि सिच्यते) शुद्ध होता है वह (उक्थैः यज्ञेषु वर्धते) यज्ञों, सत्संगों में उत्तम वेद-वचनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता है ।

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् ।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥

भा०—(रोहन् न दिवम्) उदित होता हुआ सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है उसी प्रकार हे (सोम) योगिन् ! विभूति-युक्त ! ज्ञानसम्पन्न ! तू (त्री रोचना अति) कान्तिमान् अग्नि, चन्द्र और सूर्य तीनों को अतिक्रमण करके (दिवम् भ्राजसे) ज्ञान को प्राप्त कर प्रकाशित होता वा मूर्धा स्थल में प्राप्त होकर तेजोमय होता है । और (इष्णन्) आगे बढ़ता हुआ (सूर्यं न) प्रभु या प्रेरक बल जिस प्रकार सूर्य को प्रेरित करता है उसी प्रकार तू भी (सूर्यं चोदयः) देह में विद्यमान दक्षिण प्राण को प्रेरित करता है । (२) इसी प्रकार मुख्य शासक तेज में तीनों से बढ़कर हो, भूमि-शासन को चमकावे और सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषों को सन्मार्ग में चलावे ।

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः ।
दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥

भा०—(यज्ञस्य मूर्धन्) यज्ञ के शिर के समान सर्वोपरि विद्यमान (चक्षसि) चक्षुर्वत् सर्वद्रष्टा प्रभु में (प्रियम् दधानाः) अपने प्रीति-युक्त भाव को रखते हुए, (कारवः) कर्मनिष्ठ, स्तुतिकर्त्ता (विप्राः) विद्वान् जन (अभि अनूषत) उसी प्रभु की साक्षात् स्तुति करते हैं ।

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! (तम् उ त्वा वाजिनं) उस तुझ ज्ञानवान्, बलवान् परमैश्वर्यवान् प्रभु को (विप्राः नरः) बुद्धिमान्, ज्ञानी पुरुष (अवस्यवः) ज्ञान और रक्षा चाहते हुए (देव-तातये) शुभ गुणों को प्राप्त करने और उपासना करने के लिये (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा (मृजन्ति) अपने हृदय में उज्ज्वल करते हैं ।

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (तीव्रः) तीक्ष्ण तेजस्वी होकर (ऋताय पीतये) सत्य तत्व, ज्ञान के पालन कराने के लिये (चारुः) सर्वव्यापक होकर (सधस्थम्) इस समस्त संसार में (आसदः) व्याप्त होकर, उस में विराजता है, वह तू (मधोः धाराम्) आनन्द की धारा के समान ज्ञान की वाणी को (अनु क्षर) प्रवाहित कर । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृद् गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ३, ५, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥

सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (सोमः) समस्त जगत् का उत्पादक, शासक, सञ्चालक, सर्वरसमय, सर्वैश्वर्यवान् है । तू (सुवानः) जगत् को उत्पन्न करता हुआ (गिरिष्ठाः) सब की वाणियों पर, सब की स्तुतियों में विराजमान रहता और (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परि अक्षाः) आनन्द रूप से प्रवाहित होता है । (मदेषु) स्तुतिकर्त्ता जनों में तू (सर्वधाः असि) सब पदार्थों का दाता और सब का धारक, पालक-पोषक है ।

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्रजातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर (त्वं विप्रः) तू सब को पूर्ण करने हारा है। (त्वं कविः) तू क्रान्तदर्शी, तह तोड़ कर हृदय तक को देखने और जानने हारा है। तू (अन्धसः प्रजातम् मधु) अन्न से उत्पन्न होने वाले आनन्द-दायक, तृप्तिकारक अन्न के समान हृदय की भूख को तृप्त करने वाला है। तू (मदेषु) आनन्द रसों के आश्रय पर (सर्वधाः असि) समस्त संसार के प्राणियों का धारक-पोषक है।

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् और तेजस्वी लोग (स-जोषसः) प्रेमयुक्त होकर (तव पीतिं) तेरे ही सुखद रस और रक्षा का (आशत) उपभोग करते हैं। तू (मदेषु सर्वधाः असि) समस्त तृप्तिदायक रसों और अन्नों में व्यापक होकर सब का पालक-पोषक और सब का धारक है।

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (हस्तयोः) अपने हाथों में, अपने वश में (विश्वानि वार्या दधे) समस्त ऐश्वर्यों को रक्खे हुए है, वही तू (मदेषु सर्वधाः असि) आनन्दप्रद सुखों और ऐश्वर्यों में सब को धारण करता और सर्व-विधाता है।

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते। मदेषु सर्वधा असि ॥५॥

भा०—(मातरा इव) जिस प्रकार एक ही पुत्र दो माताओं वा माता पिता दोनों को (दोहते) सुख प्रदान करता, दोनों से दुग्धपान करता, दोनों की गोद पूरता है, उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (इमे मही रोदसी दोहते) इन दोनों आकाश और भूमि को नाना रसों, जलों से

पूर्ण करता है, वही तू प्रभु (मदेषु) तृप्तिकारक अन्नों और जलों के ऊपर (सर्वधाः असि) सब प्राणियों को पोषण करने में समर्थ है ।

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (उभे रोदसी परि) दोनों लोकों में (वाजेभिः) अपने नाना ऐश्वर्यों सहित (परि अर्षति) सर्वत्र व्याप्त है, हे प्रभो ! वह तू (मदेषु) आनन्ददायक सब ऐश्वर्यों में (सर्वधाः) सब को धारण करने हारा (असि) है ।

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह (शुष्मी) बलवान् (कलशेषु) समस्त शरीरों में (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आ अचिक्रदत्) जीव को उपदेश करता है । वही (मदेषु) समस्त आनन्दों के रूप में (सर्वधाः असि) सब का पोषक, सर्वप्रद है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री ॥

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक ! सञ्चालक ! ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो (चित्रम्) संग्रह करने योग्य, ज्ञानप्रद, अद्भुत (उक्थ्यम्) प्रवचन योग्य, स्तुत्य, (दिव्यं) दिव्य, प्रकाशमय, कामना और व्यवहार योग्य (वसु) ऐश्वर्य (पार्थिवं) पृथ्वी पर का (वसु) धन है उसे तू (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ, (नः आ भर) हमें प्राप्त करा । (२) राजा स्वयं पवित्र होकर हमारा भी सब उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करे ।

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक और (इन्द्रः च) हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! (युवं हि) तुम दोनों (स्वः-पती) सुख के पालक और सब के पालक और (गो-पती स्थः) इन्द्रियों और सूर्यादि के पालक हो । तुम दोनों (ईशाना) देह और विश्व के स्वामी होकर (धियः पिप्यतम्) ज्ञानों और कर्मों को करते हो । जीव और परमेश्वर के सिवाय दूसरा कोई भी शक्तिमान् नहीं है । भेद केवल अल्पता और अधिकता का है ।

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषा) वह जगत् में सुखों का वर्षक एवं जगत् का प्रबन्धक, महान्, (हरिः) सब दुःखोंका हर्ता प्रभु (पुनानः) सब को पवित्र करता हुआ (बर्हिषि अधि) समस्त जगत् पर (आयुषु) मनुष्यों में (स्तनयन्) बरसते मेघ के समान गर्जनावत् ज्ञानोपदेश करता हुआ और (स्तनयन्) मातृवत् सब को बालकवत् स्तन्य सदृश अन्न देकर पालता हुआ (योनिम्) जगत् के मूलकारण प्रकृति और गृहवत् विश्व पर (आ सदत्) अध्यक्षवत् विराजता है ।

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।
सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥

भा०—(रेतसि) जल के निमित्त जिस प्रकार (धीतयः) जलपान करने वाली भूमियां (वृषभस्य अधि अवावशन्त) वर्षणशील मेघ की अधिक अपेक्षा करती हैं उसी प्रकार (रेतसि) परम पुरुषार्थ वा जगत् के उत्पादक सर्वबीज के निमित्त (धीतयः) आधान योग्य समस्त भूमियां (वृषभस्य) अति बलशाली जगत्-उत्पादक तत्त्व की (अधि वावशन्त) अधिक कामना करती हैं । और जिस प्रकार (वत्सस्य सूनोः मातरः)

उत्पन्न हुए बच्चे की माताएं बच्चों को चाहती हैं उसी प्रकार (वत्सस्य मातरः) वत्सवत् इस जगत् की निर्मातृ शक्तियां भी (सूनोः अधि वावशन्त) अपने ऊपर महान् सञ्चालक, प्रेरक की अपेक्षा करती हैं।

कुविद्वृष॒ण्यन्ती॑भ्यः पुना॒नो गर्भ॑मा॒दध॑त्।
याः शु॒क्रं दु॑ह॒ते पयः॑ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (पुनानः) वायु या पवित्रकारक या व्यापक तेजस्वी सूर्य (वृषण्यन्तीभ्यः) वर्षक मेघ की कामना करने वाली भूमियों के लिये (कुविद् गर्भम्) बहुत भारी अन्तरिक्ष में (आदधत्) जल को गर्भित कर धारण कराता है, (याः) जो अनन्तर (पयः शुक्रम् दुहते) शुद्ध जल का दोहन करती हैं उसी प्रकार (पुनानः) सर्वपावन प्रभु (वृषण्यन्तीभ्यः) बलवान् सञ्चालक की अपेक्षा करने वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच (पुनानः) व्याप कर (कुवित्) बहुत प्रकार से (गर्भम् आदधत्) जगत् को गर्भित करता है और प्रकृति के परमाणु वा 'आपः' (शुक्रं) कान्तियुक्त (पयः) महत् जगत् को मातृदुग्धवत् दोहन करते हैं। (२) इसी प्रकार वृषभ को चाहती हुई गौओं में विजार सांड गर्भ धरता और वे गौएं कान्तियुक्त दूध देती हैं। (३) इसी प्रकार प्रजाएं बलवान् राजा की अपेक्षा करती हैं। वे शुद्ध अन्न और बल प्रदान करती हैं।

उप॑ शिक्षाप॒तस्थुषो॑ भि॒यस॒मा धे॑हि॒ शत्रु॑षु।
पव॑मान वि॒दा र॒यिम् ॥ ६ ॥

भा०—(अप तस्थुषः) अपने से अलग विद्यमान जीवों को तू हे प्रभो ! (उप शिक्ष) समीप रख और उत्तम दान दे और (शत्रुषु) शत्रुओं में (भियसम् आ धेहि) भय डाल। हे (पवमान) परम पावन ! तू हमें (रयिम् विद) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

नि शत्रोः॑ सोम॒ वृष्ण्यं॒ नि शुष्मं॒ नि वय॑स्तिर।
दू॒रे वा॑ स॒तो अन्ति॑ वा ॥ ७ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (दूरे सतः वा, अन्ति सतः वा) दूर वा पास रहते हुए (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रु के बल का नाश कर (शुष्मं नि तिर) शोषणकारी अत्याचार को दूर कर, (वयः नि तिर) उसके आयु वा तेज का नाश कर। इति नवमो वर्गः ॥

[२०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, दूर दृष्टि वाला विद्वान् (देव-वीतये) 'देव' तेजस्वी सूर्यवत् कान्ति प्राप्त करने के लिये (अव्यः) रक्षक होकर (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) समस्त स्पर्धालु सेनाओं को पराजित करने हारा होकर (वारेभिः) दुष्टों के वारक सैन्यों सहित (प्र अर्षति) उत्तम पद को पाता है ।

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वह (पवमानः) वायु के समान वेग से आक्रमण करने हारा, सूर्यवत् राष्ट्र को शोधन करने हारा, (जरितृभ्यः) विद्वान् स्तुतिकर्त्ताओं को (सहस्रिणं गोमन्तं वाजं) हजारों संस्थाओं से युक्त अपरिमित, भूमि गौ आदि वाला ऐश्वर्य (आ इन्वति स्म) प्रदान करता है ।

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (चेतसा) चित्त से (विश्वानि) सब कार्यों को (परि मृशसे) विचार करता, (मती) बुद्धि या

वाणी से (पवसे) प्रकाश करता है, (सः) वह तू (नः) हमें (श्रवः) वेद का ज्ञान, (विदः) प्राप्त करा ।

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

भा०—तू (मघवद्भ्यः) उत्तम धनवानों को (बृहत् यशः) बड़ा भारी यश और (ध्रुवं रयिम्) स्थिर ऐश्वर्य (अभि अर्ष) प्रदान कर या उनसे वा उनके लिये तू यश और धन प्राप्त कर और (स्तोतृभ्यः) विद्वान् जनों के लिये (इषं आ भर) अन्न प्रदान कर ।

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक ! अभूतपूर्व ! हे (वह्ने) कार्य-भार को अपने कन्धों लेने हारे ! (त्वं पुनानः) अभिषिक्त होकर (राजा इव सु-व्रतः) राजा के समान उत्तम कर्म करता हुआ (गिरः विवेशिथ) आज्ञाएं प्रदान कर ।

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला, तेजस्वी (गभस्त्योः) हाथों के बल-पराक्रम से, (अप्सु मृज्यमानः) जलोंवत् प्रजाओं के बीच में परिशुद्ध होकर (चमूषु) समस्त सेनाओं पर भी (सीदति) अध्यक्ष बनता है । (२) इसी प्रकार आत्म-शरीर का उठाने वाला (अप्सु) प्राणों में संमार्जित, शुद्ध रूप होकर (चमूषु) विषयग्राहिणी इन्द्रियों पर अध्यक्षवत् विराजता है ।

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ १० ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (मंहयुः) दानवान् (क्रीडुः) क्रीड़ाकारी बालक के समान (मखः) यज्ञवत् पवित्र अन्तःकरण वाला होकर (स्तोत्रे) स्तुतिकारी प्रजाजन के हितार्थ (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल को धारण करता हुआ (पवित्रे) पवित्र पद को (गच्छसि) प्राप्त करता है। इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः। पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् गायत्री। २, ७ गायत्री। ४—६ निचृद् गायत्री॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (इन्दवः) उस प्रभु की ओर जाने वाले स्नेह-भक्ति से आर्द्र हृदय (सोमाः) उत्तम विद्वान् जीवगण (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (घृष्वयः) बाधक विघ्नों के साथ संघर्ष, संग्राम करने वाले (धावन्ति) आगे बढ़ते हैं, अपने आपको निरन्तर शुद्ध, स्वच्छ करते हैं। वे (मत्सरासः) आत्मतृप्त जन (स्वावदः) प्रकाश-स्वरूप, उस प्रभु का ज्ञान उपलब्ध करते हैं।

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥

भा० –(प्र-वृण्वन्तः) उत्तम रीति से सेवा करने वाले, (अभि-युजः) शत्रु पर आक्रामक वीरों के समान लक्ष्य पर मनोयोग देने वाले, (सु-ष्वये) उत्तम प्रेरक को (वरिवः-विदः) धन सेवादि देने वाले, और (स्वयं) स्वयं (स्तोत्रे) उपदेष्टा विद्वान् के लिये (वयस्कृतः) अन्न आदि प्रदान करने वाले हैं।

वृथा क्रीलन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित्।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्य से युक्त होकर (वृथा क्रीडन्तः) अनायास युद्ध क्रीड़ा करते हुए (एकम् इत् सधस्थम्) एकमात्र सहयोगी प्रभु के प्रति (सिन्धोः ऊर्मा) सिन्धु की तरङ्गवत् विशाल प्रभु के उच्च पद पर (वि अक्षरन्) विविध मार्गों से जाते हैं।

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत।
हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥

भा०—(रथे हिताः सप्तयः न) रथ में लगे अश्वों के समान (एते) ये (पवमानासः) वायुवत् आगे बढ़ने या अपने को स्वच्छ करने वाले साधक जन (विश्वानि वार्या) समस्त ऐश्वर्यों को (आशत) प्राप्त करते हैं।

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे।
यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मभ्यम्) हमें (अरावा) नहीं देता है (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् वीर जनो ! (अस्मिन् आदिशे) उसके ऊपर आदेश वा शासन करने के लिये (वेनम्) तेजस्वी, कान्तिमान् (पिशङ्गम्) सुवर्ण, आदि ऐश्वर्य (अस्मभ्यम् आ दधात्) हमें प्रदान करो।

ऋभुर्न रथ्यं नवन्दधाता केतमादिशे।
शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥

भा०—(ऋभुः रथ्यं न) धन से सम्पन्न पुरुष जिस प्रकार (आदिशे) अश्वों के सञ्चालनार्थ रथ के सारथि को धरता है, उसी प्रकार हे विद्वान् जनो ! आप लोग (आदिशे) आगे के ज्ञान के लिये (नवं केतं दधात) नये से नया ज्ञान प्राप्त करो। और (शुक्राः अर्णसा पवध्वम्) शुद्धाचार हो कर जलवत् ज्ञान से अपने को सदा पवित्र किया करो।

एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—(एते उ त्ये वाजिनः) ये वे सब ज्ञानवान् पुरुष बलवान् अश्वों के समान आगे बढ़ते हुए (काष्ठम् अवीवशन्) परम सीमा के समान परम सुखमयी ब्रह्मस्थिति को प्राप्त करे, ब्राह्मी दशा पर विजय प्राप्त करे। वे (सतः) सत् स्वरूप परमेश्वर के (मतिम्) ज्ञान को (प्र असाविषुः) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२२]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ४—७ निचृद् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।
सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) उत्पन्न होने वाले जीव गण और कार्य में नियुक्त वीर जन, शिष्य गण और विद्वान् पुरुष (रथाः इव) रथों के समान (आशवः) शीघ्र गति से जाने वाले, क्षिप्रकारी और (वाजिनः) देह में प्राणों के समान बलवान्, ज्ञानवान् होकर (सृष्टाः) छोड़े जाकर (सर्गाः) जल धाराओं के समान (प्र अहेषत) उत्तम ध्वनि करते वा खूब वेग से जाते हैं।

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥ २ ॥

भा०—(एते) ये (वाता इव उरवः) महावायुओं के समान बलशाली और (पर्जन्यस्य वृष्टयः इव) मेघ की वृष्टियों के समान उदार दानशील और (अग्नेः भ्रमाः इव) अग्नि के मोड़दार लपटों के समान (वृथा) अनायास तेजस्वी हों।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) वे (पूताः) पवित्र आचारवान् (विपश्चितः) ज्ञानवान्, (सोमासः) विद्या-स्नात जन (दध्याशिरः) ध्यान, धारणा बल से युक्त (विपा) ज्ञानसहित (धियः) कर्मों को (वि आनशुः) मिला कर विविध प्रकार से करते हैं।

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥

भा०—(एते) वे विद्वान् ज्ञानवान्, एवं जीवात्मा गण, (मृष्टाः) शुद्ध, (अमर्त्याः) मरणरहित, साधारण मर्त्य देहियों से भिन्न, (ससृवांसः) निरन्तर भ्रमण करते हुए और (रजः पथः इयक्षन्तः) मार्गों और नाना लोकों को प्राप्त होना चाहते हुए भी (न शश्रमुः) नहीं थकते।

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः।
उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥

भा०—(एते) वे (रोदसोः पृष्ठानि) आकाश और भूमि के नाना स्थानों को (वि-प्रयन्तः) विशेष प्रकार से प्राप्त होते हुए (उत) और (इदम् उत्तमं रजः) उस उत्तम लोक को भी (वि आनशुः) विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। अर्थात् ज्ञानी जन इस आकाश और पृथ्वी के बीच भोग्य और ऐश्वर्य के लोकों के अतिरिक्त मुक्तिप्रद ब्रह्म को भी प्राप्त होते हैं।

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥

भा०—वे (तन्वानं) विस्तृत (तन्तुं) यज्ञ एवं पिता माता के गृह या देहों में पुत्र-सन्तति रूप से विस्तृत वंश-क्रमानुसार (प्रवतः उत्तमम्) नीची योनि से लेकर उत्तम जन्म तक (आशत) प्राप्त करते हैं। (उत इदम् उत्तमाय्यम्) और वे ही इस उत्तम जनों से प्राप्य मोक्ष पद को भी (आशत) प्राप्त होते हैं।

त्वं सोम प॒णिभ्य॒ आ वसु॒ गव्या॑नि धारयः ।
त॒तं तन्तु॑मचिक्रदः ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सोम) जगद्-उत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) लोकव्यवहार में इन जीवों के लिये (गव्यानि वसु आ धारयः) भूमि के तथा इन्द्रियों से उपभोग्य वाणी से कहने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को सब ओर से प्राप्त कराता है और तू ही (ततं तन्तुम्) तन्तु के समान फैले इस जगत् को (अचिक्रदः) संचालित करता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२३]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

सोमा॑ असृग्रमा॒शवो॒ मधो॒र्मद॑स्य॒ धार॑या ।
अ॒भि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ॥ १ ॥

भा०—(विश्वानि काव्या) समस्त विद्वानों के द्वारा परिशीलित एवं उपदिष्ट ज्ञानों का, (अभि) साक्षात् ज्ञान करके (मधोः मदस्य धारया) तृप्तिकारक, हर्षजनक अन्न और जल को शरीर धारक पोषक शक्ति के समान, सुखदायक ज्ञान की धारा अर्थात् वाणी से (सोमाः आशवः) क्षिप्रकारी वीर, विद्वान्, बल वीर्य विद्या में निष्णात जन जीवों के समान ही (असृग्रम्) उत्पन्न होते हैं ।

अनु॑ प्र॒त्नास॑ आ॒यवः॑ प॒दं नवी॑यो अक्रमुः ।
रु॒चे ज॑नन्त॒ सूर्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(प्रत्नासः) अति पुरातन, अनादि काल से विद्यमान (आयवः) पुनः शरीर में आने वाले जीवों के समान मनुष्य भी (नवीयः) नये से नये (पदं) स्थान और प्राप्तव्य पद को (अक्रमुः)

प्राप्त होते हैं। वे (रुचे) दीप्ति के लिये (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, परम प्रतापी, ज्ञानमय पुरुष को भी राजवत् ही (जनन्त) उत्पन्न करते हैं।

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम्।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) परम पावन और सब के भीतर पवित्र रूप से विद्यमान व्यापक स्वामिन्! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हम में से (अदाशुषः गयम् आ भर) अदानशील को भी धन गृहादि प्रदान कर। अदाता दरिद्र को भी इतना धन दे कि वह भी खुले हाथ दान देसके। और तू ही (प्रजावतीः इषः कृधि) प्रजाओं से युक्त अन्न सम्पदाओं को कर, वा हे राजन्! (प्रजावतीः इषः) तू सेनाओं को प्रजावाला, रक्षक कर। हे प्रभो! तू (इषः प्रजावतीः कृधि) वृष्टियों को उत्तम अन्नोत्पादक कर।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमासः) उत्तम शासक वा उपासक (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) हर्षजनक और (मदम्) तृप्तिकारक, स्तुत्य लोक वा पद को योग्य अन्नवत् भी (अभि पवन्ते) प्राप्त होते हैं, और वे ही (मधुश्चुतं) जलप्रद (कोशम्) कोश, मेघ के समान मधुर आनन्दप्रद कोश आनन्द के आकर रूप परमेश्वर को (अभि पवन्ते) लक्ष्य कर उसकी ओर भी जाते हैं।

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम्।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥

भा०—(सोमः) जगत् का उत्पादक और सञ्चालक, (धर्णसिः) सब को धारण करने वाला परमेश्वर ही (इन्द्रियं) परम ऐश्वर्य और (रसं) ज्ञान, आनन्द, परम बल को (दधानः) धारण करता और

प्रदान करता है । वही (सु-वीरः) सर्वोत्तम बलशाली, (अभिशस्तिपाः) सब दुःखों, दुष्प्रवादों और आक्रमणों से बचाने वाला है ।

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (देवेभ्यः) नाना अर्थों की कामना करने वाले जीवों के उपकारार्थ (इन्द्राय पवसे) महान् ऐश्वर्ययुक्त जगत् के सञ्चालन के लिये इसमें व्यापता और इसे चलाता है । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू ही (सध-माद्यः) उसके साथ आनन्द दाता (वाजं सिषाससि) उसे ऐश्वर्य दिया करता है ।

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।
जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥ १३ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (मदानां) आनन्ददायक गुणों का (पात्वा) पान या सेवन करके (इन्द्रः) यह जीव (अप्रति) अपराजित होकर (वृत्राणि) समस्त विघ्नों और विघ्नकारी शत्रुओं को (जघान) दण्डित करता और (जघनत् च नु) और बराबर करता रहे । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५, ७ निचृद् गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) नाना उत्पन्न होने वाले जीव, (इन्दवः) चन्द्रवत् परमेश्वरीय ज्ञान से उपजीवित, (इन्दवः = इं द्रवन्ति) उस प्रभु की ओर जाने हारे भक्ति-रसार्द्र होकर (पवमानासः) निरन्तर स्नानवत्

पवित्र होते हुए (प्र अधन्विषुः) आगे बढ़ते चले जाते हैं। (अप्सु श्रीणानाः) आप्त पुरुषों के अधीन वा प्राप्त शरीरों में भी तप करते हुए एवं (अप्सु) सूक्ष्म शरीरों में (मृजत) अति शुद्ध हो जाते हैं।

अभि गावो॑ अधन्विषुरापो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः ।
पु॒ना॒ना इन्द्र॑माशत ॥ २ ॥

भा०—(प्रवता यतीः आपः न इन्द्रम् आशत) जिस प्रकार नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से जाती जलधाराएं जलों के धारक समुद्र तक पहुंच जाती हैं उसी प्रकार (प्रवता यतीः) उत्तम पद से जाने वाले (आपः) सूक्ष्म शरीरी वा आप्त जन (गावः) सदा गति करते हुए (अभि अधन्विषु:) आगे ही बढ़ते जाते हैं और (पुनानाः) अपने आप को उत्तरोत्तर पवित्र करते हुए (इन्द्रम् आशत) उस परमेश्वर, तेजोमय, भय-संकट के विदारण करने वाले प्रभु को, गुरु को शिष्योंवत् प्राप्त होते हैं।

प्र प॑वमान धन्वसि॒ सोमेन्द्रा॑य॒ पात॑वे । नृभि॑र्य॒तो वि नी॑यसे ॥३॥

भा०—हे (पवमान सोम) पवित्र अन्तःकरण वाले उत्तम जीव! तू (पातवे) अपने पालन वा रक्षा-याचना के लिये (इन्द्राय) उसी प्रभु परमेश्वर के लिये (प्र धन्वसि) ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त वीर के समान मानो धनुष-बल से विजय करता हुआ आगे बढ़ रहा है (यतः) जहां से तू (नृभिः) सांसारिक विषयों की ओर ले आने वाले इन्द्रिय गणों द्वारा (वि नीयसे) उस प्रभु से विपरीत दिशा में इस जगत् के भोग्य पदार्थों की ओर बलात् ले जाया जाता है।

त्वं सो॑म नृ॒माद॑नः॒ पव॑स्व चर्षणी॒सहे॑ । सस्नि॒र्यो॑ अ॑नु॒माद्यः॑॥४॥

भा०—हे (सोम) उत्पन्न होने वाले जीव! (त्वं) तू (नृ-मादनः) अपने नेतृ वर्ग इन्द्रिय गण को तृप्त करने और उनसे स्वयं तृप्त होने वाला है। तू (चर्षणीसहे) समस्त मनुष्यों को वश करने वाले उस प्रभु को

प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़। (यः सस्निः) जो नित्य शुद्ध, पवित्र और (अनुमाद्यः) निरन्तर सब दिनों हर्ष देने वाला है।

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) उस प्रभु के प्रति द्रुत गति से जाने वाले, एवं उस के प्रति भक्ति रसादि से आर्द्र जीव ! तू (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः) धर्ममेघ समाधियों द्वारा परिष्कृत होकर (पवित्रं) परम पावन प्रभु को लक्ष्य करके (परि धावसि) इस संसार से दूर चला जाता है, तब तू (इन्द्रस्य धाम्ने) उस परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के परम तेज को प्राप्त करने के लिये (अरम्) पर्याप्त योग्य होता है।

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) समस्त विघ्नों के विनाश करने वाले प्रभो ! तू (उक्थेभिः अनुमाद्यः) उत्तम स्तुति वचनों द्वारा निरन्तर आनन्द ग्रहण करने योग्य है। तू (शुचिः) परम पवित्र और (पावकः) सब को पवित्र करने हारा और (अद्भुतः) आश्चर्य-गुण-कर्म-स्वभाववान् है। तू हमें भी (पवस्व) पवित्र कर, प्राप्त हो।

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः।

देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ १४ ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) सर्व जगत् का सञ्चालक, आत्मा, परमेश्वर भी (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त (मध्वः) ज्ञान के कारण (शुचिः) शुद्ध (पावकः) परम पावन और (देवावीः) देवों, कामनावान् जीवों का रक्षक और (अघ-शंसहा) पाप शासन करने वाले को दण्ड देने वाला है। इन सूक्तों में एक वचनान्त सोम परमेश्वर वाचक और बहुवचनान्त सोम जीवात्मा

वाचक प्रतीत होते हैं। आत्मा शब्द के तुल्य सोम भी उभयत्र समान रूप से प्रयुक्त है। इति चतुर्दशो वर्गः। इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[२५]

दृढच्युतः आगस्त्य ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ गायत्री। २, ४ निचृद् गायत्री॥ षड्चं सूक्तम्॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
मरुद्भ्यो वायवे मदः॥ १॥

भा०—हे (हरे) दुःखों के हरने वाले! तू (दक्ष-साधनः) बल और ज्ञान से समस्त जगत् को वश करने वाला और (मदः) सब को आनन्द देने वाला है। तू (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों, सूर्यादि वा ज्ञानवान् पुरुषों और (मरुद्भ्यः) प्राणधारी और (वायवे) ज्ञानवान् वा प्राणवान् आत्मा के (पीतये) पालन करने के लिये (पवस्व) प्राप्त हो।

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत्।
धर्मणा वायुमा विश॥ २॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र रूप! हे देह में आने वाले! तू (धिया हितः) कर्म वा मानस कामना द्वारा बद्ध होकर (योनिम् अभि कनिक्रदत्) गृहवत् देह को प्राप्त होता है। और (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से (वायुम् आ विश) प्राण तक में प्रविष्ट है। (२) इसी प्रकार 'पवमान' व्यापक प्रभु (धिया) ज्ञान बल से सर्वत्र विद्यमान विश्वों को चलाता है वह धारक प्रयत्न से वायु प्रत्येक गतिमान् पदार्थ तक के भीतर है।

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः।
वृत्रहा देववीतमः॥ ३॥

भा०— वह (कविः) जड़ पदार्थों को पार करके देखने वाला,

(प्रियः) अपने को बहुत प्रिय (वृषा) बलवान्, आत्मा (योनौ अधि) देह पर शासक होकर (देवैः) अर्थप्रकाशक इन्द्रियों सहित, सहायकों सहित राजा के समान (शोभते) शोभा देता है। वह (वृत्रहा) बाधक अज्ञान दुःखादि को नाश करता और (देव-वीतमः) सब इन्द्रिय गत प्राणों चक्षु आदि सब से अधिक कान्तियुक्त, सर्वश्रेष्ठ है। (२) इसी प्रकार प्रभु विश्व पर अध्यक्षवत् जल, तेज आदि सहित विराजमान है। वह अन्धकार का नाशक और सूर्यादि का भी प्रकाशक है।

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः।
यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥

भा०—वह आत्मा (विश्वा रूपाणि) समस्त जीवित देहों में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ भी (हर्यतः) कान्तिमान् (पुनानः) अपने को स्वच्छ करता हुआ, वहां ही (याति) चला जाता है (यत्र अमृतासः) जहां अमृत मुक्तात्मा (आसते) विराजते हैं।

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक्।
इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥ ५ ॥

भा०—(अरुषः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश (सोमः) जीव (आयुषक्) जीवन को प्राप्त करके (गिरः जनयन्) स्तुति वाणियां प्रकट करता हुआ (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी ज्ञान वाला होकर (इन्द्रम् गच्छन्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त होता हुआ (पवते) पवित्र हो जाता है।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति आनन्द देने वाले आत्मन्! (कवे) हे क्रान्तदर्शिन् विद्वन्! मेधाविन्! तू (धारया) वाणी द्वारा (पवित्रं) अति पवित्र और अन्य को पवित्र करने वाले प्रभु को (आ पवस्व) प्राप्त

हो और (अर्कस्य योनिम्) अर्चना करने योग्य उस परमेश्वर के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये तू वाणी से स्तुति कर। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[२६]

इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ निचृद् गायत्री। २, ६ गायत्री ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

तमम‍ृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि।
विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् लोग (अदितेः उपस्थे अधि) माता पितावत् अदीन, अखण्ड परमेश्वर की गोद में, उस के समीप में, (तम्) उस (वाजिनम्) बल और ज्ञान वाले आत्मा को (अण्व्या धिया) अति सूक्ष्म बुद्धि से (अमृक्षन्त) शोधते और विमर्श, विवेचन करते हैं। अमृक्षन्त—मृजेर्वा मृशेर्वा।

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम्।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥

भा०—(दिवः) सूर्यादि लोकों को (आ धर्तारम्) सब ओर से धारण करने वाले (सहस्र-धारम्) सहस्रों वाणियों वाले, वा सहस्रों अपरिमित लोकों के धारक, (अक्षितम्) अक्षय, अविनाशी, (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् (तम्) उस प्रभु की ही (गावः अभि अनूषत) समस्त वाणियां स्तुति करती हैं।

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि।
धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (वेधाम्) जगत् के विधाता, (द्यवि अधि पवमानम्) तेजोयुक्त समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक (धर्णसिं) सब के आश्रय, (भूरि-धायसम्) बहुत से अनेक जीवों और लोकों के पोषक प्रभु को लोग (मेधया) बुद्धि से (अह्यन्) प्राप्त करते हैं।

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः ।
पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

भा०—और (विवस्वतः) विविध लोकों के स्वामी, प्रभु, परमेश्वर के (भुरिजोः) बाहुओं में, उसकी रक्षा में (संवसानम्) अच्छी प्रकार सुख से रहने वाले (अदाभ्यम्) अहिंसनीय, नित्य, अविनाशी (वाचः पतिम्) वाणी के पालक (तं) उस आत्मा को भी विद्वान् लोग (धिया अह्यन्) अपनी धारणावती बुद्धि द्वारा ही प्राप्त करते हैं ।

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥

भा०—(सानौ अधि हरिं) उच्च पद पर विराजमान, अन्धकार के नाशक, सूर्य के समान तेजस्वी, स्वप्रकाश (हरिं) उस सर्व-दुःखहारी (सानौ अधि) सर्वोच्च पद पर विराजमान, (हर्यतं) परम कान्तिमान् , (भूरि-चक्षसं) बहुत से लोकों, जीवों के कर्मफलादि के देखने वाले, सर्वद्रष्टा परमेश्वर को (जामयः) उसके बन्धुवत् भक्त जन (अद्रिभिः) मेघवत् आनन्द रसवर्षक धर्ममेघ नामक समाधियों द्वारा (हिन्वन्ति) उस तक पहुंचते और उसकी स्तुति करते हैं ।

तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् ।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे (पवमान) परम पावन ! (इन्द्राय) तुझे साक्षात् देखने वाले जीव को (मत्सरम्) आनन्द से तृप्त करने वाले (गिरावृधम्) वाणी से स्तुति करने योग्य (तं त्वा) उस तुझ को (वेधसः) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) स्तुति करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

[२७]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृद् गायत्री । ३—५ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (कविः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (अभि-स्तुतः) स्तुति वा प्रार्थना के योग्य है जो (पवित्रे अधि) पवित्र कार्य में (पुनानः) नियुक्त हो कर (स्रिधः अप घ्नन्) बाधक कारणों को शत्रुओं के समान नाश करता हुआ (तोशते) विपक्ष का नाश करता रहे ।

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (दक्ष-साधनः) बल से शत्रुओं को वश करने वाला, (स्वर्जित्) सब का विजेता पुरुष, (इन्द्राय) शत्रुओं के नाश करने, ऐश्वर्य के बढ़ाने और (वायवे) वायुवत् प्रबल हो कर प्रजा को जीवन देने और शत्रुओं को मूल से उखाड़ डालने वाले पद के लिये (पवित्रे) देश को दुष्टों से रहित, स्वच्छ करने के विशेष पद पर (परि सिच्यते) सर्वोपरि अभिषेक किया जाता है ।

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

भा०—(एषः सोमः) वह उत्तम शासनकुशल, (विश्ववित्) सब का ज्ञाता, (वृषा) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाला, (दिवः मूर्धा) इस भूमि पर शिर के तुल्य उन्नत होकर (नृभिः) नायक उत्तम पुरुषों से (वनेषु) समस्त ऐश्वर्यों पर (सुतः) अभिषिक्त करके (वि नीयते) विशेष रूप से प्राप्त किया जाता है ।

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय, वेदवाणी आदि का स्वामी, जितेन्द्रिय विद्वान्, (हिरण्ययुः) धन का स्वामी, (इन्दुः)

ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र स्वभाव, (अस्तृतः) अहिंसक (सत्राजित्) सत्य के बल से जीतने वाला, (पवमानः) सब को पवित्र करता हुआ (अचिक्रदत्) शासन करे।

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (मत्सरः) सब को हर्ष देने वाला, (मदः) स्वयं हृष्ट पुष्ट, स्तुति योग्य, (पवमानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ (पवित्रे द्यवि) पवित्र ज्ञान-प्रकाश में (अधि) अधिष्ठित होकर (सूर्येण) सूर्य के समान (आसते ह) विराजता है।

एष शुष्म्यसिष्यदद्न्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—(एषः) वह (शुष्मी) वायुवत् बलशाली (वृषा) मेघवत् सुखों का वर्षक, (इन्दुः) चन्द्रमा के समान कान्तिमान् (हरिः) सूर्यवत् अन्धकारादि का नाशक होकर (अन्तरिक्षे) सब के अन्तःकरण में (पुनानः) अभिषिक्त हो कर (इन्द्रम् आ असिष्यदत्) ऐश्वर्ययुक्त राजपद को प्राप्त करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री। २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः।
अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥

भा०—(एषः) वह (वाजी) बलवान् (विश्व-वित्) सर्वज्ञ (मनसः पतिः) सब ज्ञानों और सब के चित्तों का पालक (नृभिः) नायकों द्वारा (हितः) स्थापित किया जाय। वह (अव्यः) रक्षक सेना

के (वारं) वरण योग्य मुख्य पद को (वि धावति) विशेष रूप से प्राप्त करता है।

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

भा०—(एषः) वह (सोमः) शासक (देवेभ्यः) विद्वान् और विजयेच्छुक पुरुषों के हितार्थ (पवित्रे) पवित्र, अभिषेचनीय पद पर (सुतः) अभिषिक्त हो कर (विश्वा धामानि) समस्त तेजों को (आविशन्) प्राप्त हो कर (अक्षरत्) आवे।

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) वह दानशील, (अमर्त्यः) अविनाशी, दीर्घजीवी, असाधारण मनुष्य (वृत्रहा) शत्रुओं का नाश करने वाला (देववीतमः) विद्वानों में अति तेजस्वी पुरुष (योनौ अधि शुभायते) उत्तम पद पर शोभा देता है।

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, (दशभिः जामिभिः) दश बन्धुवत् राजमण्डलों से वा दश दिग्वासिनी प्रजाओं से (यतः) सुसम्बद्ध होकर (द्रोणानि) अभिषेक योग्य कलशों की ओर (अभि धावति) जाता और उनसे स्नान करता है। (२) अध्यात्म में धर्ममेघयुक्त आत्मा दश प्राणों से बन्धुवत् बद्ध होकर (द्रोणानि) भीतरी कोशों, लोकों वा द्रुतगति वाले प्राणों की ओर जाता है, उन पर वश करता है।

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (विश्ववित्) सर्वज्ञ प्रभु (पवमानः) सब में व्यापता हुआ, (विश्वा धामानि विचर्षणिः) समस्त लोकों का द्रष्टा (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है । (२) उसी प्रकार राजा भी सब लोकों, स्थानों का द्रष्टा होकर सूर्यवत् तेजस्वी पद को सुशोभित करता है ।

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान्, (अदाभ्यः) विनष्ट न होने वाला, (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सर्वसञ्चालक, (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (देवावीः) विद्वान् उत्तम गुणों की रक्षा वा कामना और उन से प्रीति करता हुआ (अघ-शंसहा) पाप कहने वालों को दण्ड देता हुआ (अर्षति) हमें प्राप्त हो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२६]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

भा०—तू (देवान् प्रभूषतः अनु) उत्तम सामर्थ्यवान् विद्वानों और वीरों के प्रतिदिन (ओजसा) बल पराक्रम से (सुतस्य अस्य वृष्णः धाराः) अभिषिक्त हुए इस बलवान् पुरुष की (धाराः) वाणियें, आज्ञाएं (प्र अक्षरन्) मेघ से निकली जलधाराओं के समान सब के सुख के लिये निकलें । इसी प्रकार इस आत्मा की (देवान् अनु) इन्द्रिय गण के प्रति (प्र-भूषतः) प्रभुवत् इस की (धाराः) जलधारावत् ग्रहण शक्तियां इन्द्रिय प्रणालिकाओं से बाहर आती हैं ।

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (कारवः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता वा कर्मण्य पुरुष, (सप्तिं) सातों प्राणों के स्वामी, इस आत्मा को (गिरा) वेद वाणी वा प्रभु-गुण-स्तुति से (मृजन्ति) शुद्ध पवित्र करते हैं। और उसी को (उक्थम्) स्तुत्य (जज्ञानं ज्योतिः) प्रकट होने या जन्म लेने वाली ज्योति करके जानते हैं। इसी प्रकार राजा सप्त प्रकृतियों का स्वामी होने से सप्ति है। वह परम तेजोवत् है।

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥

भा—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (पुनानाय ते) अभिषिक्त होने वाले, राष्ट्र को परिशोधन करने वाले राजा के समान, नाना योगसाधनों से पवित्र उज्ज्वल रूप से प्रकट होने वाले (ते) तेरे (तानि) वे नाना (सु-सहा) सुख से सबको वश करने वाले साधन हैं। हे (प्रभु-वसो) प्रचुर ऐश्वर्यवन् ! तु (उक्थ्यम्) उत्तम स्तुति योग्य (समुद्रम्) समुद्र-वत् अर्थात् उस प्रभु की (वर्ध) स्तुति से उसकी महिमा फैला।

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥

भा०—तू (विश्वा) सब प्रकार के (वसूनि) बसने योग्य ऐश्वर्यों और लोकों को (सं-जयन्) अच्छी प्रकार विजय करता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (धारया) उस अपनी धारणा शक्ति से (पवस्व) प्राप्त कर और (सध्र्यक्) साथ ही (द्वेषांसि इनु) सब प्रकार के द्वेषों को दूर कर।

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् ।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! आत्मन् ! राजन् ! (समस्य कस्य चित्) समस्त जिस किसी भी (अररुषः) अति क्रोधी कठोर और (निदः) निन्दक से (नः सुरक्ष) हमारी रक्षा कर । (यत्र) जिससे हम (मुमुच्महे) मुक्त हो जावें ।

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (पार्थिवं) पृथिवी के और (दिव्यं) तेजोयुक्त अग्नि, सूर्यादि के (रयिं) ऐश्वर्य को भी (धारया) वाणी वा धारणा द्वारा (पवस्व) दे वा सञ्चालित कर । तू (द्युमन्तं शुष्मम्) तेज से युक्त बल भी प्रदान कर । यहां सोम नामक तीव्र रस से दिव्य रयि, विद्युत् और तेजोयुक्त बल, यान्त्रिक बल प्राप्त करने का भी संकेत है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३०]

बिन्दुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३-५ निचृद् गायत्री ॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।
पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥

भा०—(अस्य शुष्मिणः) इस बलवान् पुरुष की (धाराः) वाणियें (पवित्रे) पवित्र, स्वच्छ दुष्ट, चोर दस्यु आदि से स्वच्छ करने के साधन रूप सैन्य के निमित्त (वृथा) अनायास ही (धाराः अक्षरन्) नाना वाणियें प्रकट हों । वह (पुनानः) राष्ट्र को पवित्र, स्वच्छ करता हुआ वा स्वयं अभिषिक्त होता हुआ (वाचम् इष्यति) अपनी आज्ञा, घोषणा प्रेरित करे या वेद वाणी की अपेक्षा करे ।

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।
इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥

भा०—(सोतृभिः हियानः) अभिषेक करने वालों द्वारा बढ़ाया गया और (मृज्यमानः) स्वच्छ पवित्र किया जाकर (कनिक्रदत्) शासन करे । वह (वग्नुम् इन्द्रियम् इयर्ति) वचन बोलने वाली इन्द्रिय वाग् का प्रयोग करो ।

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।
पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (धारया) अपने धारण सामर्थ्य और आज्ञा बल से (नः) हमें (नृ-साह्यं) सब मनुष्यों को वश करने में समर्थ, (वीरवन्तं पुरु-स्पृहं) वीरों वाले, बहुतों को प्रिय लगने वाले (शुष्मं) बल को (नः पवस्व) मेघ से जल धारावत् हमें प्राप्त करा । विद्वान् जल-धारा से यान्त्रिक बल प्राप्त करे, इस का भी इस में उपदेश है ।

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जल के समान है, वह (पवमानः) वेग से जाता हुआ, (धारया अति प्र असिष्यदत्) धारा, वाणी वा सैन्य परंपरा वा शक्ति सहित आगे बढ़े और (द्रोणानि) नाना स्थानों पर (आसदम्) सुशोभित होने का यत्न करे ।

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे दयार्द्र स्वभाव ! हे युद्धादि में द्रुत वेग से जाने हारे ! (अप्सु) प्राप्त प्रजाओं में (त्वा) तुझ (मधु-मत्तमं) अति मधुर वचन बोलने वाले, (हरिं) प्रजा के दुःखहारी, (त्वा)

तुझ को (अद्रिभिः) शस्त्र बलों द्वारा (इन्द्राय पीतये) बड़े ऐश्वर्यप्रद की रक्षा के लिये (हिन्वन्ति) तुझे बढ़ाते हैं। अधि शक्तिशाली बनाते हैं।

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (वज्रिणे) बलशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त (शर्धाय) शस्त्र बल से धारण करने योग्य पद या राज्य के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर भाषी या शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, (चारुम्) उत्तम, विचारवान्, (मत्सरम्) हर्षप्रद (सोमम्) शासक का (सुनोत) अभिषेक करो।

[३१]

गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री। २ यवमध्या गायत्री। ३, ५ गायत्री। ४, ६ निचृद् गायत्री ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) देह को प्रेरणा देने, सञ्चालन करने वाले (पवमानासः) उसको गति देने और नाड़ी २ में रक्तादि रस रूप से व्यापने वाले (स्वाध्यः) उत्तम चेतना रूप ज्ञान और कर्म को धारण करने वाले, प्राण गण (प्र अक्रमुः) देह में उत्तम रीति से सञ्चार करते हैं, वे (रयिं) मूर्त्त देह को चेतन (कृण्वन्ति) चेतनायुक्त बनाये रखते हैं उसी प्रकार वीर विद्वान् जन, पवित्र हृदय, उत्तम कर्म प्रज्ञावान् होकर (प्र अक्रमुः) एक से एक आगे उत्तम पद बढ़ाते और (रयिं) ऐश्वर्य और (चेतनं) ज्ञान का (कृण्वन्ति) सम्पादन करें। वीर लोग धन, यश का और विद्वान् लोग ज्ञान का सम्पादन किया करें।

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः।
भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (दिवः पृथिव्याः) भूमि और आकाश पर (अधि भव) शासक हो । तू (द्युम्न-वर्धनः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला (भव) हो और (वाजानां पतिः भव) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, बलों का पालक हो ।

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ओषधि वर्ग के समान सब को सुख देने हारे ! (वाताः) वायुगणवत् बलशाली, जीवनप्रद पदार्थ (तुभ्यं अभि-प्रियः) तुझे पूर्ण तृप्ति पुष्टि करने वाले हों और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले नदों के समान वेगवान् अश्वादि एवं प्राणगण और देहगत नाड़ियें (तुभ्यम् अर्षन्ति) तेरे लिये गति करते हैं । हे (सोम) ऐश्वर्यवन् वे (ते महः वर्धन्ति) तेरे तेज को बढ़ाते हैं ।

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! उत्तम विद्वन् ! अनुशास्तः ! ऐश्वर्यवन् ! तू (आ प्यायस्व) सब प्रकार से बढ़ । (ते वृष्ण्यम् विश्वतः सम् एतु) तुझे बल, सामर्थ्य सब ओर से प्राप्त हो । तू (वाजस्य संगथे भव) ज्ञान, ऐश्वर्य के प्राप्त करने में सदा सफल हो ।

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥

भा०—हे (बभ्रो) प्रजा को पालन पोषण करने हारे ! (गावः) गौएं (तुभ्यं) तेरे लिये वा (तुभ्यं गावः) तेरी गौएं (अक्षितं) न नाश होने वाला (घृतं पयः दुदुह्रे) घी और दूध प्रदान करें और (तुभ्यं गावः) तेरी भूमियां (वर्षिष्ठे सानवि अधि) खूब वर्षण से युक्त उच्च स्थल पर (अक्षितम्) अन्न (दुदुह्रे) खूब उत्पन्न करें । अन्य पक्षों

में—वाणियें, ज्ञान अर्थात् प्रकाश से युक्त ज्ञान और इन्द्रियें सत्य अक्षय ज्ञान, सर्वश्रेष्ठ स्थान मूर्धा में उत्पन्न करे।

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (स्वायुधस्य) उत्तम शस्त्र अस्त्रादि सैन्य बल के और (सतः भुवनस्य पते) उत्तम, प्राप्त लोक के पालक! (वयम्) हम लोग (ते सखित्वम् उश्मसि) तेरे मित्र भाव की कामना करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३२]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद् गायत्री। ३—६ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) वीर्यवान्, ज्ञान का सम्पादन करने वाले, ब्रह्मचारी गण (मद-च्युतः) हर्षप्रद होकर (सुताः) विद्या और व्रत में निःष्णात हो कर (नः मघोनः) हम उत्तम धन वालों के पास (श्रवसे) अन्न धनादि प्राप्त करने के लिये (विदथे) यज्ञों में (प्र अक्रमुः) आदरपूर्वक प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञान रूप धनों के स्वामी गुरु जनों को शिष्य और राजाओं को वीरवत् ज्ञानोपार्जन और संग्राम के निमित्त प्राप्त हों।

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(आत्) और (ईम् हरिम्) इस मनोहर, ज्ञानोपार्जक विद्यार्थी, (इन्दुम्) स्नेहार्द्र एवं परिचर्या शील शश्रूषु को (त्रितस्य) विद्या-समुद्र के पारंगत विद्वान् पुरुष की (योषणः) प्रेमपूर्वक कही सेवनीय,

वाणियां (अद्रिभिः) मेघवत् उदार, सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाशक और अन्न के तुल्य नियम से सेवन करने योग्य वचनों से (इन्द्राय पीतये) आचार्य के ज्ञान-रस पान के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं।

'अद्रिः'—अद्रिरादृणात्यनेनापि वा अत्तेः स्यात्ते सोमाद इति विज्ञायते। निरु० ४।४॥ अदेर्वा औणादिकः क्रिन्।४।६५॥ यो अत्ति अदन्ति यत्रेति वा स अद्रिः। पर्वतो, मेघो, वृक्षः, सूर्यो वा। अद्यते इत्यद्रिः वनस्पत्यन्नादि।

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(आत्) और वह (यथा हंसः) जैसे हंस के समान विवेकी जन (गणं) जन समूह को और (विश्वस्य मतिम्) सब के ज्ञान वृद्धि को (अवीवशत्) अपने वश करता और चाहता है। वह (अत्यः न) अश्व के समान (गोभिः) वाणियों वत् जलधाराओं से (अज्यते) स्नात, अलंकृत और प्रकाशित होता है। (२) वह परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'हंस' है, वह विश्व की मति को अपने वश करता और वाणियों से प्रकट किया जाता है।

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! ज्ञानेच्छुक! तू (ऋतस्य योनिम् आ सीदन्) ज्ञान के आश्रय आचार्य को प्राप्त होता हुआ, (मृगः न तक्तः) सिंह के समान तेजस्वी वा शुद्ध चरित्र होकर (उभे अव चाकशत्) धर्म, अधर्म, इह और पर, लोकों को देखता हुआ (अर्षसि) आगे बढ़। (२) इसी प्रकार शासक धर्माध्यक्ष के पद पर विराज कर, सिंहवत् अभय होकर, सत्यानृत का विवेक करता हुआ न्याय करे।

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।
अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ ५ ॥

भा०—(योषा प्रियम् जारम् इव) स्त्री जिस प्रकार प्रिय, जीवन के संगी की स्तुति करती है उसी प्रकार (गावः) वाणियां और प्रजाएं उस की ही (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं और वह (हितम्) हितकारी पदार्थ को (आजिम् यथा) संग्रामवत् उत्साह से (अगन्) प्राप्त हो ।

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (अस्मे) हमें तू (द्युमत् यशः) कान्तियुक्त अन्न (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवानों को और (मह्यं च) मुझे (सनिम् मेधाम्) सेवन करने योग्य उत्तम बुद्धि (श्रवः उत) यश और ज्ञान (धेहि) प्रदान कर । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[३३]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री ॥ षड़्चं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

भा०—(महिषाः इव वनानि) अरने भैंसे जिस प्रकार वनों में प्रवेश करते और (अपां ऊर्मयः न) जलों के तरंग जिस प्रकार (अपां यन्ति) गम्भीर जलों के बीच गमन करते हैं । उसी प्रकार (विपश्चितः) विद्वान् (सोमासः) शासक जन (अपां) आप्त प्रजाओं के बीच (प्र यन्ति) आगे बढ़ते हैं । (२) अध्यात्म में—(सोमासः) जीव गण प्राणों के बीच जीवन यापन करते हैं ।

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (बभ्रवः) पालक पोषक जन (गोमन्तं वाजं) दूध रस से मिले अन्न को (ऋतस्य धारया) अन्न रस की धारा से (द्रोणानि अभि) पात्रों में (अक्षरन्) डालते हैं उसी प्रकार (बभ्रवः) बभ्रु अर्थात् काषाय वर्ण के उत्तम ज्ञानी, संन्यासी और (बभ्रवः) शिष्यों के पालक पोषक गुरु जन, (शुक्राः) शुद्ध कान्ति से युक्त होकर (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानमय वेद की वाणी से (गोमन्तं वाजं) वाणियों से युक्त ज्ञान को (द्रोणानि अभि) सत्पात्रों के प्रति (अक्षरन्) प्रवाहित करते हैं। इसी प्रकार तेजस्वी वीर जन वेद की व्यवस्था रूप धारा वा जल की धारा से भूमि के ऊपर उगे अन्न ऐश्वर्य को जैसे, वैसे (द्रोणानि अभि) क्षेत्रों को सेचते हैं।

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥

भा०—(सुताः) अभिषिक्त, दीक्षित जन (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद और आचार्य से ज्ञानोपार्जन के अर्थ और (वायवे) बलशाली पुरुष के योग्य एवं (वरुणाय) सब से वरण करने योग्य पद के लिये तथा (मरुद्भ्यः) शत्रुओं को मारने वाले वीर सैन्य बनने के लिये और (विष्णवे) व्यापक शासनकारी पद के लिये (सोमाः) उत्तम २ शासक, ज्ञानी, बलशाली व्यक्ति (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं। इन सब में विद्यादि गुणों में निष्णात व्यक्ति पदाभिषिक्त होने चाहियें।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(तिस्रः वाचः) तीनों वाणियें (उत् ईरते) उठती हैं, उच्चारण करते हैं और (गावः धेनवः इव मिमन्ति) विद्वानों की वाणियें और वीरों की धनुष की डोरियां ध्वनि करती हैं और (हरिः) मनोहर

ज्ञानी, दुःखहर वीर (कनिक्रदत् एति) शासन और अनुशासन करता हुआ आता है ।

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

भा०—(मातरः शिशुम् मर्मृज्यन्ते) माताएं जिस प्रकार छोटे बच्चे को स्वच्छ करती हैं उसी प्रकार (ऋतस्य मातरः) सत्य ज्ञान, वेद के जानने वाले विद्वान् जन (दिवः शिशुम्) ज्ञान के भीतर शासन करने योग्य शिष्य का (मर्मृज्यन्ते) निरन्तर परिष्कार करें और वे (यह्वः) महान् (ब्रह्मीः) ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली वेद-वाणियों का भी (अभि अनूषत) उसको उपदेश किया करें ।

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्य और सञ्चालन की महान् शक्ति के स्वामिन् ! तू (विश्वतः) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सहस्रिणः) संख्या में अपरिमित और हज़ारों सुखों के देने वाले (रायः) धन के प्राप्त करने के लिये (चतुरः समुद्रान् आ पवस्व) चारों समुद्रों को प्राप्त हो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[३४]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृद् गायत्री । ३, ५, ६ गायत्री ॥

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति ।
रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजस्वी, शत्रु पर द्रुत वेग से आक्रमण करने वाला वीर जन (ओजसा) बल-पराक्रम से (दृढा) दृढ़ दुर्गों को (रुजत्)

तोड़ता फोड़ता हुआ, जिस प्रकार (धारया सुवानः) वाणी द्वारा सैन्य को सञ्चालित करता हुआ (तना प्र अर्षति) नाना धनों को प्राप्त होता है उसी प्रकार (धारया सुवानः) धारा, एक रस रूप ज्ञान-धारा से परिष्कृत होकर बल से देहबन्धनों को तोड़ता हुआ योगी (तना हिन्वानः) व्यापक बलों को बढ़ाता हुआ उत्तम पद को प्राप्त होता है ।

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥

भा०—(सुतः) अभिषिक्त (सोमः) शासकवत् उत्पन्न हुआ जीव (इन्द्राय वायवे वरुणाय विष्णवे) परमैश्वर्यवान्, प्राणों के प्राण, सर्वश्रेष्ठ सर्वव्यापक प्रभु को प्राप्त करने के लिये और (मरुद्भ्यः) प्राणों और विद्वानों को वश करने और सेवा करने के लिये (अर्षति) आगे बढ़ता है ।

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

भा०—(वृषभिः यतम्) बलवान् पुरुषों से सम्बद्ध, (वृषाणम् सोमम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् शासक की (अद्रिभिः) नाना भोग साधनों से (सुन्वन्ति) सत्कार करते हैं और (शक्मना) शक्ति से उसके (पयः) बल वीर्य को (दुहन्ति) बढ़ाते और पूर्ण करते हैं ।

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

भा०—(त्रितस्य) सब से ऊपर के शासक के (इन्द्राय) परमेश्वर पद के लिये (मत्सरः) आनन्दप्रद, सब को सुख देने वाला, सर्वपोषक पुरुष ही (मर्ज्यः भुवत्) अभिषेक योग्य होता है । वह (हरिः) सर्व दुःखहारी पुरुष (रूपैः समज्यते) नाना रुचिकर पदार्थों से सुशोभित किया जाता है ।

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

भा०—और (पृश्नि-मातरः) वर्षा को करने वाले मेघ जिस प्रकार (ऋतस्य वि-तपं) तेज के विशेष सन्तापयुक्त सूर्य से भी (चारु प्रियतमं हविः दुहते) मानो उत्तम पुष्टिप्रद अन्न प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) विद्वान् राजनिर्माता जन, (ऋतस्य वि-तपं जनं) सत्य ज्ञान के लिये विशेष तपस्यावान् इस से (चारु प्रियतमं हविः) उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ।

समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।
धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—(एनम्) उस जिज्ञासु को (इमाः गिरः) ये वेद वाणियां (सस्रुतः) समान वेग से प्रवाहित होकर (अह्रुताः) अकुटिल, सरल रूप से (सम्-अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं । वह (वाश्रः) उत्तम स्वरवान् होकर उन (धेनूः अवीवशत्) वाणियों को अपने वश करे, उनका अच्छी प्रकार अभ्यास करे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३५]

प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४—६ गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) ऐश्वर्यों के देने वाले ! तू (यया धारया) जिस वाणी से (नः ज्योतिः) हमें प्रकाश (विदासि) प्राप्त कराता है उसी (धारया) धारण शक्ति और वाणी से (नः पृथुम् रयिम् आ पवस्व) हमें विशाल धन प्राप्त करा !

इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।
रायो धर्ता न ओजसा ॥ २ ॥

भा०—हे (समुद्रम् ईङ्खय) समुद्रों के समान अपार सैन्यों के सञ्चालक स्वामिन् ! हे (विश्वम्-एजय) विश्व के सञ्चालक प्रवर्त्तक प्रभो ! तू (धर्त्ता) सब का धारक पोषक और हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! आर्द्र स्नेहिन् ! तू (नः ओजसा) हमें बल पराक्रम से (रायः पवस्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर ।

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः ।
क्षरा णो अभि वार्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वया वीरेण) तुझ वीर सहायक से हे (वीरवः) वीरों के स्वामिन् ! हम (पृतन्यतः) सेना से संग्राम करने वाले शत्रुओं को (अभि स्याम) पराजित करें । तू (नः वार्यं अभि क्षर) हमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करा ।

प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः ।
व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) दयार्द्र, (ऋषिः) द्रष्टा (वाजसाः) ज्ञान और धनादि का न्यायानुसार देने वाला, (व्रता आयुधा) व्रतों, कर्मों, अन्नों और शस्त्र-अस्त्रों अथवा दण्डों को (विदानः) जानता और प्राप्त कराता हुआ (वाजं सिषासन्) ऐश्वर्य का विभाग करना चाहता हुआ (प्र इष्यति) सब को सन्मार्ग में चलावे ।

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।
सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥

भा०—हम (वाचम्-ईङ्खयम्) वाणी को देने वाले, आज्ञापक (जनस्य गोपतिम्) मनुष्यों के रक्षक भूमिपति, (पुनानं) सबको पवित्र करने वाले, राष्ट्र-शोधक दुष्ट नाशक (तं) उस (सोमं) शास्ता पुरुष

को (गीर्भिः वासयामसि) वाणियों से आच्छादित करें, उसकी खूब स्तुति करें। अथवा (गीर्भिः) वाणियों से पवित्र करने वाले विद्वान् को हम (वासयामसि) अपने में बसायें, उसकी रक्षा करें।

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः।
पुनानस्य प्रभूवसोः॥ ६॥ २५॥

भा०—(यस्य धर्मणः पते) जिस धर्मरक्षक, धनाध्यक्ष, (पुनानस्य) शासन के द्वारा पवित्रकारक, (प्रभू-वसोः) प्रचुर धनशाली और बहुतसी प्रजाओं के स्वामी के (व्रते) नियमों में (विश्वः जनः) समस्त जन (दाधार) अपने को पालित सुक्षित रखते हैं हम (तं वासयामसि) उस को सुरक्षित रक्खें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[३६]

प्रभूवसुर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री। २, ६ गायत्री। ३—५ निचृद् गायत्री॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः।
कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत्॥ १॥

भा०—(रथ्यः) रथ चलाने वाले अश्व के समान दृढ़ांग (सुतः) राज्याभिषिक्त पुरुष (पवित्रे) दुष्ट दमनकारी राष्ट्रशोधक पवित्र पद पर (चम्वोः) आजू-बाजू दोनों सेनाओं के ऊपर (असर्जि) नियत किया जाय। वह (वाजी) बलवान् पुरुष (कार्ष्मन्) संकर्षण, शत्रुपीड़न के कार्य में (नि अक्रमीत्) प्रयाण करे।

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति।
अभि कोशं मधुश्चुतम्॥ २॥

भा०—(सः) वह तू (वह्निः) कार्य वहन करने में समर्थ, (जागृविः) सदा कार्य में सावधान, (देव-वीः) सूर्यवत् कान्तिमान् सब

विद्वानों का प्रिय होकर हे (सोम) शास्तः ! (सः) वह तू (मधुश्चुतम् कोशं) जलप्रद मेघ के समान, सब को अन्न देने वाले कोश, खज़ाने रूप इस राष्ट्र को (अति अभि पवस्व) सब से बढ़कर प्राप्त कर ।

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूर्व्यः) पूर्ण ! सब से प्रथम पूज्य! हे (पवमान) पवित्र-कारक ! (सः) वह तू (नः) हमें (ज्योतींषि) नाना प्रकाश (वि रोचय) प्रकाशित कर और (नः) हमें (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल सम्पादन के लिये (हिनु) प्रेरित कर ।

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।
पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥

भा०—(ऋतायुभिः) सत्य और ऐश्वर्य की कामना करने वाले वीर पुरुषों द्वारा (गभस्त्योः) उनकी बाहुओं के (अव्यये वारे) अक्षीण और रक्षा करने वाले शत्रुवारक सैन्य के आश्रय पर (मृज्यमानः) अभिषिक्त हो और (शुम्भमानः) सुशोभित होकर (पवते) विराजता है ।

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (दाशुषे) आत्मसमर्पक जन के लोभ के लिये (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में उत्पन्न (विश्वा वसु पवताम्) समस्त धनों और बसने योग्य साधनों को स्वच्छ करे, प्राप्त करे और सुखदायी बनावे ।

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि ।
वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! हे (शवसः पते) बल के स्वामिन् ! तू (अश्वयुः गव्ययुः वीरयुः) अश्वों, गौवों और वीरों का स्वामी होकर

(दिवः पृष्ठम् आ रोहसि) भूमि के पालक के पद पर आकाश में सूर्यवत् उदय होता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३७]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४—६ निचृद् गायत्री ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (वृषा) समस्त सुखों का वर्षक (सोमः) सकल जगत् का उत्पादक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है । वह (देवयुः) उपासकों का स्वामी (रक्षांसि) सब विघ्नों और दुष्टों का (विघ्नन्) विनाश करने हारा होता है ।

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (विचक्षणः) विशेष रूप से देखने वाला, (हरिः) सर्वदुःखहारी, (योनिम् अभि कनिक्रदत्) विश्वरूप गृह को व्यापता हुआ (धर्णसिः) धारण करने वाला (पवित्रे अर्षति) पवित्र हृदय में भी प्रकाशित होता है ।

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजी) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का स्वामी, (दिवः रोचना) समस्त तेजोयुक्त सूर्यों को प्रकाशित करने वाला (पवमानः) सर्वव्यापक होकर (रक्षोहा) सब विघ्नों का नाश करने हारा (अव्ययम् वारम् वि धावति) अकान्तिमान्, वा वरण करने योग्य जीव को भी विशेष रूप से पवित्र करता है ।

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

भा०—(सः पवमानः) वह सर्वव्यापक (जामिभिः सह) उत्पन्न होने वाले बन्धुवत् जीवों के सहित, (त्रितस्य सानवि सूर्यम् अधि) तीनों लोकों के भी ऊपर के देश में स्थित सूर्य को भी अतिक्रमण करके स्वयं (अधि अरोचयत्) उससे भी अधिक प्रकाशमान है।

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः वृत्रहा) वह सब विघ्नों का नाशक, (वृषा) सब सुखों की वृष्टि करने वाला, सब से अधिक बलवान्, स्वयं (सुतः) सब से उपासित होकर (अदाभ्यः) अविनाशी, (वरिवोविद्) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला, (सोमः) सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक प्रभु (वाजम् इव असरत्) ज्ञान के समान बल, वेग का सञ्चार करता है।

स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति।
इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(सः) वह (देवः) सब को देने वाला, (कविना इषितः) स्थूल आवरणों को भेद कर गहराई में ज्ञान के द्वारा देखने वाले भक्त से चाहा जाकर (द्रोणानि अभि) पात्रों के समान सत्पात्रों को ही (अभि धावति) प्राप्त होता है। वह (इन्दुः) रस-सागर (इन्द्राय) इस जीव के लिये (मंहना) महान् है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३८]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६ निचृद् गायत्री। ३ गायत्री। ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः उ स्यः वृषाः) यह भी बलवान्, सुख-रसवर्षी मेघवत् धर्ममेघ होकर (रथः) रमणीय एवं रसस्वरूप होकर (अव्यः) अव्यय रूप से (वारेभिः) वरण करने योग्य रूपों से (अर्षति = वर्षति) परमानन्दों की वर्षा करता है और (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) सहस्रों ज्ञानों, बलों, ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है।

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये॥ २॥

भा०—(त्रितस्य योषणः) तीनों तापों से पार गये हुए इस साधक की (योषणः) योगज, स्नेहमयी भावनाएं (एतं हरिम्) उस भवभय-दुःखहारी (इन्दुम्) परमैश्वर्ययुक्त, स्नेह रस से भरे प्रभु को (इन्द्राय पीतये) इस तत्वदर्शी आत्मा के रक्षणार्थ पान अर्थात् पिपासा की तृप्ति के लिये (अद्रिभिः) मेघवत् ज्ञान-सुखप्रद उपायों से (हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं।

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भते॥ ३॥

भा०—(एतं त्यं) उस प्रसिद्ध परमेश्वर को (दश हरितः) आत्मा को दश प्राणों के समान और राजा को दश पारिषद्यों के समान ये दशों दिशाएं (अपस्युवः) कर्म प्रेरणा चाहती हुई (मर्मृज्यन्ते) अलंकृत करती हैं। (याभिः) जिन्हों से वह (मदाय शुम्भते) आनन्द-प्राप्ति के लिये वाणियों द्वारा शोभित किया जाता है।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति।
गच्छञ्जारो न योषितम्॥ ४॥

भा०—(योषितं गच्छन् जारः न) स्त्री के पास जाते हुए उसके यौवन व्यतीत करने वाले प्रिय पुरुष के समान और (विक्षु मानुषीषु) मनुष्य प्रजाओं में (श्येनः न) उत्तम आचारवान् पुरुष के समान (एषः

स्यः) वह प्रभु भी (श्येनः) शुद्ध, उत्तम ज्ञानी, (योषितं गच्छन् जारः) प्रकृति में व्यापक उसकी समावस्था को जीर्ण करने वाला प्रभु (विक्षु) प्रवेश योग्य समस्त विकृत लोकों में (सीदति) विराजता है ।

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (इन्दुः) इस समस्त संसार में रसवत् व्यापक होकर (वारम्) आवरण करने वाले प्राकृत जगत् के भीतर (आविशत्) प्रवेश किये है । (एषः स्यः) वह यह प्रभु (मद्यः) आनन्दमय, (रसः) रस स्वरूप होकर (दिवः शिशुः) सब सूर्यादि में व्यापक होकर (अव चष्टे) सब को देखता है ।

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(एषः स्यः) वह प्रभु (पीतये सुतः) पालन या रक्षा के निमित्त उपासित (हरिः) पापहारी (धर्णसिः) जगत् का धारक (प्रियम् योनिम् अभि) प्रिय स्थान, विश्व में (क्रन्दन् अर्षति) व्याप्त होकर प्राप्त है । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३६]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छंदः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री । २, ३, ५ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥

भा०—हे (बृहन्मते) महान् ज्ञान वाले ! महामते ! (प्रियेण धाम्ना) अति प्रिय मनोहर तेज से तू (आशुः) शीघ्रगामी होकर (यत्र

देवाः) जहां विद्वान् ज्ञानी जन (इति ब्रवन्) इस प्रकार सत्य २ उपदेश करते हैं वहां ही (परि अर्ष) तू भी जा पहुंच ।

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (अनिष्कृतं) अस्वच्छ अन्तःकरण को (परिष्कृण्वन्) खूब परिष्कृत, शुद्ध और गुणों से अलंकृत करके, (जनाय) जीव या जन्म लेने वाले प्राणि वर्ग के हितार्थ (इषः) उत्तम इच्छाओं और आज्ञाओं को (यातयन्) दूसरे के प्रति प्रेरित करता हुआ, (दिवः वृष्टिम्) आकाश से शीतल वृष्टि के समान (परि स्रवः) सुख, प्रेम की वर्षा कर ।

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥

भा०—(ओजसा) बल पराक्रम से (त्विषिं आ दधानः) कान्ति को धारण करता हुआ, (विचक्षाणः) विविध ज्ञानों का साक्षात् करता हुआ, (सुतः) स्वच्छ, परिष्कृत होकर (विरोचयन्) विशेष दीप्ति से चमकता हुआ, (पवित्रे) परम पवित्र धाम को (एति) प्राप्त होता है ।

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सः) यह वह परम तत्व है (यः) जो (दिवः परि) सूर्य से ऊपर वा समस्त कामनाओं से ऊपर (रघुयामा) लघु, प्रशस्त यम-नियमों का विधाता (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्र की तरंग के समान (पवित्रे) परम पावन प्रभु में (वि अक्षरत्) विश रूप से बह रहा है और निरन्तर उसी में मग्न होता जा रहा है ।

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

भा०—यह (सुतः) उपासित होकर (परावतः अथो अर्वावतः) दूर और पास सब स्थानों से (आविवासन्) प्रकट होता हुआ (इन्द्राय) जीव के लिये (मधु सिच्यते) मधु के समान उसके हृदय में सिक्त हो।

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—(समीचीनाः) सम भाव को प्राप्त, सर्वत्र समबुद्धि, समदर्शी पुरुष ही (हरिः) उस चित्तहारी भवभय-नाशन प्रभु की (अनूषत) स्तुति करते हैं और वे ही (अद्रिभिः हरिं हिन्वन्ति) शिला खण्डों से ओषधि रस के सूक्ष्म गुण के समान (अद्रिभिः) विद्वानों द्वारा (हिन्वन्ति) उसको बढ़ाते हैं। आप लोग ही (ऋतस्य योनिम् आ सीदत) सत्य, न्याय के भवन में विचारार्थ बैठें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४०]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—६ निचृद् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

भा०—(विचर्षणिः) ज्ञानों, लोकों का द्रष्टा (पुनानः) पवित्र करता हुआ वह (विश्वाः मृधः) सब हिंसाकारी, बाधक वृत्तियों का (अभि अक्रमीत्) आगे बढ़कर मुकाबला, साम्मुख्य करता है उसी (विप्रं) कर्मनिष्ठ विद्वान् ज्ञानी पुरुष को (धीतिभिः शुम्भन्ति) उत्तम स्तुतियों और कर्मों द्वारा सुशोभित करते हैं।

आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।
ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥

भा०—(अरुणः) तेजोमय, अप्रतिहत सामर्थ्य वाला (वृषा) बलवान्, सुखवर्षी, (सुतः) अति पवित्र, अभिषिक्तवत् स्वच्छ जीव (योनिम्

आश्रय रूप (इन्द्रम् आ रुहत्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त हो, उस तक चढ़ जावे और (सदसि) राजसभा में सभापति के समान उस (ध्रुवे) ध्रुव, निष्प्रकम्प, (सदसि) शरण योग्य परमेश्वर में (सीदति) स्थिति प्राप्त करे ।

नू नो र॒यिं म॒हामि॑न्दो॒ऽस्मभ्यं॑ सोम वि॒श्वतः॑ ।
आ प॑वस्व सह॒स्रिण॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) रसस्वरूप ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (नू) शीघ्र ही तू (विश्वतः) सब ओर से (महान्) बड़े भारी (सहस्रिणं) हज़ारों के स्वामी (रयिम्) सुखप्रद, दानशील, ऐश्वर्यवान् को (नः आ पवस्व) ऐश्वर्यवत् हमें प्राप्त करा ।

विश्वा॑ सोम पवमान द्यु॒म्नानी॑न्द॒वा भ॑र ।
वि॒दाः स॑ह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) व्यापक सर्वशक्तिमन् ! तू (विश्वा द्युम्नानि) समस्त ऐश्वर्य, बल (नः आ भर) हमें प्राप्त करा और (सहस्रिणीः इषः विदाः) सहस्रों संख्या से युक्त इच्छाओं को वा अन्नों को प्राप्त करा ।

स नः॑ पुना॒न आ भ॑र र॒यिं स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ।
ज॒रि॒तुर्व॑र्धया॒ गिरः॑ ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह तू (पुनानः) हमें प्राप्त होता हुआ (नः रयिं आ भर) हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा और (स्तोत्रे सुवीर्यम् आ भर) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता को उत्तम बल दे । (जरितुः गिरः वर्धय) स्तुति कर्त्ता की वाणियों को बढ़ा और अधिक बलवान् कर ।

पु॒ना॒न इ॑न्द॒वा भ॑र॒ सोम॑ द्वि॒बर्ह॑सं र॒यिम् ।
वृष॑न्निन्दो न उ॒क्थ्य॑म् ॥ ६ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे (सोम) जगत्-सञ्चालक ! वा

स्नेहवन्! तू (नः) हमें (द्वि-बर्हसम्) दोनों लोकों में बढ़ने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य प्रदान कर। हे (वृषन्) बलवन्! सुखवर्षिन्! तू (नः) हमारे (उक्थ्यम्) उत्तम वचन योग्य ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा। इति त्रिंशो वर्गः॥

[४१]

मेध्यातिथिर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ गायत्री। २ ककुम्मती गायत्री। ६ निचृद् गायत्री॥ षड्चं सूक्तम्॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥ १॥

भा०—(ये) जो (गावः) देह में इन्द्रिय, सूर्य में किरणों के समान (भूर्णयः) क्षिप्रगामी, जनों को पालनेवाले, (त्वेषाः) कान्तिमान्, तीक्ष्ण और (कृष्णाम् त्वचम् अप घ्नन्तः) काली त्वचा के समान आवरण रूप घोर अज्ञान-अन्धकार को दूर करते हुए (अयासः) गमनशील, परिव्राजक वा (अयासः) अनथक होकर (प्र अक्रमुः) आगे बढ़ें वा कार्य प्रारम्भ करें।

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम्।
साह्वांसो दस्युमव्रतम्॥ २॥

भा०—हम (अव्रतम् दस्युम्) कर्म, दीक्षा, नियमादि से रहित दुष्ट जन को (साह्वांसः) पराजित करते हुए (सुवितस्य) उत्तम सुखजनक कार्य के (सेतुम्) सेतुवत् पार उतारने वाले (दुराव्यम्) दुष्प्राप्य, उस रक्षक की (अति मनामहे) हम अति पूजा करते हैं। अथवा—(सुवितस्य सेतुम्) शुभ फल के प्रतिबन्धक, (दुराव्यम्) दुःखदायी, (अव्रतम् दस्युम् साह्वांसः) कर्महीन दुष्ट जन को पराजित करते हुए हम (अति मनामहे) उस को खूब स्तम्भन करें, या उस भगवान् की पूजा करें।

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(दिवि विद्युतः चरन्ति) आकाश में बिजुलियां चलती हैं और उस समय (वृष्टेः इवः स्वनः) वृष्टि के शब्द के समान (पवमानस्य शुष्मिणः) बलवान् पापशोधक उसका (स्वनः) शब्द (शृण्वे) सुन पड़ता है । साधक के (दिवि) मूर्धा स्थल में विद्युत की सी कान्तियां व्यापती हैं, अनाहत पटह के समान गर्जन अनायास सुनता है । वह स्वच्छ पवित्र आत्मा का ही शब्द होता है ।

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयाशील ! तू (सुतः) उपासित और अभिषिक्त होकर, (गोमत् अश्ववत् हिरण्यवत् महीम् इषं) गौ, अश्व, सुवर्ण से युक्त बड़े भारी अन्न और भूमि (आ पवस्व) प्रदान कर ।

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

भा०—(उषाः रश्मिभिः सूर्यः न) दिन को रश्मियों से सूर्य के समान तू (मही रोदसी) बड़े आकाश और भूमि दोनों को (आ पृण) पूर्ण कर, पालन कर। और हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टः ! तू (सः आ पवस्व) वह हमें प्राप्त हो ।

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

भा०—(रसा इव विष्टपम्) मेघ जिस प्रकार इस लोक को जल से व्यापता है उसी प्रकार हे (सोम) शुभ ऐश्वर्यदातः ! तू (नः) हमें (शर्मयन्त्या धारया) सुख देने वाली वाणी और पोषण सम्पदा से (विश्वतः) सब प्रकार से (सर) प्राप्त हो । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[४२]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद् गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् ।
वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥

भा०—(हरिः) सर्वसञ्चालक प्रभु (दिवः रोचना जनयन्) आकाश के समान तेजोयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करता है । वह (सूर्यम्) सूर्य को (अप्सु) अन्तरिक्ष में (जनयन्) उत्पन्न करता है । वह (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (गाः अपः वसानः) सब भूमियों को जल से आच्छादित करता है । वही सर्वत्र सब सुख प्रदान करता है ।

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
धारया पवते सुतः ॥ २ ॥

भा०—(एषः सुतः) वह समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला प्रभु (देवः) सब सुखों का दाता (प्रत्नेन) अनादि सिद्ध (मन्मना) ज्ञानमय वेद से (देवेभ्यः) सब ज्ञान के इच्छुक मनुष्यों के लिये (धारया परि पवते) वेदवाणी वा धारण-पोषणकारिणी शक्ति से ज्ञान प्रदान और पोषण करता है ।

वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये ।
सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥

भा०—(सहस्र-पाजसः) सहस्रों बलों वाले (सोमाः) ऐश्वर्यवान् राजा गण (वाज-सातये) ऐश्वर्य, संग्राम करने के लिये और (वावृधानाय तूर्वये) बढ़ते और हिंसाकारी वेगवान् संग्राम के लिये (पवन्ते) जाते हैं ।

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते ।
क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥

भा०—(प्रत्नम् पयः) सर्वश्रेष्ठ, पूर्व का बल वीर्य (दुहानः) पूर्ण करता हुआ (पवित्रे परि षिच्यते) राष्ट्र शोधन के कार्य में अभिषिक्त होता है। उसी प्रकार यह साधक भी 'प्रत्न' सनातन परम रस को पवित्र परब्रह्म में प्राप्त करता हुआ, वा अन्यों को प्रदान करता हुआ परिष्कृत होता है। वह (क्रन्दन्) स्तुति वा उपदेश करता हुआ (देवान् अजीजनत्) शुभ गुणों वा शिष्यों को उत्पन्न करता है।

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः।
सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥

भा०—(ऋतावृधः) सत्य ज्ञान से बढ़ने वाले (देवान्) ज्ञानाभिलाषी जनों के प्रति और (विश्वानि वार्या अभि) समस्त वरण करने योग्य पदों के प्रति (पुनानः सोमः) आदरपूर्वक पदाभिषिक्त होता हुआ विद्वान् पुरुष (अभि अर्षति) प्राप्त होता है।

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः।
पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोम) शासक! तू (नः बृहतीः इषः) बहुत अन्न, और सुख, वृष्टियां, उत्तम २ अभिलाषाएं (पवस्व) हमें प्रदान कर और (नः) हमें (गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत्) गौओं, वीरों, अश्वों, बलों, ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र (सुतः) स्वयं अभिषिक्त होकर प्राप्त करा। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[४३]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री। ३, ६ निचृद् गायत्री ॥

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः।
तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥

भा०—(अत्यः इव गोभिः) जिस प्रकार अश्व उत्तम २ गतियों से सुशोभित होता है उसी प्रकार (यः) जो प्रभु (मदाय) अति आनन्द सुख के लिये (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (गोभिः) वाणियों द्वारा (मृज्यते) परिष्कृत होता है (तं) उस को हम (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (वासयामसि) अलंकृत करें, उसे अपने हृदय में बसावें ।

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र एवं आत्मा के पालन के लिये वा बड़े ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (नः) हमारी (अवस्युवः) रक्षार्थी वा प्रीतियुक्त (गिरः) स्तुतियें (तं) उस (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त, स्नेहार्द्र को (पूर्वथा) पूर्ववत् (शुम्भन्ति) सुशोभित करती हैं !

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

भा०—(मेध्यातिथेः) यज्ञ में अतिथिवत् पूज्य (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (परिष्कृतः) सुशोभित (हर्यतः) कान्तियुक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुनानः याति) हमें पवित्र करता हुआ प्राप्त हो ।

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पावन ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (सुश्रियं रयिम् विद) उत्तम कान्तियुक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (सोम) सर्वप्रेरक ! तू (सहस्र-वर्चसम् रयिम् विद) सहस्रों तेजों वाले ऐश्वर्य हमें दे ।

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥

भा०—(वाजसृत् अत्यः) संग्राम में जाने वाले अश्व के समान तू (देवयुः) विद्वानों को चाहने वाला, (यत्) जब तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (इन्दुः) अति आह्लादजनक होकर (कनिक्रन्ति) शासन करता है तब (अति अक्षाः) सब से बढ़ जाता है।

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ ३३ ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे सोम ऐश्वर्यवन्! तू (गृणतः विप्रस्य) स्तुति करने वाले विद्वान् जन को (वाज-सातये) ऐश्वर्य देने और उसकी (वृधे) वृद्धि के लिये (पवस्व) प्राप्त हो उस पर सुखों की वर्षा कर और (सु-वीर्यम् रास्व) उत्तम बल दे। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः। इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः।

इति मीमांसातीर्थ–विद्यालङ्कारपदवीविभूषित–श्रीमत्पण्डितजयदेव-शर्मणा कृते ऋग्वेदालोकभाष्ये षष्ठोऽष्टकः समाप्तः॥

॥ ओ३म् ॥

सप्तमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(नवमे मण्डले द्वितीयेऽनुवाके)

[४४]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २—६ गायत्री ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अयास्यः) मुख्य प्राण रूप होकर (महे तने) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ऊर्मि न) तरंग के समान उत्साह को धारण करता हुआ, (नः देवान् अभि अर्षसि) तुझे चाहने वाले हमें तू प्राप्त हो ।

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥

भा०—वह (मती जुष्टः) उत्तम बुद्धि और वाणी द्वारा प्रेम से सेवित और (धिया हितः) कर्म से धारित, (कविः सोमः) कान्तदर्शी ऐश्वर्यवान्, सब का उत्पादक और शासक (परावति) दूर रह कर भी (विप्रस्य धारया) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष की वाणी द्वारा (हिन्वे) स्तुति किया जाता है ।

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।
सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह (देवेषु) विद्वानों में (जागृविः) सदा जागरणशील, मुख्य इन्द्रियों में मुख्य प्राण के समान (जागृविः) कभी भी आलस्ययुक्त न होकर (पवित्रे आ एति) पवित्र हृदय में प्रकट होता है, वह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा (सोमः) शास्ता होकर (याति) सर्वत्र जाता है ।

स नः॑ पवस्व वाज॒युश्च॑क्रा॒णश्चारु॑मध्व॒रम् ।
ब॒र्हिष्माँ॒ आ वि॑वासति ॥ ४ ॥

भा०—जो तू (वाजयुः) ऐश्वर्य और बल की कामना करता हुआ वा बल-ऐश्वर्य का स्वामी होकर (चारुम् अध्वरं चक्राणः) उत्तम यज्ञ को करता हुआ (बर्हिष्मान्) इस लोक का स्वामी होकर (आ विवासति) सर्वत्र रहता और कार्य कर रहा है (सः) वह तू (नः पवस्व) हमें प्राप्त हो, हमें सुख दे ।

स नो॒ भगा॑य वा॒यवे॒ विप्र॑वीरः स॒दावृ॑धः ।
सोमो॑ दे॒वेष्वा य॑मत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (विप्र-वीरः) विद्वान् मेधावी जनों के बीच वीर्यवान्, उनको भी उत्तम मार्ग में चलाने हारा (सोमः) शासक जन (देवेषु) प्राणों या इन्द्रियों में मुख्य प्राण वा आत्मा के तुल्य (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला होकर (नः) हमें (वायवे) वायुवत् बल और (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ यमत्) नियम व्यवस्था में बांधे ।

स नो॑ अ॒द्य वसु॑त्तये क्रतु॒विद् गा॑तु॒वित्त॑मः ।
वाजं॑ जेषि॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह तू (क्रतुवित्) कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने वाला और स्वयं (गातुवित्-तमः) वाणी, ज्ञान का सब से उत्तम ज्ञाता और मार्ग का उत्तम उपदेष्टा (नः अद्य) हमें आज (बृहत् श्रवः वाजं)

बड़ा भारी श्रवणीय ज्ञान, प्रसिद्धि, भोग्य धन (जेषि) जीत कर प्रदान कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

[४५]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ गायत्री । २ विराड् गायत्री । ६ निचृद् गायत्री ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (सः) वह तू (नृचक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा है । तू (देव-वीतये) 'देव' दानशील, विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करने के लिये और (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और (मदाय) हर्ष-आनन्द प्राप्त करने के लिये, (कं पवस्व) प्रजा पर सुख की वृष्टि कर ।

स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे ।
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (दूत्यं) दूत भाव अर्थात् ज्ञान-संदेश लाने वाले के कार्य को (अभि अर्ष) कर । (त्वम् नः) तू हम (सखिभ्यः) मित्रों के लाभार्थ और (इन्द्राय तोशसे) दुःख-नाशक ऐश्वर्य के प्राप्त कराने के लिये हमें (देवान्) विद्वान् दानशील पुरुषों तक (वरं तोशसे) उत्तम रीति से पहुंचा ।

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और (वयं) हम (त्वाम् अरुणं) तुझ तेजस्वी को

(कम् मदाय) हर्ष के लिये (गोभिः अञ्जमः) वाणियों द्वारा प्रकाशित करते हैं। तू (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के (दुरः) नाना द्वार (वि वृधि) खोल।

अत्यूं पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि।
इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) वह ऐश्वर्यवान् (देवेषु) इन्द्रियों में आत्मा के समान समस्त विद्वानों में स्वामीवत् रहता है। वह (वाजी) बलवान्, (यामनि) मार्ग चलने में (धुरम्) धुरा में अश्व के समान (पवित्रम्) पवित्र परमात्मा की ओर (अति अक्रमीत्) सब संकटों को लांघ कर पहुंच जाता है।

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम्।
इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥

भा०—(वने क्रीडन्तम्) सेवने योग्य प्राकृत जगत् में (क्रीडन्तं) अनायास जगत् का सञ्चालन करते हुए (इन्दुम्) उस ऐश्वर्यवान् को (सखायः) मित्र जन (नावा) वाणी द्वारा (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति गावें और उस (अति अविम्) परम रक्षक, सूर्य और पृथिवी से भी ऊपर, उनसे भी अधिक सर्व-रक्षक को वाणी द्वारा (अनूषत) स्तुति करें।

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे।
इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! (यया पीतः) तू जिससे प्रसन्न होकर (विचक्षसे स्तोत्रे) ज्ञानवान् स्तुतिकर्त्ता को (सुवीर्यं) उत्तम बल प्रदान करता है तू (तया धारया) उस धारा, वाणी से (पवस्व) हमें भी उत्तम ज्ञान-बल प्रदान कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४६]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६ निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१॥

भा०—वे (कृत्व्याः इव अत्यासः) कर्म कुशल, सधे सधाये अश्वों के समान (क्षरन्तः पर्वताः) झरते हुए बरसते हुए मेघों, वा झरते हुए, सोतों से जल प्रदान करते हुए, भूमियों को सेंचते, पोषते हुए पर्वतों के समान (वृधः) प्रजाओं की वृद्धि करने वाले जन (देव-वीतये) विद्वान् प्रजा जनों की रक्षार्थ (असृग्रन्) तैयार किये जावें ।

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥

भा०—(पित्र्यावती योषा इव) पालक पिता वाली कन्या जिस प्रकार (सोमा) ब्रह्मचारिणी वीर्यवता होकर (वायुम्) बलवान् वर को (परिष्कृता असृक्षत) अलंकृत होकर जाती है उसी प्रकार (इन्दवः) निष्णात शुद्ध (सोमाः) ब्रह्मचारी गण (परिष्कृतासः) अलंकृत, नव वस्त्र, क्षौर आदि से पवित्र होकर (वायुम् असृक्षत) ज्ञानी गुरु वा बलवान् सेनापति को प्राप्त होते हैं । (२) इसी प्रकार ज्ञानादिसम्पन्न जीव गण (वायुम्) जीवनों के जीवन, उस प्रभु को प्राप्त होते हैं ।

एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः ।
इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) बल वीर्य से युक्त, (इन्दवः) तेजस्वी, निष्णात (सुताः) अभिषिक्त, (प्रयस्वन्तः) विशेष यत्नशील जन, (चमू) सेना में नियुक्त होकर (कर्मभिः) अपने २ कर्मों से (इन्द्रं वर्धन्ति) शत्रुहन्ता सेनापति को बढ़ाते हैं ।

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना ।
गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तवान् , सिद्धहस्त, कुशल पण्डित जनो ! हे उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीरो ! आप लोग (आ धावत) आगे बढ़ो । अपने को पवित्र करो और (मन्थिना) शत्रुओं वा विघ्नों का मथन कर देने वाले गुरु वा सेनापति के साथ मिल कर (शुक्रा गृभ्णीत) बलों, वीर्यों और शुद्धाचारों, ज्ञानों तथा ऐश्वर्यों को ग्रहण करो । और (गोभिः मत्सरम् श्रीणीत) गोरस, दुग्ध से तृप्तिकारक अन्न मिला कर सेवन करो, वाणियों द्वारा आनन्दकंद भगवान् की स्तुति करो । (गोभिः) भूमियों द्वारा (मत्सरं) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करो ।

स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥

भा०—हे (धनञ्जय) ऐश्वर्य का विजय करने वाले ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (अस्मभ्यम्) हमें (महः राधसः प्रयन्ता) बड़े भारी धन का दाता और (गातुवित्) भूमि, ज्ञानोपदेश और मार्ग का बतलाने वाला होकर (पवस्व) हम पर कृपा कर ।

एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः ।
इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों शत्रुओं को उखाड़ देने वाली सेनाएं विवेकशील अज्ञान-निवर्त्तक दश अमात्य-प्रकृतिएं (एतं) इस (मर्ज्यं) अभिषेक योग्य (पवमानं) राज्य के कण्टकों के शोधन करने वाले (मदं) आनन्दकारक, (मत्सरं) प्रजा को प्रसन्न करने वाले, (एतं) इस पुरुष को (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त पद के लिये (मृजन्ति) परिष्कृत वा अभिषिक्त करती हैं । इति तृतीयो वर्गः ॥

[४७]

कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत। मन्दान उद्वृषायते ॥१॥

भा०—(अया सुकृत्यया) इस शुभ कर्म-प्रणाली वा प्रजा से (सोमः) वह विद्वान् प्रशास्ता पुरुष, (महः चित्) बहुत अधिक (अभि अवर्धत) बढ़ जाता है। और (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, अन्यों को भी प्रसन्न करता हुआ (उत् वृषायते) उत्तम पद पर होकर अधिक बलशाली हो जाता है। (२) उसी प्रकार (सु-कृत्यया सोमः) उत्तम कर्मकुशल गृहणी के साथ मिल कर नवयुवक भी बहुत उत्तम प्रजा से बढ़ता है और हर्षित होकर उसका प्रिय हो जाता है।

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा। ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२॥

भा०—(अस्य) इसके (दस्यु-तर्हणा) दुष्टों के नाश करने वाले, (कर्त्वा) करने योग्य कर्त्तव्य और (कृतानि इत्) किये कार्य भी (चेतन्ते) सब को विदित हो जाते हैं और वह (धृष्णुः) शत्रुधर्षक वीर पुरुष (ऋणा च चयते) धनों का भी संग्रह कर लेता है।

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्।
उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

भा०—(यत् अस्य) जब उसका (उक्थं जायते) वचन होता है (आत्) अनन्तर ही (अस्य) उसका (सोमः) सर्वशासक (इन्द्रियः) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य पद के योग्य (रसः) बल और (वज्रः) वीर्य (सहस्रसाः) सहस्रों का देने वा प्राप्त करने वाला (भुवत्) प्रकट होता है।

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

भा०—(यदी) जब वह (धियः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा (मर्मृज्यते) निरन्तर शुद्ध, अलंकृत, परिष्कृत स्वच्छ हो जाता है, तब वह (स्वयं) अपने आप (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, बुद्धिमान् होकर (वि-धर्त्तरि) विशेष धारण करने वाले पद पर विराजकर (विप्राय) विद्वान् गुरु जन के लिये (रत्नम् इच्छति) उत्तम धन देना चाहता है।

सिषासतूं रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥५॥४॥

भा०—(भरेषु) भरण पोषण करने योग्य, अधीन भृत्यों में से (जिग्युषाम्) विजयशील (वाजेषु) संग्रामों में (अर्वताम् इव) घोड़ों के लिये घास के समान जान लड़ा देने वालों के निमित्त तू (रयीणाम् सिषासतुः असि) ऐश्वर्यों, धनों, वेतनों का देने वाला है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४८]

कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ गायत्री । २—४ निचृद् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

भा०—(तं) उस (त्वा) तुझ को (महः दिवः सधस्थेषु) बड़े भारी नाना स्थानों में सूर्य के समान विशाल (दिवः) तेजस्वी, मूर्धन्य राजसभा के (सधस्थेषु) एकत्र स्थिति योग्य अधिवेशनों में (नृम्णानि) धनों वा नेता जनों से मनन करने योग्य कार्यों को (विभ्रतं) धारण करने वाले (चारुम् त्वा) कल्याणकारी तुझ को हम (सुकृत्यया) उत्तम कृत्यों द्वारा (नृम्णानि ईमहे) नाना धनों का याचना, प्रार्थना करते हैं ।

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

भा०—(संवृक्त-धृष्णुम्) धर्षण करने वाले शत्रुओं के मूलोच्छेदक, (उक्थ्यं) स्तुतियोग्य, (महामहिव्रतं) बड़े २ कर्म करने वाले, (मदम्)

आनन्दप्रद, (शतं पुरः) सैकड़ों गढ़ियों पर (रुरुक्षिणं) चढ़ने वाले तुझ से हम नाना ऐश्वर्य प्राप्त करें। (२) अध्यात्म—यह आत्मा क्रोधादि का नाशक, बड़ा व्रतपालक, सौ हृदय नाड़ियों में आरुढ, उनका वशयिता है, उसकी उपासना करें।

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः।
सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥

भा०—(अतः) इसलिये हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावन् ! (रयिम्) ऐश्वर्य रूप, (राजानम्) कान्तिमय (त्वा) तुझ को प्राप्त कर (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (अव्यथिः) विना पीड़ा के, आनन्द मग्न होकर (त्वा दिवः भरत्) तुझ से नाना ज्ञान, उत्तम कामनाएं प्राप्त करता है।

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वस्मै इत् स्वर्दृशे) सब प्रकार के सुखप्रद ज्ञानों का दर्शन करने के लिये, (साधारणं) सब के प्रति समान, (रजस्तुरम्) रजोभाव के नाशक, वा समस्त लोकों के सञ्चालक, (ऋतस्य गोपाम्) सत्य ज्ञान के रक्षक रूप तुझ को प्राप्त होकर (विः) ज्ञानी पुरुष (ऋतस्य भरत्) सत्य ज्ञान को धारण करता है। वा तुझ को ही अपने में धारण करता है।

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—(अध) और वह (विचर्षणिः) विश्व का द्रष्टा, (अभिष्टिकृद्) सब का अभीष्ट करने वाला, (इन्द्रियं हिन्वानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ, (ज्यायः महत्वम्) बड़े भारी महान् सामर्थ्य को (आनशे) प्राप्त है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४६]

कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पव॑स्व वृ॒ष्टिमा सु नो॒ऽपामू॒र्मिं दि॒वस्परि॑ ।
अ॒य॒क्ष्मा बृ॑ह॒तीरिषः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (नः) हमारे लिये ((दिवः) आकाश से (अपाम् ऊर्मिम्) जलों की तरङ्ग के समान (वृष्टिं सु आ परि पवस्व) सुखों की वृष्टि अच्छी प्रकार प्रदान कर । और हमें (बृहतीः) बहुत (अयक्ष्माः) रोगरहित (इषः) अन्न सम्पदाएं और (अयक्ष्माः इषः) कष्ट पीड़ा आदि से रहित कामनाएं (आ पवस्व) प्रदान कर ।

तया॑ पवस्व॒ धार॑या॒ यया॒ गाव॑ इ॒हाग॑म॑न् ।
जन्या॑स॒ उप॑ नो गृ॒हम् ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो ! स्वामिन् ! (यया) जिस (धारया) धारा से (जन्यासः गावः) सब मनुष्यों की हितकारिणी गौओं के समान सुखप्रद वाणियां (इह) इस लोक में (नः गृहम् उप अगमन्) हमारे घर में आती हैं (तया धारया नः पवस्व) हमें उसी धारा या वाणी से पवित्र कर, वा हमें सुख प्रदान कर ।

घृ॒तं प॑वस्व॒ धार॑या य॒ज्ञेषु॑ देव॒वीत॑मः ।
अ॒स्मभ्यं॑ वृ॒ष्टिमा प॑व ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (देव-वीतमः) किरणों से प्रकाशित सूर्य के समान अति कान्तियुक्त होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (धारया) धारा से (घृतं पवस्व) घृत प्रदान कर और (अस्मभ्यं वृष्टिम् आ पव) हमारे लिये उत्तम वृष्टि करा । इसी प्रकार तू (यज्ञेषु) सत्संगों में (धारया) वाणी से (घृतं पवस्व) तेजोवत् ज्ञान प्रकाश दे । और हम पर सुखों की वृष्टि कर ।

स नं ऊर्जे व्य१ व्ययं पवित्रं धाव धारया।
देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (धारया ऊर्जे) अन्न की वृद्धि के लिये जल धारावत् (धारया) वाणी से (नः ऊर्जे) हमारे बल की वृद्धि के लिये (अव्ययं पवित्रं वि धाव) अक्षय, पवित्र ज्ञान प्राप्त करा। जिसे (देवासः शृणवन् हि) श्रवण किया करें।

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्।
प्रत्नवद् रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—तू (प्रत्नवत्) पुरातन प्रभु के समान (रुचः रोचयन्) कान्तियों को प्रकाशित करता हुआ (पवमानः) पवित्र होता हुआ, (असिष्यदत्) वेग से गमन करे, और (रक्षांसि अप जंघनत्) दुष्ट पुरुषों का नाश करे। इति षष्ठो वर्गः ॥

[५०]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री। ३ निचृद् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! (ते शुष्मासः) तेरे नाना बल, सैन्य गण (उत् इरते) उठते हैं और (सिन्धोः ऊर्मेः इव स्वनः) सागर की तरङ्ग के समान तेरा शब्द ऊपर उठे। तू (वाणस्य पविम् चोदय) वेद वाणी के पवित्र ज्ञान का उपदेश कर। तू (वाणस्य पविम् चोदय) वाण के प्रेरक डोरी को चला। वा (वाणस्य) शत्रुहिंसक दल के (पविम्) बल को (चोदय) प्रेरित कर।

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यत्) जो तू (अव्ये) परम अव्यय, अविनाशी (सानवि) स्वरूप में वा प्रकृतिमय जगत् में (एषि) प्राप्त होता है तब (प्रसवे) इस जगत् के उत्पन्न हो जाने पर (मखस्युवः तिस्रः वाचः) यज्ञ प्रतिपादक तीनों वाणियां साम, ऋक्, यजु रूप (उत् ईरते) प्रकट होती हैं। (२) इसी प्रकार 'अव्य सानु' अर्थात् पृथ्वी के रक्षा के उच्च पद पर राजा आवे तो (प्रसवे) उसके उत्तमाभिषेक काल में यज्ञार्थ तीनों वेद वाणियों का उच्चारण हो।

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

भा०—(अव्यः वारे) पालक शक्ति के वरण करने योग्य सर्वोच्च पद पर विद्वान् जन (प्रियं हरिं) सर्वप्रिय, प्रजा के दुःखहारी (मधु-श्चुतम्) मधुर वचन के पालने वाले, (पवमानं) राज्य को पावन करने वाले पुरुष को (अद्रिभिः हिन्वन्ति) मेघवत् कलशों से सेंचते, स्नान कराते हैं।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति हर्षजनक ! हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (अर्कस्य) सूर्यवत्, तेजस्वी और अर्चनायोग्य, पूज्य (योनिम् आसदम्) पद को प्राप्त करने के लिये (धारया) वेदवाणी के द्वारा (पवित्रं आ पवस्व) अपना पवित्र करने वाला तेज, ज्ञान प्रकट कर, सब ओर बहा।

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य के उपभाग के लिये, हे (मदिन्तम) हर्षयुक्त ! तू (अक्तुभिः) गुणों वा ज्ञान

के प्रकाशक (गोभिः) वाणियों से (अञ्जानः) अभिप्राय को प्रकाशित करता हुआ वा रश्मियों से चमकता हुआ, (सः) वह तू (पवस्व) राष्ट्र को स्वच्छ पवित्र कर । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५१]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—५ निचृद् गायत्री ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के नाश को न चाहने वाले विद्वन् ! तू (अद्रिभिः) शस्त्र बलों या मेघ के समान कलशों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) बलवान् शासक को (पवित्रे आ सृज) पवित्र पद पर नियुक्त कर और उसे (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्य पद के उपभोग के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त एवं पवित्र कर ।

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

भा०—(वज्रिणे इन्द्राय) समस्त शक्ति, बल, शस्त्र सैन्यादि के स्वामी, ऐश्वर्य के मालिक, सब को अन्नादि वृत्ति देने वाले, राज्य पद के लिये (दिवः पीयूषम्) आकाश की शोभा को बढ़ाने वाले अमृत तुल्य सूर्य वा चन्द्र के तुल्य अति तेजस्वी, कान्तिमान् पृथ्वी निवासी प्रजा जन की वृद्धि करने वाले (सोमम्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, (मधुमत्तमम्) अति मधुर स्वभाव से युक्त पुरुष को (सुनोत) अभिषिक्त करो ।

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नुते ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! सुखों के वर्षक ! (पवमानस्य)

दानशील (मरुतः) जलवर्षी वायु के समान सुखों के वर्षणकारी, बलवान् (तव) तेरे (अन्धसः) अन्न और (मधोः) जल को (देवाः) सब मनुष्य (वि अश्नुते) विशेष रूप से प्राप्त करते और उपभोग करते हैं।

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषन्) उत्तम बलशालिन् ! उत्तम प्रबन्धक ! (त्वं हि) तू (सुतः) अभिषिक्त एवं ऐश्वर्य का स्वामी होकर (स्तोतारम्) तेरे गुणों की स्तुति करने वाले, तुझे अपना पूज्य स्वीकार करने वाले के (मदाय) सुख और (भूर्णये) पालन और (ऊतये) रक्षा के लिये उसे (वर्धयन्) बढ़ाता रह। और—

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष विवेक से सत्यासत्य को देखने हारे ! तु (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) अपनी वाणी और शक्ति द्वारा (पवित्रं) न्यायासन के पवित्र पद को (उत वाजं श्रवः) ऐश्वर्य बल और प्रसिद्ध को भी (अभि अर्ष) प्राप्त हो।

[५२]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री। २ गायत्री। २ गायत्री। ३, ५ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री ॥

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥

भा०—(द्युक्षः) तेजस्वी, (सनद्-रयिः) ऐश्वर्य का दान देने वाला, उदार पुरुष ही (नः) हमें (अन्धसा) अन्न के साथ २ (वाजं परि भरत्)

ऐश्वर्य और बल प्रदान करे। हे शासक! तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (सुवानः) शासन करता हुआ, वा वहां अभिषिक्त होकर (आ अर्ष) आदरपूर्वक आ।

तव॑ प्र॒त्नेभि॒रध्व॑भि॒रव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यः।
स॒हस्र॑धारो या॒त्तना॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (शास्तः) राष्ट्रजन! (तव) तेरा (प्रियः) प्यारा, (अव्यः) रक्षा कुशल जन (प्रत्नेभिः अध्वभिः) सदातन से चले आये मार्गों से (वारे) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पद पर (सहस्र-धारः) सहस्रों धाराओं से वर्षने वाले मेघ के समान, वा सहस्रों वाणियों का देने वाला वा सहस्र खड्ग-धाराओं का स्वामी होकर (तना) नाना ऐश्वर्य (यात्) प्राप्त करे।

च॒रुर्न यस्तमी॑ङ्खयेन्दो॒ न दान॑मीङ्खय। व॒धैर्व॑धस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे जलों से आर्द्र, अभेषेचनीय, जन! (यः चरुः न) जो उपभोग्य अन्न के समान सुखदायक है तू (तम् ईङ्खय) उसे हमें दे और तू (दानं न) दानशील को भी (ईङ्खय) प्रेरित कर और हे (वधस्नो) शत्रुवध के अनन्तर स्नान करने वाले! तू (वधैः) नाना शस्त्रों वा दण्डों के बल पर (ईंखय) राष्ट्र को सञ्चालित कर।

नि शुष्म॑मिन्दवेषां पुरु॑हूत॒ जना॑नाम्।
यो अ॒स्माँ आ॒दिदे॑शति ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मान् आदिदेशति) हम पर अपना अधिकार चलाता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! वह तू है (पुरुहूत) बहुतों से स्वीकृत! तू (एषां जनानाम् शुष्मम्) इन मनुष्यों के बल को (नि ईंखय) अपने अधीन रख।

श॒तं न॑ इन्द ऊ॒तिभिः॑ स॒हस्रं॑ वा॒ शुची॑नाम्।
पव॑स्व मंहयद्र॑यिः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयार्द्र ! जलों से अभिषिक्त ! तू (मंहयद्-रयिः) ऐश्वर्यों को देने वाला होकर (ऊतिभिः) अपनी रक्षाओं से (शुचीनां शतं सहस्रं वा नः पवस्व) सौ वा सहस्र अपरिमित शुद्ध व्यवहारों को प्रवृत्त करा। उनको सदा शुद्ध बनाये रख। इति नवमो वर्गः॥

[५३]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शस्त्रों के वर्षा करने वाले मेघवत् पराक्रमी सैन्यों के स्वामिन् ! (ते शुष्मासः) तेरे बल (रक्षः भिन्दन्तः) दुष्टों को छिन्न-भिन्न करते हुए (उत् अस्थुः) उत्तम पद पर स्थित होवें। और (याः) जो (परि-स्पृधः) स्पर्धा करने वाले शत्रुसैन्य हों उनको (नुदस्व) दूर कर।

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (रथ-सङ्गे) रथों वा रमणीय पदार्थों को प्राप्त करने और (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त, मैं (अया ओजसा) इस बल पराक्रम से (निजघ्निः) शत्रुओं का नाश करने और आगे बढ़ने वाला होकर (अबिभ्युषा हृदा) भयरहित चित्त से (स्तवै) तेरी स्तुति करता हूं और करूं।

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (पवमानस्य) शत्रुओं को उच्छेद करके राज्य

को निष्कण्टक करके अभिषिक्त होने वाले शासक के (व्रतानि) कार्य (दूढ्या) दुष्ट चित्त वाले जन से कभी (न दाधृषे) तिरस्कृत नहीं हो सकते। (यः त्वा पृतन्यति) जो तेरे प्रति सेना लेकर युद्ध करता है तू उस को पीड़ित कर।

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के लिये (मत्सरम्) हर्षयुक्त (इन्दुम्) अभिषेक योग्य, (हरिं) दुःखहारी (वाजिनं) बलवान्, (मदच्युतं) हर्षप्रद (तं) उस पुरुष को (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में नदियों पर स्थित महावृक्ष के समान (हिन्वन्ति) बढ़ावें। इति दशमो वर्गः॥

[५४]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

भा०—(अस्य) इस परम शास्ता की (प्रत्नाम् द्युतम् अनु) सनातन से चली आई कान्ति, ज्ञान-दीप्ति वा तेजस्विता को अनुकरण करके (अह्रयः) विद्वान् विवेचक लोग (सहस्रसाम् ऋषिम्) सहस्रों अपरिमित मन्त्रों का ज्ञान देने वाले (ऋषिम्) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् से (शुक्रं पयः दुदुह्रे) शुद्ध कान्तियुक्त दुग्धवत् ज्ञान को प्राप्त करें।

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

भा०—(सूर्यः इव) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अयं) यह (उपदृग्) प्रजा के व्यवहारों को समीपस्थ के समान सूक्ष्मता से देखने वाला

हो। (सरांसि) जल जिस प्रकार तालों में स्थिति पाता है और जिस प्रकार चन्द्र या सोम ओषधि अपर पक्ष के दिन रात्रियों में लुप्त हो जाता है उसी प्रकार (अयं) वह (सरांसि) उत्तम ज्ञानों और बलों को (धावति) प्राप्त हो और उनको स्वच्छ करे और (दिवम् आ) तेज को प्राप्त होकर सूर्यवत् ही तू (सप्त प्रवतः) सातों प्रकृतियों को भी प्राप्त हो। सात प्रकृति, सात अमात्य।

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

भा०—(देवः सूर्यः न) तेजस्वी सूर्य के समान, (अयं सोमः) यह ईश्वर, सर्व जगत् का पालक, (विश्वानि भुवना पुनानः) समस्त लोकों को पवित्र करता हुआ, चलाता हुआ, सब के (उपरि तिष्ठति) ऊपर विराजता है। (२) इसी प्रकार तेजस्वी शासक भी सूर्यवत् सब के ऊपर विराजे।

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य पद की आकांक्षा करता हुआ, उसका स्वामी होकर (पुनानः) अभिषिक्त होकर (देव-वीतये) उत्तम मनुष्यों की रक्षा के लिये (गोमतः वाजान् नः परि अर्षसि) गो, भूमि आदि से युक्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा वा हमारे ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर। (२) इसी प्रकार (इन्द्रयुः) प्रभु आत्माओं का स्वामी है, वह शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये हमें समस्त ऐश्वर्य दे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[५५]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३, ४ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव।
सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अन्धसा) अन्न रूप से (पुष्टम्-पुष्टम्) खूब पुष्टि और (यवं-यवं) यव आदि अन्न और (विश्वा च सौभगा) सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य (परिस्रव) प्रदान कर।

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अन्धसः) तेरे प्राणधारक (तव) तेरी यथा (स्तवः) स्तुति है और (यथा ते जातम्) जैसा तेरा स्वभाव है, वैसा ही तू (प्रिये बर्हिषि) प्रिय आसन (प्रतिष्ठा) पर (नि सदः) विराज।

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (मक्षूतमेभिः अहभिः) अति शीघ्र दिनों में ही तू (नः गोवित् अश्ववित्) गौओं और अश्वों का देने हारा हो, तू (अन्धसा पवस्व) अन्न से हम पर कृपा कर। अर्थात् अन्न दे।

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—(यः जिनाति) जो शत्रुओं का नाश करता है और (शत्रुम् अभीत्य) शत्रु पर आक्रमण करके (न जीयते) स्वयं नाश नहीं होता (सः) वह तू (सहस्रजित्) अपरिमित धनों का जेता होकर (पवस्व) हमें भी ऐश्वर्य प्रदान कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

[५६]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री। ४ यवमध्या गायत्री ॥

परि॒ सोम॑ ऋ॒तं बृ॒हदा॒शुः प॒वित्रे॑ अर्षति ।
वि॒घ्नन्रक्षां॑सि देव॒युः ॥ १ ॥

भा०—(रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टों को नाश करता हुआ (देवयुः) विद्वानों को चाहता हुआ (सोमः) शासक पुरुष (आशुः) कार्य कुशल होकर (पवित्रे) पवित्र पद पर स्थित होकर (ऋतं बृहत्) बहुत अन्न, धन, ज्ञान (परि अर्षति) प्राप्त करता और कराता है ।

यत्सोमो॒ वाज॒मर्ष॑ति श॒तं धारा॑ अप॒स्युवः॑ ।
इन्द्र॑स्य स॒ख्यमा॑वि॒शन् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जब (शतं) सौ, अनेक (अपस्युवः) कर्मकुशल (धाराः) वाणियां वा धारक जन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के (सख्यम् आविशन्) मित्र भाव को प्राप्त होते हैं तब भी (सोमः वाजम् अर्षति) वह शासक बल और अन्न प्राप्त करता है ।

अ॒भि त्वा॒ योष॑णो॒ दश॑ जा॒रं न क॒न्या॑नूषत ।
मृ॒ज्यसे॑ सोम सा॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य! ऐश्वर्यवन् ! शक्तिमन् ! (जारं न) स्तुति योग्य वा जीवन निभा देने वाले पुरुष को जिस प्रकार (कन्या) कन्या स्तुति करती है उसी प्रकार (दश योषणः) दश प्रीतियुक्त प्रजाएं (जारं) शत्रु नाशक तुझ को लक्ष्य कर (अनूषत) स्तुति करती हैं। तू (सातये) धन लाभ और न्याय-वितरण के लिये (मृज्यसे) पद पर अभिषिक्त किया जाता है ।

त्वमिन्द्रा॑य॒ विष्ण॑वे स्वा॒दुरि॑न्दो॒ परि॑ स्रव ।
नॄन्त्स्तो॒तॄन्पा॒ह्यंह॑सः ॥ ४ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (विष्णवे) व्यापक, शक्तिशाली पद के लिये (स्वादुः) उत्तम भोक्ता

के तुल्य (परिस्रव) प्राप्त हो और (स्तोतॄन् नॄन्) स्तुति करने वाले मनुष्यों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५७]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ ककुम्मती गायत्री ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—हे शासक ! स्वामिन् ! (दिवः वृष्टयः न) आकाश से पड़ने वाली वृष्टियां जिस प्रकार (वाजं प्र यन्ति) अन्न को प्राप्त होती और प्रदान करती हैं उसी प्रकार (असश्चतः ते) संगरहित तेरी (धाराः) वाणियां और पालक शक्तियां (सहस्रिणं वाजं अच्छ प्र यन्ति) सहस्रों ऐश्वर्य और बल प्राप्त करती या प्रदान करती हैं ।

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

भा०—(हरिः) प्रजा के चित्तों और दुःखों का हरने वाला (आयुधा) नाना शस्त्रों को (तुञ्जानः) शत्रुओं पर चलाता हुआ, (विश्वा काव्या) सब प्रकार के विद्वानों के कार्यों को (चक्षाणः) देखता हुआ, वा विद्वानों के उपदिष्ट ज्ञानों को प्रकाशित करता हुआ (प्रियाणि अभि अर्षति) सब प्रिय पदार्थों को प्राप्त करता, कराता है ।

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

भा०—(इभः राजा इव) राजा के समान निर्भय होकर (सु-व्रतः) उत्तम कर्म करने वाला, (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृजानः) अभिषिक्त और अलंकृत होता हुआ, (श्येनः न) सूर्यवत् उत्तम आचरणवान्

होकर (वसु सीदति) ऐश्वर्यों के बीच वा अभिषेक योग्य जलों के बीच विराजता है।

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि।
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयालो ! (दिवः उतो पृथिव्याः अधि) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (विश्वा वसु) सब ऐश्वर्यों को (नः) हमें (सः) यह, तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ वा स्वयं अभिषिक्त होकर (आ भर) प्रदान कर वा उन ऐश्वर्यों को हमें देता हुआ (आ भर) पोषण कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५८]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ४ गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

भा०—(सुतस्य) जल धाराओं से अभिषिक्त वा वाणी से स्तुति किये हुए, (अन्धसः) अन्नवत् परिपोषक स्वामी की (धारा) वाणी से (मन्दी) स्तुति करने वाला पुरुष भी (तरत्) सब पाप तर जाता है, और (सः) वह (धावति) उत्तम गति को प्राप्त होता है। (सः मन्दी) वह हर्ष आनन्दयुक्त होकर (तरत्) दुःखों से पार हो जाता है, (धावति) अपने को पापों से शुद्ध कर लेता है।

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः।
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

भा०—उस (अवसः) रक्षाकारी पुरुष की (उस्रा) ऊपर ले जाने वाली (देवी) सुख देने वाली वाणी (मर्त्तस्य) मनुष्य को (वसूनां

वेद) नाना धन प्राप्त कराती है। (मन्दी) स्तुतिशील (सः) वह (तरत्) सब दुःखों को पार कर जाता और (धावति) अपने को मल रहित कर लेता है।

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

भा०—(ध्वस्रयोः) दुःखों के नाश करने वाले और (पुरुषन्त्योः) बहुत ऐश्वर्य के देने वाले, आत्मा परमात्मा के हम (सहस्राणि) सहस्रों, अनेक ऐश्वर्य (आ दद्महे) प्राप्त करें। (सः मन्दी तरत् धावति) वह स्तुतिकर्त्ता आनन्द मग्न होकर सब पापों, दुःखों से तर जाता है, वह शुद्ध पवित्र हो जाता है।

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ १५ ॥

भा०—(ययोः) जिन उक्त दोनों के (त्रिंशतं सहस्राणि तना आ दद्महे) ३० सहस्र, ऐश्वर्य हम प्राप्त करते हैं वे ही स्तुति योग्य हैं। (सः मन्दी तरत्) वह स्तुति कर्त्ता भी पापों से मुक्त हो जाता है और (धावति) उस प्रभु को प्राप्त हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५६]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३, ४ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्।
प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) शासक! तू (गोजित् अश्वजित् विश्वजित्) गौ, अश्वों और विश्व का विजेता और (रण्य-जित्) रमणीय या रण से प्राप्त ऐश्वर्य का विजेता होकर हमें (प्रजावत् रत्नम् आभर) प्रजा वाला ऐश्वर्य प्राप्त करा।

पव॑स्वा॒द्भ्यो अदा॑भ्यः॒ पव॒स्वौष॑धीभ्यः ।
पव॑स्व धि॒षणा॑भ्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शासनकर्त्ता ! तू (अदाभ्यः) किसी से पीड़ित न होकर (अद्भयः) जलों से, (ओषधीभ्यः) औषधियों से और (धिषणाभ्यः) बुद्धियों से हमें (पवस्व) पवित्र कर ।

त्वं सो॑म॒ पव॑मानो॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता त॑र ।
क॒विः सी॑द॒ नि ब॒र्हिषि॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (त्वं पवमानः) स्वयं पवित्र वा दानशील होकर (विश्वानि दुरिता) समस्त बुरे कार्यों को (तर) पार कर । तू (कविः) कान्तदर्शी, मेधावी, बुद्धिमान् होकर (बर्हिषि) प्रजा पर उत्तमासन पर (नि सीद) विराज ।

पव॑मान॒ स्व॒र्वि॑दो॒ जाय॑मानोऽभवो म॒हान् ।
इन्दो॒ विश्वाँ॑ अ॒भीद॑सि ॥ ४ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषिक्त ! तू (जायमानः महान् अभवः) प्रकट होकर ही बड़ा हो जाता है । हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! तू (विश्वान् अभि इत् असि) सब को अपने वश करने हारा हो । इति षोडशो वर्गः ॥

[६०]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री ॥ ३ निचृदुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र गा॑य॒त्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिम् ।
इन्दुं॑ स॒हस्र॑चक्षसम् ॥ १ ॥

भा०—(पवमानं) सब को पवित्र करने हारे (सहस्र-चक्षसम्) सहस्रों आंखों वाले, (वि-चर्षणिम्) विशेष द्रष्टा (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (प्र गायत) खूब स्तुति करो ।

तं त्वा सहस्रचक्षसमथो सहस्रभर्णसम् ।
अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (सहस्र-चक्षसम्) हज़ारों चक्षुओं वाले और (सहस्रभर्णसम्) सहस्रों के पालक पोषक (वारम् अति) आवरण के पार विराजमान तुझ को (अपाविषुः) परिष्कृत करते हैं ।

अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति ।
इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥

भा०—(वारान्) आवरण रूप बाधक कारणों को पार करके (पवमानः) राष्ट्र को पवित्र, स्वच्छ करता हुआ स्वयं भी (कलशान् अभि धावति) अभिषेच्य जल से पूर्ण कलशों को प्राप्त करता है । वह (इन्द्रस्य हार्दि) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के हृदय-भाग में (आविशन्) प्रवेश करता है । अध्यात्म में सोम जीव पवित्र होता हुआ कोशों में प्रवेश कर आनन्दमय परमेश्वर में प्रवेश करता है

इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे ।
प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥ १७ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टा ! अध्यक्ष ! (इन्द्रस्य राधसे) अन्न दाता, भूमि को जोतने वाले प्रजा जन के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (शं पवस्व) शान्ति की स्थापना कर और (प्रजावत् रेतः) प्रजायुक्त वीर्य के समान प्रजा की वृद्धि करने वाले बल को (आ भर) धारण कर । तेरा तेजस्वी बल भी प्रजा का नाश न करके उसकी वृद्धि करे । इति सप्तदशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[६१]

अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२—२४, २६, ३० निचृद् गायत्री । २, ३, ६, ७, ६, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६—२८ गायत्री । ११, १६ विराड् गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अया वीती) इस नीति से, (परि स्रव) आगे बढ़, कार्य कर कि (ते यः) तेरा जो कोई भी (मदेषु) संग्रामों में (नवतीः नव अवाहन्) ९० × ९ अथवा ९० + ९ = ८१० वा ९९ शत्रु-नगरों को नाश कर सके। (२) अध्यात्म रस ऐसा बहे कि उसके आनन्द में जीव के ९९ वा ८१० नाडिगत वासना-बन्धन छिन्न हो जायं।

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम्।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

भा०—(इत्था-धिये) इस प्रकार की सत्य निश्चित बुद्धि और सत्य कर्म वाले (दिवः दासाय) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की सेवा करने वाले प्रजा जन के हितार्थ (सद्यः) शीघ्र ही (शम्बरम्) उसकी शान्ति के नाशक (अध) और (त्यं तुर्वशं यदुम्) अहिंसाशील एवं यत्नवान् मनुष्य को (सद्यः) शीघ्र ही वश में ला। और (सद्यः) शीघ्र ही (पुरः) उसकी नगरियों को छिन्न भिन्न कर। (२) इसी प्रकार वह प्रभु सत्य कर्म, सत्य बुद्धि के शान्तिनाशक विघ्न को दूर करके उसके बन्धनों को तोड़े।

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्वविद्) अश्वों के विज्ञान को जानने वाले और हे (इन्दो) वेग से जाने में कुशल विद्वन् ! तू (नः) हमें (अश्वम् परि क्षर) अश्व, बल दे। और तू (गोमत् हिरण्यवत्) पशु सुवर्णादि से युक्त धन प्राप्त करा। तू (सहस्रणीः इषः नः परि क्षर) सहस्रों अन्नसम्पदों सत्-इच्छाओं और सेनाओं को दे और सञ्चालित कर।

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः। सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक को प्राप्त होते हुए और (पवित्रम् अभि) परम पवित्र पद को लक्ष्य करके (उन्दतः) जल क्लिन्न होते हुए वा (पवित्रम् अभि) राष्ट्र के कण्टक शोधन के प्रति (अभि उन्दतः) प्रजा के प्रति दया भाव से आर्द्र हुए (ते सखित्वम् आ वृणीमहे) तेरे सख्य भाव को हम चाहते हैं ।

ये ते॑ प॒वित्र॑मू॒र्मयो॑ऽभि॒क्षर॑न्ति॒ धार॑या ।
तेभि॑र्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (ये) जो (ते ऊर्मयः) तेरे उत्साह-सम्पन्न युवा जन (ते) तेरी (धारया) उत्तम राष्ट्रधारक-पोषक वाणी से प्रेरित होकर (अभि क्षरन्ति) सब ओर जाते हैं (तेभिः) उनसे (नः मृडय) हमें सुखी कर । (२) परम प्रभु की आनन्द रस-धारा से आनन्द तरङ्गें हमें सदा सुखी करें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स नः॑ पु॒ना॒न आ भ॑र र॒यिं वी॒रव॑ती॒मिष॑म् ।
ईशा॑नः सोम वि॒श्वतः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! सब को नियम में चलाने हारे ! तू (विश्वतः ईशानः) सब प्रकार से सब जगत् का स्वामी, शासक है । (सः) वह तू (पुनानः) सुखों की वर्षा करता हुआ, (नः) हमें भी (वीरवतीम् इषम्) वीरों से युक्त अन्न, वृष्टि एवं (रयिम्) ऐश्वर्य भी (आ भर) प्राप्त करा ।

ए॒तमु॒ त्यं दश॒ क्षिपो॑ मृ॒जन्ति॒ सिन्धु॑मातरम् ।
समा॑दि॒त्येभि॑रख्यत ॥ ७ ॥

भा०—(एतम् उ त्यं) उस (सिन्धु-मातरम्) नदियों के उत्पादक माता महापर्वत या मेघ के समान अति उदार पुरुष को (दश क्षिपः) दसों प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषेक करती हैं । वह उस समय (आदित्येभिः)

१२ मासों से सूर्य के समान, १२ प्रकृतियों सहित (सम् अख्यत) दिखाई देता और शासन करता है।

समिन्द्रे॑णोत वा॒युना॑ सु॒त ए॑ति प॒वित्र॒ आ।
सं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(पवित्रे सुतः) पवित्र राज्यपद पर अभिषिक्त हुआ, युवराज, (इन्द्रेण, वायुना, सूर्यस्य रश्मिभिः सम् सम् आ एति) अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी, वायु के समान बलवान् और सूर्य की किरणों के समान जगत् के प्रकाश विद्वानों से संगत हो जाता है। इसी प्रकार (२) पवित्र परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होकर आत्मा भी विद्युत वायु, किरणों से संयुक्तवत् तेजस्वी बलवान्, ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है।

स नो॒ भगा॑य वा॒यवे॑ पू॒ष्णे प॑वस्व॒ मधु॑मान्।
चारु॑र्मि॒त्रे वरु॑णे च ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (भगाय) सुखकारक ऐश्वर्य के लिये (वायवे) वायुवत् बलवान्, प्राणदाता और (पूष्णे) पोषणकारक, अन्नदाता, भूमि के समान पूज्य पद प्राप्त करने के लिये (मधुमान्) अन्न, बल और हर्षयुक्त होकर (पवस्व) अभिषिक्त हो। और तू ही (मित्रे वरुणे च) स्नेही, रक्षकवत् और वरणाय श्रेष्ठ जनवत् सुखप्रद पद पर भी (चारुः) उत्तम रूप से प्राप्त हो।

उ॒च्चा ते॑ जा॒तमन्ध॑सो दि॒वि षद्भूम्या द॑दे।
उ॒ग्रं शर्म॒ महि॒ श्रवः॑ ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवि सत् अन्धसः जातम्) आकाश में विद्यमान अन्न के जलमय सूक्ष्म रूप को (भूमिः) पृथिवी, (उग्रं शर्म) प्रबल शान्तिदायक (महि श्रवः) बड़े भारी अन्न सम्पदा के रूप में (आ ददे) प्राप्त करती है उसी प्रकार हे (सोम) वार्यवन्! हे ऐश्वर्यवन्! हे सञ्चालक! (अन्धसः ते दिवि उच्चा जातम्) प्राणधारक तेरे राजसभा

आदि वा तेजो रूप में विद्यमान सर्वोपरि प्रकट हुए रूप को (भूमिः) यह भूमि (उग्रं शर्म) प्रबल शरण और (श्रवः) यश के स्वरूप में (आ ददे) प्राप्त करती है । यह राजा का प्रताप है कि भूमि पर शान्ति सुख और अन्न भोग सब को मिलता है । नहीं तो बलवान् निर्बलों को खा जायं और त्राहि २ हो जाय । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥

भा०—(अर्यः) अपने स्वामी के ही हम (एना विश्वानि मानुषाणां द्युम्नानि) इन समस्त मनुष्यों के धनों को (सिषासन्तः) विभक्त करते हुए (वनामहे) भोग करें । अर्थात् सब राष्ट्रवासी ऐश्वर्य भोगने में समान रूप से रहें ।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव॥१२॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज पद के लिये (यज्यवे) हमें एक संगति में मिलाने वाला और (वरुणाय) हम में से सर्वश्रेष्ठ, सर्व दुःखों के वारण करने वाला होने के लिये (मरुद्भ्यः) और वीर व्यवहारवान् पुरुषों के लिये (वरिवः वित्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला होकर (परि स्रव) हमें प्राप्त हो और हमें सुख प्रदान कर ।

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥

भा०—(जातम्) उत्तम गुणों से अलंकृत, (अप्तुरम्) प्रजाओं के सञ्चालक, (भगं) शत्रुओं के नाशक, (गोभिः परिष्कृतम्) वाणियों, उत्तम गुण-वचनों से अलंकृत वा सुशिक्षित, (इन्दुं) अभिषिक्त वा दयालु, ऐश्वर्यवान् स्नेही पुरुष को (देवाः) उत्तम सुख-ऐश्वर्यादि के अभिलाषी और

वार्त्तादि व्यवहारों में कुशल जन (उपो सु अयासिषुः) सुखपूर्वक उसकी शरणार्थ प्राप्त होते हैं।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रस्य) इन्द्र या राज्य पद के (हृदंसनिः) हृदय अर्थात् मर्मस्थल में व्यापकर उसको भोगने या प्राप्त करने वाला है (तम् इत्) उस को ही (नः गिरः) हमारी वाणियां (संशिश्वरीः इव वत्सं) दुधार गौवें जैसे बच्छे को बढ़ाती हैं उस प्रकार (वर्धन्तु) बढ़ावें। (२) उसी प्रकार जो प्रभु (इन्द्रस्य हृदंसनिः) इन्द्र जीव के हृदय पर वश करता है हमारी वाणियां उस प्रभु की स्तुतियां करती हैं।

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (नः गवे शम् अर्ष) हमारी गौ, वाणी, इन्द्रिय, पशु जन एवं भूमि के लिये शान्ति प्रदान कर। तू (नः) हमें (पिप्युषीम् इषम्) सदा बढ़ाने वाली अन्न-सम्पद् (धुक्षस्व) प्रदान कर, (उक्थ्यम् समुद्रम्) उत्तम प्रशंसा योग्य समुद्रवत् ज्ञान, दया, बल और गुण रत्नों के सागरवत् पुरुष को (वर्ध) बढ़ा। इति विंशो वर्गः ॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥

भा०—(पवमानः) व्यापक रूप से विद्यमान परमेश्वरीय जगद्-उत्पादक कारण तत्व जिस प्रकार (दिवः) आकाश में विद्यमान (वैश्वानरं तन्यतुम् बृहत् ज्योतिः अजीजनत्) सब के सञ्चालक यह विस्तृत ज्योति सूर्य अग्नि को उत्पन्न करता है उसी प्रकार राष्ट्र में यह (पवमानः) प्रजा के प्रति ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला वा पदाभिषिक्त जन (दिवः) इस भूमि पर (चित्रं) आश्चर्यजनक, (न) और (तन्यतुम्) विस्तृत और

(बृहत्) महान् (वैश्वानरं) समस्त मनुष्यों का आश्रय लेने योग्य (ज्योतिः) परम तेज को (अजीजनत्) प्रकट करता है ।

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥

भा०—(पवमानस्य) प्रजा के प्रति दया, स्नेह आदि से दान करते हुए (ते रसः) तेरा बल और हर्ष, (अदुच्छुनः) प्रजा को दुःखी न करने वाला तेरा (मदः) सर्वानन्दकारी हर्ष, (अव्यं) अक्षय वा परम रक्षक के योग्य तेरे (वारम्) शत्रुनिवारक रूप को (वि अर्षति) विविध प्रकार से प्राप्त करता है ।

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

भा०—हे (पवमान) जगत् वा राष्ट्र को पवित्र करने हारे ! (तव द्युमान् दक्षः) तेरा यह तेजोमय (दक्षः) ज्ञान है (तव रसः) तेरा यह बल ही (वि राजति) विशेष रूप से चमकता है, और तेरी ही यह (विश्वं ज्योतिः) समस्त ज्योति है जो (स्वः-दृशे) सत्य सुख को दर्शन कराने के लिये है ।

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१९॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! सबके सञ्चालक ! तू (देवा-वीः) उत्तम करप्रद प्रजा की रक्षा करने वाला (अघ-शंसहा) दूसरे के ऊपर पाप, हत्यादि करने की धमकी देने वाले को दण्ड देने हारा है । (यः ते) जो तेरा (मदः) सब को तृप्त, सन्तुष्ट और हर्षित करने वाला (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ और सब को शुभ, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा सामर्थ्य है तू (तेन) उस (अन्धसा) अन्न के समान पुष्टिकारक बल से (पवस्व) हमें प्राप्त हो ।

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—हे उत्तम शासक राजन् ! तू (अमित्रियं) शत्रु के (वृत्रं) बढ़ते बल को (जघ्निः) नाश करने वाला, (वाजं) ऐश्वर्य को (दिवे दिवे सस्निः) दिन प्रतिदिन शुद्ध करने वाला और (गो-साः उ) भूमि गौ आदि के देने वाला और (अश्व-साः असि) अश्वों का देने वाला स्वामी है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

भा०—हे उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (श्येनः न) श्येन के समान वा उत्तम आचारवान् पुरुष के तुल्य (योनिम् आ सीदन्) अपने स्थान को प्राप्त कर (सु-उपस्थाभिः धेनुभिः) सुख से उपस्थित होने वाली गो तुल्य भूमियों, प्रजाओं और वाणियों से (सं-मिश्लः) सब से मिलने हारा और (अरुषः) रोषरहित, दीप्तिमान् (भव) हो ।

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥ २२ ॥

भा०—(यः) जो तू (अपः वव्रिवांसं) जलों को रोक धरने वाले मेघ को सूर्य के समान (वृत्राय हन्तवे) शत्रु को नाश करने के लिये (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता तेजस्वी सैन्य को (आविथ) रखता है (सः) वह तू (पवस्व) अभिषिक्त हो और प्रजा पर सुख की वर्षा कर ।

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! अभिषिक्त ! हे (मीढ्वः) बल-वीर्यशालिन् ! (वयं सु-वीरासः) उत्तम बलवान्, विद्यावान्, पुत्रवान्,

प्राणवान् होकर (धना जयेम) धनों का विजय करें। तू (नः गिरः वर्ध) हम स्तुतिकर्त्ताओं को वा हमारी वाणियों को बढ़ा।

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! शासक! (त्वा-उतासः) तुझ से सुरक्षित रह कर (तव अवसा) तेरे ही रक्षा-बल से हम (आमुरः) अति मोह करने वाले भावों को वा चारों ओर से मार करने वाले शत्रुओं को (वन्वन्तः) विनाश करते हुए (स्याम) रहें। (व्रतेषु) हमारे उत्तम कामों में तू (जागृहि) जाग, सचेत होकर रह।

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—(सोमः) शासन करने के सामर्थ्य वाला पुरुष (इन्द्रस्य निष्कृतम् गच्छन्) दुष्टों के वध करने के अधिकार पद को प्राप्त करता हुआ (अराव्णः) अन्यों का अधिकार वा राजकर न देने वाले और (मृधः) प्रजा हिंसकों को (अप-घ्नन्) विनाश करता हुआ (पवते) राष्ट्र को दुष्टों से रहित कर स्वच्छ करता है।

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) शत्रु के प्रति द्रुत गति से जाने वाले! अभिषेक से आर्द्र! तू (नः) हमें (महः रायः आ भर) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करा। हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टकशोधन करने हारे! तू (मृधः जहि) हिंसकों का विनाश कर। तू (वीरवत् यशः रास्व) वीरों से युक्त यश, पुत्रों से युक्त अन्न और प्राणों से युक्त बल वीर्य हमें प्रदान कर।

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥

भा०—(यत्) जब (पुनानः) देहवत् राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ तू मानो (मखस्यसे) यज्ञ सम्पादन करता है (शतं चन ह्रुतः) सैकड़ों भी कुटिल पुरुष (राधः दित्सन्तं चन त्वा) धन प्रदान करना चाहते हुए तुझे (मा मिनन्) न नाश करें ।

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) अभिषिक्त होकर तू (पवस्व) पवित्र हो । तू (जने नः यशसः कृधि) मनुष्यों के बीच हमें यशस्वी बना और (विश्वाः द्विषः अप जहि) सब शत्रुओं को मार भगा ।

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दया से आर्द्र ! (अस्य तव) इस तेरे (सख्ये) मित्र भाव में रहकर (ते वयम्) वे हम लोग (उत्तमे द्युम्ने) उत्तम यश, बल और धन, अन्नादि प्राप्त करने के निमित्त (पृतन्यतः सासह्याम) संग्रामकारियों को वश करें ।

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—(या) जो (ते) तेरे (भीमानि) भयजनक (तिग्मानि आयुधानि) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र (धुर्वणे सन्ति) शत्रु को नाश करने के लिये हैं, उनसे (नः समस्य) हमारे सर्वस्व की (निदः रक्ष) निन्दक जन से रक्षा कर । इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[६२]

जमदग्निर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९ निचृद् गायत्री । २, ५, ११—१९, २१—२४, २७, ३० गायत्री । ३ ककुम्मती गायत्री । पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २०, २६ विराड् गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (आशवः) शीघ्रगामी, (इन्दवः) वीर पुरुष (विश्वानि सौभगा अभि) समस्त प्रकार के उत्तम २ ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (पवित्रं तिरः) राष्ट्र को स्वच्छ करने के उत्तम पद पर (अभि असृग्रम्) प्राप्त कराये जावें ।

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥

भा०—वे (दुरिता विघ्नन्तः) दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (वाजिनः) ज्ञान और बल से सम्पन्न, (अर्वते) अश्व के सदृश बलवान् नायक और (तोकाय) शत्रु हिंसक पुरुष के लिये (पुरु) बहुत से (सुगा) सुखजनक (तना) धनों को (कृण्वन्तः) उपार्जन करते हुए—

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—(गवे) भूमि के लिये (वरिवः कृण्वन्तः) उत्तम धन वा सेवा करते हुए (अस्मभ्यं) हमारे लिये (इलाम्) भूमि वा अन्नादि को (सं-यतम् कृण्वन्तः) उत्तम सुप्रबन्ध करते हुए (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति प्राप्त करते हैं ।

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(अंशुः गिरिष्ठाः अप्सु असावि) जिस प्रकार पर्वत में स्थित सोम लता जलों के आश्रय पर उत्पन्न होती है । वा जलों से सेचन किया जाकर सोम (मदाय) आनन्दप्रद होता है उसी प्रकार (अंशुः) तेजस्वी व्यापक बल वाला (दक्षः) बलवान् शत्रु को दग्ध करने हारा (गिरिष्ठाः) वाणी, आज्ञा देने के अधिकार पर स्थित पुरुष भी (मदाय) प्रजा के हर्ष

के लिये (असावि) शासक पद पर अभिषिक्त किया जाता है। वह (अप्सु) प्रजाओं के बीच में (अप्सु श्येनः न) अन्तरिक्ष में बाज़ के समान, (श्येनः) प्रशंसा योग्य आचरण वाला होकर (योनिम् आसदत्) अधिकार पद पर विराजे।

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(शुभ्रम् अन्धः) शुद्ध अन्न (देववातम्) सूर्य की किरणों से स्वच्छ होता है, जिस प्रकार (गावः) गौएं (पयोभिः) अपने दुग्धों से (शुभ्रम्) शुभ्र, श्वेत हुए (देववातम्) विद्वानों से प्राप्त अन्न को (स्वदन्ति) अधिक स्वादयुक्त कर देती हैं उसी प्रकार (अप्सु धूतः) जलों में परिष्कृत और (नृभिः सुतः) नायक पुरुषों से अभिषिक्त पुरुष भी सब को रुचिकर हो(गावः) ये भूमियां और वाणियें अपने (पयोभिः) अभिषेक जलों से उसे अधिक रुचिकर बनावें।

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय ।
मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥

भा०—(आत्) और (हेतारः अश्वं न) जिस प्रकार सारथी लोग अश्व को (अशूशुभन्) शोभित करते हैं उसी प्रकार (अमृताय) मृत्यु के भय को दूर करने के लिये और (सध-मादे) एक साथ मिल कर आनन्द-हर्ष लाभ करने के लिये (मध्वः रसं) ज्ञान के रस के समान ज्ञान के इस उपदेष्टा पुरुष को वा (मध्वः रसम्) शत्रु को पीड़न करने वाले बलवान् सैन्य वा सेनापति को भी (अशूशुभन्) अलंकार, मान-आदर से सुशोभित करते हैं। प्रजा गण परस्पर के हत्या, भय और परस्पर संग के सुखों को प्राप्त करने के लिये रक्षक राजा को नियत अवश्य करें।

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (ऊतये) प्रजा की रक्षा के लिये (याः) जो (ते) तेरी वाणियां (मधुश्चुतः) मधुर, सुख देने वाली (असृग्रम्) होती हैं (ताभिः) उनसे तू (पवित्रम्) पवित्र पद पर (आ असदः) विराज ।

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया ।

सीदन्योना वनेष्वा ॥ ८ ॥

भा०—तू (वनेषु) ऐश्वर्यों सैन्यादि दलों में (योना सीदन्) आसन या सभाभवन में विराज कर (अव्यया रोमाणि) रोमों के समान उच्छेद्य शत्रुओं को भी (तिरः) तिरस्कार करके (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य पद की रक्षा के लिये (सः त्वं) वह तू (अर्ष) आ, आगे बढ़ ।

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।

वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अंगिरोभ्यः) विद्वानों के लिये (स्वादिष्ठः) अति सुखदायक, उत्तम अन्न देने वाला, (वरिवोवित्) उत्तम धन प्राप्त कराने वाला होकर उनको (घृतं पयः) घी दुग्ध आदि (परि स्रव) प्रदान कर ।

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।

हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—(अयं) यह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा, (हितः) स्थापित होकर (पवमानः) अभिषेकवान् होकर (बृहत् आप्यं हिन्वानः) बहुत बड़े भारी 'आप्य' अर्थात् बन्धुभाव को बढ़ाता हुआ, (स चेतति) वह सबों से जाना जाय ।

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।

करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) बलवान् (वृष-व्रतः) प्रबन्ध के योग्य कर्म में नियुक्त पुरुष (पवमानः) राष्ट्र-पद को सुशोभित करता हुआ (अशस्तिहा) राज्य शासन के विपरीत शत्रुओं का नाश करने वाला (दाशुषे) करप्रद प्रजा जन के लिये (वसूनि करत्) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम शासक! तू (सहस्रिणं) अपरिमित, (गोमन्तं अश्विनम्) गौ, अश्वों से युक्त (पुरु-चन्द्रम् पुरु-स्पृहम्) बहुतों को आह्लाद देने वाले, बहुतों के चाहने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर।

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः।
उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥

भा०—(उरुगायः) विशाल वाणी वाले, स्तुत्य, (कवि-क्रतुः) सर्वाधिक प्रज्ञा और कर्म करने में कुशल, (एषः स्यः) वह यह (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृज्यमानः) सुभूषित होकर (परि षिच्यते) अभिषिक्त हो।

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः।
इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥

भा०—(सहस्रोतिः) सहस्रों रक्षा-साधनों से युक्त, (शत-मघः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला, (रजसः वि-मानः) लोकों का बनाने वा जानने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (मदः) आनन्दजनक प्रभु (इन्द्राय पवते) इस जीव के लिये समस्त आनन्द की धाराएं वर्षाता है। उसी प्रकार राजा भी प्रजा जन के लिये सदा सुखैश्वर्य प्रदान करे।

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते।
विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—(वसतौ इव विः) पक्षी जिस प्रकार अपने घोंसले में स्वभाव से ही आ जाता है उसी प्रकार (गिरा जातः स्तुतः) वाणी द्वारा 'प्रस्तुत' (इह जातः इन्दुः) यहां अधिकारी रूप से प्रकट हुआ वा (जातः) गुण क्रिया अभिजनादि में श्रेष्ठ (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् अभियुक्त पुरुष (इन्द्राय योनौ धीयते) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के पद पर स्थापित किया जाता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।
चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥

भा०—(नृभिः सुतः) नायक पुरुषों द्वारा अभिषिक्त (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ (सोमः) तेजस्वी अधिपति, (चमूषु) सेनाओं पर (शक्मना) अपनी शक्ति से (आ-सदम्) स्थिर रहने के लिये (वाजं इव) स्वयं बल की मूर्ति के समान (असरत्) विचरे अथवा (वाजमिव असरत्) जब निकले तब ऐसे द्वार से जैसे मानो युद्ध को जा रहा हो ।

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।
ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥

भा०—(ऋषीणां सप्त) मन्त्र देखने वाले सात विद्वान् जन (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों और कर्मों से (तं) उस शासक को (रथे) रथ में (यातवे) जाने के लिये अश्व के समान (यातवे) प्रजापीड़क के दमन के लिये (तं) उसको (त्रिपृष्ठे) तीन पीठों वाले और (त्रि-वन्धुरे) तीन बन्धनों से युक्त (रथे) रमणीय, सुदृढ़ राज्य पद पर (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं । राज्य के 'तीनपृष्ठ' अर्थात् पालक पोषक त्र्यवरापरिषत् तीन सदस्य, 'त्रि-वन्धुर'—धनबल, नीति वा प्रभु शक्ति, दण्डशक्ति और मन्त्रशक्ति । अध्यात्म में—'ऋषीणां सप्त' सात ऋषि सात प्राण, उसमें तीन पृष्ठ, तीन धातु-वात, पित्त, कफ, तीन बन्धन-शिर, कण्ठ वा

नाभि। विराट् देह में तीन पृष्ठ, तीन लोक, तीन बन्धन, तीन गुण, रथ विश्वा उसे योग द्वारा उपलब्ध करते हैं।

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे।
हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोतारः) अभिषेक करने वाले जनो! आप लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (धन-स्पृतम्) धन से पूर्ण, (आशुं) वेगवान्, कर्मकुशल, (हरिं) पुरुष को (आशुं हरिं वाजिनं) वेगवान्, रथ ढोने में समर्थ, बलवान् अश्व के समान (वाजाय यातवे) संग्राम में जाने के लिये वा संग्राम या बलैश्वर्य की वृद्धि के लिये और (यातवे) प्रजापीड़क को दण्डित करने के लिये (हिनोत) बढ़ाओ।

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥

भा०—(कलशं आ विशन्) कलश अर्थात् स्नान-जलों से पूर्ण घट के तुल्य प्रजाओं से पूर्ण राष्ट्र में (आ विशन्) प्रवेश करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त राजा, (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त राज्य-लक्ष्मियों को प्राप्त होता हुआ, (शूरः न) शूरवीर पुरुष के समान (गोषु) स्तुति वाणियों के बीच, वा भूमियों के ऊपर (तिष्ठति) विराजता है।

आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः।
देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (मदाय) आनन्द और तृप्ति या स्तुत्य कार्य के लिये (आ शवः देवाः) शीघ्र कर्मकुशल विद्वान् जन, (ते पयः) तेरे पोषक बल को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं, वह तुझे प्रदान करते हैं और वे (देवेभ्यः) वीरों और विद्वानों से (मधु दुहन्ति) तेरे लिये बल और ज्ञान का दोहन करें।

आ नः सोम पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।
देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (देवेभ्यः) देव, ज्ञानदाता, तत्व ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों से जिसने (देवश्रुत्-तमम्) देव, प्रभु की वेदवाणी का खूब श्रवण किया हुआ हो, और (मधुमत्-तमम्) जो अति मधुर वचन वाला हो ऐसे को (सोमं) उत्तम शासक रूप से (पवित्रे आ सृजत) निष्कण्टक राज्य के पवित्र पद पर नियुक्त करो ।

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

भा०—(मदिन्तमस्य धारया) अति अधिक स्तुत्य, सर्वोपरि शासक राजा की (धारया) वाणी या आज्ञा से (महे श्रवसे) बड़े भारी यश प्राप्त करने के लिये (एते गृणानाः) ये स्तुति किये जाने योग्य प्रस्तुत, (सोमाः) अन्य गौण शासक भी (असृक्षत) बनाये जावें । प्रधान पद के अधीन मुख्य कर्मचारियों का भी चुनाव प्रधान की आज्ञानुसार हो ।

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥

भा०—हे शासक ! तू (पुनानः) अभिषिक्त होकर (वीतये) अपने तेज की वृद्धि और उपभोग के लिये (गव्यानि नृम्णा) समस्त भूमि से उत्पन्न धनैश्वर्यों को (अभि अर्षसि) प्राप्त कर । तू (सनद्-वाजः) ऐश्वर्य प्राप्त करके (परि स्रव) आगे बढ़ या प्रजा जनों पर ऐश्वर्य की वर्षा कर ।

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

भा०—तू (जमदग्निना गृणानः) 'जमदग्नि' (जमत् = अग्नि) प्रज्वलित अग्नि रूप से स्तुति किया जाकर वा (जमद्-अग्निना) जो व्यक्ति अग्नियों को जलावे, अग्रणी नेताओं को प्रदीप्त करे उन्हें ज्ञान शौर्यादि गुणों

से अलंकृत करे वा अग्नि को अधिक वेगवान् करने में समर्थ ऐसे शिल्पज्ञ, विद्वान्, नीतिमान्, तेजस्वी पुरुष से (गृणानः) उपदेश प्राप्त करके हे शासक राजन्! तू (नः) हमारी (गोमतीः इषः) भूमियों वाली अन्न-सम्पदाएं अथवा (गोमतीः इषः) वाणियों से युक्त इच्छाएं, अथवा 'गौ' अश्वों से युक्त सेनाएं और (विश्वाः परिष्टुभः) समस्त स्तुतियों और समस्त शत्रुहिंसक शक्तियों को (अर्ष) प्राप्त कर।

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः।

अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्य के स्वामिन्! राजन्! तू (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (चित्राभिः ऊतिभिः) आश्चर्यकारक ज्ञानों और विचारों से अपनी (वाचः पवस्व) वाणियों को स्वच्छ कर और (विश्वानि) समस्त प्रकार के विद्वानों के ज्ञानों और उनके उत्तम २ उपदेशों को (पवस्व) प्राप्त कर। इत्यष्टाविंशो व र्गः ॥

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्।

पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

भा०—हे (विश्वम्-एजय) समस्त संसार को कंपाने या सन्मार्ग में चलाने वाले प्रभो! राजन्! मेघ वा सूर्य जिस प्रकार (समुद्रियाः अपः) अन्तरिक्ष वा समुद्र के जलों को वायु द्वारा आकाश में उठाता और लोकों के प्रति बरसाता है उसी प्रकार मेघस्थ जलधाराओं के तुल्य तू (वाचः ईरयन्) लोकहितार्थ वाणियों को देता हुआ (पवस्व) प्रजा पर सुखों की वर्षा कर, राज्य को पवित्र कर।

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।

तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥

भा०—हे (कवे) मेधाविन्! विद्वन्! दूरदर्शिन्! सब को अतिक्रमण करने हारे! (तुभ्य महिम्ने) तेरे ही महान् सामर्थ्य को दर्शाने

और बढ़ाने के लिये हे (सोम) सर्वशासक! परमैश्वर्यवन्! (इमा भुवना तस्थिरे) ये समस्त लोक स्थिर हैं और (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (सिन्धवः) ये नद नदीवत् तीव्र वेग से जाने वाले सूर्यादि गण (अर्षन्ति) नियम से चल रहे हैं। इसी प्रकार राजा की महिमा को बढ़ाने के लिये सब अधीनस्थ हों और अश्व आदि उसी के लिये, उसी की आज्ञा में जावें आवें।

प्र ते॑ दि॒वो न वृ॒ष्टयो॒ धारा॒ यन्त्य॑स॒श्चतः॑।

अ॒भि शु॒क्रामु॑प॒स्तिर॑म् ॥ २८ ॥

भा०—(दिवः वृष्टयः न) आकाश से जल-वृष्टियें जिस प्रकार (शुक्राम् उप-स्तिरम्) जलमयी विस्तृत नदी को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (ते दिवः) तुझ तेजस्वी और (असश्चतः) असंग निःस्वार्थ पुरुष की (धाराः) वाणियां (शुक्राम्) तेजोयुक्त, बलशालिनी, (उप-स्तिरम्) समीप में विस्तृत वा विद्यमान बसी प्रजा वा खड़ी सेना को प्राप्त हों।

इन्द्रा॒येन्दुं॑ पुनीतनो॒ग्रं दक्षा॑य॒ साध॑नम्।

ई॒शा॒नं वी॒तिरा॑धसम् ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! आप लोग (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त (उग्रं) बलवान्, प्रचण्ड, वेगवान् (वीति-राधसम्) कान्ति, तेज एवं रक्षण सामर्थ्य, शक्ति के धनी, शक्ति से कार्य सिद्ध करने में समर्थ (साधनम्) शत्रु के वशकारी, (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त 'इन्द्र' पद के लिये (पुनीतन) अभिषिक्त करो।

पव॑मान ऋ॒तः क॒विः सोमः॑ प॒वित्र॒मास॑दत्।

दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषिक्त होता हुआ (ऋतः) तेजस्वी (कविः) ज्ञानवान्, सर्वोत्तम (सोमः) शासक (स्तोत्रे) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा

विद्वान् प्रजाजन के लिये, उनके लाभार्थ, अपने (सु-वीर्यम्) उत्तम बल या अधिकार को (दधत्) धारण करता हुआ (पवित्रम् आ असदत्) राज्य के पवित्र पद पर विराजे। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६३]

निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३० निचृद् गायत्री। ३, ७—११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री। ५, १३, १५ विराड् गायत्री। ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम्।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे सर्वशासक! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं) अपरिमित संख्या वाले (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर और (अस्मे श्रवांसि) हम में ज्ञान, यश और धन (धारय) धारण करा।

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः।
चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥

भा०—तू (मत्सरिन्तमः) समस्त प्रजा को अन्न, बल, धनादि से पूर्ण, तृप्त एवं सुप्रसन्न करने हारा होकर (इन्द्राय) शत्रुहन्ता सैन्य और समृद्ध वा भूमिकर्षक प्रजा जन के हितार्थ (इषम् ऊर्जं च) अन्न, बल और सैन्य को (पिन्वसे) बढ़ा, उसका पालन कर। तू (चमूषु) सेनाओं पर (आ निषीदसि) अध्यक्षवत् विराज।

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत्।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्राय विष्णवे वायवे) ऐश्वर्ययुक्त और व्यापक सामर्थ्य और (वायवे) वायुवत बलवान संघ के नेता और सेनापति-पद के लिये (सुतः

सोमः) अभिषिक्त होकर ही शासक (कलशे अक्षरत्) राष्ट्र में विचरे वा (अक्षरत्) अक्षर, अविनाशी स्थिर हो।

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः।
सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥

भा०—(एते बभ्रवः) ये बभ्रु वर्ण के, काषाय वस्त्र धारण करने वाले वा रक्त वर्ण के वा प्रजा को भरण पोषण करने में समर्थ, (सोमाः) वीर्यवान्, ऐश्वर्यवान् (ऋतस्य धारया) ज्ञान-ऐश्वर्य और जल की धारा से (ह्वरांसि) सब कुटिल भावों और कुटिल जनों को (अति) पार करके (आशवः) वेग से आगे बढ़ने वाले सजे अश्वों के समान (असृग्रम्) एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश करते हैं।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—वे (अप्तुरः) आप्त प्रजा जनों को सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए वा कर्म में शीघ्रकारी कुशल जन (इन्द्रम्) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् राज्य पद की (वर्धन्तः) वृद्धि करते हुए (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) समस्त विश्व को आर्य, श्रेष्ठ बनाते हुए और (अराव्णः) अदानशील, कर न देने वाले शत्रु जनों को (अप-घ्नन्तः) मार कर, दण्डित करके दूर भगाते हुए (अभि अर्षन्ति) आगे बढ़ते हैं। इति त्रिंशो वर्गः ॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः।
इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥ ६ ॥

भा०—वे (इन्दवः) स्वतः ऐश्वर्ययुक्त, (बभ्रवः) बभ्रु वर्ण वा प्रजा के भरण पोषण करने में समर्थ (सुताः) अभिषिक्त, विद्या-व्रतादि में निष्णात होकर (इन्द्रम् गच्छन्तः) ऐश्वर्य वा राज्यादि पद को प्राप्त होते हुए, (स्वम् रजः अनु) अपने धन, तेज और स्थान के अनुसार (अभि अर्षन्ति) आगे बढ़ें।

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

भा०—(यया) जिस वाणी या प्रजापोषक नीति से तू (मानुषीः अपः) मननशील आप्त प्रजाओं को (हिन्वानः) बढ़ाता और सन्मार्ग में चलाता हुआ, (सूर्यम् अरोचयः) सूर्य के तुल्य तेजस्वी पद को प्रकाशित करता है तू (अया धारया) इसी धारा, वाणी या नीति से (पवस्व) राष्ट्र को स्वच्छ कर ।

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥

भा०—वह (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पवमानः) पवित्र पद पर अभिषिक्त होकर (मनौ अधि) मनुष्य वर्ग के ऊपर (अन्तरिक्षेण यातवे) अन्तरिक्ष मार्ग अर्थात् सर्वोपरि मार्ग से जाने के लिये (एतशं) वेगयुक्त अश्व यान आदि को (अयुक्त) जोड़े । अथवा—(यातवे एतशं अयुक्त) 'यातु' प्रजापीड़क के नाश करने के लिये वह अश्व, रथ आदि के सैन्य को अन्तरिक्ष मार्ग से भी नियुक्त करे ।

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥

भा०—वह (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (इन्दुः) स्वयं दया भाव से युक्त और (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त प्रजा को ऐश्वर्य देने और शत्रु का नाश करने वाला होकर (इति) इस प्रकार से (ब्रुवन्) आदेश, उपदेश आदि करता हुआ, (यातवे) प्रयाण करने वा प्रजापीड़क का नाश करने के लिये, (त्या दश हरितः) उन दशों दिशावासिनी प्रजाओं को (अयुक्त) सन्मार्ग में चलावे, वा (दश हरितः एतशं अयुक्त) दशों दिशाओं में अश्व, रथ आदि भेजे ।

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे (गिरः) स्तोता, उपदेष्टा जनो ! आप लोग (इतः) इस आश्रम से आगे (वायवे) वायुवत् सर्वप्रिय, बलवान् पद और (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त होने के लिये, (सुतं मत्सरं) अभिषिक्त, स्नात, सब को हर्ष देने वाले इस व्यक्ति को, (अव्यः वारेषु) भूमि के शत्रुओं के वारण करने वाले वीरों के ऊपर, उनके बीच में वा भूमि के वरणीय पदार्थों या वरण करने वाले जनों के बीच में (परि सिञ्चत) सब ओर से वा सर्वोपरि अभिषिक्त करो । (२) इसी प्रकार (अव्यः वारेषु) भेड़ के बने कम्बलों में व्रत-पालक विद्यार्थी को स्नातक बनाओ । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे प्रभो ! राजन् ! तू (अस्मभ्यं) हमें (दुस्तरम्) दुस्तर, अपार (रयिम्) ऐश्वर्य, (विदाः) प्राप्त करा । (यः) जो (वनुष्यता) हिंसक शत्रु द्वारा (दूणाशः) नाश न हो सके । और—

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ १२ ॥

भा०—तू (सहस्रिणं अश्विनं) सहस्रों सुखों से युक्त, अश्वों और (गोमन्तं) गौओं से युक्त (रयिम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर । (उत) और ऐसा ही (वाजम् श्रवः अभि) ज्ञान, बल, कीर्त्ति भी प्राप्त करा ।

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः ।
दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥

भा०—(देवः सूर्यः न) प्रकाशमान सूर्य जिस प्रकार (अद्रिभिः) मेघों से (कलशे रसम् दधानः पवते) अन्तरिक्ष में जल को धारण करता

हुआ क्षरित होता है, बरसता है, उसी प्रकार (कलशे रसम् दधानः) कलश में जल रखकर (सुतः) अभिषिक्त (देवः) दानशील, तेजस्वी (सोमः) ऐश्वर्यवान् पदाभिषिक्त जन भी (अद्रिभिः पवते) शस्त्र-आदि बलों वा आदरणीय कार्यों से राष्ट्र को स्वच्छ करता है।

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य की किरणें तेज वा जल की धारा से उत्तम तेजों और भूमि के अन्न को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (एते) ये (शुक्राः) शुद्ध कान्तियुक्त, तेजस्वी, शीघ्र कार्यकारी पुरुष (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानयुक्त वेद वाणी द्वारा (आर्या धामानि) श्रेष्ठ धारण करने योग्य गुणों को (अक्षरन्) प्रवाहित करते और (गोमन्तं वाजं अक्षरन्) उसी वाणी द्वारा वाणी से युक्त ज्ञान और भूमि से युक्त अन्न-ऐश्वर्य को भी प्रवाहित करते हैं।

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः।
पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥ ३२ ॥

भा०—वे (सोमासाः) सौम्य स्वभावयुक्त, बलवान्, अभिषेक योग्य जन, (वज्रिणे इन्द्राय) बलशाली, ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (सुताः) नाना पदों पर अभिषिक्त होकर (दधि-आशिरः) धारण करने योग्य पद पर आश्रित होकर (पवित्रं) अन्यों को पवित्र स्वच्छ करने वाले पद को (अति अक्षरन्) खूब प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञानवान् आचार्य के शिष्य स्नातक होकर पवित्र वेद-ज्ञान को प्रवाहित करें। इति द्वात्रिंशो व र्गः ॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ।
मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो तू (देव-वीतमः) कान्तिमान् सूर्य के समान सबसे अधिक तेजस्वी, (मदः) हृष्ट पुष्ट है, वह तू हे (सोम) अभिषिक्त !

(मधुमत्तमः) मधुर अन्न, जल से तृप्त होने वाला, स्वयं मधुर ज्ञान से युक्त होकर (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र पद को प्राप्त हो ।

तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥

भा०—(नदीषु वाजिनम् हरिं आयवः मृजन्ति) नदियों में वेगवान् अन्यों को भी बहा ले जाने वाले जल को जिस प्रकार वस्त्रादि से स्वच्छ करते हैं वा जिस प्रकार नदीतटों पर उगे बलदायक ओषधि वर्ग को स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार (आयवः) उसको सब प्रकार से चाहने और प्राप्त होने वाले मनुष्य (नदीषु) प्रशंसा वचन कहने वाली और समृद्ध प्रजाओं के बीच (वाजिनं) बलवान् (हरिम्) प्रजा के दुःखहारी एवं मनोहर (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, दयार्द्र (मत्सरम्) हर्षदायक पुरुष को (इन्द्राय) परम-ऐश्वर्य साम्राज्य पद के लिये (मृजन्ति) शुद्ध, अभिषिक्त करते हैं ।

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (हिरण्यवत्, अश्ववत्, वीरवत्) सुवर्णादि धन, अश्वों और वीरों से युक्त (गोमन्तं वाजं) गवादि पशु-सम्पदा वाले ऐश्वर्य को (आ पवस्व) सब ओर से प्राप्त कर और (आ भर) हमें भी प्राप्त करा ।

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत ।
इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (इन्द्राय) परमेश्वर्य पद के लिये (अव्यः वारेषु) प्रजा के रक्षकवत् या भूमि के वरण करने योग्य उत्तम पदों या ऐश्वर्यों के ऊपर (वाजे न वाजयुम्) संग्राम के निमित्त जैसे संग्राम-कुशल

को अभिषिक्त किया जाता है उसी प्रकार (मधुमत्-तमम् परि सिञ्चत) सर्वोत्तम बल, अन्न, ज्ञान से युक्त पुरुष को ही अभिषिक्त करो।

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः।
वृषा कनिक्रदर्षति ॥ २० ॥ ३३ ॥

भा०—(अवस्यवः विप्राः) रक्षा, ज्ञान, स्नेह, समृद्धि आदि के चाहने वाले, विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष, (धीभिः) कर्मों, वचनों और बुद्धियों द्वारा (मर्ज्यं) अभिषेक करने योग्य (कविं) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष को (मृजन्ति) मार्जित या पदपर अभिषिक्त करते हैं। वह (वृषा) बलशाली, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष (कनिक्रदत्) गर्जते मेघ के समान प्रजा जनों पर (कनिक्रदत्) घोषणाएं और आज्ञाएं देता हुआ और विद्वान् परिव्राजक उपदेश देता हुआ (अर्षति) आता है और ऐश्वर्य, ज्ञानादि की वर्षा करता है। अध्यात्म में—सोम आत्मा को विद्वान् शोधते हैं वह धर्मनेघ रूप होकर आनन्द प्रदान करता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया।
मती विप्राः समस्वरन् ॥ २१ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् जन (वृषणं) बलवान्, सब सुखों के वर्षाने वाले, (सोमम्) सब के प्रेरक, सब के उत्पादक (अप्तुरम्) प्रजाओं, जीवों, प्राणों और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भी प्रेरक को (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानमय वेद की वाणी से और (मती) स्तुति से (सम् अस्वरन्) एक ही साथ स्वरपूर्वक स्तुति करते, उसी के गुणों का वर्णन करते हैं।

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ २२ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के देने वाले, तेजोमय ! (आयुषक् पवस्व) सब के प्राणों के प्राप्त कराने वाला, सब मनुष्यों को प्रेम से बांधने वाला

होकर तू प्राप्त हो (ते मदः इन्द्रम् गच्छतु) तेरा हर्ष और दमन-बल इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता को प्राप्त हो। तू (धर्मणा) अपने धारक बल से (वायुम् आ रोह) वायुवत् सर्वप्राणप्रद, बलशाली पद को आरूढ़ हो।

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्, विद्वन्! हे (पवमान) अन्यों को पवित्र करने वाले! तू (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य (रयिम्) धन को (नि तोषसे) निरन्तर बढ़ाता, कई गुणा करता है, तू (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (समुद्रम्) समुद्र के समान अपार ज्ञानसागर में प्रवेश कर।

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! ऐश्वर्यवन्, सन्मार्ग में प्रेरक! (मत्सरः) सब को हर्षित करने वाला (क्रतुवित्) सब को उत्तम ज्ञान देने वाला, एवं सत्कर्मों को जानने और ज्ञान कराने वाला होकर (मृधः अपघ्नन्) हिंसाकारिणी दुष्ट प्रवृत्तियों को नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है। तू (अदेवयुं जनं) देव, विद्वान्, प्रभु और सद् गुणों को न चाहने वाले जन को (नुदस्व) सन्मार्ग में प्रेरित कर।

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(पवमानाः) अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हुए, (शुक्रासः) शुद्ध कान्तियुक्त, जलवत् स्वच्छ (इन्दवः) दयार्द्र हृदय, (सोमाः) विद्वान् पुरुष (विश्वानि) समस्त (काव्या) विद्वानों के उचित

ज्ञानों और कार्यों को (अभि असृक्षत) सब प्रकार से प्रकट करें और उनका अनुष्ठान करें।

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानासः) वेग से गात करते हुए, वा राष्ट्र का शोधन करते हुए, (आशवः) वेगवान्, (शुभ्राः) शुभ्र, तेजस्वी, शुद्धा आचारवान्, आभरण आदि और गुणों से अलंकृत (इन्दवः) परम ऐश्वर्ययुक्त जन (विश्वाः द्विषः) समस्त द्वेष करने वाले, अप्रीति के योग्य जनों को (अप घ्नन्तः) दण्डित कर दूर करते हुए (असृग्रम्) प्रकट होते हैं।

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २७ ॥

भा०—(दिवः परि पवमानः) सूर्य या दूर आकाश से किरणों के तुल्य, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से वायुओं वा जलधाराओं के तुल्य, (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्तम ओषधि के समान, (सानवि अधि) उच्च उपभोग्य पद पर (परि असृक्षत) विद्वानों से उत्पन्न हों। वे (पवमानाः) सब को पवित्र दोषरहित करें।

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥

भा०—हे (सुक्रतो सोम) उत्तम काम करने वाले, शुभ, ज्ञानवान् विद्वन् ! (इन्दो) उस प्रभु के उपासक ! तू (धारया) वाणी द्वारा (स्रिधः अप जहि) द्वेषकारी हिंसा का नाश कर और (रक्षांसि अप जहि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को भी दूर कर।

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ २९ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वान् पुरुष ! हे शासक जन ! तू (रक्षसः अप घ्नन्) दुष्ट पुरुषों का नाश करता हुआ (कनिक्रदत्) निरन्तर वीरवत् गर्जता या घोषणा करता हुआ (द्युमन्तं) तेजोयुक्त (उत्तमं शुष्मम्) उत्तम बल (अभि अर्ष) स्वयं प्राप्त कर और हमें प्राप्त करा।

अ॒स्मे वसू॑नि धारय॒ सोम॑ दि॒व्यानि॒ पार्थि॑वा।
इन्दो॒ विश्वा॑नि॒ वार्या॑ ॥ ३० ॥ ३५ ॥

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! ऐश्वर्यवन् ! शत्रुसंतापक ! (सोम) हे शासक ! विद्वन् ! तू (अस्मे) हमारे लिये (दिव्यानि पार्थिवा) दिव्य और पार्थिव (विश्वानि वार्या) समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ (वसूनि धारय) नाना ऐश्वर्यों को धारण कर और हमें धारण करा। इति पञ्चत्रिंशो व ः॥

[६४]

काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, १२, १३, १५, १७, १९, २२, २४, २६ गायत्री । २, ५, ६, ८—११, १४, १६, २०, २३, २५, २९ निचृद् गायत्री । १८, २१, २७, २८ विराड् गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

वृषा॑ सोम द्यु॒माँ अ॑सि॒ वृषा॑ देव॒ वृष॑व्रतः।
वृषा॒ धर्मा॑णि दधिषे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शास्तः ! प्रभो ! तू (वृषा) बलवान्, उत्तम प्रबन्धक, मेघवत् सुखों, ऐश्वर्यों का वर्षक, क्षेत्रों का उत्तम सेचक, (द्युमान् असि) कान्तिमान्, तेजस्वी है। हे (देव) देव ! तू (वृषा) इस प्रकार वर्षणशील होकर (वृष-व्रतः) जल-वर्षक मेघ के समान नियम-पूर्वक कार्य करने में समर्थ हो। तू (वृषा) बलवान् होकर (धर्माणि दधिषे) सब धर्मों, राजनियम, व्यवस्थाओं को धारण करने में समर्थ है।

वृष्ण॑स्ते वृष्ण्यं॒ शवो॑ वृषा॒ वनं॒ वृषा॒ मदः॑ ।
स॒त्यं वृ॑ष॒न्वृषेद॑सि ॥ २ ॥

भा०—(ते वृष्ण्यः) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले तेरा (शवः वृष्ण्यं) ज्ञान और बल भी सुखों की वर्षा करने वाला है । (वनं वृषा) तेरा तेज और दान, ऐश्वर्य विभाग भी बलवान् सुखप्रद है । (मदः वृषा) तृप्तिदायक आनन्द भी प्रबल और सुखवर्षक है । हे (वृषन्) बलशालिन् (सत्यं वृषा इत् असि) तू सचमुच मेघवत् सुखों को वर्षाने वाला तथा बलवान् होने से 'वृषा' ही है ।

अश्वो॒ न च॑क्रदो॒ वृषा॒ सं गा इ॑न्दो॒ सम॑र्व॑तः ।
वि नो॑ रा॒ये दुरो॑ वृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अश्वः न चक्रदः) अश्व जिस प्रकार चक्र को धारण करता और राष्ट्र चक्र की रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी (चक्रदः) हमें उत्तम उपदेश कर । तू (वृषा) बलवान्, वीर्य धनैश्वर्य द्वारा सेचन में समर्थ होकर (गाः सं चक्रदः) गौओं को भूमियों और वाणियों का उपदेश प्रदान कर । (अर्वतः सं चक्रदः) अश्वों, शत्रुहिंसकों और विद्वानों पर भली प्रकार शासन कर । (नः राये दुरः वि वृधि) हमारे लिये धन प्राप्ति के द्वार खोल ।

असृ॑क्षत॒ प्र वा॒जिनो॑ ग॒व्या सोमा॑सो अश्व॒या ।
शु॒क्रासो॑ वीर॒याश॑वः ॥ ४ ॥

भा०—(वाजिनः) बलवान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान् पुरुषों को (गव्या) गौ, वाणी को प्राप्त करने और अन्यों को देने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे । (सोमासः अश्वया) बलवान् और धनवान् पुरुषों को (अश्वया) अश्व, सैन्य, राष्ट्र के प्राप्त करने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे और (वीरया) वीर पुत्र उत्पन्न करने के लिये (शुक्रासः) वीर्यवान् पुरुषों को तैयार किया जावे ।

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(ऋतायुभिः शुम्भमानाः) सत्य ज्ञान, वेद, तेज और न्याय, अधिकार आदि की प्राप्तियों या उनको चाहने वाले वा विद्वान् पुरुषों द्वारा सुशोभित होकर और (गभस्त्योः मृज्यमानाः) बाहुओं से परिमार्जित बाहु बल से परीक्षित होकर (अव्यये) न व्यय होने वाले, स्थायी (वारे) वरणीय पद या अधिकार पर (पवन्ते) प्राप्त हों । वा विद्वान् जन आविक (भेड़ की ऊन के) आसनों पर विराजें वा आविकप्राय वेश में शुशोभित हों । स्नातकों को भेड़ की ऊनों का दुशाला या चोला, भव्य वेश दिया जावे । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

भा०—(ते सोमाः) वे विद्वान् जन (विश्वा) सब प्रकार के (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष के (वसु) नाना ऐश्वर्यों को (दाशुषे पवन्ताम्) ज्ञानदाता गुरु को प्रदान करें ।

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्ववित्) समस्त ज्ञानों के जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, कराने वाले विद्वन् ! (पवमानस्य) प्राप्त होते हुए या ज्ञान प्रसार करते हुए तेरे (सर्गाः) ये नाना प्रकार के शिष्यादि सृष्टियें (सूर्यस्य रश्मयः इव न) सूर्य की किरणों के समान (प्र असृक्षत) उत्तम रीति से दूर २ तक फैले ।

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः परि केतुं कृण्वन्) दूर आकाश से जिस प्रकार

प्रकाश करता हुआ (रूपा अभि अर्षति) नाना रूपवान् पदार्थों को प्रकट करता है, उसी प्रकार तू भी (केतुं कृण्वन्) ज्ञान उपदेश करता हुआ, (दिवः परि) द्यौ, अर्थात् चतुर्थ आश्रम से सब के प्रति (रूपा अभि अर्षसि) सब रुचिकर ज्ञानों को प्राप्त हो। हे (सोम) विद्वन्! तू (समुद्रः) समुद्र के समान अगाध होकर (पिन्वसे) सब को तृप्त कर।

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) जगत् को पवित्र करते हुए वा देश से देशान्तर वायुवत् गमन करते हुए परिव्राजक विद्वन्! तू (विधर्मणि) विविध धर्मों को धारण करने वाले जन-समूह में (हिन्वानः) प्रार्थना किया जाकर (त्वम् इष्यसि) उत्तम वाणी को प्रकट कर और तू (देवः सूर्यः न) तेजोमय सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अक्रान्) क्रमण कर, देश देशान्तर भ्रमण कर।

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी, (चेतनः) ज्ञानवान्, देह में स्थित चेतन आत्मा के समान, (कवीनां प्रियः) विद्वान् जनों का प्रिय, उन्हें सुखी सन्तुष्ट करने वाला (पविष्ट) सब देश भर को पवित्र करता है और (रथीः अश्वम् इव) अश्व को रथी के समान (मती) मननपूर्वक बुद्धि से (अश्वम् सृजत्) अपने विषय के भोक्ता इन्द्रिय गण या अधीन जन को सञ्चालित करे।

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (ते) तेरा (ऊर्मिः) तरंग के समान ऊपर उठने वाला, उत्साहयुक्त उपदेश (देवावीः) ज्ञान की कामना

करने वाले जनों को प्राप्त होता, उनको बचाता या उनको प्रदीप्त करता है और (पवित्रे) पवित्र, स्वच्छ अन्तःकरण वाले जन के या सत्यासत्य विवेक के निमित्त (परि अक्षरत्) जल-धारा के समान प्रवाहित होता है, उस को तू (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य न्याय और ज्ञान के स्थान, धर्माध्यक्ष और गुरु के पद पर विराजता हुआ (अश्वं रथीः इव प्र असृजः) अश्व को रथी के समान विवेकपूर्वक प्रस्तुत कर ।

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषेक जल से आर्द्र, जनता के प्रति दयार्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (यः) जो तू (मदः) हर्षजनक (देव-वीतमः) मनुष्यों को चाहने वाला, सर्वप्रिय है (सः) वह तू (नः पवित्रे अर्ष) हमारे बीच सत्यासत्य विवेक करने के पद पर (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त, शत्रु वा दुष्टों और दोषों के दूर करने और (पीतये) जगत् वा प्रजा, शिष्यादि के पालन के लिये (अर्ष) आ ।

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) मेघवत् जल-धाराओं से आर्द्र ! हे अभिषिक्त जन ! तू (मनीषिभिः मृज्यमानः) बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुषों द्वारा (धारया) वेद वाणी एवं जल-धारा से निर्णीत एवं पदाभिषिक्त होकर (रुचा) कान्ति और अपनी सद् रुचि से (गाः अभि इहि) उत्तम वाणियों, स्तुतियों और भूमियों को भी प्राप्त कर ।

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (हरे) ज्ञान, दुःख आदि को दूर करने हारे ! हे (गिर्वणः)

वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ सूपड़े या छाज के समान (वरिवः ऊर्जं) अति श्रेष्ठ अन्न-धनवत् श्रेष्ठ निर्णय और बल (जनाय कृधि) जन के हितार्थ कर और इसी प्रकार (आशिरम्) सब ओर दुष्टों को दण्ड देने की व्यवस्था करता हुआ (वरिवः ऊर्जं कृधि) उत्तम धन और बल उत्पन्न कर ।

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।

द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ और (द्युतानः) तेजस्वी होता हुआ, (वाजिभिः यतः) बलवान् पुरुषों से सुप्रबद्ध होकर (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा के लिये (इन्द्रस्य निष्कृतम् याहि) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा के परम पद को प्राप्त हो। (२) अध्यात्म में मनुष्य अपने को पवित्र करता हुआ, तेजस्वी होकर, विद्वान् ज्ञानी पुरुषों द्वारा शिक्षित संयमी होकर, प्रभु की प्राप्ति के लिये गुरु या परमेश्वर की शरण जाय ।

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।

धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥

भा०—(इन्दवः) अभिषिक्त जन, (आशवः) शीघ्र कार्यकुशल, वेगवान्, अप्रमादी (हिन्वानासः) प्रेरित होकर (धिया जूताः) सत्कर्म और सद्-बुद्धि से सेवित होकर (समुद्रम्) समुद्र के समान गम्भीर और अगाध, ज्ञानप्रद गुरु वा प्रभु को (प्र असृक्षत) प्राप्त हों ।

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः ।

अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥

भा०—(मर्मृजानासः) अपने को पवित्र करते हुए (इन्दवः आयवः) अभिषिक्त, तेजस्वी जन (ऋतस्य योनिम्) सत्य ज्ञान, तेज

और न्याय के परम स्थान, (समुद्रम्) अगाध ज्ञानैश्वर्य के सागर, प्रभु को (वृथा आ अग्मन्) आनायास ही प्राप्त होते हैं।

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, (ओजसा) बल-पराक्रम द्वारा (नः) हमारे (विश्वा वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को तू (परि पाहि) प्राप्त कर और (नः) हमें (शर्मवत् परि पाहि) गृह के समान रक्षा कर और राजा प्रजा के जान और माल की रक्षा कर।

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (एतशः) शुद्ध ज्योतिर्मय (वह्निः) कार्य-भार को वहन करने वाला, (ऋक्वभिः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता एवं अर्चना और वेदमन्त्रों के प्रज्ञाता विद्वान् पुरुषों द्वारा (यत् समुद्रे प्र आहितः) जब समुद्रवत् अगाध, प्रभु के अधीन अच्छी प्रकार स्थापित किया जाता है तब तू (पदं युजानः) परम पद को समाहित, एकाग्र-चित्त से ध्यान करता हुआ उसको (मिमाति) भली प्रकार जान लेता है।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति।
जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—और (यत्) जब वह ज्ञानी, (आशुः) अप्रमादी होकर (हिरण्ययम्) अति हित और परम रमणीय (ऋतस्य योनिम् आ सीदति) परम सत्य सुख के आश्रयभूत प्रभु को प्राप्त कर लेता है तब वह सब (अप्रचेतसः) ज्ञानरहित काम, क्रोध, मोह आदि के भावों को (जहाति) छोड़ देता है। (२) इसी प्रकार जब विद्वान् ऋत, न्याय के तेजोयुक्त आसन पर विराजे तो वहां वह मूर्खों का त्याग करे। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।
मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥

भा०—(वेनाः अभि अनूषत) तेजस्वी, ज्ञानी, रक्षक पुरुष उसकी स्तुति करते हैं । (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उदार ज्ञानी जन ही (इयक्षन्ति) उसकी पूजा, सत्संग करते हैं । (अविचेतसः) विशेष ज्ञान से रहित मूर्ख, मिथ्या बुद्धि वाले जन डूब जाते हैं । (२) इसी प्रकार राजा को ज्ञानी जन उपदेश करें, वे ही संगति करें और मूर्ख नीचे गिरें ।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्दो) उत्तम लक्ष्य की ओर जाने हारे ! तू (ऋतस्य योनिम्) सत्य, परम तेज के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये स्वयं (मधुमत्-तमः) अति मधुर स्वभाव एवं उत्तम ज्ञानवान् होकर (मरुत्वते इन्द्राय) शिष्यों के स्वामी आचार्य और वायु आदि शक्तियों के स्वामी प्रभु और वीरों के स्वामी सेनापति को प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़ ।

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥

भा०—(वचः-विदः विप्राः) वेद-वचनों को जानने और अन्यों को प्राप्त कराने में कुशल (वेधसः) विद्वान् जन (तं त्वा परि-कृण्वन्तु) उस तुझ को सब प्रकार से परिष्कृत, अलंकृत करें, तुझे ज्ञानों और वाणियों द्वारा सुशोभित करें । (आयवः त्वा सं मृजन्ति) मनुष्य तुझ को अभिषिक्त करें ।

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! क्रान्तदर्शिन् ! (पवमानस्य) ज्ञानोपदेश

करने वाले (मरुतः) बलवान् (ते रसं) तेरे ज्ञानोपदेश, आज्ञा वचन को (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) शत्रु-नियन्ता न्यायकारी और (वरुणः) दुष्टों का वारक ये जन (पिबन्ति) रसपानवत् पान करते और उसका पालन करते हैं। (२) मुख्य राजा के नीचे उसकी आज्ञा को उसके मित्र वर्ग, न्यायविभाग का अध्यक्ष और पुलिस सेना का अध्यक्ष सब पालन करते हैं।

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि।
इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ, (सहस्र-भर्णसम्) सहस्रों को भरण पोषण करने वाली और (विपश्चितं) ज्ञान से परिष्कृत (वाचम् इष्यसि) वाणी का प्रयोग कर। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम्।
पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥

भा०—हे (सोम इन्दो) उत्तम ऐश्वर्यवान् शास्तः ! तू (पुनानः) राष्ट्र को कण्टक-शोधन द्वारा पवित्र, स्वच्छ, पापी दुष्ट जनों से रहित करता हुआ (सहस्र-भर्णसं) हजारों ज्ञानों, मन्त्रों को पालन करने वाली (मखस्युवम्) उत्तम यज्ञ के योग्य, धनप्रद (वाचम् आ भर) वाणी का प्रयोग कर।

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रार्थित ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (एषां जनानां प्रियः) इन सब मनुष्यों का प्रिय होकर (समुद्रम् आ विश) समुद्रवत् गम्भीर राष्ट्र के हृदय में अभिषेक-द्रोणी में प्रवेश कर।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ २८ ॥

भा०—(दविद्युतत्या रुचा) चमचमाती कान्ति से (परिस्तोभन्त्या कृपा) शत्रुओं का नाश करने वाली, सब को थामने वाली शक्ति से (सोमाः) शासक जन (शुक्राः) तेजस्वी (गवाशिरः) भूमि राष्ट्र के आश्रय और वाणी स्तुति के योग्य होता है।

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥

भा०—(हेतृभिः) अन्य शासक जनों से (हिन्वानः) प्रेरित, शासित होकर (यतः वाजी) संयत, नियमबद्ध व्रती होकर (वाजी) ज्ञानवान् बलवान् पुरुष वेगवान् अश्व के समान (वाजं आ अक्रमीत्) संग्राम में जावे। और (यथा) जैसे (वनुषः) हिंसक सैनिक (सीदन्तः) बैठते और रहते हैं उसी प्रकार वह भी सैनिक के समान सदा सन्नद्ध रहे।

ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥ ४१ ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) सब को अनुशासन करने वाले ! तू (स्वस्तये) कल्याण के लिये (ऋधक्) तेज, ज्ञान आदि से सम्पन्न एवं सब से असंग होकर (दिवः संजग्मानः) वानप्रस्थ से और आगे बढ़कर संन्यास में जाता हुआ (सूर्यः) आकाश में सूर्य के समान (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दृशे) अध्यात्म दर्शन करने और अन्यों के विवेक दर्शन के लिये (पवस्व) कदम बढ़ा। इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

[६५]

भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४—२६ गायत्री । २, ११, १४, १५, २६, ३० विराड् गायत्री । ३, ६—८, १६, २०, २७, २८ निचृद् गायत्री । ४, ५ पादनिचृद् गायत्री । १७, २३ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

भा०—(उस्रयः) एकत्र निवास करने वाली, (स्वसारः) बहनों के समान परस्पर प्रेम से रहने वाली, (जामयः) सन्तान उत्पन्न करने योग्य कन्याएं (महीयुवः) मान, सत्कार, आदर की आकांक्षा करती हुई, (महाम्) गुणों में महान् (इन्दुम्) चन्द्रवत् आह्लादक, हृदय में प्रेम युक्त, और ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पतिम्) पति रूप से (हिन्वन्ति) प्राप्त किया करें, उससे पति होने की प्रार्थना किया करें ।

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) आगे बढ़ने हारे ! सत्यासत्य विवेक करने हारे ! हे अभिषेक योग्य स्नातक ! विद्वन् ! तू (देवः) दानशील, तेजस्वी होकर (देवेभ्यः परि) सब अन्य मनुष्यों से ऊपर होकर (रुचारुचा) खूब तेज से (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (आ विश) प्राप्त कर ।

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेक प्राप्त ! तू (सुस्तुतिं आ पवस्व) उत्तम स्तुति प्राप्त कर। और (देवेभ्यः) विद्वानों का (दुवः) आदर-सत्कार, सेवा परिचर्या कर। और (इषे) उत्तम अभिलाषा, मनोकामना पूर्ण करने के लिये (संयतम्) उत्तम संयमयुक्त जीवन (आ पवस्व) व्यतीत कर।

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।
पवमान स्वाध्यः॥ ४॥

भा०—तू (भानुना) तेज से (वृषा हि असि) जलवर्षक मेघ के समान वीर्य सेचन में समर्थ वा सुखप्रद, बलवान् (असि) हो। (द्युमन्तं त्वा) तेजोयुक्त धन के स्वामी तुझ को हम हे (पवमान) पवित्र आचारवान् ! हे स्नातक ! (स्वाध्यः) सुखपूर्वक तेरा सत्कार और चिन्तन करते हुए (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं।

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध।
इहो ष्विन्दवा गहि॥ ५॥ १॥

भा०—हे (इन्दो) वीर्यवन् ! ऐश्वर्यवन् ! हे (सु-आयुध) उत्तम शस्त्र से शोभित ! तू (मन्दमानः) हर्षयुक्त होता हुआ (सु-वीर्यम् आ पवस्व) उत्तम वीर्य, तेज प्रदान कर। (इह आ गहि) इस आश्रम में आ। इति प्रथमो वर्गः॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे॥ ६॥

भा०—हे स्नातक ! गृहस्थ में प्रवेश करने हारे ! तू (यत्) जो (अद्भिः) आप्त जनों या जलों से (परि सिच्यसे) स्नान कराया जाता है और (गभस्त्योः मृज्यमानः) बाहुओं द्वारा मल २ कर स्वच्छ, मलरहित किया जाता है, या माता पिता गुरु आदि द्वारा, ज्ञानादि से परिष्कृत

किया जाता है, वह तू (द्रुणा) काष्ठ से बने रथ से गृह को प्राप्त हो या आसन द्वारा (सधस्थम् अश्नुषे) एक साथ समीप स्थिति प्राप्त कर।

प्र सोमा॑य व्यश्व॒वत्पव॑मानाय गायत।
म॒हे स॒हस्र॑चक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (पवमानाय) सत्यासत्य का विवेक करने वाले, विद्याओं तथा जलों द्वारा अभिषेक कराये जाने वाले (सहस्र-चक्षसे) अनेक ज्ञानों का दर्शन कराने वाले (महे) महान पूज्य (सोमाय) विद्वान् वरार्ह, वधू के अभिलाषी की (वि-अश्ववत्) विविध अश्वों वाले राजा, महारथी के तुल्य (प्र गायत) खूब स्तुति करो।

यस्य॒ वर्णं॑ मधु॒श्चुतं॒ हरिं॑ हि॒न्वन्त्यद्रि॑भिः।
इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (इन्दुम्) तेजस्वी, (मधुश्चुतम्) मधुर, सुखप्रद, (हरिम्) दुःखहारी, मनोहर (वर्णं) शत्रुवारक जन या सैन्य बल को (अद्रिभिः) नाना शस्त्रों से (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र वा राष्ट्र-पति पद के पालन के लिये बढ़ाते हैं—

तस्य॑ ते वा॒जिनो॑ व॒यं विश्वा॒ धना॑नि जि॒ग्युषः॑।
स॒खि॒त्वमा वृ॑णीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(तस्य वाजिनः) उस बलशाली (विश्वा धनानि जिग्युषः) समस्त धनों को जीतने वाले, (ते) तेरे हम (सखित्वम् आ वृणीमहे) मित्र भाव को स्वीकार करते हैं।

वृषा॑ पवस्व धार॑या म॒रुत्व॑ते च मत्स॒रः।
विश्वा॒ दधा॑न॒ ओज॑सा ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! हे बलशालिन्! (मत्सरः) सब को हर्ष देने वाला और (ओजसा) बल पराक्रम से देह में वीर्य

धातुवत् (विश्वा दधानः) राष्ट्र के सब अंगों का धारण पोषण करता हुआ, (मरुत्वते) प्राणोंवत् बलवान् और विद्वान् पुरुषों के स्वामी, राजा के कार्य के लिये (धारया पवस्व) उसकी आज्ञा से कार्य में प्रवृत्त हो। (२) देह में वीर्य, धारक-पोषक शक्ति से युक्त होकर देह में व्यापे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।

हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ ११ ॥

भा०—(ओण्योः धर्त्तारम्) आकाश और भूमि वा सूर्य और पृथिवी दोनों को धारण करने वाले (स्वः-दृशम्) ज्ञान प्रकाश को दिखाने वाले, या सब के द्रष्टा, (वाजिनम्) बलशाली, ऐश्वर्यवान् , ज्ञानी (तं त्वा) उस तुझ को (वाजेषु) संग्रामों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों के सम्पादन के लिये हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! (हिन्वे) प्रेरित करता हूं ।

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।

युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥

भा०—(अया) इस (विपा) बुद्धि से (चित्तः) ज्ञानवान् और (हरिः) उत्तम संशय-दुःखों का नाशक होकर (अया धारया) इस प्रकार की वाणी, शक्ति या धारा गति से (वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य और संग्रामादि के अवसर पर (युजं) नियुक्त अधीन पुरुष, सहयोगी साथी को भी अश्ववत् (चोदय) चला, प्रेरित कर ।

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।

अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! हे दयाशील ! हे जल-क्षरणशील मेघवत् शासक ! तू (विश्वदर्शतः) सब से देखने योग्य और सब को देखने वाला (महीम् इषं पवस्व) बड़ी भारी सेना वा शक्ति को

प्राप्त कर, उसको सञ्चालित कर। (२) हे मेघ वा वायो वा सूर्य! तू (इषं महीम् पवस्व) अन्न वा वृष्टि को भूमि की ओर प्रेरित कर।

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा।
एन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! (कलशाः) राष्ट्र के नाना भागों के प्रतिनिधि रूप जलों से पूर्ण कलश (आ अनूषत) सम्मुख ही स्तुति किये जाते हैं, तू उनकी (धाराभिः) धाराओं, शक्तियों से और (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से (इन्द्रस्य पीतये) इस मान राष्ट्र-ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आ विश) आसन पर आदरपूर्वक विराज। राज-भवन, सभा-भवन और राष्ट्र में प्रवेश कर।

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः।
स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (मद्यं) अति ह र्षकारी (तीव्रं) तीव्र वेगवान् (रसं) बल को लोग (अद्रिभिः दुहन्ति) मेघों से वृष्टि-जल के समान शत्रुओं से अभेद्य सैन्यों द्वारा प्राप्त करते हैं, (सः) वह तू (अभि-मातिहा) अभिमानी शत्रुओं का नाश करने वाला होकर (पवस्व) सत्यासत्य का विवेक कर। (२) अध्यात्म में—आत्मा का आनन्द-रस धर्ममेघों द्वारा दुहते हैं। वह आत्मा अस्मिता वाले इन्द्रियों का शासक है।

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥

भा०—(मनौ अधि पवमानः) मननशील मनुष्य समूह या राष्ट्र को स्तम्भित, व्यवस्थित करने वाले सैन्यबल के ऊपर सेनापति-पद पर आता हुआ (राजा) तेजस्वी पुरुष, राजा (मेधाभिः) पवित्र यज्ञ,

सत्संग आदि क्रियाओं, शत्रु हिंसक सेनाओं और उत्तम बुद्धियों सहित (ईयते) आगे बढ़ता और (अन्तरिक्षेण यातवे) आकाश-मार्ग से सूर्य के समान सर्वोपरि मार्ग से जाने के लिये समर्थ होता है।

आ न॑ इन्दो शत॒ग्विनं॒ गवां॒ पोषं॒ स्वश्व्य॑म् ।
वहा॒ भग॑त्तिमू॒तये॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतग्विनम्) सौ सौ गौओं या भूमियों के स्वामी, (गवां पोषम्) गौओं, बैलों, वाणियों और भूमियों को पुष्ट करने वाले (स्वश्व्यम्) उत्तम अश्वों के स्वामी को या धन को (आ वह) स्वयं धारण कर और हमें प्राप्त करा और (भगत्तिम्) ऐश्वर्य के दान को (ऊतये) हमारी रक्षा और समृद्धि के लिये (आ वह) प्राप्त करा।

आ न॑ः सोम॒ सहो॒ जुवो॒ रू॒पं न वर्च॑से भर ।
सु॒ष्वा॒णो दे॒ववी॑तये ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शासक ! तू (देव-वीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये, (सुस्वानः) सब से अभिषेक किया जाता हुआ, (नः) हमारे (सहः) बल और (जुवः) वेग को और (रूपं) स्वर्णादि धन को (वर्चसे) तेज वृद्धि के लिये (आ भर) धारण कर, प्राप्त कर और हमें भी प्राप्त करा।

अर्षा॑ सोम द्यु॒मत्त॑मो॒ऽभि द्रोणा॑नि॒ रोरु॑वत् ।
सीद॑ञ्छ्ये॒नो न योनि॒मा ॥ १९ ॥

भा०—(श्येनः न) श्येन, बाज, गरुड़ पक्षी के समान तू (योनिम् आ सीदन्) अपने स्थिर पद पर विराजता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन् शासक ! (द्युमत्-तमः) सब से अधिक तेजस्वी होकर (आ रोरुवत्) सब ओर आज्ञाएं देता हुआ (द्रोणानि) समस्त राष्ट्र के मार्गों को (अर्ष) प्राप्त कर।

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रु हन्ता, (वरुणाय) दुष्टों के वारण करने वाले, (मरुद्भ्यः) वायुवत् बलवान् पुरुषों और (विष्णवे) व्यापक बल इन सब के लाभ के लिये (अप्साः) जलोंवत् प्रजाओं और आप्त पुरुषों का सेवक (सोमः) उत्तम शासक (अर्षति) उद्योग करे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले ! विद्यादि में निष्णात ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लाभ, उपकार के लिये और (नः तोकाय) हमारे पुत्रादि के उपकार के लिये, (विश्वतः) हमारे सब ओर (इषं दधत्) अन्न, उत्तम वृष्टि, बलवती सेना और मार्गदर्शक वाणी इन को (दधत्) धारण करता हुआ, (सहस्रिणं) सहस्रों ऐश्वर्यों सुखों से युक्त वा सहस्रों जनों को धारण करने वाले, राष्ट्र धन को (आ पवस्व) प्राप्त कर, उसका शासन कर ।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

भा०—(ये सोमासः) जो विद्वान् उत्तम शासक और शास्त्रज्ञ जन, (अर्वावति सुन्विरे) समीप के देश में अभिषिक्त वा स्नातक होते हैं और (ये परावति सुन्विरे) जो दूर देश में अभिषिक्त या स्नातक होते हैं और (ये वा) जो (शर्यणावति) हिंसाकारिणी, शस्त्रधारिणी सेना से युक्त प्रदेश या सेनापति आदि के मुख्य और गौण पदों पर अभिषिक्त होते हैं—

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥

भा०—(ये) जो (आर्जीकेषु) सरल धार्मिक पुरुषों के बीच वा समतल भागों में अभिषिक्त होते हैं, (ये कृत्वसु) जो कर्म करने वालों में अभिषिक्त होते हैं (ये पस्त्यानाम् मध्ये) जो प्रजाओं, गृहस्थों के बीच (वा पञ्चसु जनेषु) और पांचों प्रकार के जनों में पदाभिषिक्त होते हैं—

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—(ते) वे (देवासः) तेजस्वी, दानशील, (इन्दवः) दयालु पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते हुए (दिवः परि) आकाश से (वृष्टिम्) वृष्टि के समान हमारे दुःखों का छेदन करने वाली शक्ति (पवन्ताम्) प्राप्त करें और (नः सुवीर्यं परि पवन्ताम्) हमें उत्तम बल प्रदान करें ।

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।
हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(गोः त्वचि अधि) भूमि की पीठ पर अध्यक्ष रूप से (हिन्वानः) स्थापित होता हुआ (हर्यतः) तेजस्वी पुरुष (जमदग्निना गृणानः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुषों को ज्ञान से उज्ज्वल करने वाले विद्वान् पुरुष द्वारा आदेश पाता हुआ (पवते) काम करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥

भा०—(शुक्रासः) कान्तिमान्, दीप्तियुक्त तेजस्वी पुरुष (सप्तयः न हिन्वानासः) वेगवान् अश्वों के समान प्रेरित होते हुए, (श्रीणानाः) सेवा करते हुए या प्रतिष्ठित होते हुए (अप्सु) अन्तरिक्ष में तेजोमय पिण्डों के समान (प्र मृञ्जत) अच्छी प्रकार अभिषिक्त हो ।

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।
स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥

भा०—हे (सोम) मुख्य शासक ! (तं त्वा) उस तुझ को (आभुवः) चारों ओर विराजने वाले जन (देव-तातये) सब मनुष्यों के कल्याण के लिये (सुतेषु) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने तथा उत्पन्न प्राणियों के हितार्थ, वा अभिषिक्त जनों के बीच में (हिन्विरे) तेरी प्रतिष्ठा करते हैं । (सः) वह तू (अनया रुचा) इस अनुरूप शोभा से (पवस्व) युक्त हो और सर्वोत्तम पद पर प्रतिष्ठित हो ।

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥

भा०—हे शासक ! हम लोग (ते) तेरे (दक्षं) बलस्वरूप शत्रुओं को भस्म करने वाले, (वह्निम्) कार्य-भार को अपने ऊपर उठाने वाले, (पुरु-स्पृहम्) बहुतों से प्रजा जनों को प्रेम करने वाले, बहुत से चुने गये, सम्मत, (पान्तम्) पालन करने में समर्थ सहयोगी पुरुष को (आ वृणीमहे) आदरपूर्वक वरण करते हैं ।

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग इसी प्रकार (पुरु-स्पृहम्) बहुतों से चाहे गये, बहुप्रिय, बहुसम्मत, (पान्तम्) सर्वपालक, (मन्द्रम्) सब को हर्ष देने वाले, (वरेण्यं) वरण करने योग्य, सन्मार्ग में जनों को ले जाने वाले, (मनीषिणम्) बुद्धिमान् (वरेण्यम् आ आ) आदरपूर्वक वरण करने योग्य पुरुष को वरण करें और ऐसे ही सर्वप्रिय, बहुसम्मत, (रयिम्) ऐश्वर्यवान् , (सुचेतुनम्) उत्तम ज्ञानी, पुरुष को, हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म-प्रज्ञावन् ! (तनूषु) अपने शरीरों और विस्तृत राष्ट्र कार्यों के निमित्त (आ आ आ आ आवृणीमहे) वरण किया करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

शतं वैखानसा ऋषयः ॥ १—१८, २२—३० पवमानः सोमः । १९—२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ३, ५—८, १०, ११, १३, १५—१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४, २२, २७ विराड् गायत्री । ९, १२, २१, २८, २९ निचृद् गायत्री । १८ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

पव॑स्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।
सखा॒ सखि॑भ्य॒ ईड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—प्रभु परमेश्वर का वर्णन करते हैं—हे (विश्वचर्षणे) समस्त संसार को देखने और दिखाने वाले प्रभो ! तू (विश्वानि काव्यानि अभि पवस्व) समस्त कवि, विद्वान्, क्रान्तदर्शी और ज्ञानी पुरुषों द्वारा करने और जानने योग्य कर्मों और ज्ञानों को (अभि पवस्व) प्राप्त करा । तू (सखिभ्यः सखा) मित्रों का मित्र और (ईड्यः) सब से चाहने, स्तुति करने योग्य परम वन्दनीय है ।

ताभ्या॒ं विश्व॑स्य राजसि॒ ये प॑वमान॒ धाम॑नी ।
प्र॒ती॒ची सो॑म त॒स्थतुः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) सर्वव्यापक ! सर्वप्रकाशक ! (ये) जो (धामनी) दोनों विश्व को धारण करने वाले, आकाश और पृथिवी वा उत्तर और दक्षिण अयनों के तुल्य इह और पर (प्रतीची) परस्पर सुसम्बद्ध दोनों लोक (तस्थतुः) खड़े हैं (ताभ्यां) उनसे तू (विश्वस्य राजसि) समस्त जगत् में प्रकाश करता है । सूर्य दक्षिण और उत्तर ध्रुवों में प्रकाश करता है, (२) अध्यात्म में आत्मा, प्राण, अपान, दोनों स्वरों वा जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाओं को सम्भालता है ।

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।
पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) तेजस्विन् ! प्रकाशक ! (यानि) जो (ते) तेरे (धामानि) तेज (परि) चारों ओर फैले हैं उन से हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! अन्तर्यामिन् ! हे (पवमान) पवित्र ! व्यापक ! तू (ऋतुभिः) प्राणों, काल के अवयवों और सत्य सामर्थ्यों से सूर्यवत् (विश्वतः असि) सर्वत्र सामर्थ्यवान् है ।

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या ।
सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

भा०—तू (सखा) परम मित्र, (सखिभ्यः ऊतये) अपने मित्रों की रक्षा के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के (वार्या) श्रेष्ठ धनों को (जनयन्) पैदा करता हुआ (इषः पवस्व) उत्तम अन्न, वृष्टियें और चाहने योग्य सुख सम्पदाएं तथा शक्तियें (पवस्व) प्रदान कर ।

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते ।
पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (तव) तेरी (शुक्रासः) कान्तिमान् (अर्चयः) तेज, रश्मियां, ज्वालाएं (दिवः पृष्ठे) सूर्य और भूमि के पृष्ठ पर अपने (धामभिः) तेजों से (पवित्रं वितन्वते) पवित्र प्रकाश करती हैं । इति सप्तमो वर्गः ॥

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

भा०—(इमे सप्त सिन्धवः) ये वेग से बहने वाले नद नदी, जल समुद्रादि वा देह में प्राण गण, हे (सोम) सर्वशासक ! (तव प्रशिषं) तेरे ही उत्कृष्ट शासन को पा कर (सिस्रते) गति करते हैं और (तुभ्यं धेनवः) तेरे ही लिये ये वाणियां (धावन्ति) वेग से निकलती हैं । अथवा (तुभ्यं धेनवः धावन्ति) तेरी ही वाणियां सब को पवित्र करती हैं ।

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः ।
दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (धारया) वाणी द्वारा (सुतः) उपासित होकर तू (इन्द्राय प्र याहि) इस इन्द्रियों के स्वामी जीव के उपकार के लिये प्राप्त हो । तू ही (अक्षिति श्रवः) अक्षय अन्नवत् श्रवणीय परम ज्ञान को (दधानः) धारण करने वाला और (मत्सरः) अति आनन्ददाता है ।

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(विवस्वतः) विशेष रूप से तेरी परिचर्या करने वाले साधक की (सप्त) सातों (जामयः) बन्धुवत् छन्दोमयी वाणियां (धीभिः) यज्ञादि कर्मों सहित (त्वा हिन्वन्ती) तेरी ही महिमा को बढ़ाती हुई, (आजा) यज्ञ में (त्वा विप्रम्) तुझ विद्वान् के ही (सम् अस्वरन्) गुण वर्णन करती हैं ।

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

भा०—हे शास्तः ! तू (रेभः) उत्तम विद्वान्, उपदेष्टा होकर (यत्) जब (वने) वानप्रस्थ आश्रम में (अज्यसे) जाता है, तब (अग्रुवः) अग्रगामी श्रेष्ठ जन (अव्ये) भेड़ के बालों के बने आसन पर (जीरौ) उपदेशप्रद (स्वनि) शब्दमय वेदों के (अधि) अधीन, (त्वा सं मृजन्ति) तुझे अच्छी प्रकार सुशोभित, दीक्षित, निष्णात करें ।

वानप्रस्थे वृक्षमूलाश्रयणं यदुक्तम् तत्र वृक्षो वेदस्तस्य मूलाश्रयणमुपासनम् । इति बौधायने गृह्ये ।

अथवा—हे विद्वन् ! तू (रेभः यद् अज्यसे) उपदेष्टा होकर तेज से प्रकट हो । (अव्ये) सब लोकों के रक्षक, ज्ञानमय (जीरौ) अज्ञान के

नाशक (स्वनि) उपदेशमय वेद के (अधि) आश्रय पर (अग्रुवः) अग्रासन पर विराजे, वृद्ध जन (त्वा सम्मृजन्ति) तुझे अच्छी प्रकार पवित्र करते हैं।

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (वाजिन्) ज्ञानवन् ! (पवमानस्य ते) पवित्र करने वाले तेरे (श्रवस्यवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान के इच्छुक जन (ते सर्गाः) तेरी सृष्टि के रूप में (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं। वे (अर्वन्तः न) अश्वों वा सवारों के समान धीरता से आगे बढ़ें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥

भा०—(धीतयः) राष्ट्र को धारण करने वाले जन (अव्यये वारे) अविनाशी, वरण करने योग्य पद पर (मधुश्चुतम्) अन्न के देने वाले, (कोशम्) धनादि से पूर्ण कोश को (अच्छ) प्राप्त कर (सोमं असृग्रम्) शासक पुरुष को नियुक्त करें और उसी को (अवावशन्त) चाहें।

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥

भा०—(गावः धेनवः अस्तं न) दुधार गौवें जिस प्रकार अपने घर को स्वयं लौट आती हैं, उसी प्रकार (इन्दवः) उपासना करने वाले, उसकी सेवा करने वाले उपासक शिष्य जन गुरु के प्रति स्वयं आकर (ऋतस्य योनिम्) सत्य ज्ञान के आश्रय, (समुद्रम् अच्छ) ज्ञान रस के सागर एवं ज्ञान वाणी के उपदेष्टा को (आ अग्मन्) प्राप्त हों।

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) गुरु वा प्रभु की उपासना करने वाले शिष्य ! उपासक ! (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब तू ज्ञानवाणियों द्वारा आच्छादित होगा, उनसे वा उनके निमित्त गुरु-गृह में रक्खा जावे, तब (सिन्धवः) तुझे उत्तम नियमों में बांधने वाले (नः) हम में से (आपः) आप्त जन (महे रणे) बड़े भारी उपदेश के निमित्त (अर्षन्ति) तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त हों और ज्ञान प्रदान करें । (२) उसी प्रकार जब शिष्य वाणियों में निष्ठ हों तो हमारी बहती जल धाराएं उसे स्नान करावें ।

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु के प्रति वेग से जाने वाले ! (वयम्) हम (त्वा ऊतयः) तेरी रक्षा, प्रेम से युक्त होकर, (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहते हुए, (इयक्षन्तः) ईश्वर की उपासना, परस्पर का आदर-सत्कार दान-प्रतिदान करते हुए, (ते सखित्वम्) तेरे ही मित्रभाव को (उश्मसि) सदा चाहें ।

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (गो-इष्टये) भूमि को या वाणी को प्रदान करने के लिये (महे नृचक्षसे आ पवस्व) मनुष्यों को देखने और उपदेश करने वाले, आदर योग्य महान् पद या कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिये प्राप्त हो और (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुनाशक राष्ट्र बल के मध्य में प्रवेश कर । इति नवमो वर्गः ॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः ।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! राजन् ! तू (महान् असि) गुण, शक्ति में महान् है । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (उग्राणां) उग्र शक्ति-

शाली, दुष्टों को भय दिलाने वालों में (ज्येष्ठः) सब से बड़ा प्रशंसा योग्य और (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, बली है। तू (शश्वत्) सदा ही (युध्वा सन्) युद्धशील! शत्रुओं पर प्रहार करने वाला होकर (जिगेथ) विजय प्राप्त कर।

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो तू (उग्रेभ्यः) बलवान् शत्रुओं को भय देने वालों से भी (ओजीयान् चित्) कहीं अधिक पराक्रमी और (शूरेभ्यः चित् शूरतरः) शूरवीरों से भी कहीं अधिक शूरवीर है, वह तू (भूरि दाभ्यः चित्) बहुत दान करने वालों से भी कहीं अधिक (मंहीयान्) बड़ा दानी है।

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम्।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासन करने हारे! सब के सञ्चालक! परमैश्वर्यवन्! प्रभो! (त्वं) तू (सूरः) उत्तम वीर्यवान्, सब का प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, सब का उत्पादक है तू (तोकस्य तनूनाम्) पुत्र और वंशकर्त्ता पौत्रों का भी (साता) देने वाला है। तुझे हम (सख्याय वृणीमहे) मित्रभाव के लिये वरते हैं और तुझे (युज्याय वृणीमहे) अपने सहायक साथी रूप से वरते हैं।

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे अग्रणी! हे ज्ञानवन्! तू (नः आयूंषि) हमारे आयुओं की (पवसे) रक्षा कर। (नः) हमें (ऊर्जम् इषं च आसुव) बल पराक्रम और अन्न प्रदान कर।

अ॒ग्निर्ऋषि॑ः पव॑मानः पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः ।
तमी॑महे महाग॒यम् ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, अन्यों को प्रकाश देने वाला, (ऋषिः) मन्त्रार्थों का द्रष्टा, (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला, सब का रक्षक, (पाञ्चजन्यः) पांचों जनों का हित-कारक, (पुरोहितः) सब के समक्ष अध्यक्ष, साक्षीवत् स्थापित है । (तम् महा-गयम्) उस महाप्राण एवं महा गृह के समान सर्वाश्रय को हम (ईमहे) प्राप्त हों । इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने॒ पव॑स्व॒ स्वपा॑ अ॒स्मे वर्चः॑ सु॒वीर्य॑म् ।
दध॑द्र॒यिं मयि॒ पोष॑म् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (सु-अपाः) उत्तम कर्म करने हारा ! (स्व-पाः) स्वयं अपनों का वा ऐश्वर्यों का पालक होकर (अस्मे वर्चः) हमें तेज और (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य प्रदान कर और तू (मयि रयिम् पोषम् दधत्) मेरे में धन, पुत्रादि एवं पशु-समृद्धि और शरीर की पुष्टि को धारण करा ।

पव॑मानो॒ अति॒ स्रिधो॒ऽभ्य॑र्षति सुष्टु॒तिम् ।
सूरो॒ न वि॒श्वद॑र्शतः ॥ २२ ॥

भा०—(विश्व-दर्शतः सूरः न) सूर्य के समान सब का द्रष्टा, सब से देखने योग्य, सब को मार्ग दिखाने हारा, विद्वान् तेजस्वी (स्रिधः अति पवमानः) समस्त हिंसाकारी दुष्टों को अतिक्रमण करके, उनका पराजय करके (सु-स्तुतिम् अभि अर्ष) उत्तम स्तुति प्राप्त कर ।

स म॑र्मृजा॒न आ॒युभि॒ः प्रय॑स्वा॒न्प्रय॑से हि॒तः ।
इन्दु॒रत्यो॑ विचक्ष॒णः ॥ २३ ॥

भा०—(सः) वह (आयुभिः मर्मृजानः) मनुष्यों द्वारा अभिषिक्त

होता हुआ (प्रयस्वान्) उत्तम प्रयत्नवान् (प्रयसे हितः) सब को पालने, तृप्त करने, उत्तम मार्ग में यत्न कराने के लिये स्थापित किया जाय। वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, प्रजाओं से सेवनीय, (अत्यः) सब को प्राप्त, अश्ववत् सब का रक्षक, सबसे अधिक और (विचक्षणः) विशेष रूप से तत्वज्ञान का द्रष्टा हो।

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत्।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥

भा०—(पवमानः) सब को पवित्र करने वाला, (बृहत्) बड़ा (शुक्रम्) शुद्ध (ऋतम्) सत्य ज्ञानमय (ज्योतिः) प्रकाश को (अजीजनत्) प्रकट करता है। वही (कृष्णा तमांसि) कष्टदायी, काले अन्धकारों को सूर्यवत् (जंघनत्) विनाश करे।

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—(पवमानस्य) राष्ट्र को शोधन करने वाले और (जंघ्नतः) दुष्टों का बार २ नाश करते हुए (अजिर-शोचिषः) अविनश्वर तेजस्वी (हरेः) सूर्यवत् दुःखों के हटाने वाले तुझ नरोत्तम के (जीराः) वेग से युक्त सब को जीवन देने वाले (चन्द्राः) सर्वाह्लादकारी गुण (असृक्षत) प्रकट होते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानः) वेग से युद्ध में जाता हुआ, अभिषिक्त होता हुआ (रथीतमः) सब से उत्तम महारथी, (शुभ्रशः-तमः) सब से अधिक शोभावान्, (शुभ्रेभिः) अपने शोभायुक्त गुणों से ही (मरुद्-गणः) मनुष्य समूहों का स्वामी और (हरि-चन्द्रः) सब मनुष्यों को आह्लाद देने वाला हो जाता है।

हरिरिति मनुष्यनाम । निघ० ॥

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः ।
दधन्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषेक को प्राप्त होने वाला, (वाज-सातमः) ज्ञान, बल, धन का सर्वोत्तम दाता, आदाता और विभक्ता पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों से (वि अश्नवत्) विशेष रूप से व्यापे और वह (स्तोत्रे) स्तुति, उपदेशादि करने वाले के हितार्थ (सुवीर्यं दधत्) उत्तम वीर्य को धारण करे ।

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥

भा०—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् वह (सुवानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (पवित्रम्) पवित्र (अव्ययम्) नाश को न प्राप्त होने वाले, सर्व-रक्षक पद को (अति अक्षाः) सर्वोपरि प्राप्त हो (पुनानः) अन्यों को भी पवित्र करता हुआ वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, दयालु होकर (इन्द्रम् आ अक्षाः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता पद को प्राप्त हो। अध्यात्म में—'इन्दु' प्रभु 'इन्द्र' जीव को प्राप्त हो। अथवा 'इन्दु' शरणा गत जीव उस 'इन्द्र' प्रभु को पवित्र होकर प्राप्त हो।

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।
इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥

भा०—(एषः सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीव (गवां त्वचि अधि) इन्द्रियों के आवरणकारी देह के ऊपर अध्यक्ष रूप से (अद्रिभिः क्रीडति) अविनश्वर शक्तियों वा प्राणों से खेलता है, नाना सुख प्राप्त करता है, और (मदाय) परमानन्द सुख को प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् परम प्रभु को (जोहुवत्) पुकारता, उसकी स्तुति प्रार्थना

करता है। इसी प्रकार अभिषिक्त जन भूमियों पर शस्त्र बलों से युद्ध क्रीड़ा करता है और सब के हर्ष के लिये इन्द्र पद को प्राप्त करता है।

यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः।
तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—हे (पवमान) रक्षा करने हारे ! प्रभो ! (यस्य ते दिवः) जिस तुझ तेजस्वी सूर्यवत् कान्तिमान् का (पयः द्युम्नवत्) तेज, वीर्य और पोषक अन्नादि धन और प्रकाश के समान (आ-भृतम्) सर्वत्र धारित है (तेन नः जीवसे) उससे हमें तू जीवन प्रदान करने के लिये (मृड) दया कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

[६७]

ऋषिः—१—३ भरद्वाजः। ४—६ कश्यपः। ७—९ गोतमः। १०—१२ अत्रिः। १३—१५ विश्वामित्रः। १६—१८ जमदग्निः। १९—२१ वसिष्ठः। २२—३२ पवित्रो वसिष्ठौ वोभौ वा ॥ देवताः—१—९, १३—२२, २८—३० पवमानः सोमः। १०—१२ पवमानः सोमः पूषा वा। २३, २४ अग्निः सविता वा। २६ अग्निरग्निर्वा सविता च। २७ अग्निर्विश्वेदेवा वा। ३१, ३२ पावमान्यध्येतृस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ११—१३, १५, १९, २३, २५ निचृद् गायत्री। ३, ८ विराड् गायत्री। १० यवमध्या गायत्री। १६—१८ भुरिगार्ची विराड् गायत्री। ६, ७, ९, १४, २०—२२, २, २६, २८, २९ गायत्री। २७ अनुष्टुप्। ३१, ३२ निचृदनुष्टुप्। ३० पुरउष्णिक् ॥ द्वात्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! उत्तम शासक ! (त्वं) तू (धारयुः) राष्ट्र विश्व, वा देह को धारण करने वाली शक्ति, आज्ञा, वाणी का स्वामी (असि)

है । तू (मन्द्रः) अति आनन्दप्रद, (ओजिष्ठः) सब से अधिक बलवान्, पराक्रमी है । तू (मंहयद्-रयिः) सदा ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (अध्वरे पवस्व) पीड़ा, पराजय आदि से रहित कार्य यज्ञ वा राष्ट्र में (पवस्व) प्राप्त हो ।

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥

भा०—हे वीर ! ऐश्वर्यवन् ! शासक ! (त्वम्) तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (नृ-मादनः) सब नायकों और सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला, (दधन्वान्) सब का पोषण करने वाला, (मत्सरिन्-तमः) स्वयं सब से अधिक प्रसन्न, (सूरिः) विद्वान् होकर (अन्धसा) अन्न से (इन्द्राय) ऐश्वर्य वा प्रभु वा परमाधिकारी की सेवा कर ।

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वं) तू (अद्रिभिः सुष्वाणः) पाषाण खण्डों के समान दृढ़ और मेघों के समान जल-धारा और सुखों की वर्षा करने वाले पुरुषों द्वारा अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (द्युमन्तं) तेज से युक्त (उत्तमम् शुष्मम्) उत्तम शत्रु शोषक बल को (अभि अर्ष) प्राप्त कर ।

इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया ।
हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(हिन्वानः इन्दुः) वृद्धि प्राप्त करता हुआ ऐश्वर्ययुक्त दयालु तेजस्वी पुरुष (अव्यया वाराणि) अवि अर्थात् स्नेहादि के बने नाना वरणीय, मनलुभाने वाले उत्तम प्रलोभनों को भी (अति अर्षति) पार कर जाता है । वह (हरिः) अज्ञान दूर करने हारा (वाजम् अचिक्रदत्) ज्ञान का उपदेश करता है ।

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम पुरुष ! तू (अव्यम्) इस भूमि के उत्तम धन को (वि अर्षसि) विविध प्रकार से प्राप्त कर। (श्रवांसि वि) नाना ज्ञान, अन्न और कीर्त्तियां प्राप्त कर। (सौभगा वि अर्षसि) नाना सौभाग्य प्राप्त कर। हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (गोमतः वाजान् वि अर्षसि) वाणीसम्पन्न विद्वान् से ज्ञानों और भूमि के स्वामी कृषकार से अन्नों को विविध प्रकार से प्राप्त कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतग्विनं) सैकड़ों गौओं, भूमियों से युक्त, (गोमन्तं) ज्ञान-वाणियों से युक्त (अश्विनम्) अश्वों से सम्पन्न, (सहस्रिणं) संख्या में सहस्रों वा सहस्रों सुखों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा।

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानासः) वेग से प्रयाण करते हुए, (इन्दवः) शत्रु को सन्तप्त करने में कुशल, (आशवः) वेगवान्, वीर जन (यामेभिः) अपने प्रयाणों द्वारा, अपने सन्मार्गों द्वारा, अपने उत्तम नियम व्यवस्थाओं द्वारा, (पवित्रम् तिरः) कण्टक शोधन के कार्य को पूर्ण करके (इन्द्रं) ऐश्वर्य पद को (आशत) प्राप्त करते हैं।

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः।
आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥

भा०—(ककुहः) सर्वश्रेष्ठ, (सोम्यः) प्रशास्ता पद के योग्य (रसः) बलवान् (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (पूर्व्यः) पूर्व विद्वान् एवं शक्ति से

पूर्ण जनों से उपदिष्ट और सत्कार पाकर (इन्द्राय पवते) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ता है और वह स्वयं (आयुः) श्रेष्ठ मनुष्य होकर (आयवे) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये हो।

हिन्वन्ति सूरमुस्रियः पवमानं मधुश्चुतम्।
अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥

भा०—(पवमानम्) अभिषेक होने योग्य एवं वीर्य, शौर्य और ज्ञान आदि से राष्ट्र जन को पवित्र करने वाले (मधु-श्चुतम्) जल, मधुर वचन और अन्न प्रदान करने वाले, (सूरम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (उस्रयः) राष्ट्र में बसने वाले एवं उत्तम मार्ग में जाने वाले जन किरणों के तुल्य (हिन्वन्ति) बढ़ाते और सन्मार्ग में प्रेरित करते हैं। और उसे (गिरा) वेद-वाणी और उत्तम उपदेश द्वारा (अभि सम् अस्वरन्) सब ओर से उसको उपदेश करें, उसकी स्तुति करें, उसके गुणों का प्रकाश करें।

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) पोषण करने वाला, (अविता) रक्षक, प्रेम करने हारा! (अजाश्वः) वेग से जाने वाले अश्वों से युक्त विद्वान् (यामनि-यामनि) प्रत्येक यम नियम में अभ्यस्त वा उत्तम विवाह-कृत्य में (नः कन्यासु) हमारी कन्याओं के पाणिग्रहण करने के निमित्त (नः आ भक्षत्) हमें प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह (सोमः) उत्तम विद्वान्, वधू की कामना करने वाला, (कपर्दिने) उत्तम मुकुट से सजने वाले राजा के योग्य (मधु घृतं न पवते) मधुर, आनन्ददायक खाद्य पदार्थ, मधुपर्क और जल, अर्घ्य पाद्य

आदि प्राप्त करता है वह (नः कन्यासु आभक्षत्) हमारी कन्याओं के निमित्त हमें प्राप्त हो।

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से तेजस्विन्! जो (नः कन्यासु आ भक्षत्) हमें कन्याओं के निमित्त प्राप्त हो (अयं) यह (ते) तेरे (शुचि) शुद्ध कान्तियुक्त (घृतं न) प्रकाशवत् (ते सुतः) तेरा अभिषिक्त पुत्रवत् निष्णात ज्ञान प्रकाश को (पवते) प्राप्त हो।

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया।
देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम विद्वन्! तू (देवेषु रत्नधाः असि) कामनावान् जनों में रमणीय ज्ञान और धन देने वाला है। तू (कवीनां वाचः जन्तुः) विद्वानों की वाणी को प्रकट करने वाला है, तू (धारया पवस्व) ज्ञान धारण करने वाली वाणी से सब को पवित्र कर वा सब को प्राप्त हो।

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ १४ ॥

भा०—(श्येनः) उत्तम आचार-चरित्रवान् पुरुष होकर (कलशेषु) जल से पूर्ण कलशों द्वारा (आ धावति) अपने को सब प्रकार शुद्ध करे। (वर्म) पहनने योग्य सुन्दर वस्त्रों, वा (वर्म) उत्तम गृह, [गृहस्थ आश्रम] को (विगाहते) प्रवेश करे। वह (द्रोणानि) गृहों को गृहोचित कर्त्तव्यों वा धनों को (अभि कनिक्रदत्) प्राप्त करे।

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (ते) तेरे लिये (सुतः) संस्कारयुक्त किया हुआ (रसः) जल जैसे (कलशे) कलश में और (रसः) बल (कलशे) राष्ट्र में (परि असर्जि, प्र असर्जि) चारों ओर हो और अच्छी प्रकार तैयार किया जावे। वह (श्येनः न) बाज के समान श्येन-व्यूह बना कर (तक्तः) वेग से गति करता हुआ (अर्षति) विचरता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥

भा०—तू (मधुमत्-तमः) अति मधुर स्वभाव वा जल अन्न और बल का बड़ा भारी स्वामी होकर हे (सोम) शासक ! तू (मन्दयन्) सब को प्रसन्न करता हुआ (इन्द्राय पवस्व) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़।

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ १७ ॥

ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ १८ ॥

भा०—(ते) वे नाना (सुतासः) अभिषिक्त जन (मदिन्तमाः) खूब हर्ष उत्पन्न करने हारे (शुक्राः) जल वा रश्मियों के समान शुद्ध पवित्र, तेजस्वी होकर (वायुम् असृक्षत) वायुवत् प्रबल पद को निर्माण करते हैं और वे (वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथों के समान, (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा के लिये (असृग्रन्) तैयार होते हैं।

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥

भा०—(स्तोत्रे) स्तुति करने वाले विद्वान् प्रजा जन के उपकार के लिये (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल को धारण करता हुआ, हे (सोम) उत्तम शासनयोग्य विद्वन् ! तू (ग्रावणा तुन्नः) विद्वान् उपदेष्टा द्वारा प्रेरित और अभिताड़ित होकर और (अभि-स्तुतः) खूब प्रशंसित और उपदिष्ट होकर (पवित्रं गच्छसि) शत्रु-कण्टकादि को दूर करने के शासन पद को प्राप्त होता है।

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।

रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—(एषः) यह (तुन्नः) विद्वानों द्वारा शासित और (अभिसुतः) सब ओर से प्रशंसित (रक्षोहा) दुष्टों, विघ्नों का नाशकारी होकर (अव्ययम्) रक्षक पद के योग्य (वारम्) सर्व वरणीय और शत्रुओं के वारक (पवित्रं) शत्रुरूप कण्टकशोधन के कार्य को (अति गाहते) सर्वोपरि होकर प्राप्त करता है ।

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।

पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥

भा०—हे (पवमान) शत्रुकण्टक के शोधने हारे ! हे अभिषेक पाने वाले जन ! (यद् भयम् अन्ति) जो भय समीप या (दूरके) दूर देश में भी (माम्) मुझे (इह विन्दति) इस राष्ट्र में प्राप्त होता है, तू (तत् वि जहि) उसे विशेष रूप से नष्ट कर । वा जो मुझे भयादि देता है उसे दण्डित कर ।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।

यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥

भा०—(सः) वह (विचर्षणिः) विशेष अध्यक्ष, (पवमानः) दुष्टों को दूर करता हुआ (पवित्रेण) शस्त्र बल से युक्त होकर (नः) हमारे बीच (यः पोता) जो पवित्र करने में कुशल है (सः नः पुनातु) वह हमें पवित्र, स्वच्छ करे ।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।

ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! प्रभो ! (यत्) जो (ते) तेरा (पवित्रम्) सब को शुद्ध पवित्र करने वाला (ब्रह्म) महान् तेज

(अर्चिषि) तेजोमय सूर्यादि के और (अन्तरा विततम्) समस्त जगत् के बीच व्याप्त है (तेन नः पुनीहि) उससे हमें पवित्र कर ।

यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः ।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! (यत्) जो (ते) तेरा (अर्चिवत्) तेजोयुक्त (पवित्रम् ब्रह्म) पवित्र ब्रह्म ज्ञान है (तेन नः पुनीहि) उससे तू हमें पवित्र कर । (सः) वह तू (नः पुनीहि) हमें सदा पवित्र करता रह ।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ २५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के दाता ! हे तेजोमय ! ज्ञान के प्रकाशक ! हे (सवितः) उत्तम शासक ! तू अपने (पवित्रेण) पवित्र करने वाले ज्ञान और (सवेन च) शासन (उभाभ्यां) दोनों से (आ विश्वतः पुनीहि) सब ओर से पवित्र कर । इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥

भा०—हे (देव सवितः) तेजस्विन्, ज्ञानप्रद, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (सोम) सर्वाध्यक्ष ! हे (अग्ने) सर्वाग्रणी ज्ञानवन् ! तू (त्रिभिः दक्षैः वर्षिष्ठैः धामभिः) पापों को भस्म करने वाले, सब सुखों के देने वाले, तीनों तेजों से (नः पुनीहि) हमें पवित्र कर ।

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ २७ ॥

भा०—(देव-जनाः) शुभ गुणों का प्रकाश करने वाले जन (मां पुनन्तु) मुझे पवित्र करें । (वसवः) प्राणों के तुल्य उत्तम आश्रमों में बसने

वाले जन (धिया) ज्ञान और कर्म द्वारा (मां पुनन्तु) मुझे पवित्र करें (विश्वे देवाः) हे समस्त विद्वान् जनो ! (मां पुनीत) मुझे पवित्र करो हे (जातवेदः मां पुनीहि) ज्ञानवन् ! तू मुझे पवित्र कर ।

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (विश्वेभिः अंशुभिः) समस्त किरणों, उपायों से (देवेभ्यः) मनुष्यों के लिये (उत्तमं हविः प्र प्यायस्व) सूर्यवत् उत्तम जल-अन्न की वृद्धि कर और (प्र स्यन्दस्व) जलवत् दुग्धादि की धार बहाया कर ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥

भा०—हम (नमः बिभ्रतः) उत्तम अन्न और विनय आदरयुक्त वचन को धारण करते हुए (प्रियं) प्रिय (पनिप्नतम्) उपदेश करने वाले (युवानम्) युवा (आहुति-वृधम्) आदरपूर्वक आहुति दानादि से बढ़ने वा बढ़ाने वाले विद्वान् गुरु को (उप अगन्म) शिष्यवत् प्राप्त हों ।

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।
आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥

भा०—(अलाय्यस्य = अराय्यस्य) क्षमा, धन आदि देने के अयोग्य वा हमारा अधिकार न देने वाले शत्रु का (परशुः) शस्त्र (तम् न-नाश) उसी को नष्ट करे । हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (आ पवस्व) इस प्रकार दुष्टों का नाश कर । हे (देव सोम) तेजस्विन् ऐश्वर्यवन् ! तू (आखुं चित्) मूषक स्वभाव के सब ओर से धन खनन करने वाले कृषक, श्रमी व्यक्ति को (चित्) भी आदरपूर्वक (आ पवस्व) कार्य में लगा ।

यः पा॑व॒मा॒नीर॒ध्येत्यृषि॑भि॒ः सम्भृ॑तं॒ रस॑म् ।
सर्वं॒ स पू॒तम॑श्नाति स्वदि॒तं मा॑त॒रिश्व॑ना ॥ ३१ ॥

भा०—(यः) जो (पावमानीः) पवमान अर्थात् पवित्र करने और अभिषेक किये जाने वाले के सम्बन्ध की पवमान देवताक ऋचाओं को और (ऋषिभिः) वेदमन्त्रार्थों का साक्षात् करने वाले विद्वानों द्वारा (संभृतम्) संगृहीत (रसम्) सारभूत ज्ञान को (अध्येति) अध्ययन, उनका अर्थ ज्ञान और मनन करता है (सः) वह (मातरिश्वना स्वदितम्) उत्तम मातृसमान, सर्वज्ञकल्प प्रभु या आचार्य के अधीन श्वास लेने, जीवन धारण करने वाले उत्तम शिष्यगण द्वारा (स्वदितं) सुख से ग्रहण करने योग्य (सर्वं) समस्त (पूतं) पवित्र ज्ञान को अन्न के समान ही (अश्नाति) ग्रहण करता है और उसका उपभोग लेता है ।

पा॒व॒मा॒नीर्यो॑ अ॒ध्येत्यृषि॑भि॒ः सम्भृ॑तं॒ रस॑म् ।
तस्मै॒ सर॑स्वती दुहे क्षी॒रं स॒र्पिर्मधू॑द॒कम् ॥ ३२ ॥ १८ ॥ ३ ॥

भा०—(यः ऋषिभिः सभृतं रसं पावमानीः अध्येति) जो ऋषियों द्वारा सम्पादित, ज्ञानमय "पावमानी", अन्तःकरण को पवित्र करने वाली ज्ञानमयी ऋचाओं का अध्ययन करता है, (सरस्वती) वेदवाणी और ज्ञानमय प्रभु (तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकम् दुहे) उसको दूध, घी, मधु, जल के तुल्य ऐश्वर्य, बल, आनन्द और अभ्युदय प्रदान करता है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[६८]

वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः । पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती । २, ४, ५, ९ जगती । ८ विराड् जगती । १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र दे॒वमच्छा॒ मधु॑मन्त॒ इन्द॒वोऽसि॑ष्यदन्त॒ गाव॒ आ न धे॒नवः॑ ।
ब॒र्हि॒षदो॑ वच॒नाव॑न्त॒ ऊध॑भिः परि॒स्रुत॑मु॒स्रिया॑ नि॒र्णिजं॑ धिरे ॥ १ ॥

भा०—(धेनवः गावः न) जिस प्रकार दूध देने वाली गौवें (देवं प्र असिष्यदन्त) कामना योग्य, नाना गुणयुक्त दुग्ध को प्रस्रवित करती हैं उसी प्रकार (मधुमन्तः इन्दवः) ज्ञानवान् , कृपालु सज्जन (देवं) ज्ञान की कामना करने वाले के प्रति (प्र असिष्यदन्त) खूब ज्ञान-रस को प्रवाहित करते हैं। उसके प्रति प्रेमयुक्त हो उसे ज्ञान प्रदान करें। और जिस प्रकार (उस्रियाः ऊधभिः) गौवें थनों द्वारा (परिस्रुतम्) सब ओर बहने वाले (निर्णिजं) अति शुद्ध दूध को (धिरे) धारण करतीं और देती हैं उसी प्रकार (बर्हि-षदः) प्रजा जन पर अध्यक्ष होकर विराजने वाले अध्यक्ष वा उत्तमासन पर विराजने वाले और (वचना-वन्तः) उत्तम वचन, भाषण बोलने वाले वाग्मी जन, (परि-स्रुतं = परि-श्रुतं) सब दूर तक श्रवण करने योग्य, दूर तक घोषणा, प्रवचनादि द्वारा फैलने वाले (निः-निजं) अति विशुद्ध ज्ञान को (धिरे) धारण करें और अन्यों को प्रदान करें।

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम्॥२॥

भा०—(सः) वह ज्ञानी वा अध्यक्ष (पूर्वाः) पूर्व एवं ज्ञान से परिपूर्ण वाणियों को और पूर्व की घोषणाओं को (अभि रोरुवत्) सर्वत्र उपदेश करे, प्रचारित करे। वह (हरिः) ज्ञान का संदेश दूर २ तक ले जाने वाला, अज्ञान हरण करने में समर्थ, सूर्यवत् तेजस्वी, ज्ञानी, वा वीर पुरुष (उपारुहः) समीप आने वालों को (श्रथयन्) सन्मार्ग में प्रयत्नशील करता और दुःखों से मुक्त करता हुआ (स्वादते) स्वयं भी आनन्द लाभ करता है। वह (उरु-ज्रयः) महान् पराक्रमी, विजयी होकर (तिरः) सर्वोत्तम, प्राप्त (पवित्रम्) परम पवित्र पद को (परियन्) प्राप्त करता हुआ (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (शर्याणि नि दधते) विनाश करने योग्य अन्तः और बाह्य शत्रुओं को नाश करता और (वरम् आ दधते) वरण करने

योग्य ज्ञानमय पद को धनवत् प्राप्त करता और औरों को देता है। अथ प्रयत्ने प्रस्थान इत्येके (चु०)। अथ मोक्षणे (चु०)। ये सब मन्त्र ज्ञानी परिव्राजक, शासक और प्रभु आत्मा का भी वर्णन करते हैं।

वि यो म॒मे य॒म्या॑ संय॒ती मदः॑ साकं॒वृधा॒ पय॑सा पिन्व॒दक्षि॑ता।
म॒ही अ॑पा॒रे रज॑सी वि॒वेवि॑दद॒भिव्र॒जन्नक्षि॑तं॒ पाज॒ आ द॑दे॥ ३॥

भा०—(यः) जो (मदः) अति आनन्दमय, हर्षयुक्त होकर (यम्या) यम नियम में बद्ध, (संयती) परस्पर मिलकर एक साथ प्रयत्न करने वाले (साकं वृधा) एक साथ मिलकर बढ़ने वाले, (अक्षिता) न क्षीण होने वाले, (मही) महान् शक्ति से युक्त पूज्य, (अपारे) अपार एवं अन्य पालक से रहित (रजसी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों सभा सभापति, शास्य शासक वर्गों को (पयसा पिवत्) अन्नवत् बल वीर्य से पूर्ण करता, उनको जल से वृक्षवत् सेचता, बढ़ाता है। वह (अभिव्रजत्) सर्वत्र जा २ कर विविध प्रकार से उनको सुख, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कराता और (अक्षितं पाजः आददे) अक्षय बल, सामर्थ स्वयं भी धारण करता और प्रदान करता है।

स मा॒तरा॑ वि॒चर॑न्वा॒जय॑न्न॒पः प्र मेधि॑रः स्व॒धया॑ पिन्वते प॒दम्।
अं॒शुर्यवे॑न पिपिशे य॒तो नृभिः॒ सं जा॒मिभि॒र्नस॑ते॒ रक्ष॑ते॒ शिरः॑॥४॥

भा०—(मेधिरः) उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (सः) वह (मातरौ विचरन्) माता पिता ज्ञानी पुरुषों की विविध प्रकार से सेवा करता हुआ उनको प्राप्त कर (अपः वाजयन्) कर्म को सफल, समृद्ध, ज्ञानयुक्त करता हुआ, (स्वधया) अपनी धारणा, पालना शक्ति से (पदम्) अपने पद या ज्ञान को (पिन्वते) समृद्ध करता है। वह (अंशुः) भोक्ता होकर (नृभिः यतः) उत्तम पुरुषों द्वारा नियम में बद्ध रह कर (यवेन पिपिशे) यव आदि अन्नद्वारा उत्तम रूपवान् हृष्ट पुष्ट हो। (जामिभिः सं नसते)

सहयोगी, बन्धु जनों, सहायक शक्तियों से प्रेमपूर्वक मिलकर रहे और (शिरः रक्षते) अपने शिर के समान मुख्य पद की रक्षा करे ।

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ५।१६

भा०—(कविः) विद्वान् पुरुष (दक्षेण मनसा) खूब बढ़े हुए, शक्तियुक्त चित्त वा ज्ञान से (सं जायते) अच्छी प्रकार प्रकट होता है । वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, वेद, तेज और बल को (गर्भः) अपने भीतर ग्रहण करने वाला (परः) सर्वोत्कृष्ट होकर (यमा निहितः) यम-संयम द्वारा स्थिर होता है । (यूना ह सन्ता) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी दोनों ही युवा और युवति होकर (प्रथमम्) पहले (जनिम) जन्म को (गुहा) गुहा, बुद्धि, वेद वाणी के गर्भ में (वि जज्ञतुः) विशेष रूप से प्राप्त करते हैं और (नेमम्) और शेष जन्म को वे (उद्यतम्) और उत्तम होकर प्राप्त होते हैं ।

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो वीर पुरुष (श्येनः) बाज़ पक्षी के समान उत्तम वेग से जाने हारा, उत्तम आचरणवान् होकर (परावतः) दूर देश से वा गुरुगृह वा परम प्रभु से (अन्धः) अन्नवत् ज्ञान को ग्रहण करता है उस (मन्द्रस्य) सब को हर्षित करने वाले पुरुष के (रूपं) उत्तम रूप को (मनीषिणः) विद्वान् लोग (विविदुः) भला प्रकार जानें । उस (ऋग्मियं) उत्तम स्तुतियुक्त, वाणियों से स्तुति करने योग्य (परियन्तं) सर्वोपरि पद को प्राप्त होते हुए (अंशुं) तेजस्वी, (उशन्तं) सब उत्तम ऐश्वर्य को चाहने वाले (सुवृधं) उत्तम रीति से बढ़ने और सुख बढ़ाने वाले (तं) उस को (नदीषु) समृद्ध और स्तुतिपरक प्रजाओं के बीच (मर्जयन्त) अभिषिक्त करें ।

त्वां मृंजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्। अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! सब के सञ्चालक! (ऋषिभिः) ज्ञानद्रष्टा (मतिभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों, ध्यान-धारणा आदि क्रियाओं से (हितम्) हृदय में धारित, (सुतं) उपासित (त्वां) तुझ को ही (दश योषणः) दसों चित्त वृत्तियां वा प्राण तेरा भजन करने वाली, (अव्यः) तुझ से प्रेम करने वाले आत्मा के (वारेभिः) वरण करने योग्य गुणों (उत) और (देव-हूतिभिः) सब से बड़े दान देने वाले तुझ स्वामी, सर्वप्रकाशक प्रभु की स्तुतियों सहित और (नृभिः) देह के सञ्चालक प्राणों सहित (त्वा मृजन्ति) तेरा परिशोधन करती हैं और तू (यतः) ध्यान, धारणा, समाधि इन तीन अनुष्ठान रूप संयम द्वारा उपासित होकर (सातये) भजन करने वाले उपासक को (वाजम् आदर्षि) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य प्रदान करता है। राजा के पक्ष में—दसों दिशाओं के प्रकृति जन विद्वानों द्वारा पद पर स्थापित राजा का अभिषेक करें। वे (अव्यः वारेभिः) देशरक्षक बल के उत्तम शत्रु वारक साधनों और विजयेच्छु विद्वानों, वीरों की स्तुतियों से और वीर नायकों सहित वा उन द्वारा अभिषिक्त करें। वह बल धनादि विभाग के लिये बल को आदरपूर्वक ग्रहण करे।

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

भा०—(मनीषाः स्तुभः) मन को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले, शत्रुओं के नाश करने और विद्याओं का उपदेश करने वाले वीर एवं विद्वान् जन उस (वय्यं) सर्वरक्षक, तेजोमय, सर्वव्यापक, सर्वप्रिय, (सुं-सं-सदं) सुप्रतिष्ठित (परि प्रयन्तं) सर्वत्र गतिमान् (सोमं)

सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (यः) जो (धारया) धारणाशक्ति और देववाणी द्वारा (मधुमान्) स्वयं ज्ञान युक्त, मधुर वचन वाला और बलवान् होकर (ऊर्मिणा) सर्वोपरि शक्ति से (रयि-षाड्) सब ऐश्वर्य बल को विजय करता हुआ, (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी (दिवः वाचं इयर्त्ति) ज्ञान-प्रकाश से युक्त वाणी को गुरुवत् और घोषणा को राजा के तुल्य और विद्युत्-गर्जना को मेघवत् सर्वोपकारार्थ प्रेरित करता है।

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ९

भा०—(दिवः रजः) आकाश से जिस प्रकार मेघ जल को देता है उसी प्रकार (पुनानः सोमः) सब जगत् को चलाने वाला सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (दिवः) ज्ञानप्रकाशमय-स्वरूप वेद से, सूर्य से तेज के समान (विश्वम् रजः आ इयर्ति) समस्त प्रकाश प्रदान करता है। वह (कलशेषु) समस्त कलशों के बीच में (सीदति) विराजता है। (अद्भिः गोभिः) प्राणों और विषयग्राहिणी इन्द्रियों से वा (अद्भिः) आप्त पुरुषों और (गोभिः) वेद-वाणियों से (मृज्यते) शुद्ध रूप में जाना जाता है। वह (अद्रिभिः सुतः) मेघों से अभिषिक्त वनस्पतिवत् प्राणों से वा जीवों से उपासित (पुनानः इन्दुः) सर्वपावन, ऐश्वर्यवान्, दयालु, तेजस्वी प्रभु (प्रियम् वरिवः) अति प्रिय वरणीय सुख, धन-ऐश्वर्य भी (विदत्) प्राप्त करावे। (२) राजा अभिषिक्त होकर सर्वश्रेष्ठ धनैश्वर्य प्राप्त करे।

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥२०॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् जगत् का शासन करने वाले! तू (परि-सिच्यमानः) सब प्रकार से परिषिक्त होकर, स्तुति किया जाकर

(चित्रतमं वयः दधत्) अति अद्भुत बल-वीर्य, को धारण करता हुआ (पवस्व) हमें प्राप्त हो। हम (द्यावा-पृथिवी) आकाश और भूमि के समान अप्रीति भावों से रहित माता पिताओं को (हुवेम) प्राप्त करें उनका आदर करें और हे (देवाः) वीर विद्वान् जनो ! (अस्मे सुवीरं रयिम् धत्त) हमें उत्तम पुत्र, वीर जन सहित ऐश्वर्य प्रदान करो। इति दशमो वर्गः ॥

[६९]

हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पादनिचृज्जगती। २—४, ६ जगती। ७, ८ निचृज्जगती। ९ निचृत्त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥

भा०—(धन्वन् इषुः न) धनुष पर बाण के समान (धन्वन्) अति ऐश्वर्यशाली, प्रभु में (इषुः मतिः) इच्छा के तुल्य मनन करने वाली बुद्धि को भी (प्रति धीयते) अपने दुःखों को दूर करने के लिये रक्खा जाता है। (मातुः ऊधनि वत्सः न) माता के स्तन पर बालक के समान (वत्सः) स्तुतिशील जन (मातुः ऊधनि) उस जगन्निर्माता के सर्वोपरि धारक स्वरूप में (उप सर्जि) लग जाता है। (अग्रे आयती) आगे बढ़ती हुई (उरु धारा इव) विशाल जल-धारा जिस प्रकार अपने आगे के समस्त निम्नस्थलों को (दुहे) पूर्ण कर देती है इसी प्रकार (अग्रे आयती) आगे सब के समक्ष प्रकट होती हुई (उरु-धारा) बहुत से अर्थ या अभिप्राय को धारण करने वाली वेदवाणी वा स्तुति (दुहे) ज्ञान से पूर्ण करती है। (अस्य) इस महान् प्रभु के (व्रतेषु अपि) समस्त उत्तम कर्मों में भी (सोमः इष्यते) यज्ञों में सोम के समान ओषधि वर्ग का उपयोग ही अपेक्षित है। इस प्रकार

प्रभु के सृष्टि आदि कार्यों में (सोमः) सर्व प्रेरक बल और राज्य कार्यों में राजा की सञ्चालन शक्ति आचार्य के उपदिष्ट व्रतों में ब्रह्मचारी को और प्रभु के सेवा कार्यों में जीव को सदा तत्पर होना चाहिये।

उपो॑ म॒तिः पृ॒च्यते॑ सि॒च्यते॒ मधु॑ म॒न्द्राज॑नी चोदते अ॒न्तरा॒सनि॑।
पव॑मानः स॒न्तनिः॑ प्र॒घ्नता॑मिव॒ मधु॑मान्द्र॒प्सः परि॒ वार॑मर्षति॥२॥

भा०—(मतिः उपो पृच्यते) उस प्रभु के प्रति प्रथम बुद्धि या मति को ध्यान द्वारा लगाया जाता है। (मधु) आदरार्थ अतिथि के प्रति जल के तुल्य अति हर्षकर वचन का (सिच्यते) प्रयोग किया जाय। उस समय (आसनि अन्तः) मुख के बीच में (मन्द्राजनी) अति हर्ष उत्पन्न करने वाली वाणी (चोदते) शब्दों का उच्चारण करती है। जिस प्रकार (प्र घ्नताम् इव) उत्तम प्रहार करने वालों में (संतनिः द्रप्सः) उत्तम कार्यकुशल वेगवान् पुरुष वा बाण (वारम् परि अर्षति) वारण करने योग्य शत्रु तक पहुंचता है उसी प्रकार (प्रघ्नताम्) प्रकृष्ट, उत्तम मार्ग से और उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले पुरुषों में से भी (पवमानः) अपने आत्मा को पवित्र करने वाला (संतनिः) अच्छी प्रकार कर्म करने हारा पुरुष (मधुमान्) हर्षयुक्त, बलवान्, ज्ञानवान् (द्रप्सः) द्रुत गति होकर (वारम्) वरण करने योग्य प्रभु की ओर (परि अर्षति) चला जाता है।

अव्ये॑ वधू॒युः प॑वते॒ परि॑ त्व॒चि श्र॑थ्नी॒ते न॒प्तीरदि॑ते ऋ॒तं य॒ते।
हरि॑रक्रान्यज॒तः सं॑य॒तो मदो॑ नृ॒म्णा शिशा॑नो महि॒षो न शो॑भते ३

भा०—जिस प्रकार (वधूयुः अव्ये त्वचि परि पवते) वधू की कामना करने वाला पुरुष भेड़ के आवरणकारी बालों के बने आसन पर विराजता है, वह (नप्तीः श्रथ्नीते) नाना पुत्रों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है। वह (अदितेः ऋतं यते) अतिथि, माता, पिता वा सूर्य

के तेज, पद, अधिकार को प्राप्त करता है। उसी प्रकार (वधूयुः) जगत् को वहन करने वाली ईश्वरी शक्ति का स्वामी परमेश्वर (अव्ये) सर्व-व्यापक (त्वचि) सब को आवरण करने वाले, तमोमय 'प्रधान तत्व' प्रकृति पर (परि पवते) शक्तिशाली होता है। (नप्तीः) अपने अपत्यों के तुल्य अपने से प्रेम से बंधे जीवों को (श्रथ्नीते) मुक्त कर देता है। तब वह जीव (अदितेः ऋतम्) अखण्ड परमेश्वर के सत्य ज्ञानमय स्वरूप को (यते) प्राप्त होता है। (यजतः हरिः) सब से उपासना करने योग्य प्रभु और ईश्वर की उपासना करने वाला भक्त (हरिः) दुःखों का हरण करने वाला, (संयतः) सम्यक् यत्नशील और (मदः) अति हर्षयुक्त होकर (अक्रान्) सब को पार कर जाता है। सब से उत्कृष्ट होकर रहता है। वह (महिषः न) महान् पुरुष के समान (नृम्णा) अपने बड़े २ ऐश्वर्यों को (शिशीते) तीक्ष्ण करता, अधिक शक्तिशाली करता हुआ (शोभते) शोभा को प्राप्त होता है।

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षा मिमाति) वीर्य सेचन में समर्थ बिज़ार सांड शब्द करता है और (धेनवः प्रति यन्ति) गौएं आप से आप उसके पास चली जाती हैं। उसी प्रकार जब (उक्षा) कार्य-भार को अपने कन्धों पर उठाने में समर्थ, मेघवत् सुखों के बरसाने वाला प्रभु वा राजा (मिमाति) गर्जनावत् आज्ञा देता, शासन करता है, तब (धेनवः देवीः) उसके ज्ञान-रस का पान करने वाली नाना कामनाओं से युक्त प्राणधारी प्रजाएं (देवस्य) अन्न, ऐश्वर्य, वेतन, भृति, आश्रय आदि देने वाले तेजस्वी प्रभु के (निष्कृतम् उप यन्ति) स्थान को प्राप्त होती हैं, उसकी शरण आती हैं। वह (सोमः) सब जगत् का शासक प्रभु (अर्जुनः) दुष्टों के नाशकारी (अव्ययम्) सब प्रजा के रक्षक वा अविनाशी, (वारम्)

दुःखों के वारण करने वाले बल या पद को (अति अक्रमीत्) सबसे अधिक होकर प्राप्त करता है। और वह (निक्तं अत्कं न) अति शुद्ध कवच के समान (अत्कं) अति शुद्ध रूप को (परि अव्यत) धारण करता है। प्रभु वा आत्मा का शुद्ध-बुद्ध रूप है।

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥२१॥

भा०—वह (अमर्त्यः) मरणधर्मा जीवों से वा देहों से भिन्न, अविनाशी, (निः-निजानः) सर्वथा शुद्ध रूप है। वह (हरिः) सब दुःखों का हरण करने वाला होकर (रुशता) कान्तिमय (अमृक्तेन) सबसे अधिक शुद्ध, अति अलंकृत (वाससा) विभूतिमय, तेजोमय बाह्य रूप से (परि व्यत) सर्वत्र व्याप्त है। वह (बर्हणा) बृहत् महान् (दिवः पृष्ठम्) सूर्य के पृष्ठ को और (चम्वोः) आकाश और भूमि के (नभस्मयम्) आकाश, सूर्य तेज या मेघमय (उप-स्तरणम्) आच्छादक आवरण को (निः-निजे कृत) सबको शुद्ध करने वा प्रकाश देने के लिये बनाता है।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ६

भा०—(सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्य की रश्मियों के सदृश उज्ज्वल, (द्रावयित्नवः) द्रुत गति से जाने वाले, (मत्सरासः) सबको सुख, हर्ष देने वाले, (प्र-सुपः) शत्रुओं को नाश कर भूमि पर सुला देने वाले वा सबको सुख की नींद सुलाने वाले, सुखप्रद (आशवः) अति वेगवान् (सर्गासः) जगत् को रचने वाले, जलों के समान (ततं तन्तुं) इस विस्तृत जगन्मय पट को (साकम्) एक साथ (ईरते) सञ्चालित करते हैं। (इन्द्रात् ऋते) इस महैश्वर्यवान् प्रभु के सिवाय (किम् चन धाम न पवते) कोई भी लोक गति नहीं कर सकता। वे सब सूर्य की रश्मियों के तुल्य उसी के हैं।

सिन्धो॑रिव प्रव॒णे नि॒म्न आ॒शवो॒ वृष॑च्युता॒ मदा॑सो गा॒तुमा॑शत ।
शं नो॑ निवे॒शे द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ऽस्मे वाजाः॑ सोम तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑ ७

भा०—(निम्ने प्रवणे) निम्न प्रदेश में जिस प्रकार (सिन्धोः) बहते प्रवाह के (वृष-च्युताः) वर्षते मेघ से गिरे हुए (आशवः) वेग से जाने वाले जलसमूह (गातुम् आशत) स्वयं मार्ग या भूमि को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार (वृष-च्युताः) बलवान् सर्वप्रबन्धक, वृत्तिदाता पुरुष से प्रेरित होकर (आशवः) वेगवान् (मदासः) हर्षयुक्त जन (निम्ने प्रवणे) उसके नीचे के पद पर रहकर भी उस (सिन्धोः इव) सिन्धु के समान गंभीर प्रभु की (गातुम्) भूमि वा आज्ञा को प्राप्त करते हैं । कृष हिंसा-संक्लेशन-दानेष्वपि । भ्वा० । कै गै शब्दे ॥ (नः निवेशे) हमारे रहने के स्थान में (अस्मे द्विपदे चतुष्पदे) हमारे दोपायों और चौपायों को (शं) कल्याण, सुख और शान्ति प्राप्त हो । और (अस्मे) हमारे (वाजाः) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां तथा मनुष्य प्रजाएं पुत्र पौत्रादि भी हे (सोम) उत्तम शासक ! सब (तिष्ठन्तु) स्थिर होकर रहें । विनष्ट न हों ।

आ नः॑ पवस्व वसु॒मद्धिर॑ण्यव॒दश्वा॑व॒द्गोम॒द्यव॑मत्सु॒वीर्य॑म् ।
यू॒यं हि सो॑म पि॒तरो॒ मम॒ स्थन॑ दि॒वो मू॒र्धानः॒ प्रस्थि॑ता वय॒स्कृतः॑ ८

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! सर्व-जगदुत्पादक प्रभो ! तू (नः) हमें (वसुमत्) बसने योग्य भूमियों और बसे प्रजाजनों तथा नाना ऐश्वर्यादि से युक्त, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि हित, रमणीय पदार्थों से सम्पन्न (अश्ववत्) अश्वों से सम्पन्न, (गोमत्) गवादि से युक्त, (यवमत्) यवादि अन्नों से समृद्ध, (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्यवत् सम्पदा (आपवस्व) सब ओर से प्राप्त करा । हे (सोम) हे उक्त शासक ! हे (पितरः) पालक सेनापतियो ! (यूयं) आप लोग ही (मम) मेरे पालक और (दिवः मूर्धानः स्थन) आकाश के मूर्धावत् चमकते सूर्य के तुल्य सबके पालक

एवं (दिवः मूर्धानः) इस भूमि के मूर्धा तुल्य शिरोवत् अग्रगण्य और (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित और (वयःकृतः स्थन) बल, अन्न, दीर्घायु, ज्ञान रक्षादि करने वाले होकर रहो।

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥

भा०—(एते) ये (पवमानासः) आगे बढ़ते हुए, वा अपने को पवित्र करते हुए, आत्मपरिशोधन करते हुए (सोमाः) विद्या-जलादि से अभिषेक करते एवं माता, आचार्य आदि के गर्भ से उत्पन्न होते हुए (रथा इव सातिम्) महारथी लोग जिस प्रकार युद्ध में जाते हैं उसी प्रकार (सातिम् इन्द्रं अच्छ प्रययुः) सेवा और भजन करने योग्य प्रभु और गुरु को भली प्रकार प्राप्त होते हैं। वे (सुताः) पवित्र, निष्णात होकर (पवित्रम्) पवित्र (अव्यं) ज्ञानियों के उत्तम ज्ञान को (अति यन्ति) खूब प्राप्त करते हैं और (हरितः वव्रिं हित्वी वृष्टिम्) जिस प्रकार सूर्य की किरणें आवरण को दूर कर वृष्टि को प्राप्त करती हैं। उसी प्रकार वे भी (हरितः) ज्ञान धारण करते हुए (वव्रिं हित्वी) अज्ञान के आवरण और देह के बन्धन को दूर करके (अच्छ वृष्टिं यन्ति) भली प्रकार सुखों की वृष्टि को वा दुखों के परम नाश मोक्ष को प्राप्त होते हैं। उनका जन्मोच्छेद हो जाता है।

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः॥१०॥२२॥

भा०—हे (इन्दो) सोम! आचार्य को प्रभुवत् उपास्य जानकर उसकी शरण में आने वाले! तू (सुमृडीकः) उत्तम सुख हेने हारा और (अनवद्यः) अनिन्दनीय (रिशादाः) दुष्टगुणों का नाशक होकर (बृहते इन्द्राय पवस्व) बड़े भारी ऐश्वर्यवान् प्रभु की ओर बढ़। तू (गृणते)

उपदेश करने वाले के लिये (चन्द्राणि वसूनि) आह्लादकारक नाना ऐश्वर्य प्राप्त करा। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता, गुरु राजा आदि जनो ! आप लोग भी (देवैः) उत्तम गुणों और विजयी विद्वानों सहित (नः प्र अवतं) हमारी रक्षा करो, हमें ज्ञान प्रदान करो और हम से प्रेम करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७०]

रेणुर्वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ६, ६, १० निचृज्जगती । ४, ५, ७ जगती । ८ विराड् जगती । दशर्चं सूक्तम् ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

भा०—(पूर्व्ये व्योमनि) पूर्व विद्यमान एवं विद्या बल में पूर्ण विशेष रूप से सब के रक्षा करने वाले एवं सब के लिये प्राप्त होने योग्य गुरु-आश्रम में (अस्मै) इस विद्याभिलाषी ब्रह्मचारी शिष्य के लिये (सप्त धेनवः) सातों छन्दोमयी वाणियां (सत्याम् आशिरं दुदुह्रे) सत्य आश्रय योग्य ज्ञान-रस का दोहन करती हैं। (यत्) जो (ऋतैः) सत्य ज्ञान वा यज्ञों से (अवर्धत) बढ़ता बढ़ाता है, वह (अन्या चत्वारि) अन्य चार (चारूणि भुवनानि) उत्तम जलों के समान पवित्र शान्तिदायक वेदमय साधनों को भी (निर्णिजे चक्रे) स्वशोधन के लिये अनुष्ठान करे। (२) परमेश्वर के पक्ष में—(अस्मै) इसकी सातों छन्दोमयी वाणियां सत्य ज्ञान रस को प्रदान करती हैं। वही जलोंवत् चारों वेदों को बनाता है, जिनको यज्ञों से समृद्ध करता है।

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः २

भा०—(सः) वह विद्याभिलाषी ब्रह्मचारी एवं ज्ञानवान् संन्यासी (चारुणः अमृतस्य) उत्तम अन्न की (भिक्षमाणः) भिक्षा करता हुआ, (काव्येन) उत्तम विद्वानों से उपदिष्ट वेदमय ज्ञान से (उभे द्यावा) स्त्री पुरुषों के दोनों वर्गों को (वि शश्रथे) विविध मार्गों में प्रेरित करता रहे। वह (मंहना) महान सामर्थ्य से (तेजिष्ठाः अपः परि व्यत) अति तेजो युक्त प्राणों वीर्यों को सब प्रकार से सुरक्षित रक्खे। (यदि) जब कि लोग (श्रवसा) अन्न सहित वा ज्ञानसहित (देवस्य सदः) दाता, सर्वप्रकाशक वा भिक्षाभिलाषी के (सदः) स्थान को लोग (विदुः) प्राप्त हों। परमात्मा पक्ष में—जब लोग उस प्रभु के स्वरूप को ज्ञान से प्राप्त करें तब वह अपने महान् सामर्थ्य से तेजोयुक्त जलों को मेघवत् ज्ञानों का प्रदान करता है।

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

भा०—(उभे जनुषी अनु) स्थावर और जंगम दोनों जन्म वालों के प्रति वा आकाश भूमि दोनों के सम्बन्ध में (अस्य) इसके (ते) वे नाना (केतवः) ज्ञान (अमृत्यवः) मृत्यु से रहित, (अदाभ्यासः) अविनाशी (सन्ति) हों। (येभिः) जिन ज्ञानप्रकाशों से वह (देव्या च नृम्णा च) विद्वान् मनुष्यों के समस्त धनों को (पुनते) प्राप्त कराता है। (आत् इत्) और तो भी (मनना) मननशील मनुष्य उस को (राजानं) अपने राजवत् परम तेजस्वी रूप से (अगृभ्णत) स्वीकार करते हैं।

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ४

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (दशभिः सुकर्मभिः) दसों धर्म के लक्षण धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध अथवा पांच यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और पांच नियम शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन दस (सुकर्मभिः) शुभ कर्मों द्वारा (मृज्यमानः) पवित्र, स्वच्छ होता हुआ, (मध्यमासु) मध्यम, बीच की (मातृषु) मातृतुल्य प्रेमयुक्त व्यक्तियों गुरु जनों के बीच (प्र-मे) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र सचा) अच्छी प्रकार स्थिरता से रहे वह (व्रतानि पानः) व्रतों, यम नियमादि पालनीय कर्मों को पालन करता हुआ (नृ-चक्षाः) नेता जनों वा मनुष्यों वा अपने आत्मा को देखता हुआ (विशौ उभे अनु) दोनों उत्तम और निकृष्ट स्थावर जंगम वा मानव तिर्यङ् दोनों प्रजाओं को बीच में (अमृतस्य चारुणः) अमृत, अविनाशी भोक्ता आत्मा का (पश्यते) साक्षात् करता है । अथवा—(चारुः अमृतस्य व्रतानि पानः उभे विशौ अनु पश्यते) वह शासकवत् अमृत, सर्वव्यापक प्रभु के नियमों का पालन करता हुआ दोनों प्रजाओं पर कृपा दृष्टि रखता है ।

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५।२३॥

भा०—(सः) वह (धायसे) सब को धारण करने वाले (इन्द्रियाय) इन्द्र, परमेश्वर वा आत्मा को प्रिय लगने वाले परमैश्वर्ययुक्त शासन वा मोक्ष आदि पद के प्राप्त करने के लिये (मर्मृजानः) अभिषिक्त, शुद्ध पवित्र होकर (रोदसी अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के तुल्य शासक और शास्य प्रजाओं के बीच शास्ता राजा के तुल्य (रोदसी उभे अन्तः) माता पिता के तुल्य पूज्य जनों के बीच वा दोनों को (हितः) स्थापित वा नियमबद्ध होकर (आ हर्षते) स्वयं हर्षित होता और उनको भी हर्षित करता है । (शुरुधः शर्यहा इव) शत्रु-सेनाओं को जिस प्रकार

वाणों द्वारा मारने वाला धनुर्धर मारता है उसी प्रकार वह (आदेदिशानः) सर्वत्र ज्ञानोपदेश करता हुआ, (वृषा) बलवान्, मेघ के तुल्य उदार होकर (शुष्मेण) अपने बल से, (दुर्मती वि बाधते) दुष्ट विचारों, संकल्पों और दुष्ट बुद्धियों को वा बुरी मति वाले दुष्ट पुरुषों को विविध प्रकार से पीड़ित कर नष्ट करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो वह स्वयं (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मवान् होकर (प्रशस्तये) उत्तम स्तुति के लिये (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (स्वः-नरम्) सुखस्वरूप तेजोमय, सर्वसञ्चालक, प्रेरक परम पुरुष प्रभु को ही (कम्) सुखमय जानकर (अवृणीत) वरण करता है। तब (सः) वह (उस्रियः) उत्तम मार्ग में ले जाने वालों को (मातरा) माता पिता के समान (ददृशानः) देखता हुआ, (मरुताम् इव स्वनः) वायुओं के गर्जते ध्वनि के तुल्य स्वयं भी (स्वनः) उपदेशकर्त्ता होकर (प्रथमम्) सर्वोत्तम (ऋतं) वेद-ज्ञान को (जानन्) जानता हुआ (नानदद् एति) निरन्तर उपदेश करता हुआ परिव्राजकवत् आता है।

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिग्व्ययी ॥ ७ ॥

भा०—वह सोम, ब्रह्मविद्या का जिज्ञासु, मुमुक्षु एवं स्वराट् पद का आकांक्षी पुरुष (भीमः वृषभः) शत्रुओं और पापकारियों के प्रति भयंकर, बलवान्, सब पुरुषों में श्रेष्ठ, (विचक्षणः) विशेष ज्ञान का दर्शन करने वाला होकर, (हरिणी) दुखों वा समस्त प्रजा जनों के चित्तों को हरण करने वाले (शृङ्गे) दुष्टों के नाशक दो सींगों के तुल्य, ज्ञान और कर्म वा वाक् और चित्त दोनों शक्तियों को (शिशानः) तीक्ष्ण, प्रबल करता

हुआ (तविष्यया) शक्ति प्राप्त करने के लिये (स्वति) गर्जना करता है। वह आदृत होकर (सुकृतं योनिम्) उत्तम रूप से बनाये गृह वा स्थान में वा आसन पर वा अपने सुकर्मों से बने लोक में (आ नि सीदति) विराजता है । उस समय उसका (त्वग्) त्वचा, आवरण वा रूप (निः-निग्) अति पवित्र, शुद्ध, (अव्ययी) भेड़ के बने कम्बल वा (गव्ययी) गोचर्म के तुल्य (अव्ययी) अविनाशिनी और (गव्ययी) गो अर्थात् वाणी के ज्ञान से बना होता है। वह उस समय ज्ञानमयी कन्था को धारण करता है।

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

भा०—(हरिः) उत्तम मनुष्य, सब दुःखों का हरण करने वाला, (शुचिः) शुद्ध पवित्र आचारवान् होकर (तन्वम्) अपने शरीर को (अरेपसम्) निष्पाप (पुनानः) स्वच्छ करता हुआ (अव्ये) उत्तम रक्षक वा ज्ञानी के योग्य (सानौ) उच्च पद पर (नि अधाविष्ट) निश्चित रूप से अभिषिक्त किया जाय । वह (मित्राय) स्नेह करने वाले, (वरुणाय सर्वश्रेष्ठ और (वायवे) वायुवद् बलवान् प्रभु का (जुष्टः) प्रिय भक्त हो । उसके लिये (सु-कर्मभिः) उत्तम कर्मवान् पुरुषों द्वारा (त्रिधातु मधु क्रियते) मन, वाणी और कर्म द्वारा तीन प्रकारों से धारण करने योग्य मधुपर्कवत् मधुर, सुखप्रद ज्ञान का उपदेश किया जाय ।

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ९

भा०— हे (सोम) उत्तम ज्ञानोपदेश के अनुशासन करने हारे ! विद्वान् पुरुष ! तू (वृषा) बलवान् होकर (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से युक्त शासक या गुरु के

(हार्दि) हृदयानुकूल, (सोम-धानम् आविश) उत्तम शिष्य वा शास्ता के धारण करने योग्य आश्रम में प्रवेश कर, दीक्षा ले। (बाधात् पुरा) पीड़ा कष्ट होने के पूर्व ही (नः) हमें (दुरिता अति पारय) बुरे आचारणों वा दुःखों से पार कर। तू (क्षेत्रवित् हि) क्योंकि क्षेत्रज्ञ, गणित शास्त्र के वेत्ता के समान ज्ञानी है। तू ही (विपृच्छते) विशेष ज्ञान की जिज्ञासा करने वाले को (दिशः आह) ठीक २ दिशाएं, वा उत्तम २ उपदेश (आह) बतला।

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व। नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः॥१०॥२४॥

भा०—तू (सप्तिः न) सूर्य या अश्व के समान (हितः) नियुक्त वा दीक्षित होकर हे शास्तः! (वाजम् अभि अर्ष) ज्ञानवत् बल और ऐश्वर्य को प्राप्त कर। हे (इन्दो) ज्ञान, तेज से चमकने वाले! तू (इन्द्रस्य) आचार्य के गर्भ में शिष्यवत् (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (जाठरम् आ पवस्व) मध्यभाग में आ। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नावा सिन्धुम् न) नौका से सिन्धु के तुल्य (अति पर्षि) हमें पार कर। और (युध्यन् शूरः न) युद्ध करते हुए शूरवीर पुरुष के समान (नः निदः अव स्पः) हमारे निन्दकों का नाश कर, वा हमें निन्दा योग्य कार्यों से बचा। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७१]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् जगती। २ जगती। ३, ५, ८ निचृज्जगती। ६ पादनिचृज्जगती। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः। हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे॥१॥

भा०—(दक्षिणा आ सृज्यते) उत्साह को उत्पन्न करने वाली प्रबल शक्ति वा दान, वेतनादि की व्यवस्था सर्वत्र बनाई जानी उचित है। क्योंकि उसी द्वारा (शुष्मी) बलवान् राजा शासक भी (आसदम् वेति) राज्य सिंहासन वा राजसभा को वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करता और उसकी रक्षा करता है। वह (जागृविः हरिः) सदा जागने वाला, अप्रमादी, दुष्टों का संहार करने वाला शासक (द्रुहः रक्षसः पाति) द्रोहकारी राक्षसों, विघ्न कारी पुरुषों से राष्ट्र को बचाता है। वह (नभः) उत्तम प्रबन्ध को सूर्य-प्रकाश के तुल्य (ओपशं) व्यापक (कृणुते) कर देता है। (चम्वोः) सेना और प्रजा दोनों के (ब्रह्म पयः) बड़े भारी बल वीर्य को (निः-निजे) राष्ट्र का शोधन करने के लिये (उपस्तिरे) विस्तृत करता है।

प्र कृ॑ष्टि॒हेव॑ शू॒ष ए॑ति॒ रोरु॑वदसु॒र्यं॑ वर्णं॒ नि रि॑णीते अ॒स्य तम्।
जहा॑ति व॒व्रिं पि॒तुरे॑ति निष्कृ॒तमु॑प॒प्रुतं॑ कृणुते नि॒र्णिजं॒ तना॑ ॥ २ ॥

भा०—सोम अर्थात् ज्ञानों, शास्त्रों का अनुशासन करने वाला विद्वान् पुरुष (कृष्टिहा इव शूरः) मनुष्यों को मारने वाले शूरवीर पुरुष के समान स्वयं भी (शूरः) वेग से जाने वाला (कृष्टिहा) सब मनुष्यों तक पहुंच कर (रोरुवत् एति) उपदेश करता हुआ उनको प्राप्त होता है और वह (अस्य) इस प्रजाजन के (तम्) उस, चिरकाल से विद्यमान (अ-सुर्यं वर्णम्) अज्ञानमय, प्रकाशरहित आवरण को (नि रिणीते) दूर कर देता है। वह स्वयं (वव्रिं) अपने अज्ञान आवरण को (जहाति) त्याग देता है और (पितुः निष्कृतम् एति) पिता के पद को प्राप्त करता है। और अपने (तना) विस्तृत (निर्-निजं) अति शुद्ध ज्ञान-ऐश्वर्य को (उपप्रुतं कृणुते) प्राप्त कराता है। स्वयं उत्तम पद पर अभिषिक्त होता है।

अद्रि॑भिः सु॒तः प॑वते॒ गभ॑स्त्योर्वृषा॒यते॒ नभ॑सा॒ वेप॑ते म॒ती।
स मो॑दते॒ नस॑ते॒ साध॑ते गि॒रा ने॑नि॒क्ते अ॒प्सु यज॑ते॒ परी॑मणि ॥३॥

भा०—वह (अद्रिभिः सुतः) मेघ के तुल्य दयालु, आदर योग्य गुरुजनों से (सुतः) उत्पादित और विद्या-व्रत आदि में स्नात होकर (गभस्त्योः) बाहुओं के बल से (पवते) राष्ट्र को शुद्ध-पवित्र करता है और (मती वेपते) बुद्धि के बल से शत्रुओं को कंपाता है । (सः मोदते) वह प्रसन्न होता, अन्यों को प्रसन्न करता है, (नसते) सर्वप्रिय हो जाता है । (गिरा साधते) वाणीमात्र से कार्य को सिद्ध करता है । (गिरा नेनिक्ते) सम्यक् शील व्यक्ति को वाणी द्वारा पवित्र करता है, और (अप्सु परीमणि यजते) प्रजाओं के बीच, वा प्राणों के बीच, सर्वश्रेष्ठ पद पर पूजित होता है ।

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ४

भा०—(सहसः) शत्रुओं को अपने बल से पराजित करने वाले, (मध्वः) हृष्ट पुष्ट, बलवान् प्रजावासी वीर जन (द्युक्षम्) तेज-ऐश्वर्यवान् (पर्वत-वृधम्) मेघ वा पर्वत के समान बढ़ने और प्रजा को बढ़ाने वाले (हर्म्यस्य सक्षणिम्) उत्तम राजभवन के बीच विराजने योग्य पुरुष को (परि सिञ्चन्ति) अभिषेक करते, उसको प्रधान पद देते हैं । (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (गावः) गौओं के तुल्य समस्त (सुहुत-अदः प्रजाः) उत्तम रीति से आहुति करके यज्ञशेष खाने वाली प्रजाएं (ऊधनि पयः) स्तन-भाग में दूध के तुल्य (वरीमभिः) श्रेष्ठ २ वचनों और कर्मों द्वारा (मूर्धन्) सब के शिरोवत् सर्वोच्च पद पर (अग्रियम्) अग्रपद के योग्य उसकी ही (श्रीणन्ति) सेवा करती हैं, उसका ही आश्रय लेती हैं ।

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ५।२५

भा०—(भुरिजोः दश स्वसारः रथं न) दोनों बाहुओं की दसों अंगुलियां बहनों के समान मिल कर जिस प्रकार रथ को प्रेरित करतीं, सन्मार्ग पर

चलती हैं। उसी प्रकार (भुरिजोः) बाहुओं को तुल्य समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्गों में से (दश) दस (सु-असारः) उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने में समर्थ मुख्य विद्वान् प्रकृतियें, अमात्यजन, (रथं) उस बलवान्, प्रधान पुरुष को (सम् अहेषत) एक साथ मिलकर सम्यक् मार्ग में लेजाया करें। वह (अदितेः उपस्थे) भूमि के ऊपर (आजिगात्) चारों ओर जावे, भ्रमण करे वा वह (अदितेः) कभी न दीन रहने वाली, न दबने वाली, सर्वोपरि राजसभा के (उपस्थे) समीप (आजिगात्) आवे। और (मतुथा) मननशील विचारवान् पुरुष (अस्य) इस शासक के (यत् पदं अजीजनन्) जिस पद, अधिकार को प्रकट करें, वह (गोः अपीच्यं पदं) भूमि या वाणी के उसी माननीय पद को (उप त्रयति) प्राप्त करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
एरिंणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

भा०—(श्येनः योनिं न) बाज पक्षी जिस प्रकार अपने घोसलें की ओर आता है उसी प्रकार (श्येनः) प्रशंसनीय गति, सत्-आचार व्यवहारवान् पुरुष (धिया कृतम्) बहुत बुद्धिमत्ता से बनाये, विद्वानों द्वारा, सुविचारित और शिल्पियों द्वारा कारीगरी से बनाये गये (हिरण्ययम्) प्रजा के हितकारी और उनको प्रिय लगने वाले, (सदनं) सभाभवन और (आसदम्) बैठने योग्य आसन को वह (देवः) तेजस्वी, मानाभिलाषी पुरुष (आ ईषति) प्राप्त होता है। और विद्वान् जन (ईम्) उस (प्रियम्) सर्वप्रिय जन को (गिरा) वाणी द्वारा (बर्हिषि) वृद्धियुक्त, उस प्रजा के अध्यक्ष योग्य आसन पर (आ रिणन्ति) बैठने को प्रेरित करते हैं। और वह (अश्वः) अश्व के समान बलवान्, राज्य-रथ को उठाने में समर्थ, (यज्ञियः) पूजायोग्य होकर (यज्ञियः

अश्वः न) अश्वमेध यज्ञोपयोगी अश्व के तुल्य (देवान् अपि-एति) विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करे, उनसे मिलकर राज्य-कार्य करे ।

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥

भा०—वह सर्व-जगत् का शासक, राष्ट्र शासक के समान ही (अरुषः) रोषरहित, वा तेजस्वी, (कविः) क्रान्तदर्शी, (दिवः) आकाश और भूमि पर सूर्य और अग्नि के तुल्य (परा) दूर २ तक (वि-अक्तः) विविध तेजों से प्रकाशित होने वाला, (त्रि-पृष्ठः) तीनों लोकों को पोषण करने वाला, (वृषा) बलवान् , प्रजाओं पर सुखों की मेघवत् वर्षा करने वाला, उत्तम प्रबन्धक, होकर (गाः अभि अनविष्ट) वाणियों, आज्ञाओं को प्रदान करता है । वह (सहस्र-नीतिः) सहस्रों बलवान् नीतियों वा सहस्रों नेत्रों वाला, (यतिः) सर्वनियन्ता, यत्नवान् , (परायतिः) सबका परम प्राप्य स्थान, परायण है । वह (रेभः न) उपदेष्टा के समान (पूर्वीः उषसः) पूर्व के उषा कालों में भी सूर्यवत् पूर्ण समृद्ध, पाप-शत्रु आदि के दाहक शक्तियों को प्राप्त करके राजा के तुल्य अनादि कालों से (विराजति) प्रकाशित है ।

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ८

भा०—(वर्णः) इसको वरण करने वाला प्रजाजन (अस्य रूपं) इसके रूप को (त्वेषं) कान्तियुक्त (कृणुते) करता है और (सः यत्र अशयत्) वह प्रभु वा विद्वान् शासक जहां रहता है वहां (समृता) संग्राम में वा उस उत्तम (सम्-ऋता) भूमि में (स्रिधः सेधति) हिंसक जनों और शत्रु सेनाओं का नाश करता है । वह (अप्साः) जल देने वाले मेघ के समान (दैव्यं जनं) देव, विद्वानों के प्रिय जनपद को (स्वधया) जल से अन्नवत् अपनी धारक-पोषक शक्ति से (याति) प्राप्त

होता है। और वह (गो-अग्रया सुस्तुती) दधि, दुग्धादि मुख्य पदार्थ से युक्त उत्तम स्तुति अर्थात् मधुपर्क द्वारा उत्तम सत्कार को (सं नसते) प्राप्त होता है। 'गो' शब्द मधुपर्क का वाचक मनु में आता है जैसे—

अर्हयेत् प्रथमं गवा। (अ० २)

उ॒क्षेव॑ यू॒था प॑रि॒यन्न॑रावी॒दधि॒ त्विषी॑रधित॒ सूर्य॑स्य।
दि॒व्यः सु॑प॒र्णोऽव॑ चक्षत॒ क्षां सोम॒: परि॒ क्रतु॑ना पश्यते॒ जाः॥९।२६

भा०—(यूथा परियन्) गो-यूथों को प्राप्त होता हुआ जिस प्रकार (उक्षा इव) बिजार सांड हर्ष ध्वनि करता है उसी प्रकार (यूथा परियन्) सैन्यसमूहों वा प्रजासमूहों को प्राप्त होकर वह भी (रावीत्) बल पूर्वक आज्ञा, उपदेश आदि प्रसन्नतापूर्वक प्रदान करता है। और (यूथा अधि) उन सैन्य व प्रजासमूहों पर अध्यक्ष होकर (सूर्यस्य त्विषीः) सूर्य की कान्तियों को (अधित) धारण करता है। वह (दिव्यः) ज्ञान और तेज से सम्पन्न होकर (सुपर्णः) उत्तम शुभ ज्ञान और पालन, बल तथा यान-साधनों से सम्पन्न होकर (क्षाम् अव चक्षते) भूमि पर कृपासहित देखता और उनको अनुशासन करता है। वह (सोमः) विद्वान् शासक (क्रतुना) क्रिया-सामर्थ्य और ज्ञान से (जाः परि पश्यते) सब प्रजाओं को देखता है। इति षड्विंशो वर्गः॥

[७२]

हरिमन्त ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१—३, ६, ७ निचृज्जगती। ४, ८ जगती। ५ विराड् जगती। ९ पादनिचृज्जगती॥

नवर्चं सूक्तम्॥

हरिं॑ मृजन्त्यरु॒षो न यु॑ज्यते॒ सं धे॒नुभि॑: क॒लशे॒ सोमो॑ अज्यते।
उद्वाच॑मी॒रय॑ति हि॒न्वते॑ म॒ती पु॑रु॒ष्टु॒तस्य॒ कति॑ चित्परि॒प्रिय॑:॥१॥

भा०—प्रजाजन (हरिम्) सबके मनों और दुःखों को हरने वाले का (मृजन्ति) अभिषेक करते हैं। वह (अरुषः न) वेगवान् अश्व वा सूर्य के समान (धेनुभिः) प्रसन्न करने वाली वाणियों द्वारा (सं युज्यते) रथ में अश्व के तुल्य, राष्ट्रकार्य में (सं युज्यते) नियुक्त किया जाता है। और वह (सोमः) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी अभिषेक योग्य, राष्ट्र-भार को वहन करने वाली शक्ति का स्वामी, वा उसका इच्छुक शास्ता जन, (कलशे) राष्ट्र में (अज्यते) प्रकाशित होता है, वा सन्मार्ग पर चलाया वा सुशोभित किया जाता है। वह (हिन्वते) उसको बढ़ाने वाले प्रजाजन के हितार्थ (वाचम् उत् ईरयति) उत्तम प्रभुवाणी का उपदेश करता है। (पुरु-स्तुतस्य) बहुत से प्रशंसित जन की (मती) ज्ञान वा बुद्धि द्वारा (कतिचित्) कितने ही (परिप्रियः) सबको प्रसन्न करने वाले कार्य करता है।

साकं वंदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

भा०—(यदि) जब (सुगभस्तयः नरः) उत्तम बाहुओं वाले. बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी नेता पुरुष (स-नीडाभिः) एक ही देश में रहने वाली (दशभिः) दशों दिशाओं की प्रजाओं सहित (सोमं मृजन्ति) उत्तम शासक का अभिषेक करते हैं और (इन्द्रस्य जठरे) उस ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक के पेट में (काम्यं मधु दुदुहुः) कामना योग्य मधुपर्क प्रदान करते हैं वा, उस ऐश्वर्यवान् के शासन में कामना योग्य बल देते हैं तब (बहवः मनीषिणः) बहुत से मननशील विद्वान् पुरुष (साकं वदन्ति) एक साथ भाषण करते हैं, उसका गुणवर्णन और स्तुति करते हैं।

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम्।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥

भा०—वह उत्तम शास्ता, (अरममाणः) कहीं भी सुख न पाता हुआ, (गाः अति एति) आत्मा के तुल्य समस्त भूमियों को अति क्रमण कर जाता है। उनका (तिरः) तिरस्कार करके (सूर्यस्य दुहितुः) सूर्य को तेज से पूर्ण करने वाला, उसकी पुत्री के समान उषा के तुल्य कान्ति-युक्त स्त्रीवत् (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के प्रिय अभिलषित मनोरथ को पूर्ण करने वाली प्रजा के (रवम् अभि एति) लोकमत के प्रति ध्यान देता है। और वह (विनंगृसः) बाहु के समान विविध काम्य पदार्थों को ग्रहण करने वाला क्षत्रिय वीर (अस्मै जोषम् अनु अभरत्) इस राष्ट्र के हित को लक्ष्य करके उसका भरण पोषण करता है और (द्वयीभिः स्वसृभिः जामिभिः) दोनों प्रकार की, स्वयं उस तक पहुंचने वाला बहुतों के तुल्य विद्वान् बलवान्, निर्बल धनी और निर्धन प्रजाओं सहित वह (सं क्षेति) एक ही राष्ट्र में निवास करता है।

नृधू॑तो॒ अद्रि॑षुतो ब॒र्हिषि॑ प्रि॒यः पति॒र्गवां॑ प्र॒दिव॒ इन्दु॑र्ऋ॒त्वियः॑ ।
पुर॑न्धि॒वान्मनु॑षो यज्ञ॒साध॑नः॒ शुचि॑र्धि॒या प॑वते॒ सोम॑ इन्द्र ते ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राष्ट्र के समृद्ध जन! (ते) तेरे हितार्थ (शुचिः) हृदय में शुद्ध, ईमानदार (सोमः) शासक (धिया) बुद्धि और कर्म से परीक्षित करके (पवते) तुझे प्राप्त हो। वह (नृ-धूतः) उत्तम पुरुषों से अभिषिक्त और (अद्रि-सुतः) मेघ वा पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों से प्रेरित, (प्रियः) प्रजाओं को प्रिय, उनको प्रसन्न करने वाला, (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान और तेज से सम्पन्न (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् और दयार्द्र भाव से युक्त, (ऋत्वियः) समय २ पर अनुकूल कर्म करने वाला, (बर्हिषि) महान् राष्ट्र वा इस भूमिलोक पर स्थित (गवां पतिः) समस्त भूमियों राजाज्ञाओं, कानूनों का पालक, रक्षक (पुरन्धिवान्) नगर को धारण करने वाली सभाओं वा बहुत बुद्धियुक्त पुरुषों का स्वामी, (मनुषः) मनुष्यों के (यज्ञ साधनः) यज्ञों, उत्तम कर्मों, सत्संगों को साधने वाला होता है।

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः ॥५।२७

भा०—हे सेनापति सोम! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (सोमः) बल-वीर्य (नृ-बाहुभ्याम्) नायक वीर पुरुषों की बाहुओं से (चोदितः) प्रेरित और (अनु-स्वधम्) अपने २ कर्मसामर्थ्य, भरण-पोषण वा वेतन अनुसार (धारया) राजाज्ञा, वा वेदवाणी द्वारा (सुतः) शिष्यवद् अनुशासित, शिक्षित होकर (ते पवते) तेरे लिये कार्य करता है। तू (क्रतून् आ अपाः) नाना कर्मों को पूर्ण कर। और (अध्वरे) हिंसारहित, युद्ध अर्थात् साम, दान, भेद द्वारा शत्रु-हनन कार्य और अध्वर अर्थात् प्रजापालन के कार्य में (मतीः) समस्त बुद्धियों को (सम् अजैः) सम्यक् प्रकार से विजय कर। (द्रुसत् वेः न) वृक्ष पर बैठे पक्षी के समान तू भी (हरिः) सर्वप्रिय, वा सूर्यवत् होकर (चम्वोः आसदत्) दोनों सेनाओं के ऊपर अध्यक्ष होकर रह। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ६

भा०—(मनीषिणः कवयः) बुद्धिमान्, दूरदर्शी, (अपसः) कर्म-कुशल पुरुष उसके (अंशुम्) सर्वव्यापक (स्तनयन्तम्) मेघवत् गर्जन वाले, वा माता के स्तनवत् सब प्राणियों को दुग्धवत् अन्न प्राण देने वाले मातृवत्, गुरुवत्, उपदेशप्रद (अक्षितं) अक्षय, अविनाशी, (कविं) क्रान्तदर्शी, पुरुष को प्राप्त कर उससे (ऋतस्य अक्षितं) सत्य ज्ञान वेद का अक्षय कोष (दुहन्ति) प्राप्त करते हैं। और (मतयः) विचारवान् पुरुष (गावः) गौओं के समान, आत्मा के प्रति इन्द्रियों के तुल्य (संयतः) एक साथ यत्नशील होकर वा संयत सुसम्बद्ध, सुव्यवस्थित होकर (ऋतस्य योना) सत्य ज्ञान के आश्रय (सदने) परम आश्रय में (पुनर्भुवः) पुनः २ प्रकट होने वाले (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ७

भा०—सोम का स्वरूप। (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी की नाभि वा केन्द्र में स्थित वह बल जो (धरुणः) उसको धारण कर रहा है, और (महः दिवः नाभा धरुणः) बड़े भारी आकाशमण्डल के केन्द्र में स्थित बल जो उसको धारण कर रहा है, और वह बल जो (अपाम् ऊर्मौ) प्राणों और जलों और लोकों के बीच तरंगवत् सर्वोन्नत मुख्य प्राणाधार और सूर्यादि लोक में विद्यमान उनको धारण करता है, और जो बल (सिन्धुषु अन्तः) समुद्रों और वेग से बहने वाले जलों में है वह (सोमः) सबका प्रेरक, सबका शासक बल (इन्द्रस्य वज्रः) ऐश्वर्ययुक्त उस महान् प्रभु का बल है जो (वृषभः) समस्त सुखों की वर्षा करने वाला, (विभु-वसुः) बड़े २ लोकों में व्यापक, (मत्सरः) सबको सुखी, प्रसन्न करने वाला, (हृदे) सबके हृदय में (चारु पवते) उत्तम रीति से प्राणवत् गति करता है।

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि॥८॥

भा०—हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञा और कर्म करने हारे! शक्तिशालिन्! (स्तोत्रे) स्तुति करने वाले और (आधून्वते च) और अपने चित्त के मलों और विक्षेपों को साफ़ कर डालने और कषाय मलों को त्याग देने वाले को (शिक्षन्) ज्ञान प्रदान करता हुआ (सः) वह (पार्थिवं रजः) पृथिवी रजोरूप पार्थिव लोक या देह को भी (परि पवस्व) मेघवत् सूर्य-प्रकाशवत् प्राप्त हो, उसे व्याप। (नः) हमें (सादन-स्पृशः) गृह आदि प्रदान कराने वाले या घर में आये (वसुनः) ऐश्वर्य से (मा निर्भाक्) निर्भक्त या पृथक् मत कर और हम (बहुलम्)

बहुतसा (पिशंगम् रयिम् वसीमहि) पीले रंग का ऐश्वर्य, सुवर्णादि धारण करें ।

आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उपमास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि॥८।२८

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतदातु सहस्रदातु) सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में सुखादि देने वाला (अश्व्यं पशुमत् हिरण्यवत्) अश्व, पशु और सुवर्णादि से युक्त ऐश्वर्य (आ) प्रदान कर । तू हमारे लिये (बृहतीः रेवतीः इषः) बहुत बड़ी धनादि सम्पन्न, सुखदायी अन्न समृद्धियां (उपमास्व) उत्पन्न कर । हे (पवमान) सर्वव्यापक ! (नः स्तोत्रस्य अधिगहि) तू हमारे स्तुति वचन को खूब स्वीकार कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[७३]

पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २—७ निचृज्जगती । ८, ९ विराड् जगती ॥

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् १

भा०—(स्रक्वे) सर्जन करने योग्य इस देह या विराट् जगत् में (धमतः द्रप्सस्य) द्रुतगामी रस के तुल्य ज्ञानवान् प्रभु के उपदेश करते हुए वा रसस्वरूप उस प्रभु के जगत् का निर्माण करते हुए, (ऋतस्य योना) तेज और परम ज्ञान के आश्रयभूत उस प्रभु में (योना नाभयः) गृह में तन्तुओं के तुल्य ही समस्त (नाभयः) बद्ध जीव (सम् अस्वरन्) एक साथ उसकी स्तुति करते और (सम् अरन्त) संगत होते हैं । (सः असुरः) समस्त जीवों को प्राणों का देने वाला उस प्रभु ने (आरभे) कार्य करने के लिये (मूर्ध्नः) सिर के भी (त्रीन् चक्रे) तीन प्रमुख भाग

बनाये। ये (सत्यस्य नावः) ये सत्य की नौकाएं (सुकृतम्) शुभ कर्म करने वाले को ही (अपीपरन्) पार कर देती है।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्। मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

भा०—(सम्यञ्चः) एक साथ संगत हुए (महिषाः) गुणों में महान्, बड़े ऐश्वर्यवान् जन (सम्यक् अहेषत) उस प्रभु की अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं, और वे (वेनाः) तेजस्वी सूर्य के तुल्य नाना ऐश्वर्यों की की इच्छा करने वाले जन, (सिन्धोः ऊर्मौ अधि) समुद्र या महानद के तुल्य महान् उस प्रभु के आनन्द तरंग या उत्तम ज्ञान में (अधि) पहुंच कर (अवीविपन्) उसकी स्तुति करते हैं। वे (मधोः धाराभिः) उत्तम ज्ञान से युक्त वा साधु अर्थात् ऋग्वेद की वाणियों द्वारा (अर्कं जनयन्तः) स्तुति करते हुए (इन्द्रस्य) उस महान् प्रभु परमेश्वर की ही (प्रिया) सब को प्रिय लगने वाली (तन्वम्) विस्तृत स्तुति, महिमा को ही (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं।

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्। महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

भा०—(पवित्रवन्तः वाचम् परि आसते) जिस प्रकार पवित्र ग्रहण कर शिष्य वक्ता गुरु के चारों ओर ज्ञान-शिक्षा ग्रहण करने के लिये विराजते हैं उसी प्रकार (पवित्रवन्तः) पवित्र हृदय और आचारवान् जन (वाचम् परि आसते) वेद के उपदेश करने वाले वेदमय प्रभु की उपासना करते हैं। वह (एषाम् प्रत्नः पिता) उन जीवों, लोकों का अनादि सिद्ध पालक प्रभु (एषां व्रतम् अभि रक्षति) इनके ज्ञान, कर्म और अन्नादि की आचार्यवत् ही रक्षा करता है। (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ प्रभु (महः समुद्रं) बड़े भारी समुद्र के तुल्य ज्ञानसागर को (तिरः दधे) अपने भीतर धारण

करता है। (धीराः) ध्याननिष्ठ पुरुष ही (धरुणेषु) अपने धारणाशील हृदयों में उसको (आरभं शेकुः) प्राप्त कर सकते हैं। तिरः सत इति प्राप्तस्य। निरुक्तम्।

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः॥४

भा०—जिस प्रकार (सहस्र-धारे नाके) सहस्रों लोकों को धारण करने वाले वा जगत् के धारक आकाश में (दिवः) समस्त तेजस्वी गतिमान् गगनविहारी सूर्यादिलोक वा किरणें एक साथ (सम् अस्वरन्) गति करते, चमकते हैं और वे (असश्चतः) कहीं आसक्त न रह कर भी (मधु-जिह्वाः) जल को ग्रहण करने वाले, शब्द-अग्नि-संयोग को अपने अग्रभाग में धारने वाले होते हैं उसी प्रकार (दिवः) तेजोयुक्त ज्ञानी पुरुष (असश्चतः) निःसंग और (मधु-जिह्वाः) ज्ञान-युक्त, मधुर वाणियों को बोलने वाले, वेदवक्ता लोग (सहस्र-धारे) सहस्रों वेद वाणियों और शक्तियों को धारण करने वाले (नाके) परम सुखमय मोक्ष रूप प्रभु में विराजते हुए (सम् अस्वरन्) मिलकर उसका अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं। इसी प्रकार मधुर वाणी वाले असंग विद्यार्थी जन असंख्य या 'सहस्र' नाम ऋग्वेद के धारक आचार्य के अधीन अच्छी प्रकार वेद पाठ करें। (अस्य भूर्णयः) इसके प्रजापालक जन रश्मियों वा आकाशस्थ सूर्यादि के तुल्य ही (स्पशः) दूतों के तुल्य यथार्थ बात को दर्शाने वाले (न निमिषन्ति) कभी निमेष को प्राप्त नहीं होते, कभी छिपते या बन्द नहीं होते, वे (पदे-पदे) पद पद पर (पाशिनः) आकर्षण शक्ति के जालों से युक्त सूर्यादि के तुल्य ही (पाशिनः) दुष्टों के संयम साधनों से सम्पन्न होकर ही (सेतवः सन्ति) दुष्ट जनों को बांधने वाले, जल के बंधों के समान मर्यादा का स्थापन करने वाले होते हैं।

पि॒तुर्मा॒तुरध्या ये स॒मस्व॑रन्नृ॒चा शोच॑न्तः स॒न्दह॑न्तो अव्र॒तान्।
इन्द्र॑द्विष्टा॒मप॑ धमन्ति मा॒यया॒ त्वच॒मसि॑क्नीं॒ भूम॑नो दि॒वस्परि॑॥५।२६

भा०—जिस प्रकार रश्मियें, किरणें (पितुः मातुः अधि सम् अस्वरन्) पालक सूर्य से उत्पन्न होकर माता पृथिवी के ऊपर अधिक तेज से चमकते हैं, वे (ऋचा शोचन्तः संदहन्तः) तेज से चमकते और संतप्त करते हुए, (इन्द्र-द्विष्टाम् असिक्नीं त्वचम् अप धमन्ति) सूर्य की विरोधिनी काली रात्रि को दूर करते हैं उसी प्रकार (ये) जो महापुरुष सच्चरित्र जन हैं वे (पितुः मातुः अधि) पिता से और माता से वा पिता माता के तुल्य गुरु जन से (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञानोपार्जन करते हैं। वे (ऋचा शोचन्तः) ऋग्वेद के उत्तम ज्ञान से तेजोयुक्त होकर (अव्रतान्) अकर्म, विकर्मों को, वा व्रतों से भिन्न कर्मों और व्रतशून्य, कुकर्मियों को (सं-दहन्तः) पीड़ित, दग्ध, निर्मूल करते हुए (इन्द्रद्विष्टाम्) आत्मा, प्रभु और राजादि से असेवित, उनके अप्रीति भाजन (असिक्नीम् त्वचम्) काले, अज्ञानमय अवृद्धिशील आवरण को (अप धमन्ति) दूर करते हैं। वे ही (भूमनः) भूमा स्वरूप उस महान् (दिवः) तेजोमय, ज्ञानमय, सुखमय परमेश्वर से (परि) परम सुख को प्राप्त करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

प्र॒त्नान्माना॒दध्या ये स॒मस्व॑र॒ञ्छ्लोक॑यन्त्रासो रभ॒सस्य॒ मन्त॑वः।
अपा॑न॒क्षासो॑ बधि॒रा अ॑हासत ऋ॒तस्य॒ पन्थां॒ न त॑रन्ति दु॒ष्कृतः॑॥६॥

भा०—विद्वानों और अविद्वानों का भिन्न २ मार्ग। (ये) जो विद्वान् जन (प्रत्नात् मानात्) अति प्राचीन ज्ञानमय, सर्वनिर्माता प्रभु से (अधि) उसके अधीन रहकर (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करते हैं वे (श्लोक-यन्त्रासः) श्लोक अर्थात् वेदमय ज्ञान से अपने में नियन्त्रित और व्यवस्थित करते हुए (रभसस्य मन्तवः) समस्त कर्म वा सर्व-कर्त्ता प्रभु को भला प्रकार जानने वाले होते हैं। और (बधिराः) जो गुरु-वचनों के प्रति बहरे, वा प्राणियों के प्राणों का वध वा बंधन करने वाले, बहुश्रुत

और (अनक्षासः) बिना आँख के, अविवेकी, अनालोचक, ज्ञानान्ध होते हैं वे (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय वेद के धर्म, वा यज्ञ के (पन्थाम्) सत् मार्ग को (अप अहासत) दूर ही त्याग देते हैं। वे (दुः-कृतः) दुष्ट कर्मों के करने वाले जन (न तरन्ति) पार नहीं जाते।

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ७

भा०—(वितते सहस्र-धारे) अति विस्तृत, दश सहस्र वाणी वा ऋचाओं से युक्त ऋग्वेदमय (पवित्रे) अति पवित्र ज्ञानसागर में वा सहस्रों धारक शक्तियों से युक्त, व्यापक, परमपावन ज्ञानमय प्रभु में (मनीषिणः) मननशील, मनस्वी (कवयः) क्रान्तदर्शी और तत्वज्ञानी और वाग्मी लोग (वाचम् आ पुनन्ति) अपनी वाणी का प्रयोग कर उसको भी पवित्र कर लेते हैं। (एषाम्) इनमें से जो (रुद्रासः) प्रजाओं को मर्यादा में रोकने वाले, वा उत्तम उपदेष्टा प्रजाजनों के रोग-पीड़ाओं को हरने वाले (इषिरासः) अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले, उपदेष्टा जन हैं वे (अद्रुहः) किसी से द्रोह न करने वाले, सब प्राणियों के प्रति द्वेषभाव से रहित, (सु-अञ्चः) उत्तम पूजा योग्य, सुख प्राप्त कराने वाले (सु-दृशः) उत्तम विवेकदर्शी, सौम्य नयन, और (नृ-चक्षसः) मनुष्यों के हिताहित देखने वाले हों।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ८

भा०—न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। वह (ऋतस्य गोपाः) सत्य, तेज, न्याय और यज्ञ का रक्षक, (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न शास्ता, प्रभु (न दभाय) किसी को पीड़ा वा छलने के लिये नहीं हो। (सः) वह (त्री पवित्रा) मन, वाणी और कर्म तीनों को पवित्र, रूप में वा तीनों वेदों को (हृदि अन्तः) हृदय के बीच (आ दधे) धारण

करे। (सः विद्वान्) वह ज्ञानी (विश्वा भुवना अभि पश्यति) समस्त-जनों और लोकों को प्रभुवत्, सब प्रकार से देखे, न्याय का अनुशासन करे। और (अजुष्टान्) प्रजा जनों से अप्रीतियुक्त, उनके द्वेषी (अव्रतान्) व्रत, नियम, कर्मादि से रहित, नीच, अपराधी, दुष्ट पुरुषों को (कर्त्ते) गढ़े में रख कर दण्ड-व्यवस्था में रख कर (अव विध्यति) उनको शरीर के छेदन-भेदन करने योग्य दण्ड से, अपमानपूर्वक दण्डित करे। (२) इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर सत्य का पालक, हृदय में तीनों पवित्र वेदों ऋक्, साम, यजु; मन्त्र, गानप्रकार और कर्म द्योतक गद्यांश तीनों को हृदय में प्रकाशित करता है, वह सर्वद्रष्टा है, वह (कर्त्ते अजुष्टान् अव्रतान्) अभक्त, सत् कर्मों में न लगे लोगों को भी (अव विध्यति) निची योनियों में गिरा कर दण्डित करता है। 'कर्त्ते'—गर्त्ते। कृन्तनयोग्यछेदनभेदनरूपे कर्मणि वा करोतेर्वौणादिके तपरे कर्त्तं कर्म तस्मिन्। कर्त्ते कर्मणि अजुष्टान्। अथवा कर्त्ते अवविध्यति इत्युभयत्र योजना।

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥६॥३०॥

भा०—(वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, शासक की (जिह्वायाः) वाणी या जिह्वा के (पवित्रे) परम पवित्र (अग्रे) अग्रभाग पर (ऋतस्य तन्तुः विततः) ऋत, सत्यज्ञान, न्याय, धर्म का तन्तु, सूत्र, यज्ञ, विस्तृत रहता है। (धीराः चित्) अति पूज्य, बुद्धिमान् पुरुष (मायया) बुद्धि के बल से (तत् सम् इनक्षन्तः) उसको प्राप्त करते और (आशत) सम्यक् उपयोग करते हैं। (अत्र) इस लोक में (अप्रभुः) जो शासक वा असमर्थ अजितेन्द्रिय है। वह (कर्त्तम् अवपदाति) गढ़े में गिरता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

[७४]

कक्षीवानृषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ६ विराड् जगती। ४, ७ जगती। ५, ६ निचृज्जगती। ८ निचृत्त्रिष्टुप्॥
नवर्चं सूक्तम्॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

भा०—(यत्) जब (वाजी) बलवान्, वा अन्न का स्वामी, सूर्य (अरुषः) खूब प्रकाशमान होकर (वने) अन्तरिक्ष में (जातः शिशुः न) उत्पन्न बालक के तुल्य सुन्दर कान्तिमान् होकर (अव चक्रदत्) गात करता है, और (स्वः सिषासति) अपना प्रखर ताप प्रदान करता है। तब वह (पयः-वृधा रेतसा) प्राणियों के पोषक अन्न को बढ़ाने वाले जल से (सचते) युक्त हो जाता है। तब (तम्) उस प्रभु परमेश्वर से हम (सुमती) उत्तम स्तुति द्वारा (सप्रथः) खूब विस्तृत (शर्म) शरण योग्य घर की (ईमहे) याचना करते हैं। (२) बालक पक्ष में—नवजात शिशु (वने अव चक्रदत्) मातृ-गर्भ में जल राशि में डोलता हुआ गर्भ से नीचे खिसक आता है, (यत्) जो (वाजी) वेगवान् होकर (अरुषः) कान्तियुक्त होकर (स्वः सिसासति) रोदन का शब्द करता है। तब वह (दिवः) उसे चाहने वाली, सुप्रसन्न माता के (पयःवृधा रेतसा) दूध को बढ़ाने वाले बल वीर्य से पुष्ट होता है। उसी पुत्र सन्तान को लक्ष्य कर हम विस्तृत घर की कांक्षा करते हैं।

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर सब जगत् का उत्पादक (धरुणः) सब संसार को धारण करने, और (स्कम्भः) संसार-भवन को स्तम्भवत् थामने वाला, सब का आश्रय है, वह (सु-आततः) सर्वत्र अच्छी प्रकार फैला हुआ है। वह (आपूर्णः) सब ओर से पूर्ण है, उसमें तिलमात्र भी न्यूनता नहीं है। वह (अंशुः) सर्वत्र व्यापक है। वह ही (इमे मही रोदसी परि एति) इन दोनों विशाल आकाश और भूमि को भी सब ओर से व्याप रहा है। वह इन दोनों को (आवृता) पुनः २ आवर्त्तन

करने वाले चक्र से (यक्षत्) शक्ति, अन्न, जल जीवन का प्रदान करता है, मानों इनमें वह यज्ञ करता है वह (कविः) बड़ा क्रान्तदर्शी, मेधावी है, इन (समीचीने) परस्पर मिले, सुसम्बद्ध दोनों को (दाधार) धारण एवं पालन पोषण करता है, वह ही (इषः सम् दाधार, इषः संयक्षत्) समस्त प्रेरक शक्तियों को धारण करता है और वही समस्त वृष्टि और अन्न सब को प्रदान करता है।

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

भा०—(यः) जो (वृषा) वर्षा करने में समर्थ (उस्रियः) किरणों वाला, सूर्य (इतः) इस भूलोक से (अपां नेता) जलों को ऊपर ले जाने वाला है, (यः इतः-ऊतिः) जो इस भूलोक की रक्षा करता है जो (ऋग्मियः) स्तुत्य है। (यः) जो (वृष्टेः ईशे) वृष्टि करने में समर्थ होता है (अदितेः ऋतं यते) भूमि से अन्न और अन्तरिक्ष से जल प्राप्त कराने वाले सूर्य के लिये (सु-कृतं) उत्तम रीति से सूक्ष्म २ रूप में जलवाष्प कणों द्वारा छिन्न भिन्न, (सोम्यं मधु) जगत् उत्पादन करने वाला जल ही (महि प्सरः) उसका बड़ा भारी भोजन होता है, और उस (अदितेः) सूर्य का यह महान् आकाश ही (उर्वी गव्यूतिः) बड़ा भारी मार्ग होता है।

अध्यात्म में—प्रभु परमेश्वर वा आत्मा सब सुखों का वर्षक बलवान् (अपां नेता) सब लोकों और लिङ्ग शरीरों और प्राणों का नायक है। जगत् रूप सुन्दर रचना यही उस कालमय प्रभु का बड़ा भारी अन्न है। (ऋतं यते) सत्यज्ञान, मोक्ष को प्राप्त करने वाले के लिये तो उस (अदितेः) अदीन, अविनाशी प्रभु का मार्ग ही बड़ा भारी मार्ग है।

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः॥४॥

भा०—जब (नभः) आकाश या सूर्य से (आत्मन्-वत्) अपने ही

तेजः सामर्थ्य से युक्त और (घृतम्) तेजयुक्त (पयः) वीर्य (दुह्यते) प्राप्त होता है, पृथिवी लोक तक पहुंचता है, तब (ऋतस्य नाभिः) अन्न का मूल कारण (अमृतम्) जल (वि जायते) विशेष रूप से उत्पन्न होता है (तम्) उसको (सम्-ईचीनाः) एक साथ मिलकर पृथिवी तक आने वाले (सु-दानवः) उत्तम दान करने वाले वा जल को सूक्ष्म २ कणों में खण्डित करने वाले (नरः) जलग्राही किरण (तम् प्रीणन्ति) उस जल को वायु में तृप्त कर देते हैं, पूर्ण कर देते हैं, और अनन्तर (पेरवः) जो रश्मियें जल को पान करते हैं वे ही (हितम्) वायु में रखे उस जल को (अव मेहन्ति) नीचे वर्षा रूप में गिराते हैं।

अरा॑वीदं॒शुः सच॑मान ऊ॒र्मिणा॑ देवा॒व्यं१॒ मनु॑षे पिन्वति॒ त्वच॑म्।
दधा॑ति॒ गर्भ॒मदि॑तेरु॒पस्थ॒ आ येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥५॥३१

भा०—वही (अंशुः) व्यापक तत्व (ऊर्मिणा) ऊपर स्थित जल-संघ वा वायु के साथ (सचमानः) मिलता हुआ (अरावीत्) मेघ बन गर्जन करता है। वही (मनुषे) मनुष्य की (देवाव्यम् त्वचम्) प्राणों इन्द्रियों को रक्षा करने वाले त्वचा, देह को (पिन्वति) बढ़ाता है। अथवा—(मनुषे) मनुष्यों के हितार्थ (देवाव्यं) किरणों में संगत (त्वचं) भूमि के ऊपर के पृष्ठ को जल रूप में (पिन्वति) सेचित करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स॒हस्र॑धा॒रेऽव॒ ता अ॑स॒श्चत॑स्तृ॒तीये॑ सन्तु॒ रज॑सि प्र॒जाव॑तीः।
चत॑स्रो॒ नाभो॒ निहि॑ता अ॒वो दि॒वो ह॒विर्भ॑रन्त्य॒मृतं॑ घृत॒श्चुतः॑ ॥६॥

भा०—(सहस्र-धारे) सहस्रों धारा अर्थात् धारण शक्तियों से युक्त मेघवत् सूर्य में (ताः) वे नाना शक्तियां (असश्चतः) परस्पर असक्त, पृथक् २ रहती हुईं (तृतीये रजसि) तीसरे लोक, द्यौलोक में (सन्तु) रहें। वे (प्रजावतीः) समस्त प्रजा की रक्षा करने वाली (चतस्रः) चार (नाभः) आदित्य का विशेष दीप्तियां (दिवः अवः) तेजमय सूर्य से नीचे (निहिताः)

प्रेरित होकर (घृत-श्चुतः) जल बरसाने वाला होती हैं और वेही (अमृतं हविः भरन्ति) अमृत अर्थात् जल और अन्न प्राप्त कराती हैं ।

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

भा०—(यत्) जब (सोमः) समस्त ओषधि, वनस्पति आदि का उत्पन्न करने वाला और (मीढ्वान्) जल वर्षाने वाला (असुरः) सब जीवों को प्राण देने, वा जल फेंकने, वा मेघों को चलाने वाला, वायु वा सूर्य (श्वेतं) श्वेत, अति प्रदीप्त (रूपं) प्रकाश (कृणुते) करता है और (सिसासति) जलों को खूब सूक्ष्म कर देता है तब वह (भूमनः वेद) बहुत से जल राशियों को प्राप्त कर लेता है। वह (धिया प्रवत् शमी सचते) अपने धारण शक्ति से नाना उत्तम २ कर्म करता है और (दिवः) तेज से अन्तरिक्ष में (उद्रिणं) जल से युक्त (कवन्धम्) मेघ को (अव दर्षत्) विदीर्ण करता, छिन्न भिन्न करता है ।

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

भा०—(अध) और (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् (काश्मंन्) युद्ध या प्रतिस्पर्द्धा में जो (आ अक्रमीत्) सबको अतिक्रमण कर जाता है वह जिस प्रकार पारितोषिक या मान-आदर सूचक (गोभिः अक्तं) उत्तम स्तुति वाणियों से युक्त (श्वेतं कलशं) श्वेत, चांदी आदि धातु का बना कलश, पात्र (कप्) आदि (ससवान्) प्राप्त करता है । उसी प्रकार (कार्ष्मन्) परम सीमा पर विराजमान प्रभु परमेश्वर (आ अक्रमीत्) सर्वत्र व्यापक है। वह (वाजी) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य का स्वामी होकर (गोभिः अक्तं श्वेतं कलशं) किरणों से युक्त, श्वेत, देदीप्यमान (कलशं) कला २ से बने चन्द्र को सूर्यवत्, स्तुति वाणियों से सम्पन्न इस १६ कलाओं से युक्त आत्मा को (ससवान्) स्वीकार करता है। (मनसा देवयन्तः)

मन से या ज्ञानपूर्वक देव, प्रभु की कामना करने वाले जन (शत-हिमाय) सौ वर्षों के जीवन धारण करने वाले (कक्षीवते) कक्ष्या अर्थात् रज्जुवत् वा बन्धनवत् देहरूप गृह या स्तुति-वाणी को धारण करनेवाले इस मनुष्य-जीव के हितार्थ (गोनाम् आ हिन्विरे) वाणियों का प्रयोग करते हैं, वे भगवान् की स्तुति करते हैं। कक्षीवान्, कक्ष्यावान्, कक्ष्या रज्जुस्तद्वान् कक्षो ख्यातेर्वा गाहतेः। कक्ष्या वाणी।

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तमः स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये॥९।३२

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान्! सब जगत् के सञ्चालक और उत्पादक! हे (पवमान) परम पावन! (पपृचानस्य) निरन्तर प्रेम करने वाले (ते) तेरा जो (रसः) रस परमानन्द रूप (अव्यः वारम् विधावति) अपने प्रेमी जन के वरणीय हृदय को विशेष रूप से प्राप्त होता और उसको पवित्र करता है, (सः) वह (कविभिः) स्तुतिकर्त्ता, ज्ञानी, तत्वदर्शी विद्वानों द्वारा (मृज्यमानः) विवेकपूर्वक दर्शन किया जाकर (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्ष देने वाला होता है। हे (पवमान) परम पावन! तू (पीतये) पान करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के अभिलाषी और अज्ञान आवरण के विदारण करने वाले तत्वदर्शी के हितार्थ (स्वदस्व) अति सुख प्रदान कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

[७५]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती। ५ विराड् जगती॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः॥ १॥

भा०—(चनः-हितः) उत्तम वचन से बद्ध और पूज्य पद पर प्रति-

ष्ठित (यह्वः) महापुरुष (येषु अधि वर्धते) जिनके ऊपर अध्यक्ष रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है, वह उन्हीं (नामानि) सब को नमाने वाले (प्रियाणि) सब को अच्छे लगने वाले बलों, सैन्यों को अपने अन्नवत् (अभि पवते) प्राप्त करे। वह (बृहत्) बढ़ता हुआ (विचक्षणः) अति चतुर अध्यक्ष पुरुष (बृहतः सूर्यस्य) महान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के योग्य (विश्वञ्चम् रथम्) सब ओर जाने में समर्थ रथ पर (अधि रुहत्) सवारी करे।

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥

भा०—(जिह्वा) वाणी (ऋतस्य) वेदमय, सत्य ज्ञान के (प्रियम् मधु) प्रिय, मधुर सुख को (पवते) प्रदान करती है। (वक्ता) उत्तम वचन का बोलने हारा विद्वान् पुरुष ही (अस्याः धियः) इस धारण-योग्य बुद्धि या वाणी का (अदाभ्यः) अविनाशी, एवं अखण्डनीय (पतिः) पालक होता है। जिस प्रकार (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः अपीच्यं नाम दधाति) माता पिता दोनों के भीतर छिपे (तृतीयम्) दोनों से भिन्न तृतीय या श्रेष्ठ स्वरूप को धारण करता है, उसी प्रकार (पुत्रः) बहुत से ज्ञानों का रक्षक पुरुष (दिवः रोचने अधि) उसके ज्ञान से सुप्रकाशित पद पर विराजता हुआ (पित्रोः) माता पिता दोनों के रूपों से भिन्न (अपीच्यं नाम) भीतर छुपे ब्रह्मचर्य और ज्ञानमय बल को (दधाति) धारण करता है।

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥३॥

भा०—(नृभिः) उत्तम, सन्मार्ग पर ले जाने वाले जनों द्वारा (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि सम्पन्न कोष के ऊपर (येमानः) संयमन या नियन्त्रण करता हुआ (द्युतानः) अति तेजस्वी पुरुष (कलशान् अव

अचिक्रदत्) कलशों को अभिषेकार्थ प्राप्त करता है। इसी प्रकार हित रमणीय ज्ञाननिधि पर गुरुजनों द्वारा अधिकृत हो जाने पर वह विद्वान् स्नातक होने के लिये कलशों को प्राप्त करता है। (ऋतस्य दोहनाः) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले वा उस के देने वाले अगले शिष्य और पिछले गुरु सभी (अभि ईम्) उसको लक्ष्य कर, उसके समीप आकर (ऋतस्य ईम् अभि अनूष्त) सत्य ज्ञान का उपदेश करते वा उसके लिये उसकी स्तुति करते हैं। वह (त्रि-पृष्ठः सन्) सूर्यवत् तीन प्रकार के वस्त्रों को अपने देह पर धारण करता हुआ, वह तीनों वेदों वा तीनों ज्ञान, कर्म और वाणी को वस्त्रवत् धारण करता हुआ (उषसः अधि) कान्ति युक्त उषाओं के तुल्य ज्ञान वा धन की कामना करने वाले शिष्यादि प्रजा वर्ग के ऊपर अध्यक्षवत् (विराजति) विराजता है।

आद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः। रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ४

भा०—वह विद्वान् तेजस्वी, (अद्रिभिः) न भय खाने वाले, मेघवत् उदार और जलधारा छोड़ने वाले वा शस्त्रास्त्रधारी सैन्याध्यक्षों द्वारा (सुतः) अभिषिक्त, (मतिभिः) ज्ञानवान्, पुरुषों द्वारा (चनः-हितः) पूज्य पद पर स्थित, (शुचिः) शुद्ध, चरित्रवान् धार्मिक होकर (रोदसी प्ररोचयन्) भूमि और आकाश दोनों को खूब प्रकाशित करता हुआ सूर्य के तुल्य और (मातरा प्ररोचयन्) माता पिताओं को प्रसन्न करते हुए पुत्र के तुल्य राजा प्रजा वर्गों को अच्छा लगता है। वह (समया) सब ओर से (अव्या रोमाणि) भेड़ के रोमों के बने पवित्र वस्त्रों को (वि धावति) विशेष रूप से धारण करता है। और (दिवे दिवे) दिनों दिन उसके (मधोः धारा) उत्तम शब्दमय वेद की वाणी और शत्रुओं को संतापित करने वाले सत्य बल की धारणा शक्ति (पिन्वमाना) बढ़ती रहती है।

परि॑ सोम॒ प्र ध॑न्वा स्व॒स्तये॑ नृ॒भिः॑ पुना॒नो अ॒भि वा॑सया॒शिर॑म् ।
ये ते॒ मदा॑ आह॒नसो॒ विहा॑यस॒स्तेभि॒रिन्द्रं॑ चोदय॒ दात॑वे म॒घम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम विद्वन् ! हे ऐश्वर्ययुक्त शासक ! तू (नृभिः पुनानः) नायक, सन्मार्ग नेता जनों, गुरुओं से (पुनानः) विद्या-व्रतास्नानों या अभिषेकादि द्वारा पवित्र होकर (स्वस्तये) जनों के कल्याण के लिये (परि प्र धन्व) सब ओर राष्ट्र में परिव्राजकवद् विचर । और (आशिरम्) सब प्रकार से सेवन करने योग्य ज्ञान-तत्व को (अभि वासय) सर्वत्र फैला । (ये) जो (ते) तेरे (मदाः) हर्ष-वर्धक उत्तम वचनों से सम्पन्न और (आहनसः) सब ओर से तुझे पीडित, दण्डित करने वाले गुरुजन और दुष्टों के नाश करनेवाले वीर पुरुष (विहायसः) अकाशवत् गुणों में महान् है (तेभिः) उनों द्वारा शिक्षित होकर (दातवे) दान देने के लिये (इन्द्रं मघम्) ऐश्वर्ययुक्त दातव्य ज्ञान धन को (चोदय) प्रेरित कर, उपदेश कर । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

तृतीयोऽध्यायः

[७६]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराड् जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥

ध॒र्ता दि॒वः प॑वते॒ कृत्व्यो॒ रसो॒ दक्षो॑ दे॒वाना॑मनु॒माद्यो॒ नृभिः॑ ।
हरिः॑ सृजा॒नो अत्यो॒ न सत्व॑भि॒र्वृथा॒ पाजां॑सि कृणुते न॒दीष्वा ॥ १ ॥

भा०—(धर्त्ता दिवः) तेज को वा सूर्य को धारण करने वाला (कृत्व्यः)

समस्त कर्मों को करने हारा, (रसः) बल स्वरूप, (दक्षः) दुष्टों को दग्ध करने वाला, संतापकारी, (नृभिः अनुमाद्यः) सब मनुष्यों से प्रसन्न होने और स्तुति करने योग्य वह (हरिः) सब दुःखों का हरण करने वाला (अत्यः न) अश्व वा निरन्तर गति करने वाले आत्मा के तुल्य (नदीषु) रुधिर की नाड़ियों में प्राणों के तुल्य, (नदीषु) नदीवत् प्रवाह से अनादि और समस्त विभूति-समृद्धियों में वा प्रकृति-विकृतियों में (वृथा) अनायास ही (पाजांसि आ कृणुते) नाना प्रकार के बलों को प्रकट करता है। वही सर्वोत्पादक प्रभु सोम है।

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः २

भा०—(गभस्त्योः) बाहुओं में (शूरः न) शूरवीर पुरुष के समान (आयुधा) नाना प्रहार करने, लोकों को संचालन करने वाले और पीड़ादायक साधनों को (धत्त) धारण करता है। वह (गविष्टिषु रथिरः) भूमियों के प्राप्त कर लेने पर जिस प्रकार महाराथी अपने सर्वस्व को अध्यक्षों में विभक्त करता है, उसी प्रकार वह प्रभु भी (रथिरः) सर्व रसों; आनन्दों का स्वामी, (गविष्टिषु) गौ अर्थात् वाणी द्वारा यज्ञ या पूजन करने वाले भक्तजनों में अपना (स्वः सिषासन्) समस्त आनन्द और ज्ञान प्रकाश का विभाग करता है। वह (इन्द्रस्य) सूर्य, वायु, मेघ और आत्मा के (शुष्मम्) बल को (ईरयन्) प्रेरित करता है। वह (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्म करने वाले बुद्धिमान् जनों द्वारा (गोभिः) वाणियों द्वारा (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, दयालु रूप से (अज्यते) प्रकाश किया जाता है।

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः॥ ३॥

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के उत्पादक तू (पवमानः) पवित्र होता हुआ, सब को व्यापता हुआ (ऊर्मिणा) अपने सर्वोच्च बल द्वारा (तविष्यमाणः) बलकार्य सम्पादन करता हुआ (जठरेषु) पेटों में अन्न के तुल्य, सब लोकों के बीच में मुख्य बलप्रद होकर (आ विश) प्रवेश कर। (विद्युत् अभ्रा-इव) जिस प्रकार बिजुली मेघों का दोहन करती है, उनसे जल बरसाती है तू (नः) हमारे सुखार्थ (रोदसी प्र पिन्व) भूमि और आकाश दोनों से सुखप्रद पदार्थ प्रदान कर। (न) और तू ही (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मकौशल से (शश्वतः वाजान्) बहुत से नित्य अन्नों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (उप मासि) बनाता है।

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृशं ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत्।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

भा०—वह सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (विश्वस्य राजा) समस्त जगत् का प्रकाशक, उसका राजा के समान स्वामी, (स्वः-दृशः) समस्त सुखों को देखने वाले (ऋतस्य) सत्य ज्ञान को (पवते) प्रदान करता है। वह (ऋषि-षाट्) दर्शनकारिणी इन्द्रियों को अभिभव करने वाले आत्मा वा सूर्य प्रकाश के तुल्य होकर (ऋतस्य धीतिम्) सत्य-ज्ञानमय वेद के ज्ञान और कर्म को (अवीवशत्) अपने अधीन करता, उसे चाहता है। और (यः) जो (असमष्ट-काव्यः) अन्य विद्वानों द्वारा भी न प्राप्त होने योग्य वेदादि ज्ञानमय काव्यों को रचने वाला है वह (मतीनां पिता) समस्त ज्ञानवान्, मननशील, मनुष्यों का पालक प्रभु (सूर्यस्य) सूर्य के (असिरेण) तम को दूर करने वाले प्रकाश के तुल्य, सूर्य अर्थात् दक्षिण प्राण के मल शोधक प्रणायामादि अभ्यास द्वारा (मृज्यते) स्वच्छ किया जाता है।

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत्।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः॥५॥१

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सोम! (वृषा इव) जिस प्रकार बलवान् पुरुष (यूथा) जन समूहों को प्राप्त कर (कोशम् अर्षति) धन-कोश को प्राप्त करता है उसी प्रकार तू (कोशम्) भीतरी अन्तःकरण वा प्राणमय आदि आनन्दमय कोशों को (परि अर्षसि) सब प्रकार से व्याप ले। तू (अपां उपस्थे) प्राणों, समस्त लोकों के ऊपर भी (वृषभः) बलशाली होकर (कनिक्रदत्) आत्मा के समान उनमें व्याप्त है। (सः) वह तू (मत्सरिन्तमः) अति अधिक तृप्ति, सन्तोष और आनन्द-दायक होकर (इन्द्राय) तुझे प्रत्यक्ष देखने वाले के लिये (पवसे) स्वच्छ रूप में प्रकट होता है। (यथा) जिससे हम जीव गण भी (समिथे) संग्रामों में (त्वा-ऊतयः) तेरी रक्षा से रक्षित होकर (जेषाम) विजय लाभ करें। इति प्रथमो वर्गः॥

[७७]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ४, ५ निचृ-ज्जगती। ३ पादनिचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः॥१॥

भा०—(एषः) यह (मधुमान्) अति आनन्ददायक होकर (कोशे) अन्तःकरण वा आनन्दमय कोश में (प्र अचिक्रदत्) खूब अन्तर्नाद करता है। वह (इन्द्रस्य वज्रः) ऐश्वर्ययुक्त, उसको देखने वाले आत्मा का वज्रवत् बलशाली साधन है। वह (वपुषः वपुस्तरः) बीजवपन करने वालों में सब से श्रेष्ठ, वह सब रूपवान् पदार्थों में सब से अधिक कान्ति-मान् है। (ईम् अभि) इसके प्रति ही (घृतश्चुतः) प्रकाश देने वाली (ऋतस्य सु-दुघाः) सत्य ज्ञान के देने वाली (वाश्राः) वाणियां, स्तुतियां भी (धेनवः पयसा इव) अपने पुष्टिकारक रस से गौओं के तुल्य, उसी

को (अभि अर्षन्ति) व्यापती हैं। उसी को लक्ष्य कर समस्त स्तुतियां कही जाती हैं।

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा॥२॥

भा०—(सः) वह (पूर्व्यः) सब से पूर्व विद्यमान और सब प्रकार से पूर्ण, (दिवः परि) सूर्यादि लोकों के भी (परि पवते) ऊपर व्यापक है। उन पर उस जगद्-उत्पादक का शासन है। वह (श्येनः) अति शुक्र वर्ण, तेजोमय, अद्भुत, गतिमान्, वेगवान्, बल वाला प्रभु (इषितः) सब का प्रेरक होकर (रजः तिरः मथायद्) समस्त लोकों और प्रकृति के परमाणुओं और तेजः-प्रकाश को भी दूर २ तक संचालित कर रहा है। (सः) वह (वेविजानः) सर्वत्र व्यापता हुआ, (मध्वः आ युवते) आनन्द को प्रदान करता है, वह (बिभ्युषा मनसा) डरने वाले मन से (कृशानोः अस्तुः) कृश अति अल्प प्राणयुक्त जीव को भी सन्मार्ग में चलाने हारा हो।

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते।
ईक्षेण्यासो अह्यो३न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः॥ ३॥

भा०—(ते) वे (नः) हम में से (पूर्वासः) पूर्व ही लक्ष्य तक पहुंचे हुए, ज्ञानादि से पूर्ण, (उपरासः) सर्वोपरि विराजमान, वा (उपरासः) अति समीप होकर शिष्यों को ज्ञान देने वाले, ब्रह्मतत्व के अति समीप पहुंच कर आनन्द में रमण करने वाले, (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, दयाशील एवं उस प्रभु को लक्ष्य कर उसकी ओर जाने वाले और उसी की उपासना करने हारे होते हैं। वे (महे वाजाय) बड़े भारी (गोमते) सद्-वाणियुक्त, ज्ञान-बल और ऐश्वर्य के लाभ के लिये (धन्वन्तु) आगे बढ़ें। वे (ईक्षेण्यासः) तत्व को यथार्थ देखने वाले (अह्यः न चारवः) स्त्री जनों वा सूर्य किरणों के समान उत्तम स्वच्छ, अनिन्दनीय हैं, (ये) जो (ब्रह्म-ब्रह्म

हविः-हविः) सब प्रकार का ब्रह्म ज्ञान और सब प्रकार के अन्न आदि (जुजुषुः) सेवन करते हैं ।

अ॒यं नो॑ वि॒द्वान्व॑नवद्वनुष्य॒त इन्दुः॑ स॒त्राचा॒ मन॑सा पुरुष्टु॒तः ।
इ॒नस्य॒ यः सद॑ने॒ गर्भ॑माद॒धे गवा॑मुरु॒ब्जम॒भ्यर्ष॑ति व्र॒जम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (इन्दुः) दयाशील, शत्रु को संन्तप्त करने में समर्थ, (सत्राचा मनसा पुरु-स्तुतः) सत्ययुक्त मन से बहुतों द्वारा स्तुति किया, (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु (वनुष्यतः वनवद्) हिंसा करने वालों का नाश करता है । (यः) जो प्रभु वा स्वामी (इनस्य सदने) स्वामी के स्थान, हृदय में स्थित होकर पति के समान समस्त योनियों में वा प्रकृतिरूप मूल कारण में (गर्भम् आ दधे) सृष्टि-बीज को हिरण्यगर्भ रूप से धारण कराता है और जो (उरुब्जम्) महान्, प्रभूत प्राणों वा सूक्ष्मजलों, वा प्रकृति के परमाणुओं में उत्पन्न, (व्रजम्) विकृति समूहों और जीव गण को (अभि अर्षति) व्यापता या प्राप्त होता है ।

च॒क्रिर्दि॒वः प॑वते॒ कृत्व्यो॒ रसो॑ म॒हाँ अद॑ब्धो॒ वरु॑णो हु॒रुग्य॒ते ।
अस॑वि मि॒त्रो वृ॒जने॑षु य॒ज्ञियोऽत्यो॒ न यू॒थे वृ॑ष॒युः कनि॑क्रदत् ५।२

भा०—वह प्रभु (दिवः चक्रिः) आकाश, सूर्य, तेजोमय जगत् का बनाने और प्रकट करने वाला, (कृत्व्यः) ज्ञान-साधना से साक्षात् करने योग्य, (महान्) गुणों में महान् (रसः) बल-आनन्दस्वरूप (अदब्धः) अविनाशी, (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सब से वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारण करने वाला, (यते) संयम करने वाले और यत्नशील पुरुष के लिये (दिवः पवते) प्रकाश और उसकी समस्त कामनाओं को प्रदान करता है । वह (यज्ञियः) समस्त देवपूजन आदि यज्ञों का पात्र (मित्रः) सर्वस्नेही, मरण से वायुवत् त्राण करने वाला प्रभु (वृजनेषु) समस्त गमन करने योग्य लोकों, मार्गों में (असावि) ईश्वर रूप से विराजता है । वह (अत्यः नः यूथे) पदातिसमूह में अश्वारोही के समान अथवा

मादा घोडियों में बलवान् अश्व के समान (वृषयुः) समस्त सुखैश्वर्य सेचन करने वाला प्रभु (कनिक्रदत्) मेघ के समान दिव्य वाणी से उपदेश करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[७८]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २—४ जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

भा०—(राजा) तेजस्वी राजा (वाचं प्र जनयन्) वाणी को सबसे उत्कृष्ट रूप से प्रकट करता हुआ, (असिष्यदत्) निरन्तर प्रवाह के समान गम्भीरता से बहे, वाणी के प्रवाह से भावों का प्रकाश करे । वह (अपः वसानः) अभिषेक योग्य जलों के तुल्य आप्त जनों को अपने पर, वस्त्रादिवत् धारण करता हुआ, (गाः) नाना प्रजा की स्तुति वाणियों को (अभि इयक्षति) प्राप्त करता है । वह स्वयं (अविः) जगत् वा राष्ट्र का रक्षक होकर (तान्वा) अपने पटवत् विस्तृत सामर्थ्य से (अस्य) इस जगत् वा शिष्य सेवक जन के (रिप्रम्) पाप को (गृभ्णाति) थाम देता है, पाप को नहीं बढ़ने देता । प्रत्युत स्वयं (शुद्धः) सब परीक्षाओं में निर्दोष सिद्ध होकर (देवानां) विद्वानों, वीर पुरुषों के (निष्कृतम् उप याति) स्थान को प्राप्त होता है ।

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शासक ! शास्त्रोपदेशक ! तू (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों को देखने हारा, (ऊर्मिः) महान् तरंग के

समान उन्नत, (कविः) क्रान्तदर्शी होकर ही (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषेक किया जाता है। हे राजन्! तू (वने) वन में अग्नि के शोलों के समान (अज्यसे) प्रकाशित होता है। (ते यातवे) तेरे सन्मार्ग से जाने के लिये (पूर्वीः पूर्वों के (स्तुतयः) नाना मार्ग (सन्ति) हैं। और (ते यातवे) तेरे प्रयाण करने के लिये, (हरयः) अति मनोहर (अश्वाः सहस्रं) हज़ारों अश्व और अश्वारोहीगण और (चमू-सदः) सेना के अध्यक्ष पदों पर विराजमान अनेक पुरुष भी हैं।

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ३

भा०—(समुद्रियाः अप्सरसः) जो महान् आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान (अप्सरसः) व्यापक शक्तियां हैं वे भी (अन्तः आसीनाः) भीतर गुप्त रूप से विद्यमान रह कर भी (मनीषिणम्) मेधावी, सब के मनों को संचालित करने वाले (सोमम्) शासन करने में समर्थ पुरुष को (अभि अक्षरन्) प्राप्त होती हैं। (ताः) वे शक्तियां भी (हर्म्यस्य) बड़े भारी महल के सदृश इस विश्व के (सक्षणिं) संचालक को ही (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं। और (पवमानम्) उसी व्यापक से (अक्षितं सुम्नं याचन्ते) अक्षय सुख-साधन की याचना करती हैं।

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

भा०—(नः) हमारा (मदं) अति आनन्ददायक, (स्वादिष्ठं) अति मात्र अपने ही वस्तु के भोक्ता, वा शुभ, उत्तम सात्विक अन्न के ही भोक्ता, (द्रप्सं) बलवान्, (अरुणं) तेजस्वी (मयोभुवं) सुखप्रद, (यं) जिसको (देवासः) मनुष्य लोग भी (पीतये चक्रिरे) अपने उपयोग और पालन के लिये नियत करते हैं। (सोमः) उत्तम शासक (गोजित्) गौओं

वाणियों और इन्द्रियों पर वश करने वाला वाग्मी, जितेन्द्रिय, (रथ-जित्) रथों, देहों पर वश करने वाला, (हिरण्य-जित्) सुवर्ण आदि धनों के विजय करने वाला, (स्वर्जित्) सुख और प्रकाश को वश करने वाला (अप्-जित्) प्राणों और आप्त प्रजाओं पर वशी, (सहस्र-जित्) बलवान् सहस्रों को विजय करने वाला, सर्वजित्, है।

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयञ्च नस्कृधि ५।३

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! उत्तम शासक! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी होकर (पवमानः) पवित्र, अभिषेकवान् (एतानि सत्यानि द्रविणानि) इन सत्य धनों और बलों को प्राप्त करता हुआ, (अर्षसि) प्राप्त हो, (अन्तिके दूरके च यः, शत्रुं जहि) पास और दूर भी जो वर्तमान है उस शत्रु को भी नाश कर। और (उर्वीं गव्यूतिं च) भूमि और उस पर के मार्ग को भी (नः अभयं कृधि) हमारे लिये भय से रहित कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[७६]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती।
२, ४, ५ निचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः॥१॥

भा०—(अचोदसः) अन्यों से शासित वा प्रेरित न होने वाले, स्वतन्त्र, विचरणशील, (इन्दवः) दयालु विद्वान्, (बृहद्-दिवेषु) बड़े २ प्रकाशों से युक्त ज्ञानियों के बीच (सुवानासः) उत्तम रीति से निष्णात (हरयः) ज्ञानवान् पुरुष (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों। और (नः इषः अरातयः च) हमें हमारी मनोकामनाओं वा अन्नों को न देने वाले कृपण जन (वि नशन्)

विनाश को प्राप्त हों। (नः) हमें (धियः) उत्तम बुद्धियां और सत्कर्म (सनिषन्त) प्राप्त हों।

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि २

भा०—(मदच्युतः) हर्ष-आनन्द, तृप्ति, सुख प्रदान कर करने वाले (इन्दवः) शत्रु को लक्ष्य कर वेग से जाने वाले, उनको सन्तप्त करने वाले, वीर पुरुष (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों, वा ये हमारे वीर (प्र धन्वन्तु) खूब आगे बढ़ें और धनुष का वीर कर्म करें। (येभिः) जिनके द्वारा हम (अर्वतः) हिंसाकारी शत्रु से भी (धना) नाना धन (जुनीमसि) प्रदान करते हैं। हम (कस्य चित्) किसी भी हरेक (मर्त्तस्य) मनुष्य की (परिह्वृतिं) कुटिलता को (तिरः) तिरस्कार करते हुए, (विश्वधा) सब प्रकार के (धना भरामसि) धनों को धारण करें।

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ३

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (स्वस्याः अरात्याः) अपने अधिकारादि न देने वाले शत्रु का (अरिः) शत्रु और उस तक निर्भय होकर पहुंचने वाला है, (उत) और (सः अन्यस्याः अरात्याः) वह दूसरे शत्रु का भी (वृकः) विशेष रूप से कष्ट डालने वाला है। वह (धन्वन् तृष्णा न) मरु भूमि में तृष्णा के समान (धन्वन्) धनुष के आश्रय ही (सम अरीत) समर करने में समर्थ है। हे (सोम) ऐश्वर्य-वन् बलवन्! हे (पवमान) राष्ट्र से पवित्र करने वाले! तू (तान्) उन (दुः-आध्यः) दुःख से वश करने योग्य शत्रुओं को भी (जहि) दण्डित कर।

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि

क्षिपः। अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

भा०—हे सोम ! प्रभो ! (यः) जो (परमः) सब से उत्कृष्ट बल (दिवि नाभा) महान् आकाश के नाभि, केन्द्र में (आददे) सब को थामे है, वह (ते) तेरा ही अंश है। और (ते) तेरे ही (क्षिपः) नाना पदार्थों को इधर उधर फेंकने, चलाने वाली शक्तियां (पृथिव्याः सानवि) पृथिवी के उच्च भागों पर (रुरुहुः) उत्पन्न या प्रकट होती हैं। (गोः त्वचि अधि) पृथिवी तल के ऊपर (अद्रयः) मेघ गण (त्वा) तुझे ही (बप्सति) अपने में लेते हैं। और (मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष (अप्सु) जलों में वा प्राणों के बीच (हस्तैः) नाना प्राप्ति साधनों से (त्वा दुदुहुः) तुझे ही प्राप्त करते हैं।

एवा त इन्द्रो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः। निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः॥५॥४

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (ते एव) तेरे ही (सुभ्वम्) उत्तम, सुखजनक (सुपेशसं) सुन्दर रूप युक्त (रसं) बल, रस आनन्द को (प्रथमाः) सर्व श्रेष्ठ (अभिश्रियः) उत्तम सेवकजन (तुञ्जन्ति) ग्रहण करते हैं। हे (पवमान) परम पावन ! तू (निदं-निदं) प्रत्येक निन्दाकारी, पुरुष और निन्दनीय कर्म को (नि तारिषः) विनाश कर। वा प्रत्येक (नि-दं-नि-दं) अपने आपको नितरां सर्वथा दे देने वाले भक्त को जगत् से (नि तारिषः) सब प्रकार से मुक्त कर देते हो। (ते प्रियः) तेरा प्यारा, (शुष्मः) बल और (मदः) आनन्द सुख (आविः भवतु) सब को प्रकट हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८०]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ५ विराड् जगती। ३ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः॥१॥

भा०—(नृचक्षसः) मनुष्यों के द्रष्टा, वा मनुष्यों को सत्य मार्ग का उपदेश करने वाले (सोमस्य) उत्तम उपदेष्टा पुरुष की (धारा पवते) वेदवाणी प्रकट होती है। (दिवः देवान्) ज्ञान प्रकाश की कामना करने वाले जनों के ऊपर (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धर्म द्वारा (हवते) उन को सुख प्रदान करती है। (बृहस्पतेः) बड़े भारी ज्ञान और बृहती वेद वाणी के पालक गुरु के (रवथेन) उपदेश से (विदिद्युते) विशेष रूप से जगत् चमकता, प्रकाशित होता है, और तभी (समुद्रासः न) समुद्रों और आकाशों के समान वही उसके समस्त (सवनानि) शासन बल और ऐश्वर्य (विव्यचुः) विशेष रूप से फैलाते हैं, या प्रकाशित होते हैं।

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः॥२॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन्! बलवन्! (त्वां) तुझको (अघ्न्याः) कभी नाश न होने वाली और अन्यों को न पहुंचने वाली, अनन्य परक वेदवाणियां (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती हैं और तू (द्युमान्) सूर्य के समान कान्तिमान् होकर (अयः-हतं योनिम्) सुवर्ण से गढ़े हुए सिंहासन को राजा के तुल्य (अयः-हतम्) ज्ञान से व्याप्त (योनिम्) हृदय प्रदेश, अन्तर्गुहा को (आरोहसि) प्राप्त होता वा सर्वज्ञ बीजवत् उसमें अंकुरित विकसित होता है। (मघोनाम्) उत्तम धन, ज्ञानादि से सम्पन्न वा हत्या, हिंसा आदि दोषों से रहित निष्पाप पुरुषों, जीवों को (महि श्रवः) बड़ा उत्तम ज्ञान, यश, अन्न और (आयुः प्रतिरन्) आयु प्रदान करता है और हे (सोम) प्रभो! ऐश्वर्यवन्! जगदुत्पादक! तू (वृषा) समस्त आनन्दों का वर्षण करने वाला और (मदः) हर्षप्रद,

सुख से तृप्त करने वाला होकर (इन्द्राय) इस भूमि को कृषि द्वारा विदारण करने वाले जीवगण को (महि श्रवः) बड़ा भारी अन्न और (इन्द्राय महि श्रवः) इस अध्यात्मदर्शी ज्ञानी को महान् ज्ञान और कीर्ति (पवसे) प्रदान करता है।

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ३

भा०—वह (मदिन्तमः) हर्ष देने वालों में सबसे श्रेष्ठ, आनन्दमय प्रभु (श्रवसे) ज्ञान अन्न, यश, बल प्रदान करने के लिये स्वयं भी (ऊर्जं वसानः) महान्, बल रूप अन्न को धारण करता हुआ (सु-मंगलः) उत्तम मंगल-जनक होकर (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्र इस आत्मा के कुक्षि वा उसके अन्तःकरण में (आ पवते) व्यापता है। (सः) वह (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (प्रत्यङ् अभि पप्रथे) प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता और विस्तार करता है। और वह (हरिः) सब के मनों और दुःखों का हरण करने वाला, (वृषा) बलवान्, सुखादि का वर्षक होकर (क्रीड़न्) खेलता सा हुआ बाल-लीलावत् (अत्यः स्यन्दते) अश्व के तुल्य दूर २ तक फैलता और जाता है।

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥

भा०—(त्वां) तुझ (मधुमत्-तमं) अति अधिक आनन्द से सम्पन्न (सहस्र-धारं) सहस्रों वेदवाणियों के धारण करने वाले अनन्त शक्तिमान् प्रभु को (नरः) समस्त मनुष्य नायक (दश क्षिपः) दशों हस्तांगुलिवत् (सहस्र-धारं) सहस्रों धारा रूप में (दुहते) दोहन करते हैं, उससे ज्ञान रस को प्राप्त करते हैं। हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (ग्रावभिः) धर्मोपदेष्टा पुरुषों और (नृभिः) नायक पुरुषों से (प्र-च्युतः)

प्रकृष्ट पद को प्राप्त और (ग्रावभिः) विद्योपदेष्टा जनों से (प्र-च्युतः) उत्तम मार्ग को लेजाया जाता है। इधर वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (सहस्र-जित्) हजारों को पराजित करने हारा (विश्वान्) (देवान् आपवस्व) समस्त विद्वानों को प्राप्त हो।

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि॥५।५

भा०—हे (सोम) हे ऐश्वर्यवन्! (त्वा तम्) उस तुझ (वृषभम्) पूज्य को (हस्तिनः) नाना उपकरण वाले जन, (अद्रिभिः) मेघवत् जल वर्षी, कलशों द्वारा (दश क्षिपः) दशों दिशाओं की प्रजाएं और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली वीर सेनाएं (अप्सु) अभिषेच्य जलों के बीच वा आप्त प्रजाओं के बीच में (दुहन्ति) ऐश्वर्यों से पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार (हस्तिनः) कुशल कर्मसाधक जन (मधुमन्तं त्वां तम् वृषभम्) आनन्द-सुख वाले तुझ बलवान् उस तुझ आनन्दवर्षी को (दश क्षिपः) दशों प्राण (अद्रिभिः) अपने भोग्य सामर्थ्यों से (अप्सु दुहन्ति) देहगत रसों में शक्ति से पूर्ण करते हैं। तू (दैव्यं जनम्) विद्वान जन, प्राणगण और (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष और आत्मा को (मादयन्) प्रसन्न, तृप्त करता हुआ (सिन्धोः इव ऊर्मिः) समुद्र के तरंग के समान (पवमानः) व्यापता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[८१]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१—३ निचृज्जगती। ४ जगती। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः॥१॥

भा०—(पवमानस्य) पवित्र करने वाले वा व्याप्त हुए (सोमस्य)

उस सर्वशास्ता ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ऊर्मयः) उत्तम आदेश एवं तरंग (सु-पेशसः) उत्तम, शुभरूप होकर (इन्द्रस्य जठरं यन्ति) आत्मा के हृदय तक पहुंचते हैं। (यत्) जो (दक्षा उन्नीताः) ध्यान धारणा के बल से सब ओर से ऊपर आये हुए (सुताः) उत्पन्न तरंग (गवां यशसा) वाणियों के बल से (शूरं) शूर वीर पुरुष को (दानाय) आत्मसमर्पण के लिये (उत् अमन्दिपुः) उन्मत्त, अति प्रसन्न कर देते हैं।

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यदृदत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा। अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥

भा०—(सोमः) वह सर्वसंचालक, बलस्वरूप सर्वोत्पादक परम वीर्य सोम (कलशान् अच्छ असिष्यदत्) कलशवत् देहों, भीतरी कोशों और समस्त लोकों के प्रति प्राप्त होता है, (वोढा अत्यः न) पीठ पर उठाकर ले जाने वाले अश्व के समान वह जगत् भर को वहन या धारण करने वाला (अत्यः) सर्वव्यापक प्रभु (रघुवर्त्तनिः) वेग से समस्त सूर्यादि लोकों को घुमाने में समर्थ (वृषा) बलशाली है। (अथ) और वह (देवानाम्) तेजोमय, सूर्यादि और कर्मफल के आकांक्षी जीवों या प्राणों के बीच में विद्वान्, ज्ञानवान् होकर (यत्) जो (अमुतः) उस परलोक से इस लोक में आने और (इतः च) इस लोक से उस लोक में जन्म लेने रूप दोनों जन्मों को (विद्वान्) जानता और प्राप्त करता हुआ दोनों को (अश्नोति) व्यापता है। वह ही आत्मा 'सोम' है।

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः। शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ३

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्दो) दीप्तिमन्! तेजस्विन्! तू (पवमानः) हमें पवित्र करता और व्यापता हुआ, (नः वसु किर)

हमें उत्तम ऐश्वर्य उदारता से मेघवत् प्रदान कर। तू (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर, (महः राधसः) बड़े भारी धनैश्वर्य का स्वामी (भव) हो। और (चेतुना) ज्ञान द्वारा (वयः धाः) दीर्घ जीवन, तेज, बल और ज्ञान का धारण करने वाला होकर (वसवे) वसु, इस जीव को (शिक्ष) बल और ज्ञान प्रदान कर। (नः गयम्) हमारे प्राण वा सुख, कल्याण को (अस्मत् मा परा सिचः) हम से दूर कभी न कर।

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

भा०—(पवमानः पूषा) व्यापक, परमपावन, सर्वपोषक प्रभु (सु-रातयः) उत्तम ऐश्वर्य के देने वाला, (मित्रः) मृत्यु कष्ट से बचाने वाला (वरुणः) दुखों से वारक, सर्वश्रेष्ठ, (बृहस्पतिः) बड़े २ लोकों और महान् ज्ञान का पालक, (मरुतः) विद्वान्, मनुष्य (वायुः) प्राण, बलवान्, (त्वष्टा) जगत् कर्त्ता, (सविता) सर्वोत्पादक, और (सु-यमा) उत्तम यमनियम युक्त, उत्तम बन्धन व्रतादि से युक्त (सरस्वती) वेदवाणी विदुषी, स्त्री आदि, सब (स-जोषसः) समान प्रीति युक्त होकर (नः आगच्छन्तु) हमें प्राप्त हों।

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानञ्जुषन्त ॥५॥६॥

भा०—(उभे) दोनों (द्यावा-पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता, (विश्वमिन्वे) समस्त संसार को पालन पोषण करने वाले, और (अर्यमा देवः) न्यायकारी विद्वान्, सर्वसुखदाता, (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्ता, (विधाता) विविध प्रकार से धारक पोषक, (भगः) ऐश्वर्यवान् सर्वसेव्य, (नृ-शंसाः) सब मनुष्यों से स्तुत्य, और (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान जन, अर्थात् फलादि चाहने वाले जीवगण (पवमानं) उस सर्व

व्यापक, प्रेरक परम पावन सर्वसंचालक (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष के तुल्य, महान् सब के भीतर व्यापक को (जुषन्त) सेवन करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८२]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड् जगती। २ निचृज्जगती। ३ जगती। ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) जगत् वा राष्ट्र का शासक पुरुष जो (अरुषः) उज्ज्वल दीप्तिमान्, उत्तम प्रबन्धक और प्रजा पर मेघ के तुल्य सुखों की वर्षा करने वाला हो वह (असावि) ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो उसी का अभिषेक करना उचित है। वह (राजा इव दस्मः) दीप्तिमान् सूर्य के समान (दस्मः) दर्शनीय, एवं अन्धकारवत् दुष्ट शत्रुदल का नाश करने हारा, (गाः अभि अचिक्रदत्) भूमियों का शासन करे, इसी प्रकार विद्वान् (अरुषः) रोषरहित, शान्त, अहिंसक राजावत् कान्तिमान्, आदृत होकर (गाः अभि अचिक्रदत्) उत्तम ज्ञान वाणियों का उपदेश करे। वह (श्येनः) बाज पक्षी के समान वेग से जाने वाला एवं (श्येनः) प्रशंसनीय आचार चरित्रवान् एवं वीरवत् प्रयाणकारी होकर (घृतवन्तम्) तेजो युक्त (योनिम्) गृह, राजभवन और शासक पद पर (आसदम्) विराजने के लिये (पुनानः) अभिषेक किया जाता हुआ (अव्ययं वारं परि एति) भेड़ के बालों से बने, वरण योग्य उत्तम शाल को धारण करे। विद्वान् वा प्रभु (अव्ययं वारं परि एति) अव्यय, अविनाशी, आत्मा के वरणीय स्वरूप तक पहुंचता है।

क॒विर्वे॒धस्या॒ पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒ न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि ।
अ॒प॒सेध॑न्दुरि॒ता सो॑म मृळय घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म् २

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! प्रभो ! तू (कविः) ज्ञानवान्, सब को अति क्रमण कर देखने वाला, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक होकर (वेधस्या) जगत् आदि के विधान या निर्माण की इच्छा से (माहिनं) अपने महान् सामर्थ्य को (परि ऐषि) दूर २ तक व्यापता है और (अत्यः मृष्टः न) खरखरा से स्वच्छ, तरोताज़ा घोड़े के समान तू (वाजम् अभि अर्षसि) वेगवत् ज्ञान समृद्धि को साक्षात् करता है । तू (घृतं वसानः) अभिषेक काल में जल को अपने पर आच्छादित करता हुआ, शासन काल में, (घृतं वसानः) तेज को धारण करता हुआ, (दुरिता) सब दुःखकारी अपराधों को (मृडय) दूर कर और (निः-निजं परियासि) अति शुद्ध रूप को प्राप्त करता है ।

प॒र्जन्यः॑ पि॒ता म॑हि॒षस्य॑ प॒र्णिनो॒ नाभा॑ पृथि॒व्या गि॒रिषु॒ क्षयं॑ दधे।
स्वसा॑र॒ आपो॑ अ॒भि गा उ॒तास॑र॒न्त्सं ग्राव॑भिर्नसते वी॒ते अ॑ध्व॒रे ३

भा०—(पर्णिनः महिषस्य पिता पर्जन्यः पृथिव्याः नाभौ गिरिषु क्षयं दधे) जिस प्रकार पत्तों वाले महान् वृक्ष का भी पालक जलवर्षी रसप्रद पिता के तुल्य मेघ जिस प्रकार पृथिवी के आकर्षण शक्ति के बन्धन में रहकर पर्वतों में ही अपना निवास या आश्रय पाता वा पर्वतों में ही जलमय ऐश्वर्य को स्थापित करता है, उसी प्रकार (महिषस्य) महान् (पर्णिनः) पालन, पूरण एवं दूर देशों तक गमन साधनों वाले पुरुष का (पिता) पालक पुरुष पिता तुल्य, (पर्जन्यः) शत्रुओं का उत्तम विजेता, सब को तृप्त, सन्तुष्ट करने वाला पुरुष (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के बीच, नाभि या केन्द्र में और (गिरिषु) पर्वतों वा विद्वानों के आश्रय ही अपने (क्षयं) निवास और ऐश्वर्य को धारण कराता है । [राजशक्ति का पर्वतों में रहना

जैसे शिमला आदि में शासन-केन्द्र हैं]। जब शासक उच्च स्थल में रहे तब (आपः) जल स्वभाव की निम्न स्थल में रहने वाली प्रजाएं (स्वसारः) अपने वेग से जाने वाली जलधाराओं के तुल्य ही (उत गाः अभि असरन्) भूमियों की ओर चली जावें, सम भूमि भागों में प्रजाएं रहे। वह राजा (अध्वरे वीते) शत्रुओं द्वारा नाश न होने वाले बलवान् पुरुष के वीर तेजस्वी हो जाने पर उसके अधीन ही, (ग्रावभिः) शस्त्रयुक्त दृढ़ सैन्यों द्वारा (सं नसते) सम्यक् प्रकार से सन्मार्ग में जाते हैं। (२) ज्ञानवान् महान् पुरुषवर्ग का भी पिता प्रभु पृथिवी, मेघों वा वाग्मी जनों के भीतर अपना ज्ञानैश्वर्य धारण कराता है, सब आत्मा के बल से सरण करने वाले (आपः) लिंगदेह, गम्य भूमियों के गर्भों में आते हैं। वे आहित गर्भ के पूर्ण होने पर उत्पन्न होकर विद्वानों द्वारा पुनः सम्यक् मार्ग में लाये जाते हैं।

जा॒येव॒ पत्या॒वधि॒ शेव॑ मंहसे॒ पज्रा॑या गर्भ शृणु॒हि ब्रवी॑मि॒ ते।
अ॒न्तर्वाणी॑षु॒ प्र च॑रा॒ सु जी॒वसे॑ऽनि॒न्द्यो वृ॒जने॑ सोम जागृहि ॥४॥

भा०—(पत्यौ अधि जाया इव शेव मंहते) जिस प्रकार पति के अधीन स्त्री उसको अधिक सुख प्रदान करती है उसी प्रकार हे (गर्भ) गर्भगत जीव ! हे (सोम) उत्पन्न होने हारे ! तू भी (पत्यौ) पालक प्रभु परमेश्वर के अधीन रहकर ही (जाया इव) देह रूप से प्रकट या उत्पन्न होकर (पज्रायाः) प्रजा मात्र भूमि को (शेव मंहसे) सुख प्रदान करता है। हे (सोम) विद्वन् ! (श्रृणुहि) तू श्रवण कर। (ते प्रवीमि) मैं तुझे इस रहस्य का उपदेश करता हूँ। हे जीव ! तू (जीवसे) दीर्घ जीवन को प्राप्त करने के लिये (वाणीषु अन्तः) वेद वाणियों के बीच, हिंसिका सेनाओं के बीच सेनापतिवत् (सु प्रचर) अच्छी प्रकार विचरण कर और (अनिन्द्यः) निन्दनीय आचार वाला न होकर (वृजने) बल वीर्य को प्राप्त करने, वा वर्जनीय पाप को त्यागने, वा जाने योग्य मार्ग में (जागृहि) जाग, सदा सावधान होकर रह।

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥७॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) हम से पूर्व विद्यमान पुरुषों को (शतसाः सहस्रसाः सन्) सैकड़ों और हज़ारों का दाता होकर ऐश्वर्य को (परि अयाः) प्रदान करता है तू (अमृध्रः) अविनाशी है। (एव) इसी प्रकार (नव्यसे) अति नवीन, स्तुत्यतम, (सु-इताय) सुखप्रद, अभ्युदय शोभन कार्य के लिये (पवस्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर। (तव व्रतम् अनु) तेरे ही व्रत के अनुकूल जन साधारण भी (आपः) जलोंवत् (सचन्ते) तेरे साथ संघ बना, मिलकर रहते हैं। तेरा ही अनुकरण और अनुसरण करते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

[८३]

पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २, ५ विराड् जगती ॥ ३ जगती ॥ पचर्चं सूक्तम् ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) वेदज्ञान के स्वामिन् ! हे महान् ब्रह्माण्ड, अपार बल और ज्ञान के पालक प्रभो ! (ते) तेरा (पवित्रम्) परम पावन ज्ञान और तेज (विततं) विस्तृत रूप से व्यापक है। तू (प्रभुः) सब का स्वामी, शक्तिमान् होकर (विश्वतः) सब ओर (गात्राणि परि एषि) संसार के समस्त अवयवों को व्याप रहा है (अतप्त-तनूः) जिसने अपने को ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्या से तप्त नहीं किया वह (आमः) कच्चा, अपरिपक्क वीर्य और मति वाला पुरुष (तत्) उस परम पावन स्वरूप ब्रह्म को (न

अश्नुते) नहीं प्राप्त होता और (शृतासः) जिन्होंने तप से अपने का तप्त कर लिया है जो मन से शुद्ध हैं, वह (इत् वहन्तः) तप का आचरण करते हुए, (तत् सम् आशत) उस को प्राप्त होते हैं।

तपो॑ष्पवित्रं वित॑तं दि॒वस्प॒दे शोच॑न्तो अस्य॒ तन्त॑वो॒ व्य॑स्थिरन्।
अव॑न्त्यस्य पवी॒तार॑मा॒शवो॑ दि॒वस्पृ॒ष्ठमधि॑ तिष्ठन्ति॒ चेत॑सा ॥२॥

भा०—(तपोः) तपोमय एवं दुष्टों को संतप्त करने वाले उस प्रभु का (पवित्रं) परम पावन शुद्ध स्वरूप (विततं) विविध प्रकार से व्यापक है। (अस्य दिवः) उस तेजोमय, ज्ञानमय, सूर्यवत् उज्ज्वल स्वप्रकाशस्वरूप प्रभु के (पदे) परम रूप में ही (शोचन्तः) चमकते हुए (तन्तवः) जीवन यज्ञ का विस्तार करने वाले जन (वि अस्थिरन्) विविध प्रकार से अपने को स्थिर कर रहे हैं, उसी पर आश्रित हैं। वे (आशवः) उसे प्राप्त होने वाले, अप्रमादी, शीघ्र कार्य करने में समर्थ कुशल पुरुष (अस्य पवितारम्) इसके परम शोधक सामर्थ्य को (अवन्ति) प्राप्त होते वा (अस्य पवितारं) इस अपने आत्मा के परिशोधक की (अवन्ति) रक्षा करते हैं। वे (चेतसा) ज्ञान के बल से (दिवः पृष्ठम्) तेजोमय प्रभु के उस परम पद को (अधि तिष्ठन्ति) प्राप्त कर उसमें विराजते हैं।

अरू॑रुचदु॒षसः॒ पृश्नि॑रग्रि॒य उ॒क्षा बि॑भर्ति॒ भुव॑नानि वाज॒युः।
मा॒या॒विनो॑ ममिरे अस्य मा॒यया॑ नृ॒चक्ष॑सः पि॒तरो॒ गर्भ॒मा द॑धुः ३

भा०—(अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, सबसे प्रथम विद्यमान (पृश्निः) सबको बलों से सेचने वाला, सबका उत्पादक, वर्धक आदित्यवत् तेजस्वी (उषसः अरूरुचत्) सूर्य जिस प्रकार उषाओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह समस्त तेजोमय पिण्ड सूर्यादि को प्रकाशित करता है। वह (उक्षा) समस्त संसार को वहन करने वाला (वाजयुः) समस्त बलों और ऐश्वर्यों को देने वाला, उनका स्वामी, समस्त (भुवनानि बिभर्त्ति) लोकों को धारण करता है। (मायाविनः) बुद्धिमान् जन (अस्य मायया ममिरे) इसकी बुद्धि

से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं, और (नृचक्षसः) सब मनुष्यों को तत्व-ज्ञान का उपदेश करनेवाले, (पितरः) सर्वपालक, पिता तुल्य विद्वान जन अन्यों को अपने ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने (गर्भम् आ दधुः) अधीन गर्भ को मातावत् धारण करते हैं। इधर सूर्य, जो उषाओं को प्रकाशित करता है, लोकों को धारण करता है। उसके सर्व-प्रकाश किरण जलपान करने से 'पितर' हैं वे, अन्तरिक्ष में जलमय गर्भ को धारण कराते हैं।

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ४

भा०—(गन्धर्वः) वेदवाणी और जगत् को चलाने वाला, गतिमय शक्ति को धारण करने वाला प्रभु (इत्था) सत्य ही (अस्य पदम् रक्षति) इस प्रत्यक्ष संसार के 'पद' परम आश्रय पद की रक्षा करता है। वह (अद्भुतः) कभी उत्पन्न न होने वाला, (देवानां) समस्त दिव्य पदार्थों और मनुष्यों, जीवों के भी (जनिमानि) उत्पन्न रूपों, देहों, जन्मों की (पाति) रक्षा करता है। वह (निधा-पतिः) जगत् को अपने वश में रखने वाली, सबकी पोषक-धारक शक्ति का स्वामी, (निधया) सर्वपालनी, धारणी शक्ति से ही (रिपुं) फांसी से शत्रु के तुल्य इस पापी वा कर्मलेप में लिप्त जीव-जगत् को (गृभ्णाति) ग्रहण, वश किये रहता है। और (सुकृत्-तमाः) उत्तम पुण्य करने वाले जन (मधुनः) ज्ञान रूप मधु के परम आनन्द का (भक्षम् आशत) सेवन-सुख प्राप्त करते हैं।

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ५।८

भा०—(महि सद्म वसानः हविः परि अध्वरं याति) जिस प्रकार बड़े भारी गृह में रहने वाला महाशाल, सम्पन्न पुरुष अन्नों से यज्ञ का सम्पादन करता है, उसी प्रकार हे (हविष्मः) समस्त अन्नों, ज्ञानों, बलों और

साधनों के स्वामिन् । तू भी (हविः) देने लेने, भोगने योग्य ऐश्वर्य को और (दिव्यं महि सद्म) दिव्य महान्, गृहवत् इस महान् (अध्वरम्) अविनाशी संसार रूप यज्ञ मण्डप को (वसानः) अच्छादित करता हुआ (परि यासि) व्याप रहा है। (राजा पवित्र रथं वाजम्) जिस प्रकार वेगवान् रथ का स्वामी राजा युद्धार्थ सैन्य का अध्यक्ष होकर रहता है, और (सहस्र-भृष्टिः जयति) सहस्रों को युद्धाग्नि में भूनकर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार हे प्रभो ! तू भी (राजा) प्रकाशस्वरूप (पवित्र-रथः) परम पावन उपदेशमय, ज्ञानमय स्वरूप वाला होकर (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों पापों को भूंज कर दग्ध करने वाला होकर (बृहत् श्रवः जयसि) बड़े भारी यश-ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८४]

प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती। ४ जगती। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पव॑स्व देव॒माद॑नो॒ विच॑र्षणिर॒प्सा इन्द्रा॑य॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ ।
कृ॒धी नो॑ अ॒द्य वरि॑वः स्वस्ति॒मदु॑रुक्षि॒तौ गृ॑णीहि॒ दैव्यं॒ जन॑म् ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (देव-मादनः) देव, परमेश्वर का आनन्द लाभ करने वाला, परमेश्वर का स्तुति करने, मनुष्यों को सुप्रसन्न करनेवाला (विचर्षणिः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा, विविध विद्वान् प्रजाओं का स्वामी, (अप्साः) जलद, मेघवत् प्राणों का दाता और भोक्ता, वा स्वयं समस्त ऐश्वर्यों का भोग न करने हारा असंग है। हे जलद ! तू (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) सबमें व्यापक, सर्वप्रेरक सबको जीवन देने वाले, उस प्रभु को प्राप्त करने के लिये, वा विद्युत्, जल, वायु तत्वों के शोधन और ज्ञानयुक्त प्रयोग के लिये, (पवस्व) अपने को शुद्ध पवित्र कर, आगे बढ़, यत्न कर। (नः अद्य वरिवः कृणु) हमारे लिये आज

उत्तम वरणीय ऐसा धन-ऐश्वर्य उत्पन्न कर जो (स्वस्तिमत्) सुख कल्याण से युक्त हो। (उरु-क्षितौ) इस विशाल भूमि या महान् जनसमूह में (दैव्यं जनम्) प्रभुभक्त, दिव्य पदार्थों के प्रेमी मनुष्य संघ के प्रति सत्-तत्वों के ज्ञान का (गृणीहि) उपदेश कर।

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

भा०—(यः) जो (सोमः) सब जगत् का प्रेरक, सञ्चालक, प्रभु परमेश्वर (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, अविनाशी, नित्य होकर (विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ) समस्त लोकों और उत्पन्न पदार्थों का अध्यक्ष होकर विराजता है वह (तानि परि अर्षति) उनको सब ओर से व्यापता है। (सूर्यः उषसं न) सूर्य जिस प्रकार उषा को व्यापता है और (अभिष्टये संवृतं विचृतं कृणोति) चारों ओर व्यापने के लिये जगत् को प्रकाश से युक्त और अन्धकार से वियुक्त करता है उसी प्रकार वह (इन्दुः) चन्द्र के समान आह्लादक, सूर्यवत् देदीप्यमान, जीव के प्रति दयार्द्र (अभिष्टये) जीव की अभीष्ट सिद्धि के लिये (उषसं) प्रेम से चाहने वाले, उस (संचृतम्) बद्ध जीवगण को (विचृतं कुर्वन्) बन्धनों से मुक्त करता हुआ (सिषक्ति) उसे अपने साथ पुत्र को माता के तुल्य चिपटा लेता है।

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ३

भा०—(यः) जो (उप-वसुः) सर्वत्र सदा समीप बसता हुआ, सर्वत्र व्यापक होकर (ओषधीषु) ओषधियों में (गोभिः) किरणों द्वारा (आ सृज्यते) रस के समान व्याप रहा है और जो (देवानां सुम्ने) देवों, विद्वानों, सूर्य चन्द्र आदि लोकों और जल आदि तत्त्वों के सुखमय व्यवहार में (इषयन्) प्रेरित करता हुआ, (सुतः) प्रकट होकर (विद्युता धारया) विशेष

कान्तियुक्त, अर्थ के प्रकाशक वेदमय वाणी वा शक्ति से (पवते) सब को पवित्र करता है वह (सोमः) सबका प्रेरक प्रभु, (इन्द्रम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश उस प्रभु के द्रष्टा इस आत्मा को (मादयन् पवते) अति आनन्दित करता हुआ प्राप्त होता है ।

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् । इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

भा०—(एषः) यह (स्यः) वह (सोमः) ऐश्वर्यवान् , परमानन्दप्रद, सब को सञ्चालन करने वाला, (पवते) सब को व्याप रहा है, जो (सहस्रजित्) सहस्रों बलशाली जनों और सूर्यादि लोकों को अपने वश करता है और (उषः-बुधम्) प्रातःकाल ही चेतने वाली, कामनावान् , पुरुष को बोध प्राप्त कराने वाली, (इषिराम्) इच्छा योग्य (वाचम्) वाणी को (हिन्वानः) गुरुवत् प्रदान करता रहता है । वह (इन्दुः) इस समस्त संसार में व्यापक, सबका प्रकाशक (समुद्रम्) महान् समुद्र, और अन्तरिक्ष, आकाशस्थ जगत् को (उत्) उसके ऊपर अध्यक्ष होकर (वायुभिः) वायुओं के झकोरों से महान् समुद्र के समान ही (इयर्त्ति) विक्षुब्ध कर देता है (इन्द्रस्य हार्दि) इस जीव को प्रिय लगता हुआ (कलशेषु आसीदति) अभिषेक-कलशों के बीच राजा के समान समस्त घटों अर्थात् देहों के बीच हृदयशायी होकर विराजता है ।

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् । धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(त्यं सोमम्) उस रसवत् व्यापक, सर्वोत्पादक, सबके प्रेरक, (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ, सुखप्रकाशक, ज्ञान के प्राप्त कराने वाले, (पयोवृधं) मेघवत् अन्न, रस, जलादि के वर्धक परम सुखदाता, प्रभु को (गावः) विद्वान् वाग्मी जन (मतिभिः) अपनी बुद्धियों और स्तुतियों से परि-

पक्व करते हैं, उसका अभ्यास करते हैं, वह (धनंजयः) धन का विजयी, ऐश्वर्यवान्, युद्धविजयी, सर्वोपरि, (कृत्व्यः) सब जगत् का रचने वाला (रसः) आनन्दमय, (विप्रः) विशेष रूप से पूर्ण, (कविः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, (काव्येन) अपने वेदमय विद्वान् जनों के अनुशीलन योग्य ज्ञान से (स्वः-चनाः) ज्ञान प्रकाश का देने वाला है। इति नवमो वर्गः॥

[८५]

वेनो भार्गव ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, १, ५, ६, १० विराड् जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४, ६ पादनिचृज्जगती। ८ आर्ची स्वराड् जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः १

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! उत्तम शास्तः तू (सु-सुतः) ओषधि वर्ग के समान अच्छी प्रकार विद्यादि से सुपरिष्कृत, सुसंस्कृत होकर, (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त सृष्टि के लाभ के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा। (अमीवा रक्षसा सह) कष्टदायी, रोग या पीड़ा के उत्पादक कारण दुष्टजनों के साथ ही (अप भवतु) दूर हों। (द्वयाविनः) सत्य और असत्य दोनों के सेवन करने वाले, दुरंगे लोग (ते रसस्य मा मत्सत) तेरे रस या बल से तृप्त या सुखी न हों। इस देश या लोक में (इन्दवः) उस प्रभु की उपासना करने वाले ही (द्रविणस्वन्तः सन्तु) उत्तम धनसम्पन्न हों।

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि॥२॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टक शोधन करने हारे! तू (देवानां दक्षः असि) विजयार्थी, ज्ञानार्थी, एवं तेजस्वी पुरुषों का बलस्वरूप, उनको उत्साह दिलाने वाला, और (प्रियः मदः)

तृप्तिदायक अन्न, रसवत् उनको आनन्द देने वाला, अति प्रिय है। तू (समर्ये) संग्राम में (अस्मान् चोदयः) हमको सन्मार्ग में चला। (शत्रुम् जहि) नाशकारियों को नाश कर। (भन्दनायतः) अपना कल्याण चाहने वाले स्तुतिशील पुरुषों को (अभि आ पिब) सब प्रकार से पालन कर। हे (इन्द्र) सेनापते! ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! (नः मृधः अव जहि) हमारे हिंसाकारियों को मार गिरा, नीचे कर, और (सोमम् पिब) ऐश्वर्य का भोग कर और पुत्रवत् प्रजा का पालन कर।

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ३

भा०—हे (इन्दो) दयालो! ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! तू (अदब्धः) अविनाशी (मदिन्तमः) अति आनन्ददायक होकर (पवसे) सर्वत्र व्याप्त है। तू (इन्द्रस्य आत्मा) ऐश्वर्य-प्रकाश से युक्त सूर्यादि लोक वा जीव गण का (उत्तमः धासिः) सर्वोत्तम धारक पोषक, अन्नवत् एवं (आत्मा भवसि) आत्मा, देह के तुल्य प्रिय, अन्तरंग है। (अस्य भुवनस्य राजानम्) इस भुवन को प्रकाशित करने वाले, इसके परम स्वामी तुझ को (बहवः) बहुत से (मनीषिणः) विद्वान् बुद्धिमान् जन (अभि स्वरन्ति) सर्वत्र गान करते हैं और उपदेश करते हैं। और (निंसते) प्रेमी के समान उसको प्राप्त होते और प्रेम करते हैं।

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥

भा०—(सहस्र-नीथः) सहस्रों वाणियों, उत्तम नायकों, नयन के तुल्य अनेक गुप्तचरों से युक्त (शत-धारः) मेघवत् सैंकड़ों धारा तुल्य सृष्टिधारक मर्यादाओं और शक्तियों, अधिकारों का स्वामी (अद्भुतः) आश्चर्य-जनक, अभूतपूर्व, स्वतःसिद्ध (इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् स्वामी,

(इन्द्राय) इन्द्र पद के लिये प्राप्त हो। वह (क्षेत्रम्) देहवत् समस्त रणक्षेत्र को जीत कर अपने वश करके और (अपः जयन्) प्राप्त प्रजाओं को अपने वश कर (काम्यं मधु) चाहने योग्य उत्तम मधुर फल, बल, ऐश्वर्य को (पवते) प्राप्त करता और राष्ट्र को भी प्राप्त कराता है। हे (सोम) उत्तम शासक! हे (मीढ्वः) मेघवत् सुखों के वर्षक! तू (नः) हमारे लिये (उरुं गातुं कृणु) जाने को उत्तममार्ग, रहने को विस्तृत भूमि और सुनने को उत्तम, विशाल उपदेश कर।

कनि॑क्रदत्क॒लशे॒ गोभि॑रज्यसे॒ व्य१॒॑व्ययं॑ स॒मया॒ वार॑मर्षसि।
म॒र्मृ॒ज्यमा॑नो॒ अत्यो॒ न सा॑न॒सिरिन्द्र॑स्य सोम ज॒ठरे॒ सम॑क्षरः॥५॥

भा०—(कनिक्रदत्) शासन करता हुआ तू (कलशे) अभिषेक वा मङ्गल-कलश के नीचे (गोभिः) जलधाराओं और स्तुति वाणियों द्वारा (अज्यते) अभिषिक्त होता है, और (अव्ययं वारं वि अर्षसि) भेड़ के बने वालों का श्रेष्ठ वस्त्र, शास्त्र, एवं अविनाशी वा 'अवि' अर्थात् पृथिवी का वरणीय धन और 'अवि' रक्षक के योग्य (वारं) दुष्टों के वारण और प्रजा के सेवन योग्य श्रेष्ठ कार्य को (वि अर्षसि) विविध प्रकार से प्राप्त होता है। (मर्मृज्यमानः अत्यः न) स्वच्छ किये, सुभूषित अश्व के समान (सानसिः) राष्ट्र का सेवक होकर हे (सोम) शासक! तू (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और शत्रुहननकारी सैन्य के मध्य में (सम्-अक्षरः) अच्छी प्रकार गति कर। अच्छे मार्ग वा नीति से चल।

स्वा॒दुः प॑वस्व दि॒व्याय॒ जन्म॑ने स्वा॒दुरिन्द्रा॑य सु॒हवी॑तुनाम्ने।
स्वा॒दुर्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वा॒यवे॒ बृह॒स्पत॑ये॒ मधु॑माँ॒ अदा॑भ्यः॥६॥१०

भा०—हे उत्तम शासक! तू (मधुमान्) बल और मधुर स्वभाव से युक्त होकर (स्वादुः) अपने जनों और ऐश्वर्यों को लेता, संग्रह करता हुआ, (दिव्याय जन्मने) अन्न भोक्ता जीव के तुल्य दिव्य जन्म के लिये (पवस्व) आगे बढ़ और (इन्द्राय स्वादुः) इन्द्र के पद के लिये अपने आपको

समर्थ करता हुआ और (सुहवीतु-नाम्ने) सुगृहीत नाम वाले, पुण्यशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) वायुवत् बलशाली, प्राणवत्, प्रिय, (बृहस्पतये) वेदवाणी या बड़े राष्ट्र के पालक पद के लिये (स्वादुः) सर्वप्रिय, मधुर एवं सर्वस्व प्रदानशील (अदाभ्यः) अविनाशी, अजर अमरवत् (पवस्व) यत्न कर, आगे बढ़। इति दशमो वर्गः ॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः॥७॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों उत्तम प्रेरक अध्यक्ष जन, (अत्यं) सबसे परे, सर्वोपरि को (कलशे) मंगल कलश के समीप, वा राष्ट्र के बीच (मृजन्ति) अभिषिक्त करते, सुशोभित करते हैं। और (विप्राणां मतयः) विद्वानों की स्तुतियें, मतियें और (वाचः) वाणियें (प्र ईरते) अच्छी प्रकार स्तुति करती हैं। (पवमानासः इन्दवः) शुद्ध पवित्र होकर तेजस्वी लोग (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति को सब ओर से प्राप्त करते हैं। वे (मदिरासः) अति हर्षदायक होकर (इन्द्रं विशन्ति) शिष्य जैसे आचार्य को प्राप्त होते हैं वैसे ही वे भी (इन्द्रं विशन्ति) ऐश्वर्य वा राष्ट्र में प्रवेश करते हैं, और भक्तजन प्रभु में प्रवेश करते हैं।

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (पवमानः) राष्ट्र को दुष्टों से रहित करता और अभिषेक किया जाता हुआ, तू (सुवीर्यम् अभि अर्ष) उत्तम बल प्राप्त कर। (उर्वीम् गव्यूतिम्) बड़े भारी मार्ग और बड़े भारी (गो-यूतिम्) वाणी की प्राप्ति को और (महि शर्म) बड़े घर, भवन और सुख को (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (नः) हमारे (अस्य) इस शासक पर (परि-सूतिः) कोई हिंसाकारी जन, मुक्तात्मा पर जन्म-बन्धनवत् (माकिः परि-

ईषत) अधिकार न करले। (त्वया धनं-धनं जयेम) तेरे द्वारा हम लोग अनेक महासंग्राम और उत्तम अनेक ऐश्वर्यों का भी विजय करें।

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

भा०—(वृषभः द्याम् अधि अस्थात्) समस्त सुखों की वर्षा करने वाला, प्रभु, राजा आकाश में सूर्य के तुल्य राजसभा में विराजे। वह (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा और वक्ता (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (रोचना वि रूरुचत्) नाना रुचिकर, कान्तियुक्त कर्मों, ज्ञानों को प्रकाशित करे। वह (राजा) स्वयं तेजस्वी, स्वामीवत् (रोरुवत्) गर्जता, उपदेश करता हुआ (पवित्रम् अति एति) विज्ञान, विवेक के न्याय पद को प्राप्त होता है। (नृचक्षसः) सब प्रधान नायक विद्वान्, आत्मदर्शी जनों के तुल्य द्रष्टा रहकर (दिवः पीयूषं दुहते) राजसभा से 'पीयूष' अमृत के तुल्य, राष्ट्र के दुष्टों के नाशों का उपाय प्राप्त करते हैं।

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥

भा०—(मधु-जिह्वाः) ज्ञानमय मधु को वाणी में धारण करनेवाले (असश्चतः) निःसंग, (वेनाः) मुमुक्षु, तेजस्वी, जन (गिरिष्ठां) वाणी में विद्यमान, (उक्षणं) समस्त संसार को वहन या धारण करने वाले (द्रप्सं) बलवान्, शुक्रमय, (अप्सु ववृधानं) अन्तरिक्षों, जलों, प्राणों, लिङ्गदेहों तक में व्यापक (मधुमन्तं) आनन्दमय, आत्मा प्रभु को (सिन्धोः ऊर्मा) नदी के तरंग के समान उठते हुए आत्मा के आवेश में (पवित्रे) परम पवित्र हृदय में (दिवः नाके) परम प्रकाशमय रूप के एक मात्र सुखमय रूप में और (समुद्रे) सब सुखों के उद्भव करने वाले अनन्त रूप में

(आ आ) प्राप्त करते और (दुहन्ति) उससे अनेक सुख प्राप्त करते और अनेक फल पाते हैं।

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ११

भा०—(वेनानाम्) विद्वान्, नाना फलों को चाहने वाले जनों की (पूर्वीः) भक्तिरस से पूर्ण, वा सनातन से विद्यमान, वेदमय (गिरः) वाणियें, (उपपप्तिवांसं) समीप में अति ऐश्वर्यमय रूप में विद्यमान (नाके) एकान्त सुखमय, मोक्ष धाम में प्राप्त, (सुपर्णम्) उत्तम पालक साधनों और ज्ञान रश्मियों, रूप तेजों से युक्त प्रभु की (अकृपन्त) स्तुति करते हैं। उस (हिरण्ययं) हित, रमणीय, कान्तिमान्, तेजोमय, (शकुनं) शक्तिमान्, अन्यों को भी ऊपर उठा लेने में समर्थ, (क्षामणि स्थाम्) परम क्षमा-सामर्थ्य, परमाश्रय में विद्यमान (पनिप्नतं) सबको ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शिशुं) सर्वव्यापक प्रभु को (मतयः रिहन्ति) सब स्तुतियां, सब बुद्धियां और समस्त बुद्धिमान् व्यक्ति स्पर्श करतीं, वहां तक पहुंचती, और उसी का वर्णन करती हैं।

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य। भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः॥ १२ ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) सब से ऊंचा, (गन्धर्वः) भूमि आदि लोकों, और सब को चलाने वाली शक्ति को धारण करने वाला, (नाके अधि अस्थात्) परम सुखमय, सूर्यवत् देदीप्यमान रूप में सब संसार का अध्यक्ष होकर विराजता है। वह (अस्य) इस जगत् के (विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणः) समस्त रूपों को प्रतिक्षण देखता और प्रकट करता रहता है। वह (शुक्रेण) अतिदीप्त (शोचिषा) सर्व शुद्धकारी कान्ति से (वि अद्यौत्) विशेष रूप से चमकता है, विविध लोकों को प्रकाशित कर रहा

है। वह (भानुः) कान्तिमान्, (शुचिः) शुद्ध पवित्र (रोदसी) आकाश वा सूर्य, और भूमिवत् जगत् को सीमाओं में रोक रखने वाले (मातरौ) जगत् की रचना करने वाले आत्मा और प्रकृति, दोनों तत्वों को (प्र अरूरुचत्) बहुत बहुत चमकाता है, प्रकृति को चमकाता, और जीव को उस की रुचि के अनुसार विहार करने देता है। इत्येकादशो वर्गः। इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[८६]

ऋषिः—१—१० आकृष्टामाषाः। ११—२० सिकता निवावरी। २१—३० पृश्नयोऽजाः। ३१—४० त्रय ऋषिगणाः। ४१—४५ अत्रिः। ४६—४८ गृत्समदः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३३, ४० जगती। २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७ विराड् जगती। ३—५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६ निचृज्जगती। १४, १५, २८, २९, ४३, ४८ पादनिचृज्जगती। २४ आर्चा जगती। ४५ आर्ची स्वराड् जगती ॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना। दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते॥१॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेचनीय ! हे परम पावन ! (ते) तेरे (आशवः) वेग से जाने वाले, व्यापनशील, (धीजवः) बुद्धि के वेग वाले, धीमान् पुरुष, (मदाः) आनन्द प्रसन्न होकर (रघुजाः इव) वेग में प्रसिद्ध अश्वों वा स्वयं वेग उत्पन्न करने वाले यन्त्रों के तुल्य (त्मना प्र अर्षन्ति) आप से आप आगे बढ़ते हैं। वे (दिव्याः) दिव्य, तेज से युक्त (सुवर्चाः) उत्तम ज्ञान से युक्त, सुखमय, शुभ ज्ञान मार्ग से जाने वाले, (मधुमन्तः) वेदमय ज्ञानोपदेश से युक्त (इन्दवः) तेजस्वी पुरुष

(मदिन्तमासः) अति अधिक सुप्रसन्न और अन्यों को भी आनन्दित करने वाले होकर (कोशं परि आसते) भीतर आनन्दमय कोश का आश्रय करके विराजते हैं। जैसे राजा के वीर ऐश्वर्यमय कोश का आश्रय लेकर बैठते हैं वैसे प्रभु के भक्त, उपासक आनन्दमय कोश का आश्रय लेते हैं।

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः॥२॥

भा०—हे प्रभो ! (ते) तेरे (आशवः) व्यापनशील, शीघ्र कार्य करने में समर्थ कुशल जन, (मदासः) प्रभु के आनन्द के तरंग (मदिरासः) अन्यों को भी आनन्द प्रसन्न करने वाले होकर (रथ्यासः यथा) रथ योग्य अश्वों वा रथ के संचालन में कुशल महारथों के तुल्य (पृथक् प्र असृक्षत) पृथक् २ स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होते और आगे बढ़ते हैं और (धेनुः वत्सं पयसा अभि) जिस प्रकार गौ अपने दूध से बछड़े को प्राप्त हो, उसे पुष्ट करती है, उसी प्रकार वे (मधुमन्तः) मधुर सुख और ज्ञान वाले (ऊर्मयः) उन्नत विचारवान्, उत्साही पुरुष और तरङ्गवत् उत्पन्न आनन्द रस (इन्दवः) तेजस्वी और आल्हादजनक (वज्रिणम् इन्द्रम् अभि) बलशाली ऐश्वर्ययुक्त आत्मा को अपने ज्ञान वीर्य से प्राप्त होते हैं। वे राजा का सैनिकों के तुल्य ही आश्रय करते हैं।

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम्।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे॥३

भा०—(हियानः अत्यः) प्रेरित हुआ अश्व जिस प्रकार (वाजम् अभि) संग्राम की ओर बढ़ता है, उसी प्रकार (स्वः-वित्) प्रकाशमय ज्ञान का लाभ कर लेने वाला, हे विद्वन् ! तू (अद्रि-मातरम्) मेघ के उत्पादक (दिवः कोशम्) अन्तरिक्ष के जल से पूर्ण वायुमण्डल के तुल्य (अद्रि-मातरम्) मेघतुल्य ज्ञानप्रद उदार पुरुषों को उत्पन्न करने वाले (दिवः कोशम्) ज्ञान-प्रकाश के अपार भण्डार उस प्रभु को (अभि अर्ष)

प्राप्त हो। तू (वृषा) बलशाली, होकर (पावत्रे) परम पवित्र, (अव्यये) रक्षामय, अविनाशी, (सानौ अधि) ऐश्वर्यमय परम पद में (पुनानः) प्राप्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् होकर (धायसे) सर्वधारक, सर्वपोषक (इन्द्रियाय) परमेश्वर्यवान् प्रभु के प्राप्त करने के लिये (अभि-अर्ष) आगे बढ़।

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि। प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥४॥

भा०—हे (पवमान) आत्मन्! विद्वन्! (ते) तेरी (धीजुवः) उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा वेग वाली, (दिव्याः) ज्ञान प्रकाश से युक्त, (अश्विनीः) व्यापक धाराएं, वाणियें, शक्तियें, (धरीमणि) उस सर्व-धारक प्रभु के निमित्त (प्र असृग्रन्) बड़े वेग से उत्पन्न होती हैं। हे (ऋषिषाण) तत्वद्रष्टा ऋषि जनों से सेवित उपासित आत्मन्! (ये) जो (वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (त्वा मृजन्ति) तुझे परिशोधन करते हैं वे (ऋषयः) तत्वदर्शी ऋषि जन तेरी उन बुद्धियों, ज्ञानधाराओं को (अन्तः स्थाविरीः प्र असृक्षत) अपने भीतर स्थिर कर लेते हैं। अपने भीतरी अन्तःकरण रूप क्षेत्र में लताओं के समान अंकुरित कर उनको बढ़ाते हैं।

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः। व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि॥ ५॥ १२॥

भा०—हे (विश्व-चक्षः) समस्त संसार के द्रष्टा! हे (सोम) जगत् के उत्पादक सञ्चालक! (ऋभ्वसः) महान्! (सतः) सत् स्वरूप (ते प्रभोः) तुझ प्रभु के (केतवः) ज्ञान करानेवाले किरणों के तुल्य प्रकाश (विश्वा धामानि परि यन्ति) सब भुवनों में पहुंच रहे हैं। तू (व्यानशिः) विविध प्रकार से

व्यापने वाला होकर (धर्मभिः पवसे) जगत् को धारण करने वाले नाना बलों से व्याप रहा है। तू (भुवनस्य विश्वस्य) समस्त जगत् का (पतिः राजसे) पालक, स्वामी होकर विराजता है, सबको प्रकाशित करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ६

भा०—(सतः ध्रुवस्य) सत्स्वरूप, समस्त जगत् के धारक, ध्रुव, कूटस्थ, अविनाशी, (पवमानस्य) सर्वव्यापक उस आत्मा प्रभु के (केतवः) ज्ञानमय (रश्मयः) किरण (उभयतः परियन्ति) इस और उस दोनों लोकों में व्याप रहे हैं। (यदि) जब (हरिः) सब दुखों का हरण करने वाला हरि, वह प्रभु (पवित्रे) परमपावन रूपमें (अधिमृज्यते) परिशोधन किया जाता है, वह (योनौ सत्ता) योनि में बैठने वाले आत्मा, और घर में विराजने वाले गृहपति के तुल्य इस विश्व में (सत्ता) विराज कर (कलशेषु) नाना घटों, देहों के तुल्य समस्त भुवनों में (सीदति) विराजता है।

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम्।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(सु-अध्वरः) शोभन मार्ग का उपदेश करने वाला, उत्तम हिंसारहित प्रजापालनरूप यज्ञ का सम्पादक, अन्य किसीसे भी पीड़ित न होनेवाला, (यज्ञस्य केतुः) महान् जगन्मय यज्ञचक्र को सूर्यवत् प्रकाशित करने वाला, (सोमः) जगत् का शासक, उत्पादक प्रभु (देवानां निष्कृतम्) समस्त मनुष्यों और प्राणों, पृथिव्यादि लोकों के भी परम स्थान को (उप याति) प्राप्त है। वह (सहस्र-धारः) सहस्रों धारक शक्तियों ज्ञानवाणियों का स्वामी (वृषा) सब सुखों का वर्षक (कोशम् परि अर्शति) आनन्दमय कोश में प्रकट होता है। वही (रोरुवत्) नाद करता हुआ (पवित्रम् एति जाते) परम पवित्र हृदय को प्राप्त होता है।

राजा समुद्रं नद्यो॒॑वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः॥८॥

भा०—(राजा) सबका स्वामी, प्रकाशमान् प्रभु (नद्यः) सदा स्तुति योग्य है। वह (समुद्रं वि गाहते) इस महान् आकाशमय वा कामनामय समुद्र को पार करता, उसमें व्यापता है। (अपाम् ऊर्मिम्) प्राणियों के प्राणों के उर्ध्व शक्ति को (सचते) प्राप्त किये है, वह उनका स्वामी है। वह (सिन्धुषु श्रितः) देहस्थ आत्मा रक्त से पूर्ण नाड़ियों, रगों में भी व्याप्त है, वह प्रभु गतियुक्त समस्त शक्तिशाली पदार्थों में भी व्याप्त है। वह (पवमानः) सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक प्रभु (अव्ययं) अक्षय, सर्वरक्षामय ऐश्वर्य को (अधि अस्थात्) अपने वशकर उसपर मालिक के समान बैठा, उसपर शासन करता है। (अयं) यह (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के केन्द्र में बैठा है वह (महः दिवः) बड़े भारी सूर्य का भी (धरुणः) धारण करने वाला परमाश्रय है।

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति॥९॥

भा०—(दिवः सानु न स्तनयन्) जिस प्रकार मेघ गर्जता हुआ भूमि, और आकाश के ऊंचे स्थल को प्राप्त होता है उसी प्रकार वह जीव भी (स्तनयन्) माता के स्तन के अभिलाषी बालकवत् प्रभु माता के (स्तनयन्) शब्दमय वेदोपदेश की आकांक्षा करता हुआ (दिवः सानु) ज्ञान के सर्वोपरि सत्य ऐश्वर्य को (अचिक्रदत्) प्राप्त करता है। (यस्य धर्मभिः) जिसके धारक सामर्थ्यों से (द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी दोनों स्थिर हैं उस (इन्द्रस्य सख्यं वेविदत् सोमः पवते) परमेश्वर के मित्र भाव को निरन्तर प्राप्त करता हुआ यह जीव, आगे बढ़ता और (पुनानः) इस प्रकार बराबर गति करता हुआ (कलशेषु सीदति) नाना देहों में और लोकों में विराजता है।

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः॥१०॥१३

भा०—(यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञवेदि में अग्नि के तुल्य, (प्रियम् मधु) मधु, अन्न जल के तुल्य तृप्तिकारक, अतिप्रिय, (देवानां पिता) सुखप्रद प्राण गणों का प्रभुवत् पालक, पितावत् उत्पादक, (जनिता) माता के समान अपने आश्रय में ही उत्पन्न करने वाला, (जीव-स्वधयोः) अपने स्वशक्ति से धारण करने योग्य दोनों प्राणों के बल पर (रत्नं) रमण करने योग्य साधन इस देह को (अपीच्यं) स्वयं भीतर छुपे २ दधाति (धारण) करता है। वह (मदिन्तमः) स्वयं अति आनन्दमय (मत्सरः) स्वतः तृप्त (इन्द्रियः) समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता (रसः) रसरूप, बलरूप है।

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा॥११॥

भा०—वह (विचक्षणः) विविध इन्द्रियों से नाना भोग्य पदार्थों को देखने वा ज्ञान करने हारा, (शत-धारः) सैकड़ों वाणियों, स्तुतियों को करने वाला, नाना अनेक सामर्थ्यवान् (दिवः पतिः) अपनी कामना का स्वयं स्वामी, स्वतन्त्र कामनावान् (वाजी) बल, ऐश्वर्य से और ज्ञान से युक्त जीव (कलशं अभि) १६ कलाओं से युक्त इस देह को प्राप्त होता हुआ (अर्षति) संसार में गति करता है। वह (हरिः) जीव, (विभिः) ज्ञानवान् पुरुषों, प्राणों और (सिन्धुभिः) जलप्रवाहों के समान स्वच्छ करने वाले आप्तजनों, प्राणों, इडा, पिंगला आदि नाड़ियों द्वारा (मर्मृजानः) अति शुद्ध, पवित्र होता हुआ, (मित्रस्य) परमस्नेही प्रभु के (सदनेषु) लोकों में (सीदति) विराजता है।

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा॥१२॥

भा०—वह (सिन्धूनाम् अग्रे) देह में बहने वाली रक्त धाराओं के भी पूर्व, उनमें (पवमानः) व्यापक होता हुआ, (अर्षति) विराजता है,

वह (वाचः अग्रे) वाणी-शक्ति के भी पूर्व, और (गोषु) इन्द्रियों में भी (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ होकर (गच्छति) गमन करता है। वह (वाजस्य अग्रे) सांग्रामिक बल के आगे २ नायक के तुल्य होकर (महाधनं भजते) बड़ा भारी ऐश्वर्यप्रद संग्राम करता है, वह (स्वायुधः) उत्तम वा अपने ही हथियारों से सम्पन्न सैनिक के समान (वृषा) बलवान् होकर (सोतृभिः) उपासकों द्वारा (पूयते) अभिषेक किया जाता है। आत्मा स्वयं अपने प्राण आदि रूप साधनों वाला है और उसके उपासक इन्द्रियादि सोता हैं।

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते १३

भा०—(अयं) यह (यथा शकुनः) एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाने वाले पक्षी के तुल्य एक देह से दूसरे देह में जाने वाला जीव (मतवान्) ज्ञानवान् होकर (पवमानः) गति करता हुआ (ऊर्मिणा) उत्तम ज्ञानोपदेश से, (अव्ये) परम रक्षास्थान, स्नेहमय, ज्ञानमय, प्रभु के शासन में (हितः) स्थिर होकर संसार में गति करता है। हे (कवे) क्रान्त-दर्शिन्! हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (अयं सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीवगण (रोदसी अन्तरा) इहलोक, परलोक दोनों के बीच में (तव क्रत्वा शुचिः) तेरे ज्ञान, कर्मोपदेश से शुद्ध पवित्र होकर (धिया) बुद्धिपूर्वक (पवते) विचरण करता है। इसी प्रकार सोम, शिष्य इन्द्र, आचार्य से शिक्षित, होकर माता पिता के पास जाता, स्त्री पुरुषों में भी शुद्ध होकर विचरता है।

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४॥

भा०—वह (यजतः) सत्संगशील होकर (दिवि-स्पृशम् द्रापिं वसानः) ज्ञान प्रकाश का स्पर्श कराने वाले, कवच के तुल्य रक्षक, गुरु के

अधीन वास करता हुआ, (अन्तरिक्ष-प्राः) सूर्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष को जैसे, वैसे गुरु के ज्ञान से अपने अन्तःकरण को पूर्ण करता हुआ यह जीव (भुवनेषु) लोकों और देहों में स्थित होता है । वह (स्वः जज्ञानः) प्रभु के ज्ञानोपदेश का ज्ञान लाभ करता हुआ (नभसा) आकाशमार्ग से सूर्य के समान, अनवलम्ब, असहाय मार्ग में भी निर्भय होकर (अभि अक्रमीत्) विचरता है और (अस्य प्रत्नं पितरम्) अपने पुराने, सनातन पालक प्रभु की (आ विवासति) परिचर्या, सेवा, उपासना, स्तुति आदि करता है ।

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे। पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः॥१५।१४

भा०—(यः) जो मनुष्य या आत्मा (अस्य) इस प्रभु के (प्रथमं) सर्वोत्तम (धाम) तेजः सामर्थ्य को (वि आनशे) विविध प्रकार से या विशेष रूप से प्राप्त करता है (सः) वह प्रभु ही (अस्य) इस आत्मा के (विशे) देह में प्रवेश करने के लिये वा उसकी प्रजा रूप नाना प्राणगण को भी (महि शर्म) बड़ा भारी सुख (यच्छति) प्रदान करता है । (अस्य) इस जीव आत्मा की (यत्) जब (परमे व्योमन् पदम्) परम रक्षास्थान प्रभु में प्राप्ति हो जाती है तभी उसको वह सामर्थ्य प्राप्त होता है (यतः) जिससे वह (विश्वा संयतः) समस्त संग्रामों का भी (अभि सं याति) मुकाबला करलेता है।

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् । मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १६ ॥

भा०—उस प्रभु की सेवा परिचर्या करनेवाला वह जीवात्मा (इन्द्रस्य) उस परमेश्वर्यवान् प्रभु के (निष्कृतम्) सत्कर्मों से सम्पादनीय परम पद को लक्ष्य करके (प्रो अयासीत्) आगे बढ़ता है । वह (सखा) उसका मित्र होकर (सख्युः) अपने परम मित्र के समान नाम वाले परम-आत्मा की (संगिरम्) उत्तम वाणी, आज्ञा वा प्रतिज्ञा को (न प्रमिनाति) नहीं भंग

करता। वह (मर्यः इव युवतिभिः) स्त्रियों से पुरुष के समान (सोमः) जीवात्मा, (मर्यः) मरणधर्मा होकर भी (युवतिभिः) अपने साथ मिली नानाशक्तियों, कामनाओं से (शत-याम्ना पथा) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य वा सौ वर्षों तक भोगने योग्य इस संसार मार्ग से (कलशे सम्-अर्षति) इस षोड़शकलायुक्त पुरुष-देह में प्राप्त होता है।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः १७

भा०—हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों के कर्म और बुद्धियों और आप लोगों में से जो उत्तम धारणावान् और कर्मवान् (मन्द्रयुवः) आनन्द, परमसुख की कामना करनेवाले, (पनस्युवः) स्तुति करना चाहते हुए (विपन्युवः) स्तोता लोग (सं-वसनेषु अक्रमुः) एक साथ मिलकर बैठने के स्थानों, सत्संगों में विराजें। और (मनीषाः) अपने चित्त पर वश करने वाले, एकाग्रचित्त होकर (सोमं) उस सर्वोत्पादक, सर्वशासक प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करें। (पयसा धेनवः) दूध से जैसे गौवें अपने शासक की सेवा करती है उसी प्रकार वे (स्तुभः) भगवान् की स्तुतियां भी अपने ज्ञान रस से उसी प्रभु की (अशिश्रयुः) सेवा करती हैं।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम्
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान् प्रभो! हे (इन्दो) तेजोमय! (नः) हमें (संयन्तं) सम्यक् मार्ग में जानेवाली, (पिप्युषीम्) बढ़ती हुई (अस्रिधम्) नाश न करनेवाली (ऊर्जं नः आपवस्व) हमें सत् इच्छा को उत्तम वर्षा और अन्न सम्पदा के समान प्राप्त करा। (या) जो (असश्चुषी) निःसंग और विघ्नरहित होकर (अहन्) दिनमें (त्रिः) तीनबार (क्षुमत्) उत्तम उपदेश युक्त, (वाजवत्) बलयुक्त, (मधुमत्) मधुर अन्नरस से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम बल वीर्य, (दोहते) प्रदान करे।

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः १६

भा०—(वृषा) बलवान्, सुखों की वर्षा करनेवाला, (मतीनां) समस्त मननों, स्तुतियों, वाणियों और बुद्धियों का (विचक्षणः) विविध प्रकार से दर्शन करनेवाला, (सोमः) सर्वशास्ता, सर्वप्रेरक प्रभु आत्मा (अहः उषसः प्रतरीता) दिन, उषाकाल का उत्पादक, सूर्य के तुल्य (दिवः प्रतरीता) तेज, प्रकाश, ज्ञान, उत्तम कामना की वृद्धि करने और देनेवाला (सिन्धूनां क्राणा) प्रवाहशील जलों के तुल्य देह में रक्तनाड़ियों का भी बनानेवाला (कलशान् अवीवशत्) देह के समस्त कलशों, कणों (cells) को भी वह वश करता है, वह (मनीषिभिः) मन अर्थात् ज्ञान की प्रेरणा करनेवाले साधनों पर से भी (इन्द्रस्य हार्दि अविशत्) इस आत्मा के हृदय में प्रवेश करता है, उसका प्रिय हो जाता है ।

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे २०।१५

भा०—(पूर्व्यः कविः) पूर्व के विद्यमान विद्वान् जनों से उपासित, सर्वोपदेष्टा अनादि प्रभु (यतः) नियमों में बद्ध, (परि कोशान् अचिक्रदत्) समस्त कोशों, हृदयों और लोकों में व्याप्त है, इससे वह (मनीषिभिः) मन और ज्ञान को प्रेरणा देनेवाले, बुद्धिमान्, बुद्धिप्रद (नृभिः) मनुष्यों और प्राणों द्वारा (पवते) हमें प्राप्त होता है। वह (इन्द्रस्य) इस देह के प्राणच्छिद्रों को विदारण करनेवाले भोक्ता आत्मा के (वायोः) प्राणवायु से (सख्याय कर्त्तवे) मैत्रीभाव करने के लिये (त्रितस्य) तीनों लोकों वा देह के तीनों भागों में व्याप्त आत्मा के (मधु) तृप्तिकारक और (क्षरत् नाम) द्रवरूप जल वा द्रव रुधिर को भी (जनयन्) उत्पन्न करता है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अयं पुनान उषसो विरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः २१

भा०—(अयम्) यह सूर्य के समान (पुनानः) स्वच्छ पवित्र होता और प्रकट होता हुआ (उषसः वि रोचयत्) नाना कान्तियों तथा अज्ञान और पाप एवं कर्म-बन्धनों को दग्ध करने वाली ज्ञान-ज्वालाओं को अग्निवत् प्रकट करता है। (अयम्) यह (सिन्धुभ्यः) जलों एवं प्रवाहशील, गतिमत् प्रकृति के अवयवों से (लोक-कृत्) समस्त लोकों को बनाता है, एवं वह इन रक्तवाहिनी सूक्ष्म नाड़ियों से ही (लोक-कृत्) पदार्थ दर्शक इन्द्रियों की भी रचना करता है। (अयं) यह (आशिरं) रसको (त्रिःसप्त) २१ प्रकार से (दुदुहानः) प्रदान करता हुआ (सोमः) वीर्यमय सोम (मत्सरः) देह में हर्ष संञ्चार करने वाला होकर (हृदे) हृदय में (चारु पवते) अच्छी प्रकार व्यापता है।

पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न इ॑न्दो क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ।
सीद॒न्निन्द्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒न्नृभि॑र्य॒तः सूर्य॒मारो॑हयो दि॒वि ॥२२॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य! हे (इन्दो) तेजस्विन्! प्रभु के उपासक! तू (पवित्रे कलशे) परम पवित्र, आत्मा, अन्तःकरण को स्वच्छ करनेवाले इस घट सदृश देह में (आ सृजानः) उत्पन्न होता हुआ ही, (दिव्येषु धामसु) अपनी मनोकामना के अनुसार उत्तम धारण करने योग्य देहों, जन्मों और स्थानों में (पवस्व) जा। तू माता के गर्भ के सदृश उस (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के गर्भ में, गुरुगर्भ में शिष्यवत् (सीदन्) रहता और उन्नति की ओर जाता हुआ और (कनिक्रदत्) प्रभु की स्तुति करता, शास्त्रों का अभ्यास करता हुआ (नृभिः) अपने नेताओं, विद्वानों तथा प्राणों द्वारा (यतः) सुनियंत्रित, नियमबद्ध रहकर ही (दिवि सूर्यम्) आकाश में स्थित सूर्य के सदृश कान्तिमान् (दिवि) ज्ञान, आनन्दप्रद कामना क्षेत्र में (सूर्यम्) सबके प्रकाशक प्रभु का (आ रोहयः) आश्रय ले, उसी को प्राप्त हो। वा इन्द्रिय गणों को वश करके (सूर्यम्) दक्षिण प्राण के बल से ब्रह्मरन्ध्र की ओर गति कर।

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन्।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप॥२३॥

भा०—हे (सोम) दीक्षादि में अभिषेक योग्य विद्वन्! शिष्य! उपासक! हे (इन्दो) गुरु या प्रभु के उपासक! तू (अद्रिभिः सुतः) मेघ तुल्य उदार ज्ञानवर्षी, एवं कूटने के पाषाणों के सदृश रसप्रद, अज्ञानग्रन्थि के नाशक गुरुजनों से (सुतः) उपदिष्ट, दीक्षित होकर (पवित्रे) परम पवित्र ज्ञानमय पद में (पवसे) प्राप्त हो। और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान्, विघ्नों और अज्ञानों के नाश करनेवाले गुरु, प्रभु के (जठरे) भीतर गर्भ में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ। हे (विचक्षण) विविध ज्ञानों के देखने हारे! (त्वम्) तू (नृचक्षाः अभवः) मनुष्यों के बीच विवेक से तत्वों का द्रष्टा हो। और (अङ्गिरोभ्यः) अंग में प्राणों के समान वा देह में अंगारों के समान तेजस्वी ज्ञानी जनों के लिये (गोत्रम्) वाणियों के समान रक्षक वेदमय ख़ज़ाने को (अप अवृणोः) खोल कर रख।

त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् २४

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! सर्वप्रेरक प्रभो! (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान, धारणा और उत्तम कर्म वाले (विप्रासः) मेधावी विद्वान्, (अवस्यवः) रक्षा, ज्ञान, कृपा दया और अपनी वृद्धि चाहने वाले जन (पवमानं त्वां) बाह्य और भीतरी शत्रुओं का नाश कर देश, देह और हृदय को पवित्र करने वाले तेरी ही (अनु अमदन्) निरन्तर स्तुति किया करते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् (विश्वाभिः मतिभिः) समस्त बुद्धियों और स्तुतियों वा ज्ञान-वाणियों से (परि-कृतम्) सुशोभित (त्वां) तुझको (सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति वाला वा उत्तम गति से जाने में समर्थ उत्तम साधनसम्पन्न पुरुष (दिवः परि) समस्त कामनाओं को प्राप्त

करने के लिये वा (दिवः परिः) महान् आकाशवत्, अपरिमेय हृदयाकाश में भी (त्वां आभरद्) तुझको ही धारण करता है।

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः। अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत २५।१६

भा०—(अव्ये वारे) ज्ञानमय आवरण में (ऊर्मिणा) उत्साह से (पुनानं) वृद्धि को प्राप्त करते हुए (हरिम्) ज्ञानधारक शिष्य को (सप्त धेनवः अभिनवन्ते) वेद की सातों छन्दों की वाणियां प्राप्त होती हैं। (अपाम् उपस्थे) जलों के समीप विद्यमान (कविम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् को प्राप्त होकर (आयवः) मनुष्य (महिषाः) बड़ा ज्ञान और बल प्राप्त करके (ऋतस्य योनौ अधि) सत्य ज्ञान के आश्रय रूप उसके अधीन (अहेषते) शास्त्र का अभ्यास करें। इति षोडशो वर्गः॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे। गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति॥ २६॥

भा०—(पुनानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष, (मृधः अति गाहते) हिंसक शत्रु-सेनाओं और आत्मविनाशक दुष्ट प्रवृत्तियों को पार कर जाता है। वह (यज्यवे) दानशील प्रजाजन के हितार्थ (सुपथानि कृण्वन्) उत्तम २ मार्ग उत्पन्न करता है। वह (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (कविः) विद्वान् पुरुष (गाः कृण्वानः) स्तुतियों और सुन्दर वाणियों, वेद मन्त्रों और आज्ञाओं का पुनः २ अभ्यास करता हुआ (क्रीड़न् अत्यः न) बलवान् अश्व के तुल्य अनायास जाता हुआ (निर्णिजं) अति शुद्ध (वारम्) वरण करने योग्य ऐश्वर्य पद या स्वरूप को (परि अर्षति) प्राप्त होता है।

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः। क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः २७

भा०—(हरिं) दुःखहारी रक्षक को (अभि-श्रियः) उसका आश्रय लेने वाली (असश्चतः) परस्पर असम्बद्ध, स्वतः पृथक् २ (शत-धाराः) सैकड़ों धाराओं के तुल्य, प्रजाएं नाना स्तुतियां करती हुई (उदन्युवः) जल लिये हुए, आदरार्थ (नवन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों । (दिवः) भूमि या राजसभा के (रोचने) सर्वप्रिय, (तृतीये पृष्ठे) तृतीय, सर्वोत्तम पद पर (गोभिः आवृतम्) वेद-वाणियों से परिष्कृत जल-धाराओं से अभिषिक्त उसको (क्षिपः) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली नाना सेनाएं भी (परि मृजन्ति) सुशोभित और अभिषिक्त करती हैं । इसी प्रकार निःसंग सहस्रों वाणियां और भक्तजन उस प्रभु की स्तुति करते हैं । परम मोक्ष पद में विराजमान उस प्रभु को पापवासनाओं को फेंक देने वाले शुद्ध जन ही प्राप्त करते हैं ।

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि २८

भा०—हे (पवमान) सबके पावन ! प्रेरक, व्यापक प्रभो ! (दिव्यस्य रेतसः) दिव्य, तेजोमय सर्वोत्पादक वीर्य वा बल से उत्पन्न (तव इमाः प्रजाः) ये समस्त तेरी प्रजाएं हैं । (त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि) तू समस्त जगत् का राजा के समान स्वामी, सब जगत् को प्रकाशित करने हारा है । (अथ) और (इदं विश्वं ते वशे) यह समस्त विश्व तेरे ही वश में है । हे (इन्दो त्वम् प्रथमः) तेजस्विन् ! तू ही सर्वश्रेष्ठ (धाम-धाः) तेजों, धारण सामर्थ्यों और लोकों को धारण और पोषण करनेहारा (असि) है ।

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः २९

भा०—हे (कवे) क्रान्तिदर्शिन् विद्वन् ! (त्वं समुद्रः असि) तू समुद्र के समान अपार और गम्भीर ज्ञानों और गुणों का भण्डार है । तू

(विश्व-वित्) जगत् के समस्त पदार्थों को जानने, सब को सब प्रकार के पदार्थ प्राप्त कराने वाला है (तव विधर्मणि) तेरे विशेष शासन में (इमाः पञ्च प्र-दिशः) ये पांचों मुख्य दिशाएं आत्मा के अधीन पांच इन्द्रियों, राजा के अधीन पांचों प्रजाओं के तुल्य हैं। तू (द्यां च पृथिवीं च) आकाश और भूमि को (अति) पार करता, उनका धारण करता और पालता है, उनसे कहीं बड़ा है। हे (पवमान) सर्वप्रेरक प्रभो ! (सूर्यः तव ज्योतींषि) यह सूर्य भी तेरी ही ज्योतियें है। अथवा (सूर्यः तव ज्योतींषि जभ्रिषे) सूर्य तेरी ही ज्योतियों को धारण करता है।

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ३०।१७

भा०—हे (पवमान सोम) सब जगत् को प्रेरित और पवित्र करने वाले, सर्वव्यापक प्रभो ! हे सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! (त्वं) तू (देवेभ्यः) समस्त देवों के लिये (रजसः) समस्त लोकों के (पवित्रे) सर्वप्रेरक (विधर्मणि) सब के धारक पद पर (पूयसे) अभिषिक्त होता है। (प्रथमाः उशिजः) सर्व प्रथम, सर्व श्रेष्ठ तुझे चाहनेवाले, तेरे प्रेमी जन (त्वाम् अगृभ्णत) तेरा आश्रय ग्रहण करते, तेरा प्रत्यक्ष ज्ञान करते हैं, (इमा विश्वा भुवनानि) ये समस्त लोक (तुभ्य येमिरे) तेरी ही बल से बद्ध हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्रतम् ३१

भा०—(रेभः) उपदेष्टा होकर (अव्ययं वारम् अति) सर्वरक्षक सर्ववरणीय पद को (अति प्र एति) सब से बढ़कर प्राप्त होता है। (वृषा) सर्वसुखों का वर्षक होकर (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (वनेषु) कार्यों में अग्नि के तुल्य रश्मियों, तेजों, सूर्य के तुल्य समस्त

ऐश्वर्यों में (अवचक्रदत्) व्यापता है। (धीतयः) कर्म करने वाले जन (वावशानाः) उस प्रभु की कामना करते हुए ही (सम् अनूषत) उस की मिलकर स्तुति करते हैं (मतयः) समस्त स्तुतियां ज्ञान-वाणियां (शिशुम्) बालकवत् समान भाव से सर्वप्रिय, निर्मल, निर्दोष रूप में (पनिप्नतं) उपदेश देते हुए उस बालक को (रिहन्ति) माता के समान चूमती, उस तक पहुंचती हैं।

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ३२

भा०—(सः) वह गुरु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से जैसे वैसे तेजों से वा शिष्यों से (परि व्यत) आवृत हो जाता है। वह (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) उनका तिन-लहड़ा, तिहरा बटा तन्तु, यज्ञोपवीत (तन्वानः) करता हुआ (यथा विदे) शिष्य जनों को यथावत् रीति से प्राप्त करने और उनको यथावत् ज्ञान कराने के लिये (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और तेज की (नवीयसीः) अति उत्तम २ (प्रशिषः) आज्ञाओं, प्रशासनों और उपदेशनाओं को (नयत्) प्राप्त कराता हुआ (पतिः) उनका पालक होकर (जनीनां) पुत्रोत्पादक माताओं के (निष्कृतं उपयाति) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है। अथवा (जनीनां) प्रकट हुई ज्ञानजनक वाणियों के लिये (निष्कृतम्) उत्तम पात्र प्राप्त करता है।

(२) गृहस्थ पक्ष में—सोम वधू प्राप्त करके (जनीनां पतिः) पुत्र प्रसव करने वाली दाराओं का पालक होकर (निष्कृतं) गृह को प्राप्त करता है।

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत्।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ३३

भा०—(सिन्धूनां राजा) वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामी, सेनापति वा महारथी के तुल्य वह (सिन्धूनां राजा) कुमार्ग में जाने वाले

शिष्य जनों व इन्द्रियों का स्वामी, (दिवः पतिः) ज्ञान, प्रकाश और सदिच्छा का पालक होकर (ऋतस्य पथिभिः) सत्य ज्ञान और न्याय के मार्ग से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ गमन करता है। वह (सहस्र-धारः हरिः) सहस्रों धाराओं वाले मेघ के तुल्य, सहस्रों वाणियों का आश्रय, अज्ञानहारी, मनोहर और (उप-वसुः) समीप रहते वसु, ब्रह्मचारियों से सेवित होकर (वाचं जनयन्) ज्ञान वाणी का उपदेश करता हुआ (पुनानः) उनको पवित्र करता हुआ स्वयं भी (परि सिच्यते) पवित्र हो जाता है। वह ज्ञान में और भी निष्णात होता जाता है।

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ३४

भा०—हे (पवमान) अन्यों को पवित्र करने हारे ! तू (महि अर्णः) अभिषेक काल में बहुत से जलों के तुल्य (महि अर्णः) बहुत भारी ज्ञान को (वि धावसि) विशेष रूप से प्राप्त करता है। (सूरः न) सूर्य के समान (चित्रः) आश्चर्यजनक, ज्ञान का पुञ्ज होकर (अव्ययानि पव्यया) आदरसूचक भेड़ के बालों के बने पवित्र दुशालों के समान ही (अव्य-यानि पव्यया) ज्ञानमय परम पवित्र तत्वों को भी प्राप्त करता है, (गभस्ति-पूतः) सूर्य की किरणों से पवित्र होकर (नृभिः अद्रिभिः सुतः) मेघवत् उदार जनों से अभिषिक्त वा उपासित, सुसेवित होकर (धन्याय) धन-ऐश्वर्य के योग्य आदरणीय, धन्य (महे वाजाय) बड़े भारी ज्ञान-ऐश्वर्य को (धन्वसि) प्राप्त करता है। इसी प्रकार सेनानायक भी नायकों से अभिषिक्त होकर बड़े भारी संग्राम को धनुष के बल पर करे।

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ३५।१८

भा०—हे (पवमान) पवित्र एवं ज्ञान में निष्णात होने हारे ! तू (श्येनः न) उत्तम आचार चरित्र वाला, सत्पथगामी होकर (इषम्

ऊर्जम् अभि अर्षसि) अन्न, बल और उत्तम इच्छा और पराक्रम को प्राप्त करता है । और (वंसु कलशेषु सीदसि) सेवन योग्य अभिषेक घटों के बीच विराजता है, इधर आत्मा कोशों या नाना देहों में विराजता है (इन्द्रिय) ऐश्वर्यवान् पद के लिये (मद्वा) हर्षकारक, (मदः) स्वयं भी आनन्द प्रसन्न, (सुतः) निष्णात, (दिवः विष्टंभः) प्रकाश के स्तम्भ के सदृश ज्ञानों को धारण करने वाला, (उपमः) सर्वोपमानयोग्य, (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा और उपदेष्टा है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स॒प्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒तरः॒ शिशुं॒ नवं॑ जज्ञा॒नं जेन्यं॑ विप॒श्चित॑म् ।
अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं॒ सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑ ॥३६॥

भा०—(स्वसारः मातरः नवं जज्ञानं शिशुम्) बहनें और माताएं जैसे नवजात बालक को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (सप्त) चलने वाली, वा गणना में सात (स्वसारः) ऐश्वर्य को लक्ष्य कर शत्रु पर आक्रमण करने वाली, (मातरः) शत्रु का हिंसन करने वाली वा गर्जना तर्जना करने वाली सेनाएं (जेन्यं) विजिगीषु (सोमं) शासक को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार (स्वसारः) स्वयं आने वाले (मातरः) विद्या का अभ्यास करने वाले जन (विपश्चितं) विद्वान् ज्ञानी (अपां गन्धर्वं) प्रजाओं के बीच ज्ञानवाणी को धारण करने वाले, (दिव्यं) तेजस्वी (नृ-चक्षसम्) मनुष्यों को देखने और सन्मार्ग का उपदेश करने में समर्थ (सोमम्) उत्तम शासक पुरुष को (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) समस्त संसार को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के तुल्य ही (अभि) प्राप्त होते हैं ।

ई॒शा॒न इ॒मा भुव॑नानि॒ वीय॑से युजा॒न इ॑न्दो ह॒रितः॑ सुप॒र्ण्यः॑ ।
तास्ते॑ क्षरन्तु॒ मधु॑मद्घृ॒तं पय॒स्तव॑ व्र॒ते सो॑म तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑ ३७

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे उत्तम मार्ग में सब को प्रेरने वाले शासकवर ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (हरितः सुपर्ण्यः) अज्ञान दूर करने वाली सुन्दर ज्ञानवाला, वाणियों को (युजानः) प्राप्त वा प्रयोग करता

हुआ (इमा भुवनानि) इन सब लोकों को सूर्यवत् (वि ईयसे) विशेष रूप से प्राप्त हो (ताः) वे उत्तम ज्ञानवाणियां (ते) तेरे (मधुमत्) मधुर वचन से युक्त (घृतं) स्नेहयुक्त, सारवत् , (पयः) दूधवत् पोषक ज्ञान को (क्षरन्तु) अन्यों के प्रति बहावें, प्रदान करें और (कृष्टयः) समस्त मनुष्य (तव व्रते तिष्ठन्तु) तेरे आदेश, नियम, शासन में रहें।

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

भा०—हे (सोम) विश्व के शासक प्रभो ! (त्वं) तू (नृ-चक्षाः असि) समस्त मनुष्यों का द्रष्टा, सब को सन्मार्ग का उपदेश करने वाला (असि) है। हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे ! हे (वृषभ) ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने वाले ! हे सर्वोत्तम ! तू (ता) उन समस्त लोकों को (विश्वतः वि धावसि) सब प्रकार से प्राप्त होता और पवित्र कर रहा है। (सः) वह तू (नः) हमें (वसुमत्) प्राणों और ऐश्वर्यों से युक्त, (हिरण्यवत्) हित, रमणीय आत्मा से युक्त वा धनैश्वर्यों से सम्पन्न सुख (पवस्व) वर्षा। (वयम्) हम (भुवनेषु) समस्त लोकों में (जीवसे स्याम) दीर्घ जीवन धारण करने में समर्थ हों।

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ३९

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के शासन करने हारे ! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू हमें (गो-वित्) उत्तम वाणियों को गुरु के तुल्य, रश्मियों को सूर्य के तुल्य, भूमियों को राजा के तुल्य और प्राणप्रद पिता के तुल्य इन्द्रियस्थ प्राणों को प्राप्त कराने वाला है। तू (वसुवित्) समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला, तू (हिरण्यवित्) हित, रमणीय सुवर्णादि का प्राप्त कराने वाला है। तू (नः पवस्व) हमें भी ये सब पदार्थ प्रदान कर। तू (भुवनेषु)

समस्त लोकों में (रेतः-धाः) समस्त वीर्यों और जलों को मेघ के तुल्य धारण करने वाला (अर्पितः) सर्वत्र विराजमान है। तू (विश्व-वित्) विश्वभर को जानने और प्राप्त करने वाला वा देह में प्रविष्ट होने वाले जीवों को सर्वस्व देने वाला (सु-वीरः असि) उत्तम वीर, वीर्यवान् है। (तं त्वा) उस परम पूज्य तुझको (इमे विप्राः) ये विद्वान् जन (गिरा उप आसते) वेद-वाणी द्वारा उपासना करते हैं।

उन्मध्व ऊर्मिर्वननां अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ४०।१६

भा०—(मध्वः ऊर्मिः वननाः उत् अतिष्ठिपत्) जल की तरंग जिस प्रकार उसे प्राप्त करने वाले काष्ठ आदि को ऊपर उठा लेती है, उसी प्रकार (मध्वः ऊर्मिः) ज्ञान रूप मधु का उत्तम उपदेष्टा पुरुष भी (वननाः) ज्ञान के याचक जनों को (उत् अतिष्ठिपत्) ऊंचे उठाता है। वह (अपः वसानः महिषः) जलों के धारण करने वाले, बहुत जल देने वाले मेघ के तुल्य स्वयं भी (अपः वसानः) प्राप्त शिष्यजनों को वस्त्रवत् आच्छादित करता हुआ (महिषः) बहुत ज्ञान देने वाला, महान् होकर (वि गाहते) विशेषरूप से वा विविध देशों में विचरता है। वह (राजा) तेजस्वी सूर्यवत् (पवित्र-रथः) पवित्र आत्मा और पवित्र पावन उपदेश वाला होकर (वाजम् आरुहत्) संग्राम को महारथी के तुल्य (वाजम्) ज्ञान, ऐश्वर्य और आदर पद को प्राप्त करता है। वह (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों को एक ही बार में भून देने वाले सेनापति के तुल्य स्वयं भी (सहस्र भृष्टिः) सहस्रों तेजों को धारण करने और सहस्रों को भरण पोषण देने में समर्थ होकर (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी यश, प्रसिद्धि वा श्रवण योग्य ज्ञान को (जयति) प्राप्त करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ४१

भा०—(सः) वह आप (विश्वायुः) सब मनुष्यों के स्वामी, सब के जीवन के समान प्रिय, सब को प्राप्त होने वाले हो। आप (अहर्दिवि) दिन रात (सु-भराः) सुख प्राप्त कराने वाली, (प्रजावतीः) उत्तम प्रजाओं से युक्त, एवं उत्तम फल के देने वाली, (भन्दनाः) कल्याणकारिणी, सुखप्रद वाणियों को (उत् इयर्त्ति) उत्तम रीति से प्रकट करते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! उत्तम उपासक आप (इन्द्रम्) उस प्रभु परमेश्वर के प्रति (अस्मभ्यम्) हमारे कल्याण के लिये (प्रजावत्) उत्तम सन्तान, प्रजादि से युक्त, (ब्रह्म) बड़ा भारी (अश्व-पस्त्यम्) अश्व और गृहों से युक्त (रयिम्) धनैश्वर्य की (याचतात्) याचना कर।

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः। द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥

भा०—(सः) वह (अग्रे अह्नाम्) दिनों के पूर्व भाग में, प्रातः वा जीवन के पूर्व भाग, ब्रह्मचर्य काल में, (हरिः) अज्ञान दुःखों को हरने वाला (हर्यतः) सब को प्रिय लगने वाला, (मदः) आनन्द और सर्वतृप्त होकर (चेतसा) ज्ञान और उत्तम चित्त से (द्युभिः) ज्ञान प्रकाशों से सूर्य के तुल्य, सब मनुष्यों को (प्र चेतयते) उत्कृष्ट मार्ग पर जाने के लिये चेताता है, और (अनु चेतयते) बराबर चेताता रहता है। वह (द्वा जना अन्तः) छोटे बड़े, गरीब अमीर, स्वामी सेवक, आत्मा प्रभु, शास्य शासक, और उत्तम निकृष्ट एवं स्त्री पुरुष सब के भीतर, सब के बीच में रहकर उनको (यातयन्) सब प्रकार से यत्न करवाता हुआ (ईयते) जाना जाता है। वह (धर्त्तरि) धारण करने वाले पुरुष में (नराशंसं च) उत्तम मनुष्यों से प्रशंसनीय (दैव्यं च) विद्वानों के योग्य उनको प्राप्त करने योग्य ज्ञान का भी उपदेश करता है।

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

भा०—(हिरण्य-पावाः) हित, और अतिप्रिय आत्मा को शोधने हारे विद्वान् लोग (सिन्धोः उत्-श्वासे) नित्य गति वाले प्राण के ऊर्ध्व या उत्तम श्वास-प्रश्वास के आधार पर या ब्रह्माण्ड [मस्तक] की ओर ऊपर को जाने वाले प्राण के बल पर (पतयन्तम्) गति करने वाले और देहमात्र को चलाने वाले, (उक्षणम्) सुखों की मेघवत् वर्षा करने वाले (पशुम्) ज्ञानद्रष्टा उस आत्मा को (आसु) इन नाना नाड़ियों में ही (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं। वे उस (क्रतुम्) ज्ञानमय कर्मकर्त्ता आत्मा को (अंजते) स्वयं साक्षात् करते हैं। (वि अंजते) विविध प्रकार की वाणियों से उसे प्रकट करते हैं, (मधुना) ज्ञान रूप मधु से उसका आस्वाद लेते हैं और उसी से (अभि-अञ्जते) उसका साक्षात् करते हैं।

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ४४

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (पवमानाय) एक देह से अन्य देह में जाते हुए, एवं विषय, इन्द्रिय देहादि संघात से सर्वथा निःसङ्ग, परिशुद्ध होते हुए (विपश्चिते) इस लोक में ज्ञान और कर्म का सञ्चय और ज्ञान करने वाले मेधावी, उस आत्मा का (गायत) उपदेश करो। जो (अन्धः) प्राणशक्ति को धारण करने वाला, (मही धारा न) बड़ी भारी जलधारा के समान, (अति अर्षति) पार कर जाता है। और जो (जूर्णाम् त्वचम्) पुरानी खाल या कैंचुली को सांप के समान (अति सर्पति) छोड़ कर अलग हो जाता है, और जो (वृषा) बलवान् (हरिः) आत्मा (अत्यः नः) अश्व के समान (क्रीड़न्) इस देह में विहार करता हुआ (असरत्) भाग निकलता है।

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः॥४५॥२०

भा०—वह प्रभु और आत्मा कैसा है ? (अग्रे-गः) सब के आगे नायकवत् जाने वाला, (राजा) सूर्यवत् दीप्तिमान्, (अप्यः) प्राणों और प्राप्त जनों को हितकारक (अह्नां विमानः) दिनों का विशेष रूप से निर्माता और ज्ञान कराने वाले सूर्य के सदृश ही (अह्नां) न नाश होने वाले तत्वों का (विमानः) जगत् रूप में बनाने वाला (भुवनेषु अर्पितः) समस्त लोकों में व्यापता है। वह (हरिः) अज्ञान दुःख को हरने वाला, सर्वोत्तम (घृत-स्नुः) ज्ञान प्रकाश एवं स्नेह को प्रवाहित करने वाला, (सु-दृशीकः) सुखपूर्वक दर्शन करने योग्य (अर्णवः) ज्ञानशक्ति का सागर, (ज्योति-रथः) ज्योति से अति रमणीय परम प्रकाशमय, (ओक्यः) देह में आत्मा के तुल्य लोक में व्यापक होकर (राये) समस्त ऐश्वर्यों और विभूतियों को धारण करने के लिये (पवते) विशुद्ध किया जाता है। इति विंशो वर्गः ॥

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः॥४६

भा०—वह (मदः) आनन्दमय, (त्रि-धातुः) तीनों गुणों से जगत् को धारण करने वाला, (उद्-यतः) सर्वोत्कृष्ट नियन्ता होकर (उद्-यतः स्कम्भः दिवः) महान् आकाश के बड़े भारी खड़े हुए खम्भे के समान ही (दिवः) सूर्यादि लोकों वा प्रकृति को (स्कम्भः) थामने वाला, (असर्जि) जाना जाता है। वह हा (भुवनानि अर्षति) समस्त लोकों को व्यापता और चलाता है। (यदि) जिसको (ऋग्मिणः) वेद-मन्त्रों से स्तुति करने वाले विद्वान् जन (गिरा) वाणी द्वारा (निर्णिजम् ययुः) अति विशुद्ध रूप में ग्रहण करते हैं उसी (पनिप्नतं) स्तुति करने योग्य (अंशुं) व्यापक प्रभु को (मतयः रिहन्ति) बुद्धियां और स्तुतियां भी पहुंचती हैं। उसका रसास्वादन करती हैं।

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥ ४७ ॥

भा०—हे आत्मन् ! प्रभो ! (पुनानस्य) सर्वव्यापक, जगत् के संचालक (ते) तेरी (धाराः) विश्व को धारण करने वाली शक्तियां (रंहयः) अति वेग वाली होकर भी (संयतः) अच्छी प्रकार नियमों में बद्ध हैं, वे (मेष्यः) मेषी अर्थात् पर-शक्ति से प्रेरित होने वाली वा ब्रह्मवीज से निषिक्त, ब्रह्म की शक्ति से वीर्यवती इस प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं को भी (प्र यन्ति) खूब प्राप्त होती हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (चम्वोः) आकाश और भूमि दोनों के बीच, (यत्) जो (नाभिः) भूमियों, किरणों और सूर्यों द्वारा (सम् अज्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो रहा है। वह तू (सुवानः) उपासित होता हुआ, हे (सोम) सब जगत् के शासक ! सर्वोत्पादक प्रभो ! तू (कलशेषु आसीदसि) समस्त भुवनों में कण २ में चेतना के तुल्य विराजता है।

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥४८।२१

भा०—हे (सोम) जगत्प्रेरक विधातः ! प्रभो ! (नः उक्थ्यः) तू हमारा स्तुति करने योग्य उपास्य, इष्ट देव है। तू (क्रतु-वित्) कर्मों और ज्ञानों का जानने और जनाने हारा होकर (नः पवस्व) हमें प्राप्त हो, हमें पवित्र कर। तू (अव्यः वारे) हमारे आत्मा के वरणीय परमरूप में (प्रियम् मधु) प्रिय, प्रीतिकारक मधुर, सुखजनक ज्ञान (परि धाव) प्रदान कर। हे (इन्दो) तेजोमय ! दुष्टों के सन्तापजनक ! तू (विश्वान् रक्षसः) समस्त दुष्ट जनों और (अत्रिणः) दूसरों के अधिकार को खा जाने वाले जनों को भी (जहि) विनाश कर। हम (विदथे) यज्ञ, संग्राम और ज्ञान सत्संगादि में (सुवीराः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त होकर (ते बृहद् वदेम) हम तेरा बड़ा गुण गान करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[८७]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ५–७, ९ त्रिष्टुप् । नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र तु द्र॑व॒ परि॒ कोशं॒ नि षी॑द॒ नृभिः॑ पुना॒नो अ॒भि वाज॑मर्ष ।
अश्वं॒ न त्वा॑ वा॒जिनं॑ म॒र्जय॒न्तोऽच्छा॑ ब॒र्हीं र॑श॒नाभि॑र्नयन्ति ॥१॥

भा०—हे आत्मन् ! प्रभो ! तू (नृभिः पुनानः) उत्तम पुरुषों और अध्यात्म में प्राणों द्वारा स्वच्छ, पवित्र किया जाता हुआ (कोशम् परि द्रव) भीतरी हृदय-कोश में स्रवित हो और (नि सीद) हृदय में विराजमान हो। (त्वा वाजिनं) तुझ बलवान्, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् को (अश्वं न) अश्व के समान (मर्जयन्तः) नित्य प्रति आने वाले राजस मलिन आवरणों से स्वच्छ करते हुए (रशनाभिः) रासों से अश्व के समान ही (रशनाभिः) प्रभु की व्यापक शक्तियों, उत्तम स्तुतियों से (बर्हिः) उस महान् प्रभु की ओर (नयन्ति) ले जाते हैं।

स्वा॒यु॒धः प॑वते दे॒व इन्दु॑रशस्ति॒हा वृ॒जनं॒ रक्ष॑माणः ।
पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता सु॒दक्षो॑ विष्ट॒म्भो दि॒वो ध॒रुणः॑ पृथि॒व्याः ॥२॥

भा०—(देवः इन्दुः) प्रकाशमय, ज्ञानी वह दयालु प्रभु, तेजस्वी, (अशस्ति-हा) निन्दा वा अप्रशंसनीय पाप आदि का नाश करने वाला (वृजनं) यात्री या मार्ग या बल की सदा (रक्षमाणः) रक्षा करता हुआ (सु-आयुधः) उत्तम आयुध आदि उपकरणों से सम्पन्न राजा के तुल्य (पवते) प्रकट होता है। वह (देवानां पिता) विद्वानों का, एवं प्राणगण और सूर्यादि लोकों का पालक, पिता के तुल्य पूजनीय, (जनिता) जगत् का उत्पन्न करनेवाला, (सु-दक्षः) उत्तम बलशाली, (वि-स्तम्भः) विशेष रूप से जगत् के समस्त पदार्थों को थामने वाला और (दिवः पृथिव्याः धरुणः) आकाश, सूर्य, भूमि, स्त्री पुरुष, राजा प्रजा आदि सबका आश्रय है।

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् (ऋषिः) तत्वदर्शी, वेदमन्त्रार्थों का देखने वाला, (विप्रः) विविध विद्याओं में पूर्ण वा ज्ञानी और कर्मों का उपदेश करने वाला मेधावी, (जनानां पुरः-एता) बहुत से जनों के आगे २ चलने वाला, उनका नायक, (ऋभुः) बुद्धिमान्, (काव्येन) पूर्व के विद्वानों के उपार्जित ज्ञान से (उशनाः) प्रकाशित होता है (सः चित्) वही पूज्य है । (यत् आसां गोनाम्) जो इन वाणियों, सूर्यादि लोकों और प्राणों का (गुह्यं) बुद्धिस्थ, गुहा में विद्यमान (अपीच्यं) अप्रत्यक्ष (नाम) स्वरूप है वह उसको (निहितम्) निश्चित रूप से (विवेद) जाने ।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (एषः) वह अति परिचित उपासक (मधुमान्) उत्तम ज्ञानवान् होकर (सोमः) तेरे द्वारा अनुशासित होनेवाला, शिष्यवत् सेवक, (वृषा) बलवान् (ते वृष्णे) तुझ बलशाली, सुखों के वर्षक के लिये (पवित्रे परि अक्षाः) परम पवित्र बल में प्राप्त हो । वह (सहस्र-साः) हज़ारों का दाता, (शत-साः) सैकड़ों का दान करनेवाला, (भूरि-दावा) बहुत २ अनेक बार दान करने वाला, (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् होकर (शश्वत्-तमं बर्हिः) अनादि महान् परम आश्रय को (अस्थात्) प्राप्त करता है ।

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः॥५।२२॥

भा०—(एते सोमाः) ये उत्तम विद्वान् जीवगण, (पवित्रेभिः पवमानाः) विचार, वचन, कर्म, और देह, आत्मा को पवित्र करने वाले नाना व्रतों, दीक्षाओं और आचरणों से अपने को पवित्र करते हुए, (महे

वाजाय अमृताय) बड़े भारी ज्ञानमय, ऐश्वर्यमय, मोक्षरूप अमृतत्व लाभ के लिये (सहस्रा गव्या अभि) सहस्रों ज्ञान-वाणियों के (श्रवांसि) ज्ञानों, उपदेशों को प्राप्त करने के लिये (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण करने की इच्छा वाले होकर (अभि असृग्रन्) तैयार हों। वे (पृतनाजः अत्याः न) संग्रामविजयी, अश्वों, सवारों, रथियों या वेगवान् सैनिक वीरों के समान तैयार हों।

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः।
अथाभर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥

भा०—(जनानां पुरु-हूतः) मनुष्यों के बीच में बहुतों से प्रशंसित, (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (विश्वा भोजनानि) समस्त प्रकार के अन्नों, भोग्य पदार्थों और प्रजा के रक्षाकारी साधनों को प्राप्त करने के लिये (परि असरत् स्म हि) प्रयाण करे, उद्योग करे। हे (श्येन-भृत) उत्तम आचरणवान्, निष्ठ गुरुओं द्वारा पालित! तू हमें (प्रयांसि आभर) उत्तम अन्न प्राप्त करा और (रयिं तुञ्जानः) ऐश्वर्य को प्रदान करता हुआ, (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य और बल प्राप्त कर।

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

भा०—(एषः) यह उत्तम (सोमः) शासक वा शिष्य, दीक्षित, (पवित्रे सुवानः) पवित्र कार्य वा पद के निमित्त अभिषिक्त होकर (सृष्टः सर्गः न) छूटे जल-प्रवाह के समान, वा (सृष्टः अर्वा न) छूटे हुए अश्व के समान (अदधावत्) निरन्तर आगे, बड़े वेग से बढ़े। (तिग्मे शृंगे शिशानः महिषः नः) तीखे सींगों को तीक्ष्ण करते हुए बड़े पशु के समान स्वयं भी (महिषः) भूमि का भोक्ता, महान् सामर्थ्य का धारक होकर (तिग्मे) तीखी, (शृङ्गे) शत्रु को नाश करने वाली अगल बगल की सेनाओं को (शिशानः) तीक्ष्ण, उत्तेजित करता हुआ सेनापति के तुल्य अज्ञान

नाशक तीखे मन और बुद्धि दोनों को तीक्ष्ण करता हुआ (शूरः सत्वा न) शूरवीर, बलवान् पुरुष के समान स्वयं भी (सत्वा) स्थिर होकर (गाः गव्यम्) भूमियोंवत् वाणियों को प्राप्त करना चाहता हुआ (अभि) आगे बढ़े ।

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! अज्ञान के नाशक गुरो ! (ते) तुझ (सोमस्य धारा) शासक की वाणी, (एषा) यह (अद्रेः अन्तः) मेघ के बीच में गर्जना के तुल्य (परमात्) परम, सर्वोत्कृष्ट पद से (आ ययौ) प्राप्त होती है, वह (कू-चित् ऊर्वे सतीः गाः विवेद) कहीं भी किसी भी प्रदेश में विद्यमान वाणियों को सूर्य की रश्मियों के तुल्य प्राप्त कराती है । और (ते धारा) तेरी वाणी (दिवः न विद्युत्) आकाश से गिरती बिजुली के समान (अभ्रैः सह स्तनयन्ती) मेघों के साथ गर्जना करती हुई सी (सोमस्य कृते पवते) जलधारा से अन्नादिवत् पालनीय शिष्य गण के लिये प्रवाहित हो ।

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत्॥९।२३॥

भा०—हे (सोम) शिष्यजन ! तू (इन्द्रेण सरथं पुनानः) इन्द्र, अज्ञाननाशक गुरु आचार्य के साथ एक रथ में बैठे सारथि वा रथ के समान एक कुल में रहता हुआ (गोनां राशिम् उत परि यासि स्म) वेद-वाणियों के समूह को अच्छी तरह प्राप्त कर । हे (जीरदानो) प्राणवत् ज्ञान प्रदान करने हारे जीवनदातः ! मेघवत् (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन् ! तू (तव) अपनी (ताः) उन २ (बृहतीः पूर्वीः) बड़ी, महत्वपूर्ण, सनातन (इषः) आज्ञाओं, प्रेरणाओं, वाणियों को (शिक्ष) हमें दे, हमें उनका उपदेश कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८८]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ सतः पंक्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

भा०—शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य । हे (इन्द्र) तत्त्वज्ञान को देखने हारे ! अज्ञान के नाशक गुरो ! प्रभो ! (अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे) यह सोम्य गुणों वाला ब्रह्मचारी तेरी सेवा के लिये दीक्षित होता है। (तुभ्यं पवते) तेरे हितार्थ ही शुद्ध पवित्र होकर तेरी सेवा में आता है। (त्वम् अस्य पाहि) तू इसका पालन कर। (यं त्वं चकृषे) जिसको तू आकर्षित करता, बनाता या भूमि में हल चला कर कृषक के समान उसे ज्ञान बीज-वपनार्थ तैयार करता है, (यं त्वं ववृषे) जिसके प्रति तू मेघवत् ज्ञान जलों की वर्षा करता है उस (इन्दुम्) उत्तम सेवक (सोमम्) पुत्रवत् प्रिय उपासक, शिष्य को (मदाय) आनन्द लाभ के लिये और (युज्याय) अपने साथ सत्संग करने और योग द्वारा प्राप्त होने के लिये (अस्य पाहि) उसकी रक्षा कर।

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत से ऐश्वर्यों को युद्ध वा व्यापार द्वारा प्राप्त करने के लिये (भुरिषाट् रथः अयोजि) बहुत भार सहन करने वाला रथ जोड़ा जाता है उसी प्रकार (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत से ऐश्वर्यों और देह में बसे नाना इन्द्रिय गणों को दमन करने के लिये (भुरिषाट्) बहुत शीत, वात आतपादि सहन करने वाला (सः महः) वह गुणों में महान् ब्रह्मचारी (अयोजि) नियुक्त किया

जाता है। (आत्) अनन्तर (ईम्) इसको सब ओर से (विश्वा नहुष्याणि जाता) सब मनुष्योपयोगी नाना पदार्थ (वने स्वः-साता) वन में ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के उपरान्त (ऊर्ध्वा) स्वयं उन्नत होकर (नवन्त) प्राप्त होते हैं। (२) इसी प्रकार देह में आत्मा भी नियुक्त है।

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) विद्या-व्रत में स्नान करने हारे नव विद्वन्! (यः) जो तू (वायुः न नियुत्वान्) वायु के तुल्य नाना शक्तियों, दस सहस्रों वाणियों का स्वामी होकर अश्वपति, रथवान् के सदृश (इष्ट-यामा) अपने इष्ट माता पिता आदि बन्धुओं की ओर आने वाला होता है वह तू (हवे) दान और आदान के कार्य में तथा यज्ञ युद्धादि में (नासत्या इव) प्रमुख राजा और सचिव एवं गृहस्थ नर नारी के समान ही (शम्-भविष्ठः असि) अत्यन्त शान्ति, सुख का कारण हो। वह तू (विश्व-वारः) सब दुःखों को वारण करने वाला, एवं (विश्व-वारः) सर्वाङ्ग शरीर में आवृत, कवच वा शाल दुशाले आदि से पूजित, (द्रविणोदाः) धन, ज्ञान के देने वाले स्वामी के तुल्य (त्मन्) और अपने आत्म-सामर्थ्य में (पूषा इव धी-जवनः) परिपोषक गृहपति के समान कर्म में कुशल (आ असि) हो।

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित्।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः न) विद्युत्, वायु, सूर्य, गुरु, प्रभु राजा के तुल्य (महा कर्माणि चक्रिः) बड़े २ काम करने वाला है वह हे (सोम) वीर्यवन्! बलवन्! पदाभिषिक्त, व्रताभिषिक्त विद्वन्! (पूर्भित्) शत्रु-नगरी को तोड़ने वाले सेनापति के तुल्य (पूर्भित्) ब्रह्मपुरी या देह-बन्धन का भेदन करने वाला होकर (वृत्राणाम्) बढ़ते एवं आवरण

करने वा घेर लेने वाले दुर्विचारों को शत्रुवत् (हन्ता असि) नाशक हो। (पैद्वः न) अश्व के समान (हि) ही (त्वम्) तू (अहि-नाम्नां) सन्मुख आकर लड़ने वाले और शत्रु नायक जनों और (विश्वस्य दस्योः हन्ता असि) समस्त दुष्टजनों को मारने वाला हो।

अ॒ग्निर्न यो वन॒ आ सृ॒ज्यमा॑नो॒ वृथा॒ पाजां॑सि कृणुते न॒दीषु॑।
जनो॒ न युध्वा॑ मह॒त उ॑प॒ब्दिरि॑यर्ति॒ सोमः॒ पव॑मान ऊ॒र्मिम् ॥५॥

भा०—(आसृज्यमानः वने अग्निः न नदीषु पाजांसि) जिस प्रकार बन में लगा अग्नि अनायास ही नदियों में अपने बलों को वृथा कर देता है उस प्रकार जो (अग्निः) विनीत शिष्य होकर (वने आसृज्यमानः) वनस्थ जन समूह के बीच में तैयार होता है वह (नदीषु) उत्तम उपदेश करने योग्य वाणियों में (वृथा) अनायास ही (पाजांसि) नाना ज्ञान (कृणुते) प्राप्त कर लेता है। वह (युध्वा जनः न) योद्धा जन के तुल्य (सोमः) उत्तम शिष्य (पवमानः) आगे बढ़ता हुआ, (महतः) बड़े भारी वेद-राशि का (उपब्दिः) उपदेष्टा होकर वाणी के तुल्य ही (ऊर्मिम् इयर्त्ति) उन्नत विचारों को प्रकट करता है।

ए॒ते सोमा॒ अति॒ वारा॒ण्यव्या॑ दि॒व्या न कोशा॑सो अ॒भ्रव॑र्षाः।
वृथा॑ समु॒द्रं सिन्ध॑वो॒ न नीचीः॑ सु॒तासो॑ अ॒भि क॒लशाँ॑ असृग्रन् ६

भा०—(एते) ये (सोमाः) निष्णात विद्वान् जन (वाराणि अव्या अति) भेड़ के वालों से बने कम्बलों को त्याग कर (दिव्याः कोशासः न) आकाशगत मेघों के तुल्य (अभ्र-वर्षाः) मेघों द्वारा गिराई वर्षा धाराओं के तुल्य आते हैं। और वे (सिन्धवः नीचीः न) बहती, नीचे जाती धाराओं के समान विनीत होकर (वृथा समुद्रम् अभि) अनायास ही उस महान् समुद्रवत् अपार प्रभु की ओर तथा (कलशान् अभि) राष्ट्रों की ओर (असृग्रन्) चले जाते हैं।

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः॥७॥

भा०—हे सोम ! विद्वन् ! स्वामिन् ! तू (शुष्मी) बलवान् होकर भी (मारुतं शर्धः न पवस्व) वायु के झकोरे के समान हमें ऐसे प्राप्त हो (यथा) जिससे (दिव्या विट्) उत्तम प्रजा (अनभि-शस्ता) पीड़ित, हिंसित न हो। तू (मक्षु) शीघ्र ही (नः) हमारे प्रति (आपः न) जलों के तुल्य, आप्त-जनों के समान(सु-मतिः) शुभ ज्ञान वाला (भव) हो । तू (सहस्र-अप्साः) बलवान् रूप वाला, दृढ़ांग होकर (यज्ञः न पृतना-षाट) संगति प्राप्त सैन्य के समान संग्राम में शत्रु सेनाओं को पराजय करने वाला हो ।

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम॥८॥२४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! वीर्यवन् ! बलवन् ! (ते राज्ञः वरुणस्य) तुझ सर्ववृत श्रेष्ठ तेजस्वी राजा के (व्रतानि) नाना कर्त्तव्य हैं । (तव गभीरम् बृहत् धाम) तेरा तेज, सामर्थ्य बड़ा गम्भीर हो । (शुचिः त्वम् प्रियः मित्रः न असि) शुद्ध चित्त वाला, ईमानदार, प्रिय, स्नेही मित्र के समान विपत्ति से बचाने वाला हो । तू (दक्षाय्यः) बलवान् (अर्यमा इव) न्यायकारी शासकवत् (असि) हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८९]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वन् ! उत्तम ब्रह्मचारिन् ! तू (स्यः) वह (वह्निः) कार्यभार वा व्रत आदि को अपने में धारण करने वाला होकर (पथ्याभिः

प्रो अस्थान्) धर्म मार्ग से अविरुद्ध वाणियों और मार्गों से आगे बढ़। और (दिवः वृष्टिः न पवमानः अक्षाः) आकाश से पड़ती वृष्टि के समान तू भी तेज से अज्ञानादि को छेदन करने वाला होकर आगे बढ़ता हुआ वा शुद्ध पवित्र होता हुआ व्याप, आ। तू (सहस्र-धारः) बल-युक्त वा सहस्रों शक्तियों या वाणियों पर वशी होकर (अस्मे नि असदत्) हमारे लाभ के लिये पद पर विराज। तू हमारे लिये ही (मातुः उपस्थे) माता की गोद में और (वने च) वन में गुरु के समीप रह।

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वासं ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम्॥२॥

भा०—वह (राजा) इस देह में, राष्ट्र-पति के तुल्य (सिन्धूनाम्) नदियों के समान देह में बहती रक्त-धाराओं के बीच (वासः अवसिष्ट) अपना वास करता है। वह (ऋतस्य नावम्) जल की नौका के समान (ऋतस्य) निरन्तर गतिशील द्रव की (रजिष्ठाम्) अति रजोयुक्त, तीव्र (नावम्) प्रेरणा या तीव्रगति पर, नौका पर पुरुष के समान (आ अरुहत्) चढ़ता, उस पर वश करता है। अथवा देह में भी वह मानो (ऋतस्य) सत्य की (रजिष्ठाम् नावम् आ अरुहत्) अति उज्ज्वल नौका के तुल्य सर्वप्रेरक वेद वाणी पर चढ़ता है। वह (द्रप्सः) स्वयं रसस्वरूप होकर (श्येन-जूतः) उत्तम आचारवान् पुरुषों से सन्मार्ग में प्रेरित होकर (ववृधे) बढ़ता है। उस समय (ईं) इस (जाम्) पुत्रवत् आत्मा को (पिता) उसका पालक परमात्मा (दुहे) सब मनोरथों से पूर्ण करता है। वह भी (ईम्) इस लोक को (पितुः दुहे) उस प्रभु के द्वारा ही नाना फल प्राप्त करता है।

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा॥३॥

भा०—(मध्वः) मधुर सुख ऐश्वर्य और बल की और (दिवः) नाना

ऐश्वर्यों की कामना करने वाली प्रजाएं (अस्य पतिम्) इस लोक के पालक (सिंह) शेर के समान बलवान्, शत्रुनाशक, (अयासम्) थकान से रहित अनथक परिश्रमी, (अरुषं हरिम्) रोषरहित पुरुष को (नसन्त) प्राप्त होती हैं। (युत्सु प्रथमः) युद्ध वा शस्त्र सञ्चालन के कार्यों में श्रेष्ठ पुरुष, (गाः पृच्छते) भूमियों को वा तद्वासियों को कुशल आदि पूछता है। वह (उक्षा) राज्य भार का वहन करने वाला शासक (अस्य चक्षसा) इस विद्वान् के उपदेश से (गाः परि पाति) सब भूमियों की रक्षा करता है।

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम्।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥

भा०—(मधु-पृष्ठम्) शत्रुओं को पीड़ित करने वाले बल को अपने ऊपर धारने वाले, (घोरम्) शत्रुओं के लिये भयकारी, (अयासम्) न थकने वाले, श्रमशील (ऋष्वं) महान् पुरुष को (उरु चक्रे रथे अश्वं) बड़े चक्र वाले रथ में अश्व के तुल्य उस व्यापक प्रभु को नायकवत् ही इस संवत्सर-चक्र-युक्त विश्व में, (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, योग द्वारा उसका साक्षात् करते हैं। (स्वसारः, सु-असारः) भगिनियों के समान स्वतः प्राप्त वा उत्तम वेग से गति करने वाली सेनाओं के तुल्य शक्तियां (ईम् मर्जयन्ति) उसका अभिषेक करतीं, और (स-नाभयः) समस्त बन्धुजन उस (वाजिनम्) बल विद्या वाले को (ऊर्जयन्ति) अधिक बलवान् करते हैं।

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

भा०—(ईम्) उसको (चतस्रः) चार (घृत-दुहः) वेग, ज्ञान वा जल प्रदान करने वाली (पूर्वीः) सनातन अग्नि, जल, पृथिवी और तेज शक्तियां या वाणियां वेदमयी, (ईम् सचन्ते) उसके साथ समवाय बना कर रहती हैं, अर्थात् उसके साथ नित्य वर्त्तमान रहती हैं। वे उस (समाने)

समान (धरुणे) आश्रय में (नि-सत्ताः) निश्चित रूप से स्थिर हैं। (ताः) वे इसका (नमसा पुनानाः) विनय प्रार्थना आदि रूपों से प्राप्त होती हुई (ईम् अर्षन्ति) उसी को पहुंचती है। और वे (विश्वतः ईं परि सन्ति) उसी के इर्द गिर रहती हैं, उसको अपनाये रहती हैं।

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

भा०—वह प्रभु (दिवः विष्टम्भः) आकाश, सूर्य आदि का धारक, आश्रय, (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवी को भी धारण करनेवाला, है। (विश्वा उत क्षितयः) समस्त मनुष्य भी (अस्य हस्ते) उसके हाथ में, उसके वश में हैं। हे जीवगण ! वह (नियुत्वान्) नाना शक्तियों का स्वामी, (उत्सः) सबका उद्भव-स्थान और (ते) तुझ (गृणते) उपदेष्टा के उपकार के लिये (असत्) हो। और (मध्वः अंशुः) यह मधुर ज्ञान के कारण भीतर व्यापक प्रभु (इन्द्रियाय) ऐश्वर्य वा इन्द्र के पदके लिये (पवते) प्राप्त है।

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥७॥२५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (अवातः) कभी न बुझ कर, सदा देदीप्यमान होकर (देव-वीतिम् अभि) विद्वानों की रक्षा शक्ति को (वन्वन्) प्राप्त करते हुए, (वृत्रहा) शत्रु का नाशक होकर (इन्द्राय) इन्द्र पदके लिये (पवस्व) प्राप्त हो। तू (महः पुरु-चन्द्रस्य रायः) बहुत बड़े, बहुतों के सुखकारी (रायः) धनका (शग्धि) हमें प्रदान कर। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम बलशाली हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ षड्ृचं सूक्तम्॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१॥

भा०—(रोदस्योः) देह में प्राण और अपान दोनों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला, (वाजं प्र हिन्वानः रथः) संग्राम की ओर आगे बढ़ने वाला, रथ के समान सन्नद्ध होकर (वाजं) ज्ञानैश्वर्य को (सनिष्यन्) प्राप्त करना चाहता हुआ वह (प्र अयासीत्) आगे ही आगे बढ़े। वह (इन्द्रं गच्छन्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के पास जाता हुआ (आयुधा संशिशानः) नाना काम, क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं को प्रहार करके मार गिराने के तपःसाधनों को (सं शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ और (हस्तयोः) हाथों में (विश्वा वसु आ-दधानः) नाना प्रकार के लोक में बसाने वाले प्राणगण को भी अपने से धारण करता हुआ (प्र अयासीत्) आगे बढ़े।

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥

भा०—(त्रि-पृष्ठं) तीनों लोकों के पोषक, (वृषणं) बलवान्, सुखों के वर्षक, (वयः-धाम्) समस्त बलों को धारण करनेवाले की ही (आंगूषाणां वाणीः) स्तोता लोगों की वाणियां (अवावशन्त) स्तुति किया करती हैं। (वना वसानः) समस्त ऐश्वर्यों को, किरणों को सूर्यवत् (वरुणः सिन्धून् न) और नदियों को समुद्र के समान धारण करता हुआ, (रत्न-धाः) सूर्यादि समस्त रमणीय सुखों और पदार्थों को धारण करता हुआ (वार्याणि वि दयते) शत्रुओं, और दुखों के वारक और सब जनों से वरण करने योग्य साधनों और ऐश्वर्यों की राजा के तुल्य रक्षा करता और अन्यों को प्रदान करता है।

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून्॥३॥

भा०—हे उत्तम शासक ! आत्मन् ! तू स्वयं (शूर-ग्रामः) शूरवीर समूहों का स्वामी, सेनानायक तुल्य (सर्व-वीरः) समस्त वीर विद्वान्, एवं शरीर में गति करनेवाले प्राणों का स्वामी (सहावान्) सुख दुःख, शीत उष्णादि को भली प्रकार सहने वाला, (जेता) विजयशील और (धनानि सनिता) धनों का भोक्ता और दाता होकर (पवस्व) प्राप्त हो (समत्सु) संग्रामों में (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण हथियारों से सज्जित, (क्षिप्र-धन्वा) वेगसे धनुष चलाने वाला, (अषाढः) अपराजित, (पृतनासु) संग्राम में (शत्रून्) शत्रुओं को (साह्वान्) विजय करनेवाला, शूरवीर के तुल्य हो।

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी। अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥

भा०—हे उत्तम शासक प्रभो ! तू (उरु-गव्यूतिः) बड़े भारी लम्बे २ मार्ग का शासक होकर (अभयानि कृण्वन्) अभयों का प्रदान करता हुआ (समीचीने) परस्पर सुसंगत, प्रबद्ध, एक होकर (पुरन्धी) राष्ट्र के धारण करनेवाले प्रजा के पालकद्वी पुरुषों वा राजा प्रजा वर्गों को (आपवस्व) प्राप्त हो, और (अपः) आप्त प्रजावर्गों को (उषसः) शत्रुदाहकारी सेनाओं को, (स्वः) समस्त राष्ट्र को, और (गाः) ज्ञानवाणियों, रश्मियों और गौ आदि पशु सम्पदाओं को (सिषासन्) स्वयं प्राप्त करना और उनको अन्यों में विभक्त करना चाहता हुआ (अस्मभ्यं) हमें (महः वाजान् सम् चिक्रदः) बड़े ज्ञान और ऐश्वर्यों का उपदेश कर।

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम्। मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू (वरुणं मत्सि) सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्रसन्न कर, (मित्रं मत्सि) स्नेही, अपने को विपत्ति से

बचानेवाले उपकारी जनको प्रसन्न कर, हे (इन्दो) दीप्तिमन्, तू (इन्द्रम् मत्सि) उस प्रभुको प्रसन्न कर जो समस्त एश्वर्यों को देनेवाला है। हे (पवमान) पवित्र होनेवाले ! तू (विष्णुम्) व्यापक प्रभु को प्रसन्न कर। तू (मारुतं शर्धः मत्सि) वायुवद् बलवान् पुरुष-वर्ग को प्रसन्न कर। तू (देवान् मत्सि) नाना कामनायुक्त मनुष्यों को प्रसन्न कर। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयालो ! तू (महाम् इन्द्रम्) गुणों में महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को प्रसन्न किया कर।

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व। इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६।२६।३॥

भा०—हे (इन्दो) उत्तम पुरुष की उपासना करने वाले, आत्मन् ! तू (राजा इव क्रतुमान्) राजा के समान स्वतन्त्र, कर्म करने में समर्थ है। तू (अमेन) अपने सहायक प्रभु वा अपने ही बल से (विश्वा दुरिता) बुरे आचरणों और मन के दुर्विकारों को (घनिघ्नत्) निरन्तर नष्ट करता हुआ, (पवस्व) आगे बढ़ और अपने को पवित्र कर। तू (सु-उक्ताय) उत्तम वचन को धारण करने वाले (वचसे) ज्ञानमय वचन वेद के (वयः) ज्ञान को (धाः) धारण कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयम्) तुम सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) कल्याणमय उपायों से हमारी रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः॥

चतुर्थोऽध्यायः

[६१]

कश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षड्चं सूक्तम्॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

भा०—(रथ्ये आजौ) रथों द्वारा करने योग्य संग्राम में जिस प्रकार (धिया प्रथमः) कर्म द्वारा श्रेष्ठ, सर्वप्रथम (मनोता) उत्तम ज्ञाता, सब के मनों का आकर्षक (वक्वा) उत्तम आदेष्टा पुरुष (प्रथमः असर्जि) सब से मुख्य-नायक पुरुष बनाया जाता है, उसी प्रकार इस (रथ्ये आजौ) रथ रूप देह से विजय करने योग्य, जीवन संग्राम में भी (धिया) कर्म और ज्ञान के बल पर (वक्वा) वचन कहने वाला, (मनोता) मन, अन्तःकरण में ओत-प्रोत, (मनीषी) मन को प्रेरित करने वाला आत्मा, (प्रथमः असर्जि) सब से मुख्य निश्चित है । (दश स्वसारः) दस बहनों के तुल्य दशों प्राण उसे (अव्ये सानौ अधि) रक्षक के उत्तम पद पर (अधि अजन्ति) स्वीकार करते हैं, और उस (वह्निं) देहवाही, सब को वहन करने हारे उसको (सदनानि अच्छ) नाना आश्रयों में विराज कर भी प्राप्त होते हैं ।

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येभिः) मरणधर्मा (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा शुद्ध किया जाता है और (अविभिः) प्राणों द्वारा, (गोभिः) स्तुति-वाणियों द्वारा और (अद्भिः) जलों के तुल्य आप्त पुरुषों द्वारा (मर्मृजानः) पुनः २ शुद्ध किया जाता है, वह (अमृतः) अमर आत्मा है । वह (इन्दुः) दीप्तिमान् (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य उत्पत्ति या जन्म को (वीती) भोगने के लिये है और वही (मर्त्येभिः) मनुष्यों द्वारा (कव्यैः) उत्तम विद्वानों के सुन्दर वचनों द्वारा (प्र सुवानः) उपासना किया जाता है ।

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

भा०—(वृषा) समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, (अंशुः) व्यापक प्रभु (अस्मै वृष्णे) इस बलवान् जीव गण के हितार्थ (रोरुवत्) ज्ञान का उपदेश करता है। और स्वयं (पवमानः) शुद्ध पवित्र होकर (गोः) अति उज्ज्वल वाणी के (रुशत् पयः) उज्ज्वल, अर्थ, ज्ञान रस को प्रकट करता है। वह (वचः-वित्) वेद वचन का भली प्रकार जानने वाला (ऋक्वा) ऋग्वेदज्ञ पुरुष (अध्वस्मभिः) अविनश्वर, नित्य (पथिभिः) मार्गों से, रश्मियों से (सूरः) सूर्य के तुल्य, (सहस्रं) सहस्रों वा दृढ़, सत्य (अण्वं वि याति) सूक्ष्म विज्ञान को भी प्राप्त करता है।

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! अग्नि के तुल्य भड़कने और चमकने वाले वीर पुरुष तू (दृढ़ाचित्) अति दृढ़ (रक्षसः सदांसि) दुष्ट पुरुष के स्थानों, दुर्गों को (रुज) तोड़ डाल, इस प्रकार राष्ट्र के कण्टकों को (पुनानः) शोधता हुआ, (वाजान् वि ऊर्णुहि) नाना बलों, ऐश्वर्यों और संग्रामों को विशेष रूप से ढक ले, उनको प्राप्त कर अपने वश में करले। और (तुजता वधेन) शत्रु का नाश करने वाले वधकारी शस्त्रास्त्र से (अन्ति दूरात्) पास और समीप के विद्यमान (एषाम्) राक्षसों के (उप-नायम्) नायक को (उपरिष्टात् वृश्च) ऊपर से ही काट डाल।

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

भा०—हे (विश्व-वार) सब से वरण करने योग्य ! सब कष्टों को दूर करने हारे स्वामिन् ! (पुरु-क्षो) पूज्य बहुत सी वाणी एव स्तुतियों के पात्र !

(सः) वह तू (नव्यसे सूक्ताय) अति नवीन, उत्तम स्तुति करने वाले के हितार्थ (प्रत्नवत्) पुराने, अनादि, सनातन गुरु के समान ही (प्राचः पथः कृणुहि) आगे बढ़ने वाले पूर्व के प्राचीन मार्गों का उपदेश कर। हे (पुरु-कृत्) बहुत से महान् कार्य करने हारे ! प्रभो ! (ते) तेरे (ये) जो (दुः-सहासः) शत्रुओं द्वारा दुःख से पराजित होने वाले, तीक्ष्ण, (वनुषा बृहन्तः) शत्रुनाशक सामर्थ्य के कारण बड़े हैं (तान् अश्याम) हम उनको प्राप्त करें।

एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ् नः सूर्यं दृशये रिरीहि॥८॥१॥

भा०—हे (सोम) सर्वशासक प्रभो ! (एव) इस प्रकार तू (अपः) अन्तरिक्ष (स्वः) महान् आकाश और समस्त भूमियों को भी (पुनानः) पवित्र, दोषरहित, दुःखादि से शून्य करता हुआ (अस्मभ्यं) हमारे (तोका, तनयानि) पुत्र पौत्र आदि सन्तान और (भूरि) बहुत से (उरु) विशाल (क्षेत्रम्) निवास योग्य भूमि, और (ऊरु ज्योतींषि) बहुत २ प्रकाशों को (नः ज्योक् दृशये) हमें चिरकाल तक सम्यग् दर्शन करने कराने के लिये (सूर्यं) सूर्य भी (रिरीहि) प्रदान कर। इति प्रथमो वर्गः॥

[९२]

कश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ भुरिक त्रिष्टुप्। २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः॥१॥

भा०—(हरिः) सर्वदुःखहारी, (अंशुः) सर्वत्र व्याप्त, सब जगत् का भोक्ता, (सनये) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हियानः)

प्रार्थित और (सुवानः) उपासित होता हुआ, (पवित्रे रथः न) कण्टक-शोधन के कार्य में संलग्न, युद्धरथ वा महारथी के तुल्य ही मेरे पापपरि-शोधन वा पवित्रहृदय में (सर्जि) प्राप्त रहो। वह (पूयमानः) इस प्रकार पवित्र रूप से गृहीत, प्रभु (श्लोकम्) महान् स्तुति और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य को भी (आपत्) प्राप्त करता और कराता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (देवान् प्रति) सभी पूज्य ज्ञानदाता गुरुजनों के प्रति (प्रयोभिः) उनको तृप्त सन्तुष्ट करने वाले अन्नादि पदार्थों से (अजुषत) प्रेमपूर्वक सेवा किया करो।

अच्छा॑ नृ॒चक्षा॑ असरत्प॒वित्रे॒ नाम॒ दधा॑नः क॒विर॑स्य॒ योनौ॑ ।
सीद॒न्होते॑व॒ सद॑ने च॒मूषूपे॑मग्म॒न्नृष॑यः स॒प्तविप्रा॑ः ॥ २ ॥

भा०—उत्तम शासक (नृचक्षाः) सब मनुष्यों को देखने और उपदेश करने वाला (कविः) परम मेधावी, दूरदर्शी पुरुष (अस्य) इस लोक या प्रजाजन के (योनौ) मूल देश में (नाम दधानः) कीर्त्ति एवं शत्रु को दमन करने वाले बल को धारण करता हुआ (पवित्रे अच्छ असत्) दुष्ट हनन रूप देश के पवित्रकारी कार्य के निमित्त अभिमुख बढ़े, चढ़ाई करे। वह (होता इव) आदेश करने वाले ऋत्विक् के समान (चमूषु सीदन्) सेनाओं के ऊपर प्रमुख पद पर विराजे। और (इम् उप) इस को (सप्त विप्राः ऋषयः) सात विद्वान् मन्त्रद्रष्टा रूप में (उप अग्मन्) प्राप्त हों। अध्यात्म में—आत्मा प्राणों पर द्रष्टा है वह भोक्ता इन्द्रियों पर अध्यक्ष है। सात मुखस्थ इन्द्रियें उसके सात अमात्यवत् है।

प्र सु॑मे॒धा गा॑तु॒विद्वि॒श्वदे॑वः॒ सोमः॑ पुना॒नः सद॑ एति॒ नित्य॑म् ।
भुव॒द्विश्वे॑षु॒ काव्ये॑षु॒ रन्ता॑नु॒ जना॑न्यतते॒ पञ्च॒ धीर॑ः ॥ ३ ॥

भा०—वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिवाला, एवं उत्तम सत्संग और शत्रुहनन के सामर्थ्य से युक्त, (गातुवित्) भूमि को प्राप्त करनेवाला, एवं सन्मार्गों को जानने और अन्यों को प्राप्त कराने वाला, (विश्व-देवः) सबका

दाता, सबमें प्रकाशक तेजस्वी, सब देवों का स्वामी, (सोमः) वह परम-शासक प्रभु और स्वामी (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (नित्यं सदः एति) नित्य हृदय-मन्दिर में प्राप्त हो। राजा अपने भवन या डेरे या न्यायालय को प्राप्त हो। वह (विश्वेषु काव्येषु) समस्त कवियों, विद्वानों के बनाये ग्रन्थों और प्राप्त उपदिष्ट ज्ञानों में और वेदों में रमण करनेवाला हो, वह (धीरः) बुद्धिमान्, कर्मण्य पुरुष (पञ्चजनान् अनु यतते) पाचों जनों के अनुकूल यत्न करे, पाचों को सम्पन्न करे।

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एका॒द॒शासः॑।
द॒र्श स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑ मृ॒जन्ति॒ त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ॥४॥

भा०—हे (सोम) सर्वजगदुत्पादक ! सर्वशासक प्रभो ! स्वामिन् ! राजन् ! हे (पवमान) सर्वव्यापक, सबको पवित्र निष्कण्टक करने हारे ! (त्ये तव त्रयः एकादशासः विश्वे देवाः) तेरे वे ३३ समस्त देवगण, आठवसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य और एक प्रजापति, प्राण और इन्द्र सब मिल कर (निण्ये) छुपे, अदृष्ट रूप में और दशों प्रकार के प्राणगण भी (स्वधाभिः) जलों, अन्नों और बलों द्वारा, (अव्ये सानौ) परम रक्षक रूप में (अधि मृजन्ति) तुझे मार्जन करते हैं, तेरा रूप निहारते हैं, तुझ आत्मा को ही (सप्त यह्वीः नद्यः) सातों बड़ी २ धाराओं के तुल्य सात मुखस्थ प्राण भी मार्जन, अर्थात् अभिषेक सा करती हैं। महान् प्रभु को सात बड़ी (नद्यः) शब्दमयी छन्दो वाणियां उसका स्वरूप वर्णन करके उसको प्रकट, स्वच्छ रूप में दर्शाती हैं। (२) राजा को सात प्रकृतियें, देश, देशवासी प्रजाएं और उस प्रकार के शासक नायकजन अभिषिक्त करते हैं।

तन्नु स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु॒ यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ स॒न्नस॑न्त।
ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे क॒रभीक॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(पवमानस्य नु तत् सत्यम् अस्तु) परम पावन, परमशोधक, प्रभुका वह सामर्थ्य सदा सत्य बना रहे (यत्र) जिसमें (विश्वे कारवः)

सब कर्त्ता और स्तोता जन (सं नसन्त) एक हों (यद्) वह जो प्रभु (लोकं ज्योतिः अह्ने अकृणोत्) यथार्थदर्शी के प्रकाशक सूर्य को दिन करने के लिये बनाता और जो (मनुं प्रावत्) मननशील ज्ञानी को प्रेम करता, उसकी रक्षा करता है और उसको (दस्यवे अभीकं कः) दुष्ट पुरुष के नाश करने के लिये प्रबल करता है।

परि॒ सद्मे॑व पशु॒मान्ति॒ होता॒ राजा॒ न स॒त्यः समि॑तीरिया॒नः।
सोमः पुना॒नः क॒लशाँ॑ अयासी॒त्सीद॑न्मृ॒गो न म॑हि॒षो वने॑षु ।८।२॥

भा०—वह शासक, प्रभु, स्वामी (पशुमान्ति सद्म इव) पशु आदि से समृद्ध गृह के समान हो। वह (होता राजा न सत्यः) दाता राजा के तुल्य सत्यवान्, (समितीः इयानः) संग्रामों और सभादि स्थानों को प्राप्त होता हुआ, (वनेषु) वनों में (महिषः मृगः न) बड़े भारी सामर्थ्यवान् सिंहके तुल्य पराक्रमी होकर (पुनानः) देशको निष्कण्टक करता हुआ (कलशान् अयासीत्) राष्ट्रों, देशों, लोकों वा अभिषेक योग्य जलघटों को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

[९३]

नोधा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सा॒कमुक्षो॑ मर्जयन्त॒ स्वसा॑रो॒ दश॒ धीर॑स्य धी॒तयो॒ धनु॑त्रीः।
हरि॒: पर्य॑द्रव॒ज्जाः सूर्य॑स्य॒ द्रोणं॑ ननक्षे॒ अत्यो॒ न वा॒जी ॥ १ ॥

भा०—(साकम्-उक्षः) एक साथ अभिषेक करनेवाली (स्व-सारः) भगनियों के समान परस्पर स्नेही और (सु-असारः) सुखप्रद वा सुखसे विपक्ष को उखाड़ फेंकनेवाली सेनाएं वा प्रजाएं (धीतयः) उसको धारण करने वाली (धनुत्रीः) उसको सन्मार्ग में प्रेरण करनेवाली, (दश) संख्या में दश व्यक्तियें (धीरस्य) बुद्धिमान्, सबों से धारण योग्य एवं ध्यातव्य को

(मर्जयन्ति) राजावत् अभिषिक्त करती, उसको निरन्तर शुद्ध करती हैं। वह (हरिः) वेग से जानेवाला सोम, आत्मा (सूर्यस्य जाः इव) सूर्य से उत्पन्न किरणों के तुल्य, प्रजा प्रजाओं को राजा के तुल्य, देशों, प्राण-शक्तियों के प्रति (परि अद्रवत्) प्रवाहित होता है, (अत्यः वाजी न) बलवान् अश्व के तुल्य वह (द्रोणम् ननक्षे) इस देह में, राष्ट्र में राजा के तुल्य प्राप्त होता है।

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ।२।

भा०—(मातृभिः शिशुः न) माताओं से जिस प्रकार बालक पुष्टि को प्राप्त होता है उसी प्रकार (वावशानः) नाना प्रकार से कामना करता हुआ (पुरु-वारः) नाना इन्द्रिगण से परिवाहित होकर (वृषा) सब में शक्ति सेचन और बलदान करनेवाला होकर (अद्भिः दधन्वे) प्राणगणों द्वारा धारण पोषण किया जाता है। (मर्यः न योषाम् अभि) मनुष्य जिस प्रकार स्त्री को प्राप्त होता है इसी प्रकार जो सोम (कलशे) इस देह में (उस्रियाभिः) शक्तियों से (सं गच्छते) संगत हो जाता है वह (निष्कृतम् अभि) परम-धाम को प्राप्त हो जाता है।

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

भा०—(अघ्न्याया ऊधः) गाय के स्तनभार से बच्छा जिस प्रकार पान करता है उसी प्रकार (अघ्न्यायाः) न नाश होनेवाली परमेश्वरी गौ अर्थात् वाणी के (उधः) उत्तम पान योग्य ज्ञानरस को (इन्दुः) उस प्रभु का उपासक ही (प्र पिप्य) खूब पान करता है। और वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् होकर (धाराभिः) शान्तिप्रद ज्ञान वाणियों, जलधाराओं के तुल्य ही (सचते) परिशोधित या अलंकृत हो जाता है। और (गावः) समस्त प्रजा और सर्वपोषक प्रतिनिधि जनों का उसकी

(चमूषु) सेनाओं के पदपर सेनानायक के तुल्य, उसी के (चमूषु) विषयास्वाद लेने वाली इन्द्रियों के ऊपर (मूर्धानम्) प्रमुख शिरवत् विराजमान प्रभु को (निक्तैः वसुभिः न) शुद्ध वस्त्रों के तुल्य (अभि श्रीणन्ति) चारों ओर से ढकते हैं।

स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः।
रथिरायतामुशती पुरंन्धिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करनेहारे ! हे अभिषेचनीय ! (सः) वह तू (देवेभिः) दानशील, विजयशील, एवं नाना कामनावान् जनों, वा प्राणों द्वारा, (अश्विनम् रयिम् वावशानः) स्वयं भी अश्व, आत्मा इन्द्रियों वा राष्ट्र राज्यादि के ऐश्वर्य सुख की कामना करता हुआ (नः) हमें भी (रद) वही सुख प्रदान कर। (रथिरायताम् उशती पुरंधिः) महारथियों, बहुतों को धारण पोषण करनेवाली, सबका हित चाहने वाली बुद्धि, शक्ति, नीति (वसूनां दावने) ऐश्वर्यों, प्राणों और लोकों के लिये (अस्मद्रयक्) हमें भी (आ) प्राप्त हो। हम जीवगण भी अश्व आत्मा से वा इन्द्रिय से युक्त रथ रूप देह में विभूतियों को पावें और महारथियों की सी राष्ट्र-पालक शक्ति को हम भी देह के रथी प्राप्त करें।

नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातमंक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयालो ! (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ, स्वयं अभिषिक्त होकर ! (नू नः नृवन्तं रयिम्) मनुष्यों के उत्तम नेता और प्राणों से युक्त ऐश्वर्य हमें (उप मास्व) प्रदान कर। वह धन (विश्वः चन्द्रं) समस्तजनों को चन्द्रवत् आह्लादजनक और (वाताप्यम्) वायु वा प्राण के समान प्राप्त करने योग्य, एवं 'वाताप्य' अर्थात् जलवायु के समान सुख शान्तिदायक हो। (वन्दितुः) स्तुति और बड़ों का मान आदर करने

वाले जन की (प्र तारि) आयुकी खूब वृद्धि हो । (प्रातः) प्रातःकाल, दिन के तुल्य जीवन के पूर्व भाग में (मक्षु) शीघ्र ही, (धिया-वसुः) बुद्धि और कर्म से ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाला वा बुद्धि और कर्म के उपदेश से सबको अपने अधीन बसानेवाला विद्वान् गुरु प्रभु (मक्षु) शीघ्र ही हमें (आ जगम्यात्) प्राप्त हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[९४]

कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥

भा०—(वाजिनि इव शुभः) अश्व पर जिस प्रकार शोभा दायक नाना आभूषण अच्छे लगते हैं उसी प्रकार (अस्मिन् वाजिनि) इस बलशाली, ज्ञानशाली ऐश्वर्य के प्रभु इस आत्मा में वा नेता में (शुभः धियः) समस्त शोभायुक्त, दीप्तियुक्त वाणियां, स्तुतियां शोभा प्रदान करने में (स्पर्धन्ते) एक दूसरे से बढ़ती हैं। (सूर्ये न विशः) सूर्य में रश्मियों के समान समस्त लोकों की प्रजाएं भी उसके आधीन रह कर सत्कर्मों में परस्पर एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करती हैं । वह (कवीयन्) क्रान्तदर्शी विद्वान् के समान वा विद्वानों का प्रिय होकर (पशु-वर्धनाय व्रजं न) पशुओं की वृद्धि के लिये गोष्ठ के तुल्य (अपः वृणानः) मनन योग्य, उत्तम कर्म का विस्तार करता हुआ प्रजा की वृद्धि के लिये (पवते) चेष्टा करता है ।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २ ॥

भा०—(भुवनानि) ये समस्त उत्पन्न लोक और पदार्थ, (स्वः-विदे)

सर्वज्ञ, वा प्राणस्वरूप आनन्दमय उस परम प्रभुको प्राप्त करनेवाले साधक के लिये (अमृतस्य धाम) अमृत के परम तेजको (द्विता) दो प्रकारों से (वि ऊर्ण्वन्) प्रकट करते हैं और (प्रथन्त) उसके लिये विस्तृत होते हैं। (गावः) वेदवाणियां जिस प्रकार (ऋतयन्तीः इन्दुम् अभिवावश्रे) सत्य ज्ञान का वर्णन करती हुई उसी ऐश्वर्यवान्, तेजमय प्रभुको लक्ष्य कर उस का वर्णन करती हैं उसी प्रकार (स्वसरे) अपने गमन मार्ग में (पिन्वानाः) प्रभुको प्रसन्न करने वाली (धियः) वाणियां और मनुष्यों की बुद्धियां एवं बुद्धिमान् जन भी उसी (इन्दुम् अभि वावश्रे) तेजोमय, दयाशील प्रभु को चाहती और उसीकी स्तुति करती हैं। 'धियः कृण्वानाः' इति क्वचित् पाठः।

परि॒ यत्क॒विः काव्या॒ भर॑ते॒ शूरो॒ न रथो॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
दे॒वेषु॒ यशो॒ मर्ता॑य भू॒षन्दक्षा॑य रा॒यः पु॑रु॒भूषु॒ नव्यः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो (कविः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (शूरः रथः नः) शूरवीर महारथी के समान (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों और (विश्वा काव्यानि) समस्त विद्वानों के योग्य ज्ञानों, वेदों को (परि भरते) स्वयं धारण करता और अन्यों को भी प्रदान करता है वह (देवेषु) प्राणों में आत्मा, किरणों में सूर्यके तुल्य (देवेषु) मनुष्यों और विद्वानों के बीच, (मर्त्ताय) मनुष्य के उपकारार्थ (भूषन्) सामर्थ्यवान् होकर (यशः परि भरते) यश, बलवीर्य प्राप्त करता और उनको अन्न और बल प्रदान करता है और वह (पुरु-भूषः) बहुत से जनो में भूमियोंके बीच राजा के तुल्य (नव्यः) अतिस्तुत्य होकर (दक्षाय) कर्म कुशल पुरुषके उपकारार्थ और (दक्षाय) अपने बल को बढ़ाने के लिये (रायः परि भरते) नाना स्वयं ऐश्वर्य धारण करता और अन्यों को प्रदान भी करता है।

श्रि॒ये जा॒तः श्रि॒य आ निरि॑याय॒ श्रियं॒ वयो॑ जरि॒तृभ्यो॑ दधाति।
श्रियं॒ वसा॑ना अमृत॒त्वमा॑य॒न्भव॑न्ति स॒त्या स॑मि॒था मि॒तद्रौ॑ ॥४॥

भा०—वह विद्वान् तेजस्वी जन (श्रिये जातः) परम शोभा, लक्ष्मी और सम्पदा, ऐश्वर्य के लिये ही प्रसिद्ध होता है, (श्रिये आ निः इयाय) लक्ष्मी सम्पत्ति को प्राप्त करने, रक्षा करने और प्रजा को आश्रय देने के लिये ही अभिमुख विजेता के समान आ निकलता है। वह (जरितृभ्यः) स्तोता, विद्वानों को (श्रियं दधाति) सम्पदा, आश्रय, शोभा और कान्ति प्रदान करता और (वयः) जीवन, अन्न, बल, दीर्घायु (आदधाति) प्रदान करता है। (श्रियम् वसानाः) आश्रय योग्य परम सम्पदा को धारण करते हुए जन ही उस (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं। (मित-द्रौ) उस ज्ञानबन्धु की ओर द्रवित होने वाले कृपालु प्रभु में (समिथा सत्या भवन्ति) ज्ञान, सत्संगादि सब सत्य होते हैं।

इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान्।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥५॥४॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासन और सञ्चालन, उत्पादन करने हारे! हे बलशालिन्! तू (इषम् ऊर्जम् अभि अर्ष) हमें अन्न, बल, वृष्टि प्राप्त करा। तू हमें (अश्वम् गाम्) सूर्य पृथिवीवत् ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, एवं अश्व और गौ प्रदान कर। तू (उरु ज्योतिः कृणुहि) महान् ज्योति प्रदान कर। तू (देवान् मत्सि) विद्वानों, कामनावान् जनों को सुखी, तृप्त, पूर्ण कामनायुक्त, आनन्दित कर। हे (पवमान) अभिषेक होने हारे, सर्वव्यापक तू (शत्रून् बाधसे) दुःखदायी, दुष्ट शत्रुजनों को पीड़ित करता है। (तुभ्यम्) तेरे लिये (तानि विश्वानि सु-सहानि) वे सब पदार्थ सुख से वश करने योग्य हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[९५]

अस्कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ संस्तारपंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

भा०—(वनस्य जठरे) भोगने योग्य ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के बीच में (सीदन्) बैठा हुआ राजा, जिस प्रकार (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रन्ति) निरन्तर हर्ष ध्वनि या आज्ञाएं करता है उसी प्रकार (वनस्य जठरे) सेवनीय, वन अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम के बीच विराज कर (पुनानः) अपने को योगादि के अभ्यासों से निरन्तर पवित्र करता हुआ (हरिः) विद्वान्, तेजस्वी ब्रह्मचारी (आ सृज्यमानः) अपने गुरुजनों से प्रौढ़ बनाया जाता हुआ, (गाः कनिक्रन्ति) नाना ज्ञानवाणियों का अभ्यास करे। वह (नृभिः यतः) उत्तम मार्ग से ले जाने वाले सद्-गुरुओं से यम, नियम, व्रतों में बद्ध होकर अपने को (निः-निजं) अति शुद्ध विमल (कृणोति) कर लेवे। हे विद्वान् गुरुजनो ! आप लोग (अतः) इस हेतु, इसके उपकारार्थ (स्वधाभिः) अन्नों के साथ २ वा उसकी अपनी दैहिक शक्तियों के साथ २ (महीः जनयत) उत्तम २ ज्ञानों और बुद्धियों को भी उत्पन्न करो। विद्यार्थी का दैहिक शक्तियों के साथ बौद्धिक विकास भी हो।

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम्।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥

भा०—(सृजानः हरिः) उत्पन्न किया जाता हुआ, प्रतिष्ठा प्राप्त करता हुआ (हरिः) तेजस्वी पुरुष, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पथ्याम्) धर्म पथ से कभी न दूर होने वाली, धर्ममयी, न्याय्य (वाचम्) वाणी को (अरिता इव नावम्) नाव को नाविक के समान ही, (इयर्त्ति) आगे बढ़ाता है। उसकी पुनः २ वृद्धि और उन्नति करता है। (देवः) ज्ञान-दाता, विद्या का प्रकाशक गुरु, आचार्य, (बर्हिषि) वृद्धिकारक पद पर विराज कर (प्र-वाचे) उत्तम वाणी बोलने वाले शिष्य के लिये (देवानाम्)

विद्वान् जनों के (गुह्यानि) बुद्धि में प्रकट होने वाले (नाम) ज्ञानों को (आविः कृणोति) प्रकट करता है ।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥

भा०—(अपाम् ऊर्मयः इव इत्) ठीक जिस प्रकार जलों की तरंगे (तर्तुराणाः) वेगवती होकर (प्र ईरते) किसी पदार्थ को आगे बढ़ाती हैं उसी प्रकार (मनीषाः) मन को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाली गुरुजनों की वाणियां (सोमम् अच्छ) उस सोम्यस्वभाव दीक्षित परिमार्जित, ज्ञान जल में अभिषिक्त या स्नान करनेवाले शिष्य को (प्र ईरते) आगे बढ़ाती और २ भी उत्कृष्ट ज्ञान का उपदेश करती हैं । और समस्त प्रजाएं जिस प्रकार राजा के समक्ष विनय से (उप यन्ति) प्राप्त होती हैं उसी प्रकार वे सब (मनीषाः) ज्ञानवाणियां (नमस्यन्तीः) सोम, शिष्य का मानो आदर करती हुईं, उसके आगे नम्र होती हुईं (उप यन्ति) उसे प्राप्त होती हैं, (संयन्ति) उसे मिल जातीं और (उशन्तं) उनकी कामना करने वाले उसको वे (उशन्तीः) चाहती हुई सी (आविशन्ति च) उस में प्रवेश कर जाती हैं ।

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

भा०—(सानौ महिषं न) पर्वत के उच्च स्थल पर स्थित मेघ के समान (मर्मृजानम्) अपने को निरन्तर शुद्ध पवित्र करने वाले (अंशुं) व्यापक, (उक्षणं) मेघवत् अन्यों को, जलवत् ज्ञान का सेचन करने और दूसरे आश्रमों का भार उठाने में समर्थ (गिरिष्ठाम्) वेद वाणी में निष्णात विद्वान् को (दुहन्ति) विद्वान् जन पूर्ण करते हैं । (तं) उस (वावशानं) विद्यादि को चाहने वाले को (मतयः) ज्ञानवान् पुरुष

और वाणियां भी (सचन्ते) प्राप्त होती हैं वह (त्रितः) ज्ञान, कर्म और उपासना वा पूर्व के तीनों आश्रमों में प्राप्त वा तीनों दुःखों से पार, तीनों लोकों में स्थित सूर्यवत् वेदत्रयी के पारंगत होकर (समुद्रे वरुणम्) आकाश में मेघ तुल्य ही (समुद्रे) ज्ञान के अपार समुद्र, रस के सागररूप परम प्रभु में (वरुणम्) अपने श्रेष्ठ, वरणीय आत्मा को (बिभर्त्ति) धारण करता है ।

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयाशील विद्वन् ! तू (उपवक्ता इव) समीपस्थ श्रोता जनों के प्रति व्याख्याता के समान होकर (पुनानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ वा सर्वत्र गमन करता हुआ, (होतुः वाचम्) ज्ञानदाता गुरु वा प्रभु की वाणी को सर्वत्र प्रेरणा करता हुआ, (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (वि स्य) विविध प्रकार से लोगों के आगे प्रकट कर । (यत्) क्योंकि तू और (इन्द्रः च) इस ज्ञान रहस्य का देने वाला गुरु दोनों ही (सौभगाय) सुख सौभाग्य की वृद्धि के लिये ही (क्षयथः) एकत्र निवास किये हो । इसलिये हम प्रजाजन भी (सुवीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य और उत्तम ज्ञान के पालक, स्वामी (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[९६]

प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ११, १२, १४, १६, २३ त्रिष्टुप् । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—१०, १३, १५, १८, २१, २४ निचृत् त्रिष्टुप् । १६ आर्चो भुरिक् त्रिष्टुप् । २०, २२ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते १

भा०—जब (सेनानीः) सेना का नेता, सेनापति (शूरः) शूरवीर शत्रुहन्ता वीर पुरुष (गव्यन्) नयी भूमियों को प्राप्त करना चाहता हुआ (रथानाम् अग्रे एति) रथों या महारथियों के आगे २ चलता है तब (अस्य सेना हर्षते) उसकी सेना हर्ष अनुभव करती है। वह (सोमः) पदाभिषिक्त शासक (सखिभ्यः) मित्र वर्गों के लिये भी (भद्रान्) सुख-जनक, कल्याणसूचक (इन्द्र-हवान् कृण्वन्) ऐश्वर्यवान् राजोचित आदेशों को प्रदान करता हुआ (रभसानि) बल वीर्य के उत्पादक युद्धोपयोगी (वस्त्रा) कवचादि को (आ:दत्ते) ग्रहण करता है।

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ॥२॥

भा०—(हरयः) विद्वान् लोग (अनिशितम्) असंस्कृत, अभूषित (अस्य हरिम्) इसके अश्व को और अनुत्साहित इसके अन्य तेजस्वी जन को भी (अश्व-हयैः) वेगवान् अन्य अश्वों सहित और (नमोभिः) आदर सत्कारों तथा शत्रु को नमाने वाले अनेक साधनों, पदों, अधिकारों से (संमृजन्ति) अलंकृत, शोभित करते हैं। वह (इन्द्रस्य सखा) राजा का परम मित्र (रथम् आतिष्ठति) रथ पर विराजता है और (विद्वान् एता) विद्वान् इस रथ से (सुमतिम् अच्छ याति) उत्तम मतिमान् और आदर को प्राप्त करता है।

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः॥ ३॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् विद्वन्! हे (सोम) अभिषिक्त! शासक! तू (नः) हमारे (देव-ताते) विजयोत्सुक, वीरों से किये जाने योग्य संग्राम में (महे प्सरसे) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़। तू (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य का पालनकर्त्ता है। (अपः कृण्वन् द्याम् वर्षयन्) जलों को उत्पन्न करते, और आकाश

को बर्षाते हुए मेघ के तुल्य ही (अपः कृण्वन्) काम करता हुआ (उत इमाम् द्याम्) और इस विजयिनी सेना से शस्त्रों की बर्षा करता हुआ (उरोः) इस विशाल राष्ट्र से (पुनानः) शत्रु को दूर करता हुआ (नः वरिवस्य) हमें उत्तम पद, ऐश्वर्य प्रदान कर और प्रजागण की सेवा कर।

अजी॑तयेऽह॑तये पव॑स्व स्व॒स्तयें॑ स॒र्वता॑तये बृह॒ते।
तदु॑शन्ति॒ विश्वं इ॒मे सखा॑य॒स्तद॒हं व॑श्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) दुष्ट पुरुषों को दण्डित करके राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ करने हारे अधिकारी शासक जन ! तू (अजीतये) कभी स्वयं पराजित न होने और शत्रु को विजयी न होने देने के लिये, (अहतये) प्रजा को दुष्टों से पीड़ित न होने देने के लिये, (स्वस्तये) प्रजा के सुख कल्याण के लिये और (बृहते विश्वतातये) बड़े भारी विश्वजनीन कल्याण, के लिये तू (पवस्व) उद्योग कर। (इमे विश्वे सखायः) ये समस्त मित्रगण (तत् उशन्ति) वही सब चाहते हैं और (अहं तत् वश्मि) यही मैं प्रजाजन भी चाहता हूं।

सोमः॑ पवते ज॒नि॒ता म॑ती॒नां ज॑नि॒ता दि॒वो ज॑नि॒ता पृ॑थि॒व्याः।
ज॒नि॒ताग्नेर्ज॑नि॒ता सूर्य॑स्य ज॒नि॒तेन्द्र॑स्य ज॒नि॒तोत विष्णोः॑ ॥५॥६॥

भा०—(सोमः पवते) सब को शासन करने में समर्थ, सब का प्रभु, स्वामी, (पवते) सर्वत्र व्यापता है, वही सब को चला रहा है। वह (महीनां जनिता) उत्तम बुद्धियों और उत्तम भावनाओं को उत्पन्न करने वाला है। (दिवः जनिता) वही प्रकाश, ज्ञान और व्यवहार, सभा, समिति, आकाशस्थ जगत् को प्रकट करता है। वही (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी, आश्रय, स्त्री, भूमि का प्रकट करने वाला है। वह (अग्निः जनिता) अग्नि और तद्वत् विद्वान् ज्ञानप्रकाश को उत्पन्न करने वाला है। वह (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक है। (इन्द्रस्य जनिता) वह अन्न,

जलप्रद मेघ, विद्युत् आदि का उत्पादक है। (उत विष्णोः) और वही व्यापक वायु का भी उत्पादक है।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

भा०—वह (सोमः) शास्ता ही (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ, अधीनों के प्रति आज्ञा देता हुआ (पवित्रम् अति एति) दोषनाशक, परम पावन पद को सब से ऊपर प्राप्त करता है। वह (देवानां ब्रह्मा) विद्वानों के बीच चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के समान विद्वान्, शक्तियों में महान् हो। वह (कविनां पदवीः) क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच में परम पद को प्राप्त करने और उसको प्रकाश करने वाला हो। वह (विप्राणां ऋषिः) विद्वान् पुरुषों के बीच में सत्य अर्थ का देखने वाला हो। वह (मृगाणां महिषः) पशुओं के बीच में महान् बलशाली, सिंह के समान गुणों में भी महान् हो। (गृधाणां श्येनः) वह बड़े २ पक्षियों के बीच में भी बाज के समान पराक्रमी, बलवान् एवं सर्वोत्तम आचारवान् हो। (वनानां स्वधितिः) वनों के बीच में कुठार के समान शत्रुओं के छेदन-भेदन में कुशल हो। वह (रेभन्) सर्वोपदेष्टा सर्वाज्ञापालक (पवित्रम् अति एति) परम पावन पद को सर्वोपरि होकर प्राप्त होता है। (२) अध्यात्म में—ज्ञान के प्रकाशक इन्द्रियों में आत्मा ही बलशाली होने से 'ब्रह्मा' है। देहावधि को क्रान्त कर देखने से इन्द्रिय ही 'कवि' हैं उनको लक्ष्य पद तक पहुंचाने और उनके किये ज्ञान को देखने भोगने वाला आत्मा ही 'पदवी' है। ज्ञान-कर्म के साधक 'विप्र' इन्द्रियें हैं उनका द्रष्टा 'ऋषि' आत्मा है। विषयों के खोजने वाले इन्द्रियगण के बीच वह आत्मा बड़ा बलवान् होने से 'महिष' है। विषयों की लिप्सा करनेवाले इन्द्रियगण 'गृध्र' हैं, उनमें सर्वोत्तम प्रशंसनीय आत्मा 'श्येन' है। भोग्य पदार्थों को सेवन करनेवाली इन्द्रियां 'वन' है उनको स्वशक्ति से धारनेवाला आत्मा 'स्वधिति' है।

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानः सोमः) सब को प्रेरित करने वाला, सब के दोष दूर करने वाला, उत्तम शासक (सिन्धुः ऊर्मिं न) तरंग को बड़े नदी प्रवाह के तुल्य (वाचः ऊर्भिम्ः) वाणी के उत्तम ज्ञान को प्रकट करता है। वह (गिरः) नाना उपदेशों और (मनीषाः प्रावीविपद्) उत्तम बुद्धियों को भी प्रकट करता है। वह (जानन्) ज्ञानवान् आत्मा (गोषु वृषभः) गौओं में बलशाली वीर्यदायक सांड के समान, (गोषु) इन्द्रियगण में (वृषभः) बलदायक है। वही (अन्तः पश्यन्) भीतर को देखता हुआ (इमा) इन (अवरा) अवरणीय, अपने अधीन, गौण (वृजना) अनेक आत्मिक बलों और सैन्यों को राजा के तुल्य (आतिष्ठति) धारण करता है।

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१ंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (मत्सरः) सबको आनन्द प्रसन्न, तृप्त, सन्तुष्ट करनेवाला, (अवातः) सूर्यके तुल्य कभी न बुझनेवाला, प्रभु के आक्रमण से कभी पराजित न होनेवाला, (सहस्र-रेताः) सहस्रों जलों से युक्त मेघवत् सहस्रों बलवीर्यों से युक्त होकर (पृत्सु वन्वन्) संग्रामों में शत्रु का नाश करता हुआ (वाजम् अभि अर्ष) युद्ध, बल, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त कर। तू (मनीषी) बुद्धिमान् सर्वदा चित्तों को सन्मार्ग में प्रेरनेवाला, (इन्द्राय) इन्द्र, परमैश्वर्य पद के लिये आगे बढ़ता हुआ, (गाः इषण्यन्) उत्तरोत्तर भूमियों को चाहता हुआ (अंशोः उर्मिम् ईरय) उस व्यापक प्रभु के उत्तम ज्ञान को प्राप्त करे। अध्यात्म में अविनाशी आत्मा ही उस प्रभु की ओर जावे, उत्तरोत्तर उत्कृष्ट भूमियों को प्राप्त करता हुआ उस परम व्यापक प्रभु के उत्तम पद को प्राप्त करे।

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥ ९ ॥

भा०—वह (सोमः) आत्मा के तुल्य सर्वशास्ता, (कलशे प्रियः) देह में प्रिय, आत्मा के तुल्य, राष्ट्र में सर्वप्रिय, सर्वपोषक, (देव-वातः) विद्वानों के बीच वायुवत्, प्राणवत्, बलशाली (रण्यः) रणकुशल, सबको रमण कराने वाला होकर (मदाय) सब के हर्ष-सुख के लिये हो । वह (सहस्र-धारः) स्वयं बलवान् होकर सबको धारण करने वाला, सहस्रों वाणियों और शक्तियों का स्वामी, (शत-वाजः) सैकड़ों ज्ञानों, बलों ऐश्वर्यों, वेगों का अध्यक्ष, (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, (वाजी सप्तिः न) अश्व वा अश्वारोही के तुल्य वेगवान्, बलवान् (समना परि जिगाति) संग्रामों को जाता और समान ज्ञान वालों को विजय करता है । अध्यात्म में आत्मा मन सहित इन्द्रियों पर विजय करता है ।

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः॥१०।७॥

भा०—(सः) वह (पूर्व्यः) सबसे पूर्व विद्यमान, वा (पूर्व्यः) पालन, पूरण करने योग्य, देहवत् ब्रह्माण्ड में व्यापक, (वसु-वित्) प्राणों, ज्ञानों, धनों, लोकों का प्राप्त कराने हारा आत्मा (जायमानः) स्वयं देह रूप में प्रकट होने वाला, वा जगत् को उत्पन्न करने वाला, (मृजानः) शुद्ध, पवित्र, अन्यों को भी शुद्ध पवित्र करने वाला, (अद्रौ) मेघरूप में (अप्सु दुदुहानः) अन्तरिक्ष में से समस्त जलों को मेघवत्, समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला, (अभिशस्तिपाः) चारों ओर से प्राप्त हिंसाकारी शत्रुओं और निन्दकों और हिंसकों से बचाने वाला, (भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा, वह प्रकाशस्वरूप रक्षक, (पूयमानः) उपासित होकर (ब्रह्मणे गातुम् विदत्) वेद के ज्ञान को प्राप्त कराता है, ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग बतलाता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासक, परमेश्वर! राजन्! हे (पवमान) परम पावन! (त्वया हि) तेरे ही सहाय से (नः पूर्वे पितरः) हमारे पहले के पालक, गुरु, माता-पिता एवं देश के पालक, राजा, अमात्य शासकादि जन (कर्माणि चक्रुः) समस्त अनेकानेक कर्म करते रहे। तू (अवातः) अपराजित कभी नाश न होने वाला, होकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ, (परिधीन् अप ऊर्णु) चारों ओर के बन्धनों या सीमाओं को खोल दे। और (वीरेभिः अश्वैः) वीर अश्वों, वा वेगवान् वीरों विद्वानों वा प्राणों द्वारा (नः मघवा भव) हमारे ऐश्वर्य का स्वामी, धनपति हो।

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान्।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम शासक! तू (वयः-धाः) दीर्घ जीवन, बल और अन्न का देने वाला, (अमित्र-हा) शत्रुओं का नाश करने वाला, (वरिवः-वित्) धनों को प्राप्त कराने वाला है। तू (यथा मनवे अपवेथाः) जिस प्रकार ज्ञानवान् पुरुष के हितार्थ उसको नाना पदार्थ प्रदान करे (एव) उसी प्रकार तू (हविष्मान्) उत्तम साधनों और सामग्री से युक्त होकर (द्रविणं दधानः) ऐश्वर्य और बल को धारण करता हुआ (पवस्व) प्राप्त हो, और तू (इन्द्रे सं तिष्ठ) ऐश्वर्यमय परमपद पर विराज, (आयुधानि जनय) अपने शत्रु पर प्रहार करने के साधनों को उत्पन्न कर, प्रकट कर।

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे आत्मन्! तू (मधुमान्) अन्न जल, बल, ज्ञान आदि से सम्पन्न होकर एवं (ऋत-वा) सत्य ज्ञान और तेज

से युक्त होकर (अपः वसानः) आप्त प्रजाजनों को प्राणों के तुल्य धारण करता हुआ (अव्ये सानौ अधि) प्रजारक्षक के उच्च पद पर विराज कर (घृतवन्ति द्रोणानि) जलसे सम्पन्न नीचे के भूमि-भागों को भी (अवसीद) प्राप्त हो, उनपर भी शासन कर। वा (घृतवन्ति द्रोणानि अवसीद) जल-युक्त कलशों के नीचे बैठकर अभिषेक कर। तू (मदिन्तमः) सबको खूब प्रसन्न करने वाला (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य का वा राजपद का उत्तम रक्षक और (मत्सरः) सब को सुखी, तृप्त करने हारा सब का पालक हो।

वृ॒ष्टिं दि॒वः श॒तधा॑रः पवस्व सहस्र॒सा वा॑ज॒युर्दे॒ववी॑तौ ।
सं सिन्धु॑भिः क॒लशे॑ वावशा॒नःसमु॒स्रिया॑भिः प्रति॒रन्न॒ आयुः॑ १४

भा०—हे सोम! उत्तम शासक! विद्वन्! हे जिज्ञासो! तू (शत-धारः) सैकड़ों जलधाराओं वाले मेघ के तुल्य (शत-धारः) सैकड़ों वाणियों का धारण करनेवाला हो और (दिवः वृष्टिं) आकाश से जल वृष्टिवत् (दिवः वृष्टिम्) ज्ञान प्रकाश की, अज्ञान-उच्छेदिनी शक्ति को (पवस्व) स्वयं प्राप्त कर और अन्यों को दे। तू (सहस्र-साः) सहस्रों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का अन्यों को देने में समर्थ एवं (वाज-युः) ज्ञानैश्वर्य, संग्राम, बल, वेगादि प्राप्त करने वाला (देववीतौ पवस्व) देव, प्रभु की प्राप्ति, विद्वानों की संगति, शुभगुणों के लाभ के लिये यत्न कर। (कलशे) अभिषेक घट के नीचे (सिन्धुभिः) बहती जलधाराओं से (सं वावशानः) सबको अच्छा लगता हुआ वा (कलशे) राष्ट्र में (सिन्धुभिः) वेगवान् अश्वों से (वावशानः) सबको वश करता हुआ, चमकता हुआ, (उस्रियाभिः) उन्नति की ओर जानेवाली दुग्धधाराओं के तुल्य समृद्धियों से (नः आयुः सं प्रतिरन्) हमारे जीवनों और प्रजाजन की वृद्धि कर।

ए॒ष स्य सोमो॑ म॒तिभिः॑ पुना॒नोऽत्यो॒ न वा॒जी तर॒तीदरा॑तीः ।
पयो॒ न दु॒ग्धमदि॑तेरिषि॒रमु॒र्वि॑व गा॒तुः सु॒यमो॒ न वोळ्हा॑ ॥१५॥८॥

भा०—(एषः स्यः सोमः) यह वह सोम, राजावत् विद्वान्,

(मतिभिः) ज्ञानवाणियों, मतिमान् पुरुषों से (पुनानः) पवित्र होता हुआ, अभिषेक वा स्नान करता हुआ, (वाजी अत्यः न) वेगवान्, बलवान् अश्व के समान स्वयं ज्ञानादि बल से युक्त और सर्वोपरि होकर (अरातीः इत् तरति) समस्त शत्रुओं को पार कर जाता है। इस प्रकार (दुग्धं पयः न) दोहे हुए दूध के समान वह शासक स्वयं (अदितेः इषिरम्) भूमि और सूर्य का मानों अभीष्ट चन्द्रवत् माता पिताके अभीष्ट पुत्रवत् प्रिय हो जाता है, वह (उरु इव गातुः) महापथ के समान सबको उद्देश्य तक सुखसे पहुंचानेवाला और (सुयमः वोढा न) उत्तम यम नियम वाला पूर्ण ब्रह्मचारी, विवाह करनेवाले के समान दृढ़ बलवान् वा (सुयमः न वोढा) भार वहन करने वाले अश्व वा बैल के समान उत्तम रीति से निमन्त्रित हो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! ऐश्वर्यों के देनेहारे! हे (सोम) उत्तम शासक! विद्वन्! तू (सोतृभिः पूयमानः) अभिषेक करनेवाले जनों से अभिषिक्त होता हुआ (सु-आयुधः) उत्तम हथियारों और उपकरणों से सम्पन्न होकर (गुह्यम् चारु नाम अभि अर्ष) बुद्धिमें स्थित, सुन्दर नाम को प्राप्त हो। तू (सप्तिः इव) वेगवान् अश्वके समान बलवान् होकर (सप्तिः) सात इन्द्रियों के तुल्य, सात राष्ट्र प्रकृतियों सहित (श्रवस्या) यश और ज्ञान की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त कर। और (वायुम् अभि अर्ष) हमें वायु, प्राणवत् प्रिय पदवी और ज्ञानी गुरु को प्राप्त कर, और (गाः अभि) नाना भूमियों और वाणियों को प्राप्त कर।

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥

भा०—जिस प्रकार (हर्यतम्) कान्तियुक्त, मनोहर, (जज्ञानं शिशुम्) उत्पन्न होने वाले छोटे बालक को (मृजन्ति) जलादि से स्वच्छ करते और (शुंभन्ति) सुशोभित करते हैं उसी प्रकार (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर प्रजाजन, (गणेन) नाना गण बना कर (जज्ञानं) ज्ञान प्राप्त करनेहारे वा नव उदीयमान (हर्यतं बर्हि) सुन्दर कार्यभार वहन करने में समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को (मृजन्ति, शुंभन्ति) स्नान कराते और अलंकृत करते हैं, उसका समावर्त्तन करते हैं। वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (गीर्भिः) उत्तम गुरु-उपदिष्ट वाणियों से और (काव्येन) विद्वानों के ज्ञान और कर्म समूह से (कविः) परम मेधावी (सन्) होकर (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ (सोमः) विद्वान् जन (पवित्रम् अति एति) परम पावन प्रभु-पद को प्राप्त होता है।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम्।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥१८॥

भा०—(यः) जो (ऋषि-मनाः) सर्व सत्यार्थ देखने वाला, विद्वानों के ज्ञानों को जानने वाला, उनके चित्तों के समान चित्त वाला, (ऋषिकृत्) सब को दर्शन करने वाला वा अन्य भी मन्त्रार्थ द्रष्टाओं को उत्पन्न करने में समर्थ, (सहस्र-नीथः) सहस्रों वाणियों को जानने वाला, परम वेदज्ञ, (कवीनां पदवीः) विद्वानों के बीच में ज्ञानयोग्य परमपद का प्रकाशक होता है वह (सिषासन्) अन्यों को भी ज्ञानैश्वर्य प्रदान करता हुआ (स्तुप्) उपदेष्टा, (महिषः) महान्, (सोमः) शास्ता विद्वान् होकर (विराजम् अनु) विशेष दीप्तिमान् सूर्य के अनुसार (तृतीयं धाम) तीसरे वा सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त कर प्रकाशित होता है।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति॥१९॥

भा०—(चमू-सत्) सेनाओं पर अध्यक्षवत् विराजने वाले सेनापति के तुल्य (चमूषत्) विषयों के भोक्ता, इन्द्रिय, मन, देह के ऊपर अध्यक्षवत् वशीकर्त्ता, (श्येनः) शंसनीय आचार वाला, (शुकुनः) शक्तिमान्, अन्यों को भी उन्नत पद पर ले जाने में समर्थ, और शत्रुओं को उत्पीड़न करने वाला, (विभृत्वा) सर्वत्र विहार करने वाला वा प्रजा को विशेष रूप से भरण पोषण करनेमें समर्थ (गोविन्दुः) वेद वाणियों और भूमियों को सूर्य रश्मिवत् धारण करने वाला, तेजस्वी, (द्रप्सः) द्रुतगति वाला, वीर्यवान् होकर (आयुधानि बिभ्रत्) नाना शस्त्रों उपकरणों को धारण करता हुआ, साधनसम्पन्न, (महिषः) महान् शक्तिशाली होकर, (अपाम् ऊमम् सचमानः) जलों के तरंग के तुल्य प्रजा वर्गों के उत्तम बल को प्राप्त करता हुआ, (समुद्रं) समुद्रवत् महान्, सर्व रसों के आकर (तुरीयं धाम) चतुर्थ धाम, परम पद प्रभु को (विवक्ति) प्राप्त होता है ।

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोराविवेश ॥ २० ॥ ६ ॥

भा०—वह (शुभ्रः मर्यः न) सुशोभित युवा पुरुष के समान अपने (तन्वं मृजानः) देह रूप को अलंकृत करता हुआ, (धनानां सनये) धनों के देने वाले के लिये (अत्यः सृत्वा न) वेगवान् अश्व के समान सदा सरण या आक्रमण करने में तैयार, (यूथा वृषा इव) गोयूथ में वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट, होकर (कोशम् परि अर्षन्) खड्ग वा धनकोश को प्राप्त करता हुआ, (कनिक्रदत्) शत्रुओं को ललकारता हुआ, वीरवत् (चम्वोः अविवेश) दोनों सेनाओं के बीच प्रवेश करे । इसी प्रकार विद्वान् उपदेष्टा होकर (चम्वोः) स्त्री पुरुषों के बीच प्रवेश करे । इस मन्त्र में जीव का गर्भाशय में प्रवेश भी कहा है। इति नवमो व र्गः ॥

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु॥२१॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (महोभिः पवमानः) बड़ों से अभिषिक्त, स्नातक होकर (पवस्व) हमें प्राप्त हो । (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (वाराणि परि अर्ष) वरण करने योग्य, शत्रु-वारण में समर्थ ऐश्वर्यों और बलों को प्राप्त कर । (पूयमानः) अभिषिक्त होकर ही तू (चम्वोः) दोनों सेनाओं के बीच वीरवत् समस्त स्त्री पुरुषों माता पिताओं वा राज प्रजा वर्गों के बीच (आविश) प्रवेश कर । (ते रसः) तेरा बल और ज्ञान रस (मदिरः) हर्षकारी होकर (इन्द्रम् ममत्तु) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र को आह्लादक हो ।

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् २२

भा०—(अस्य धाराः बृहतीः) इस की बड़ी २ महान् अर्थ को धारण करने वाली वेद वाणियां और बड़ी २ शक्तियां (प्र असृग्रन्) अच्छी प्रकार प्राप्त हो । उसके पश्चात् वह विद्वान् और वीर (गोभिः अक्तः) वाणियों द्वारा रश्मियों से चमकते सूर्य वा चन्द्रवत् (कलशान् आ विवेश) स्नानार्थ कलशों के बीच प्रवेश करे अर्थात् तदनन्तर वह स्नान करने का अधिकारी हो । वह (विपश्चित्) ज्ञान और कर्मशक्ति का जानने और संचय करने हारा विद्वान् (सामन्यः) सामवेद में, साम गुण के प्रयोग में, एवं सर्वत्र समान व्यवहार, समदृष्टि में कुशल होकर, सब को सान्त्वना, शान्तिमय वचन प्रदान करने वाला होकर और (साम कृण्वन्) साम. सान्त्वना, समदर्शिता, सम्यग् व्यवहार और स्तुति आदि का प्रयोग करता हुआ (क्रन्दन्) उत्तम उपदेश करता हुआ, (सख्युः न जामिम्) सब को मित्र के बन्धु के तुल्य (अभि एति) स्नेह से प्राप्त करे ।

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे! हे आगे बढ़ने हारे! हे अभिषेक योग्य! तू (इन्दुः) तेजस्वी एवं दयालु, शत्रु के प्रति वेग से जाने वाला होकर (अभि-गीतः) स्तुति किया जाता हुआ, (जारः प्रियां न) स्त्री की आयु को अपने आयु के साथ ही जीर्ण करने वाला पुरुष जिस प्रकार अपनी पत्नी को प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (शत्रून् अपघ्नन्) शत्रुओं को मार भगाता हुआ, अपनी (प्रियां) प्रिय प्रजा को (एषि) प्राप्त हो। तू (शकुनः नः पत्वा) शक्तिशाली बाज़ के समान वेग से आक्रमण करने में समर्थ होकर (वनेषु सीदन्) जलों या ऐश्वर्यों के बीच वा हिंसक शत्रुओं के बीच में भी तेजस्वी होकर (सोमः) सर्व-शासक रूप से (कलशेषु पुनानः) कलशों के बीच अभिषिक्त होकर (सत्ता) सर्वाध्यक्ष पद पर विराजने वाला हो।

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् २४।१०।५

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! उपदेष्टः! (पवमानस्य ते रुचः) स्वयं अभिषिक्त, पवित्र एवं अन्यों को पवित्र करने हारे, तेरी कान्तियां और उत्तम २ अभिलाषाएं और (योषा इव) स्त्री के तुल्य ही (सु-दुघाः) उत्तम पुष्टियुक्त, रस प्रदान करने वाली (सु-धाराः) उत्तम वाणियां (आ-यन्ति) सब ओर प्रसार करें। (हरिः) सब के दुःखों को हरने वाला (पुरु-वारः) बहुतों से वरण करने योग्य होकर (अप्सु आनीतः) प्रजाओं के बीच लाया जावे, वे (देवयूनां कलशे) विद्वानों या राजा के चाहने वाले जनों के राष्ट्र में (अचिक्रदत्) शासन करे। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष (देवयूनां कलशे) शुभ गुणों के आकांक्षी, जन मण्डल में उप-देश करे। इति दशमो वर्गः॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

[६७]

ऋषिः—१—३ वसिष्ठः । ४—६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७—९ वृषगणो वासिष्ठः। १०—१२ मन्युर्वासिष्ठः। १३—१५ उपमन्युर्वासिष्ठः। १६—१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः । १९—२१ शक्तिर्वासिष्ठः । २२—२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः । २५—२७ मृळीको वासिष्ठः । २८—३० वसुक्रो वासिष्ठः । ३१—४४ पराशरः । ४५—५८ कुत्सः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १०, १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६ निचृत् त्रिष्टुप् । २—४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४, ३३, ४८, ५३ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७—३०, ३४, ३५, ३७, ४२—४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१, ४९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४० भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ अष्टापञ्चाशदृचं सूक्तम् ॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

भा०—(देवेभिः पूयमानः देवः) विद्वान् , तेजस्वी पुरुषों से अभिषिक्त, तेजस्वी पुरुष (प्रेषा) आगे उन्नति की ओर प्रेरणा देनेवाले (हेमना) सुवर्णरूप साधन से (अस्य रसम्) इस राष्ट्र के बल को (सम् अपृक्त) अच्छी प्रकार जोड़ दे। अर्थात् धन और राष्ट्रबल की उत्तम संगति रक्खे। वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (रेभन्) शासनाज्ञा करता हुआ (पवित्रम् परि एति) अति पवित्र पद को प्राप्त करता है। उस समय वह (होता) सबको अपने समीप बुलानेवाला, (मिता इव पशुमन्ति सद्म परि एति) बने हुए उन पशु सम्पदा से युक्त, गृहों को गृहपति के तुल्य प्राप्त होता है। उन सब पर उसको समान अधिकार होता है।

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

भा०—वह (महान् कविः) गुणों में महान्, क्रान्तदर्शी, विद्वान् मेधावी, (भद्रा) सुन्दर कल्याण सूचक, (समन्या वस्त्रा वसानः) संग्राम योग्य वा सभाभवनादि के योग्य वस्त्रों को धारण करता हुआ (निवचनानि शंसन्) निश्चित सत्य वचनों का उपदेश करता हुआ, (चम्वोः पूयमानः) दो महती सेनाओं के बीच अभिषिक्त होता हुआ सेनापति के तुल्य (देव-वीतौ जागृविः) देवों, विद्वानों, वीरों एवं शुभगुणों की प्राप्ति में (जागृविः) जागने वाला, सदा सावधान, अप्रमादी, (विचक्षणः) विशेष ज्ञान का द्रष्टा होकर (आ वच्यस्व) प्राप्त हो और सर्वत्र शुभ उपदेश करे ।

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

भा०—(अस्मे) हमारे द्वारा (अव्ये सानौ) भूमि के सर्वोच्च प्रजा-पालक पद पर (प्रियः) सर्वप्रिय, सबको प्रसन्न, तृप्त करनेवाला, (यशसां यशस्तरः) यशस्वी जनों के बीच अधिक यशस्वी, (क्षैतः) इस भूमि का ही निवासी पुरुष (संमृज्यते) अभिषेक किया जाना उचित है। हे उत्तम शासक ! तू (पूयमानः) अभिषिक्त होता हुआ, (धन्वस्व) आकाश में मेघवत् इस भूमि में (अभि स्वर) सर्वत्र गर्जना या घोषणा कर । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखकारी उपायों से पालन करो ।

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (प्र गायत) उत्तम रीति से गान करो या उत्तम रीति से उपदेश करो, हम लोग (देवान् प्र अर्चाम) विद्वानों

का अच्छी प्रकार आदर करें। आप लोग (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (प्र हिनोत) प्रेरित करो। वह (स्वादुः) स्वकीय बन्धुजनों को एवं 'स्व' परम ऐश्वर्य को सब प्रकार से ग्रहण करने और भोगने में समर्थ होकर (अव्यं वारम्) रक्षक के सर्वोच्च वरणीय पद को, (पवाते) सबसे बढ़कर, प्राप्त करे। वह (देवेयुः) विद्वानों, और शुभगुणों की कामना करता हुआ, (नः कलशम् आ सीदाति) हमारे स्नान योग्य कलश के नीचे आ विराजे। हम उसका अभिषेक करें। अध्यात्म में—अपना ही कर्मफल भोगने से आत्मा 'स्वादु' है। प्राण और पार्थिव आवरण देह में आता है और देव अर्थात् प्राणों का स्वामी होकर इस देह में विराजता है।

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ५।११

भा०—(इन्दुः) तेजोयुक्त, इस और उस लोक को द्रवित होनेवाला वा उस प्रभु का उपासक जीव, राजावत् (देवानाम् सख्य आयन्) विद्वानों और वीरों के मैत्री भाव को प्राप्त करता हुआ, (सहस्रधारः) सहस्रों शक्तियों, बाणियों, और स्तुतियों वाला होकर (मदाय) परमानन्द के लाभ के लिये यत्न करे। वह (नृभिः स्तवानः) उत्तम नेता मार्गदर्शी जनों द्वारा उपदेश प्राप्त करता हुआ (पूर्वम् धाम अनु) पूर्व जन्म के अनुसार (महते सौभगाय) बड़े भारी ऐश्वर्य सुखादि प्राप्त करते के लिये (इन्द्रम् अगन्) उस परमेश्वर को प्राप्त हो। इसी प्रकार राजा या विद्वान् विद्वानों का सख्य प्राप्त कर उत्तम जन्मों से उपदिष्ट होकर परम सौभाग्य के लिये प्रभु वा सर्वोपरि पद को प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रम्मदो गच्छतु ते भराय।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

भा०—हे विद्वन्! शासक! हे आत्मन्! तू (हरिः) उत्तम प्रजा

का दुःखहारी और मनोहारी होकर (पुनानः) राष्ट्र को निष्कण्टक एवं अपने को अभिषिक्त करता हुआ, (स्तोत्रे राये) स्तुति योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये हो। (ते मदः) तेरा हर्ष और सुख (भराय) संग्राम के (इन्द्रं गच्छतु) परमेश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त हो। तू अपने (देवैः) वीरों, विद्वानों और प्राणों सहित (सरथं) रथ, देह से युक्त होकर वीर सेनापतिवत् (राधः अच्छ याहि) आराध्य प्रभु को धन के तुल्य प्राप्त कर। हे विद्वान् जनो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा आप लोग उत्तम उपायों से पालन करो।

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७॥

भा०—(देवः) ज्ञान, ऐश्वर्य का दान करने वाला, ज्ञान का प्रकाशक, तेजस्वी पुरुष (उशनाः इव) तेजस्वी, सूर्य के तुल्य स्वतः इच्छावान् हो कर (काव्यम् प्रब्रुवाणः) विद्वान् कवि क्रान्तदर्शी जनों तथा परम कवि परमेश्वर प्रोक्त वेदज्ञान का प्रवचन करता हुआ (देवानां जनिम विवक्ति) विद्वान् जनों या ज्ञानाभिलाषी जनों के बीच यथार्थ तत्व ज्ञान का प्रवचन करे। वह (महिव्रतः) बड़ा व्रतनिष्ठ, (शुचि-बन्धुः) शुद्ध पवित्र, नियम-बन्धनादि से युक्त एवं शुचि या तेज से अन्यों को सत् मर्यादाओं में बांधने वाला और (पावकः) परमपावन गुरु, (वराहः) उत्तम वचनों का उपदेष्टा बन कर (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ (पदा अभि एति) नाना उत्तम पदों को प्राप्त हो, वह ज्ञान सहित हमें प्राप्त हो।

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुमर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥८॥

भा०—(हंसासः) हंसों के समान सत् और असत् का नीर क्षीरवत् विवेक करने वाले, अपने अन्तः और बाह्य शत्रुओं का नाश करने वाले,

विद्वान्, योगाभ्यासी और वीर (वृषगणाः) बलवान् जन, (अमात्) रोगवत् पीड़ादायी जन्ममरणमय सांसारिक दुःख और शत्रु वर्ग से भयभीत होकर (अस्तं मन्युम्) गृह के समान शरण सुख देने वाले ज्ञानवान् शत्रु के स्तम्भक बलशाली (तृपलं) क्षिप्र कार्यकारी, सब को अन्न सुखादि से तृप्त करने वाले, (तं) उस प्रभु को (अग्मसुः) प्राप्त होते हैं। वे (सखायः) उसके मित्र होकर (आंगूष्यं) सब से शरणवत् प्राप्त और स्तुति करने योग्य, (पवमानं) परम पावन, अन्यों को पवित्र करने वाले, (दुर्मर्षः) प्रतिपक्षी जनों से पराजित न होने वाले, असह्य विक्रमशील, (वाणम्) सेवनीय, शत्रुओं के नाशक पुरुष को प्राप्त कर (साकं) (प्र वदन्ति) उसका एक साथ गुणगान करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा अंग २ में बसने से आंगूष्य है। भोक्ता होने से 'वाण' है। ज्ञानवान् होने से 'मन्यु' है। प्राण गतिशील होने से 'हंस', बलवान् होने वा वृषरूप, देहवाहन आत्मा के गण होने से 'वृषगण' हैं।

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान्, आत्मा, शासक (उरुगायस्य) महान् स्तुति वाले प्रभु के (जूतिम्) सेवन करने योग्य मार्ग को, महोपदेष्टा की वाणी को शिष्यवत् (रंहते) गमन करता, प्राप्त करता है। (वृथा क्रीडन्तं) अनायास ही प्रकृतिमय लोकों में विचरण करते हुए उसको (गावः न मिमते) वाणियें पूरी तरह से वर्णन नहीं कर सकतीं और ये समस्त लोक उसको माप नहीं सकते। वह (हरिः) पीत वर्ण, तेजस्वी एवं जलादि हरण करने वाले सूर्य के समान (तिग्म-शृंगः) तीक्ष्ण प्रकाशों वाला, तेजस्वी होकर (परीणसं कृणुते) अन्त को मेघ के तुल्य बहुत भारी सुख, ऐश्वर्य वा महान् कार्य करता है वह (दिवानक्तम्) दिन और रात (ऋज्रः) तेजस्वी रूप होकर (ददृशे) दिखाई देता है।

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥१२

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी, दयालु, (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, संग्रामकुशल, (सोमः) उत्तम शासक, (गोन्योघाः) वेग से जाने वाले अधीन जनसमूह का स्वामी होकर (सहः इन्वन्) बड़े भारी शत्रु-पराजयकारी बल को संचालित करता हुआ (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के निमित्त (पवते) दुष्टों का शमन और सज्जनों का उपकार करता है। वह (रक्षः हन्ति) दुष्टों को दण्ड देता है और (अरातीः परा बाधते) कर न देने वालों वा अन्यों को धन, ऋण आदि न देने वाले शत्रुओं और अपराधिया को पीड़ित करता है। वह (वृजनस्य राजा) बल का राजा, बलशाली सैन्यपति होकर (वरिवः कृण्वन्) धनैश्वर्य सम्पादन करता हुआ विराजता है।

इसी प्रकार विद्वान् जन (इन्द्रे) प्रभु परमेश्वर के निमित्त (गोन्योघाः) वाणियों को नम्रता से प्रवाहित करने वाला होकर (मदाय) परमानन्द को प्राप्त करने के लिये (सहः इन्वन्) सहनशीलता, तपस्या को करता हुआ आगे बढ़े। विघ्न-बाधाओं को दूर करता हुआ, वह (वृजनस्य) परम प्राप्य प्रभु की सेवा करता हुआ वह (राजा) स्वयं राजावत् तेजस्वी हो जाता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (मध्वा धारया पृचानः) मधुर वेदमय ज्ञान रस से युक्त, वाणी से युक्त होता हुआ वह (अद्रि-दुग्धः) मेघ के तुल्य उदार गुरुजनों से, ज्ञान से परिपूर्ण होकर (रोम) ब्रह्मचर्य काल में गृहीत मृगाजिन वा आविक कम्बलादि को (तिरः पवते) एक ओर कर देता है, और वह (इन्दुः) चन्द्रवत् आह्लादक तेजस्वी होकर (इन्द्रस्य सख्यं

जुषाणः) ज्ञान के दाता, अज्ञान के नाशक गुरु के मित्र भाव युक्त पद का सेवन करता हुआ (देवः) स्वयं अन्यों को ज्ञान देने में समर्थ एवं तेजस्वी (मत्सरः) सबको हर्षदाता होकर (देवस्य मदाय) अपने ज्ञान-दाता गुरु के हर्ष का कारण होता है। इसी प्रकार (देवः) ऐश्वर्यादि का इच्छुक जीव उस उपास्यदेव का सख्य प्राप्त करता हुआ ज्ञान से पूर्ण और ज्ञान वाणी से युक्त होकर। (रोम तिरः पवते) रोम से आवृत इस देह-बन्धन को दूर कर देता है।

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

भा०—(स्वेन रसेन) अपने बल और आनन्द रससे सब (देवान्) देवों, बल, धन आदि की कामना करने वाले जनों, प्राणों और इच्छुकों को संयुक्त करता हुआ (पुनानः) पवित्र होता हुआ और (देवः) ज्ञान बलैश्वर्यप्रद सोम, शासक मुख्य नायकवत् आत्मा या साधक विद्वान् (ऋतुथा) काल वा ऋतु के अनुसार (प्रियाणि धर्माणि अभि वसानः) सब को प्रिय लगने वाले वा पोषक आत्मप्रिय धर्मों, धारक यत्नों वा साधनों को धारण करता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्य शक्तियों से युक्त होकर, (अव्यै सानौ) सर्वरक्षक, पालक के उच्च भोग्य या भोक्ता पद पर अपने अधीन (दश क्षिपः) आशु काम करने वाले दश प्राणों को राजा दश अमात्य प्रकृतियों के समान (अव्यत) प्राप्त करे।

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम्॥१३॥

भा०—वह महान् आत्मा (वृषा) बलवान् सुखों का वर्षक, (शोणः) तेजस्वी, (गाः अभि कनिक्रदद्) नाना वाणियों का उपदेश करता हुआ उपदेशक वत् नाना सूर्यों के सञ्चालक प्रभुवत्, नाना भूमियों के

शासक के तुल्य इन्द्रियों को वश करता हुआ आत्मा, (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी, आकाशवत् देह और मस्तक भाग को वा भूमिस्थ प्रजा और राज-सभा को (नदयन्) अपने अनुकूल ध्वनित एवं समृद्ध करता हुआ आता हैं (आजौ) युद्ध एवं सर्वोपरि पद पर (इन्द्रस्य इव) जलप्रद मेघ के तुल्य (वग्नुः आशृण्वे) गम्भीर वचन, सर्वत्र सुनाई देवे, तब वह (इमाम् वाचम् प्रचेतयन् अर्षति) सबको उत्तम ज्ञान प्रदान करता हुआ इस वाणी को प्रकट करता है, स्वयं जानता अन्यों को जनाता है।

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! उपदेष्टः! विद्वन्! तू (रसाय्यः) ज्ञानरस से तृप्त (पयसा पिन्वमानः) परिपोषक जल से सेवित, आर्द्रित वा स्नात होकर (मधुमन्तं अंशुम्) मधु से युक्त खाने या सेवन मात्र करने से शान्तिदायक मधुपर्क को प्राप्त करता वा उसी प्रकार मधुर शान्तिदायक वचनों को अन्य के प्रति (ईरयन्) प्राप्त करता हुआ (एषि) प्राप्त होता है। और तू (पवमानः) आगे बढ़ता हुआ, (इन्द्राय परि सिच्यमानः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राज्य पद के लिये अभिषिक्त होता हुआ (सन्तनिं कृण्वन्) संतानवत् विस्तार को प्राप्त होने वाले प्रजा जन को (कृण्वन्) अपनाता हुआ (एषि) प्राप्त हो।

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः १५।१३

भा०—हे (सोम) उत्तम शासन करने हारे विद्वन्! राजन्! तू (उद-ग्रामस्य) आदर सत्कारार्थं जल ग्रहण करने वाले, अभिषेचक प्रजाजन के (मदाय) हर्षोत्सव की वृद्धि के लिये (एव पवस्व) अवश्य इस राष्ट्र को प्राप्त कर और इसको कष्टों से रहित कर। (वधस्नैः) अपने दुष्ट

नाशक साधनों, शस्त्रास्त्रों तथा उपदेशों से, (नमयन्) सब को विनय-पूर्वक झुकाता हुआ (रुशन्तं वर्णम्) तेजोयुक्त अपने को वरण करने वाले तेजस्वी रूप के समान, उज्ज्वल, क्षात्र, ब्राह्म और वैश्य वर्ण को (परि भरमाणः) सब ओर परिपुष्ट करता हुआ, (गव्युः) भूमि और स्तुति वाणियों को चाहता हुआ (परि सिक्तः) अभिषिक्त होकर (नः अर्ष) हमें प्राप्त हो ।

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्य, दीप्ति और तेज से सम्पन्न ! तू (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नः) हमारे (सुगानि वरिवांसि) सुख से प्राप्त होने योग्य उत्तम २ धनों को (जुष्ट्वी) प्राप्त होकर और उनको (नः) हमारे लिये भी (सुगानि कृण्वन्) सुख से प्राप्त होने योग्य करता हुआ अथवा (सुगानि सुपथा जुष्ट्वी) सुख से गमन योग्य उत्तम वैदिक मार्गों को सेवन करके (उरौ) बड़े भारी परिमाण में (नः वरिवांसि कृण्वन्) हमें नाना धनैश्वर्य प्रदान करता हुआ, (विश्वक्) सर्व प्रकार के और सर्वत्र (घना इव दुरुतानि विघ्नन्) घनीभूत बुरे पापाचारों को विनाश करता हुआ (स्नुना) अपने प्रवाही, शुद्ध-पवित्रकारक धारा से (अव्ये सानो अधि धन्व) रक्षकोचित पद पर प्राप्त हो ।

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शङ्गयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

भा०—हे (इन्दो) इस जीव के प्रति प्रेमरस द्रवित करने हारे ! तू (नः) हमारे लिये, (जिगत्नुम्) प्राप्त करने योग्य, हमारे प्रति आने वाली, (इडावतीम्) उत्तम अन्नसम्पदा से युक्त, (शं-गयीं) शान्ति-दायक, प्राणों वा गृह तक में शान्तिदायक, शान्ति के गृह रूप (जीरदानुम्) शीघ्र वा जीवन प्रदान करने वाली, (दिव्यां वृष्टिं अर्ष) दिव्य वृष्टि

प्रदान कर। तू (इमान् अवरान् बन्धून्) इन अपने से अन्य, पद, मान, शक्ति वाले सम्बन्ध से बद्ध, (वायून्) वायुवत् बलवान् वा ज्ञानशक्ति के इच्छुक जनों को (स्तुका इव वीता) पुत्रों के समान प्रिय एवं रक्षा योग्य जानकर (विचिन्वन्) उनको संग्रह करता हुआ (धन्व) प्राप्त कर।

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शास्तः! हे प्रभो! राजन्! विद्वन्! तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ (ग्रथितं) बंधे हुए जीव को (ग्रन्थि न) बंधी गांठ के समान (वि स्य) विशेष रूप से खोल दे, मुक्त कर। और तू (ऋजुं च गातुम्) ऋजु, सरल धार्मिक मार्ग को (वि स्य) खोल दे। और (वृजिनं च) बल वा गन्तव्य मार्ग को खोल, (वृजिनं) वर्जन करने योग्य पाप का भी (वि स्य) विशेष प्रकार से अन्त कर। तू (हरिः) सर्वदुःखहारी तेजस्वी, (अत्यः न क्रदः) अश्व के समान सबसे पार होकर, सब को उपदेश करता हुआ, (आ सृजानः मर्यः) आदरणीय पद पर स्थापित मनुष्य के तुल्य (पस्त्यावान्) गृहपति के तुल्य समस्त गृहों और लोकों का स्वामी होकर (धन्व) प्राप्त हो।

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) सबके उपास्य, हे तेजस्विन्! ऐश्वर्यवन्! तू (देव-ताते) विद्वानों द्वारा विस्तारित इस यज्ञ में (मदाय जुष्टः) अति हर्ष और आनन्द के लिये प्रेम द्वारा परिसेवित, उपासित होकर (अव्ये सानौ) प्रीतियोग्य, सर्वरक्षक, परमोच्च पद पर (स्नुना) मेघवत् आनन्द रस के प्रदान करने वाले रस से (परि धन्व) प्राप्त हो। तू (सहस्र-धारः) सहस्रों धाराओं से बरसने वाले मेघ के समान सहस्रों धारक शक्तियों वा धारा, वाणियों, व्यवस्था-नियमों से सम्पन्न होकर (सुरभिः) सुख से वा

उत्तम रीति से कार्यों का आरम्भ करने वाला और (अदब्धः) अहिंसित होकर (नृ-सह्ये वाज-सातौ) मनुष्यों, नेताओं वा प्राणों द्वारा विजय करने योग्य इस जीवन-संग्राम वा ऐश्वर्य-प्राप्ति के कार्य में (परि स्रव) आगे बढ़।

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न संसृजानास आजौ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोम देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै २०।१४

भा०—(ये) जो (अरश्मानः) रासों से रहित, निर्बन्ध, बन्धनों से रहित, (अरथाः) रमण करने योग्य देहों से रहित, विदेह, (अयुक्ताः अत्यासः न) रथों में न जुते अश्वों के समान गृहस्थ आदि बन्धनों में न फंसे वा विषयों में असक्त, (आजौ ससृजानासः) युद्ध में छुटे अश्वों के तुल्य ही (आजौ) परम प्राप्तव्य पद के लिये (ससृजानासः) तैयार होते हुए (एते शुक्रासः सोमाः) ये शुद्ध, कान्तियुक्त, आलस्यरहित होकर कार्य करने वाले, अभिषिक्त वा ऐश्वर्यवान् सौम्य गुण वाले (देवासः) तेजस्वी और मुमुक्षा की कामना करने वाले विद्वान् जन (धन्वन्ति) आ रहे हैं। (पिबध्यै तान्) उनसे ज्ञानरस पान करने और अपनी रक्षा के लिये उन तक (उपयात) पहुंचो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! हे उत्तम उपदेष्टा! हे तेजस्विन्! तू (नः) हमारे (देव-वीतिम् अभि) शुभ गुणों और विद्वानों के प्राप्ति योग्य कार्य, यज्ञ आदि को (परि स्रव) प्राप्त हो। वह (सोमः) उत्तम प्रशासक (चमूषु) सैन्यों पर वशी, सेनापति के तुल्य (चमूषू) प्राणों पर वशी होकर (नभः अर्णः) मेघ आकाश से जैसे जल को देता है उसी प्रकार वह हमें (नभः) उत्तम प्रबन्ध, मर्यादा वा सूर्यवत् उत्तम सम्बन्ध

से जलवत् शान्तिदायक ज्ञान और (काम्यम्) कामना करने योग्य (बृहन्तम्) बड़ा भारी, (वीरवन्तम्) वीर पुरुषों से युक्त (उग्रम्) उग्र, दुष्टों को दण्ड देने वाला (रयिम्) बल वीर्य, तेज, धन (ददातु) प्रदान करे ।।

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२॥

भा०—(यदि) जब (वेनतः) तेजस्वी, नाना इष्ट पदार्थों के अर्थी वा विद्वान् (मनसः) मननशील चित्त, वा ज्ञानी पुरुष की (वाक्) वाणी, (तक्षत्) निकलती है, (वा) अथवा (यदि) जब (धर्मणि) राष्ट्र के धारक, पालक (अनीके) प्रमुख पद पर स्थित (ज्येष्ठस्य) अति प्रशस्त (क्षोः) आज्ञापक प्रभु की (वाक् तक्षत्) वाणी प्रकट होती है, (आत्) तब ही (ईम् इन्दुं) उस तेजस्वी (वरम्) वरणीय (जुष्टं पतिम्) प्रेमयुक्त, सेव्य पालक को (कलशे) राष्ट्र में (गावः आयन्) समस्त स्तुतियां प्राप्त होती हैं, उसी समय उसको समस्त भूमियां और सम्पदाएं भी प्राप्त होती हैं। यही उसकी तेजस्विता का प्रमाण वा परीक्षा है ।

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥

भा०—(दानुदः) दान देने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य का देने वाला, (दिव्यः) ज्ञान और तेज में निष्ठ पुरुष (दानु-पिन्वः) अपने दान से सबको मेघवत् सेचन कर पुष्ट करने वाला, (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धि-वाणी से युक्त होकर, गुरुवत् (ऋताय) सत्याचरणशील, सत्पथगामी, शिष्य को (ऋतम् पवते) सत्य ज्ञान का प्रदान करे। वह (वृजन्यस्य) बल का (धर्मा) धारण करने वाला (राजा) तेजस्वी, सूर्यवत् (दशभिः रश्मिभिः) दशों दिशाओं में जाने वाली किरणों के तुल्य, दशों प्राणों, वा

दशों अमात्यों से (भूम) बहुतों को, वा बड़े भारी राष्ट्र को कुलवत् (प्र भारि) खूब पालन पोषण करने में समर्थ होता है।

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम्।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष (पवित्रेभिः पवमानः) पवित्र करने वाले साधनों से अपने आपको और राष्ट्र को भी पवित्र करता हुआ, (नृचक्षाः) नेता प्राणों से जगत् भर को देखने वाले आत्मा के तुल्य अपने जनों से राष्ट्र को देखने वाला वा सबके शुभाशुभ को देखने वाला राजा एवं तद्वत् प्रभु भी (देवानाम् उत मर्त्यानाम् राजा भुवत्) देवों और मर्त्यों, विद्वानों और साधारण जनों का राजा हो जाता है। वह (रयीणां रयिपतिः भुवत्) सब ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है। वह (सु-भृतम्) उत्तम पुरुषों से उत्तम रीति से धारण करने योग्य (चारु) उत्तम (ऋतम्) तेज, अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य को (भरत्) धारण करता है।

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः॥२५।१५

भा०—(श्रवसे अर्वान् इव) अन्न के लिये जिस प्रकार 'अश्व' वा यश वा धन के लिये जिस प्रकार अश्वारोही (स-तिम् अच्छ) युद्ध के प्रति जाता है, हे विद्वन्! वा ज्ञानार्थिन्! तू भी (श्रवसे) श्रवण करने योग्य वेद ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (इन्द्रस्य सातिम् अभि अच्छ) उत्तम ज्ञानद्रष्टा तत्वदर्शी पुरुष की दी शिक्षा को प्राप्त कर। तू (वायोः नीतिम् अभि अर्ष) ज्ञानप्रद गुरु की ज्ञानदीप्ति को प्राप्त कर। (सः) वह (नः) हमें (सहस्राः बृहतीः इषः) हज़ारों बड़ी २ अन्न सम्पदाएं और ज्ञान वा काम्य पदार्थों की वृष्टियां (दाः) देवे। हे (सोम) विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (पुनानः) अभिषिक्त, प्रतिष्ठित होता हुआ

(नः) हमारे) लिये (द्रविणः-वित्) धनैश्वर्य का प्राप्त कराने वाला (भव) हो ॥ इति पञ्चदशो वर्गः ॥

देवाव्यो॑ नः परिषि॒च्यमा॑नाः क्षयं॑ सु॒वीरं॑ धन्वन्तु॒ सोमाः॑ ।
आ॒य॒ज्यव॑ः सुम॒तिं वि॒श्ववा॑रा होता॑रो न दि॑वि॒यजो॑ म॒न्द्रत॑माः २६

भा०—(देवाव्यः न) देवों, विद्वानों, शुभ गुणों से प्रेम करने, उनकी रक्षा करने वाले, (परि-सिच्यमानाः) सब और अभिषिक्त होते हुए वा बढ़ते हुए, (सोमाः) उत्तम विद्वान् प्रशासक, उपदेष्टा जन, (सु-वीरं) उत्तम वीरों से युक्त, उत्तम पुत्रों से युक्त (क्षयं) ऐश्वर्य और गृह को (धन्वन्तु) प्राप्त हों । (आ यज्यवः) सब ओर से आ २ कर एकत्र होकर, सत्संग करने वाले (विश्व-वाराः) सर्वश्रेष्ठ, (होतारः) सुखप्रद (दिवि-यजः) ज्ञानप्रकाश के निमित्त वा राजसभा भवन में एकत्र होकर और (मन्द्र-तमाः) अति हर्षयुक्त सब को प्रसन्न करने वाले होकर (सु-मातम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (धन्वन्तु) प्राप्त हों और प्रदान करें ।

ए॒वा दे॑व दे॒वता॑ते पवस्व म॒हे सो॑म॒ प्सर॑से दे॒व॒पानः॑ ।
म॒हश्चि॒द्धि ष्मसि॑ हि॒ताः स॑म॒र्ये कृ॒धि सु॑ष्ठा॒ने रोद॑सी पु॒ना॒नः २७

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! (सोम) सब के शासक ! तू (देव-ताते) विद्वानों, वीरों, निज गुणी जनों के बने, संघ या उनसे बनाये गये राष्ट्र में (महे प्सरसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, तू (देव-पानः सन्) समस्त उत्तम मनुष्यों, पदार्थों और गुणों का पालक होकर (पवस्व) आगे बढ़, शासन कर । हम लोग (महः चित् हिताः हि स्मसि) तुझ महान् के ही शासन में स्थिर रहें, और तू (समर्ये) संग्राम, वा सभा-भवन में (पुनानः) अभिषिक्त होकर (रोदसी सु-स्थाने कृधि) आकाश और पृथिवीवत् राजा-प्रजा वर्ग दोनों को सुखपूर्वक रहने वाले राष्ट्र में, सुव्यस्थित कर ।

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! स्वामिन् ! तू (वृषभिः युजानः) बलवान्, मेघवत् प्रजा पर सुखवर्द्धक जनों के साथ मिलकर (अश्वः न) रथ में अश्व के समान (युजानः) युक्त होकर (सिंहः न भीमः) सिंह के समान भयंकर, और (मनसः जवीयान्) मन से अधिक वेगवान् होकर (ये) जो मार्ग (रजिष्ठाः) अति सरल हों, उन (अर्वाचीनैः पथिभिः) प्रत्यक्ष स्थित मार्गों से (नः सौमनसम् आ पवस्व) हमें शुभ-चित्तता, परस्पर प्रसन्नता और सद्भाव प्रदान कर ।

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य । २९ ।

भा०—(देव-जाताः) मेघ से उत्पन्न जलधाराओं के तुल्य 'देव' प्रभु परमेश्वर से उत्पन्न (शतम् सहस्रम् धाराः) सौ-हजार (१००,००० = एक लक्ष), अनेक वाणी, (असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं । (एनाः कवयः) उनको अनेक तत्वदर्शी विद्वान् गण (मृजन्ति) सुशोभित करते हैं, नाना प्रकार से उनको परिष्कृत कर रोचक, विस्तृत आदि करके कहते हैं । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! तू (दिवः) ज्ञानप्रकाश का (सनित्रं) परम श्रेष्ठ दान (आ पवस्व) प्रदान कर । तू (महतः) महान् सर्वश्रेष्ठ (धनस्य) देने योग्य धन का (पुरः-एता असि) अग्रगन्ता, नेता है ।

दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ३०।१६

भा०—(अह्नां सर्गाः नः) दिनों के बनाने वाले रश्मियों के तुल्य वा (दिवः सर्गाः नः) आकाश से पड़ने वाले जलों के तुल्य उस (दिवः) सर्व सुखवर्षी मातृवत् प्रभु से (सर्गाः अससृग्रन्) नाना सृष्टियां बराबर

उत्पन्न हुआ करती हैं। वह (धीरः) सब जगत् का धारण करने वाला (राजा) सब जगत् का प्रकाशक, प्रभु, राजा के समान रक्षक होकर (मित्रं न प्र मिनाति) मित्रवत् जीव सर्ग को नहीं विनष्ट करता और वह (पितुः पुत्रः न) पिता के पुत्र के समान (क्रतुभिः) नाना उत्तम कर्मों और कर्म-सामर्थ्यों, ज्ञानों से यत्न करता रहे। हे प्रभो! तू (अस्यै विशे) इस प्रजा के लिये (अजीतिम् आपवस्व) अपराजय और अविनाशमय रक्षा प्रदान कर। इति षोडशो वर्गः ॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥

भा०—हे प्रभो! (यत्) जो तू (पूतः) अति पवित्र स्वरूप होकर (अव्यान् वारान्) अवि अर्थात् प्रकृति के बने समस्त आवरणों को पार करके (अत्येषि) विराजता है। (ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) तेरी मधुमयी, ज्ञानमयी, वाणियां अति सुखद रूप से प्रकट होती हैं। हे (पवमान) सर्व व्यापक, परम पावन (गोनाम् धाम पवसे) तू अपनी किरणों के तेज के तुल्य अपना ज्ञान वाणियों का तेज प्रदान कर। तू ही (जज्ञानः) प्रकट होकर (सूर्यम् अर्कैः पिन्वः) सूर्य को अपने तेजों से पूर्ण करता है।

कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२

भा०—हे प्रभो! विद्वन्! तू (ऋतस्य पन्थाम् अनु कनिक्रदत्) सत्य ज्ञान के मार्ग का निरन्तर उपदेश करता हुआ, स्वयं (शुक्रः) अति तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशवान् होकर (अमृतस्य धाम वि भासि) अमृत मय मोक्ष के लोक को विशेष रूप से प्रकाशित करता है। (सः) वह तू (मत्सरवान्) सब को तृप्त, सुखी करने वाले आनन्द से युक्त होकर (कवीनां मतिभिः) कवियों, विद्वानों और दीर्घदर्शी तत्वज्ञानियों की बुद्धियों,

वाणियों द्वारा (वाचं हिन्वानः) अपनी वाणी को प्रेरित और वर्धित करता हुआ (इन्द्राय धाम पवसे) जीव गण के हितार्थ तेजः प्रकाश को प्रदान करता है ।

द्विव्यः सुप॒र्णोऽव॑ चक्षि सोम॒ पिन्व॒न्धारा॑ः कर्म॑णा दे॒ववी॑तौ ।
एन्दो॑ विश क॒लशं॑ सोम॒धानं॒ क्रन्द॑न्निहि॒ सूर्य॒स्योप॑ र॒श्मिम् ॥३३॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शास्तः ! उपदेष्टः ! (देव-वीतौ) विद्वान् और ज्ञानार्थी जनों के एकत्र प्राप्ति स्थानों में (कर्मणा) सत्कर्म के साथ साथ (धाराः पिन्वन्) वाणियों को भी प्रदान करता हुआ, तू (दिव्यः) ज्ञान में कुशल, (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान् (अव चक्षि) हम पर कृपा दृष्टि कर । हे (इन्दो) दयालो ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (सोम-धानं कलशं) उत्तम विद्वान् को उत्तम पद पर स्थापन करने वाले कलशों के बीच (विश) स्नानार्थ प्रवेश कर । और (क्रन्दन्) उपदेशादि प्रदान करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिम् उप इहि) सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर ।

ति॒स्रो वाच॑ ईरयति॒ प्र वह्नि॑र्ऋ॒तस्य॑ धी॒तिं ब्रह्म॑णो मनी॒षाम् ।
गावो॑ यन्ति॒ गोप॑तिं पृ॒च्छमा॑ना॒ः सोमं॑ यन्ति म॒तयो॑ वावशा॒नाः ३४

भा०—(ऋतस्य धीतिम्) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली और (ब्रह्मणः मनीषाम्) ब्रह्म, परमेश्वर की ज्ञानमयी बुद्धि को (वह्निः) धारण करने वाला विद्वान् पुरुष (तिस्रः वाचः) साम, ऋचा, यजुः अर्थात् गान ऋग् और कर्म, इनसे युक्त तीनों प्रकार की वाणियों को (ईरयति) उपदेश करता है । और (गावः) वे वाणियां (पृच्छमानाः) प्रश्न करती हुई (गोपतिं यन्ति) वाणियों के पालक को अनायास प्राप्त होती हैं । और (मतयः) ज्ञान, बुद्धियां और स्तुतियां (वावशानाः) चाहती हुई मानो (सोमं यन्ति) उत्तम उपदेष्टा को स्वतः प्राप्त होजाती हैं ।

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५।१७

भा०—(धेनवः) दुधार गौवों के समान (गावः) वाणियां वा भूमियां भी (सोमं) वीर्यवान् ब्रह्मचारी को, राजा को भूमियों के तुल्य (वावशानाः) चाहती हुईं, (संनवन्ते) बड़े विनय से उसे प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार (मतिभिः पृच्छमानाः) मतियों से पूछते हुए (विप्राः) विद्वान् जन भी (सोमं संनवन्ते) उस शासक, वीर्यवान्, ऐश्वर्यवान् के प्रति झुकते और प्राप्त होते हैं (अज्यमानः) ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ (सुतः) अभिषिक्त या स्नातक होकर ही (सोमः पूयते) सोम पवित्र होता है । और (सोमे) उस ऐश्वर्य युक्त में ही (त्रिष्टुभः अर्काः) तीनों प्रकारों से उसकी स्तुति करने वाली अर्चना वाणियें (संनवन्ते) उसकी ओर झुकती हैं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंन्धिम् ॥३६॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (सोम) उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (परि-सिच्यमानः) सब प्रकार से स्नात होकर (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (नः स्वस्ति आपवस्व) हमें कल्याण, सुख प्राप्त करा । (बृहता रवेण) बड़े भारी गर्जन सहित (इन्द्रम् आविश) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त कर । (वाचं वर्धय) अपनी वाणी के बल को बढ़ा । और (पुरन्धिम् जनय)पुर, नगर, राष्ट्र को धारण करने वाली नीति, सत्ता को प्रकट कर।

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७

भा०—(विप्रः) विद्वान् (जागृविः) जागरणशील, सदा सावधान, (सोमः) शास्ता, उपदेष्टा, विद्यावान् पुरुष (मतीनां) मननशील

पुरुषों के (ऋता) सत्य २ ज्ञानों और तेजों को (पुनानः) प्राप्त करता (चमूषु) योग्य २ पदों या सैन्यों पर (असदत्) विराजे। (यं) जिसको (मिथुनासः) परस्पर संगत, (नि-कामाः) खूब चाहने वाले, अति प्रिय, (अध्वर्यवः) 'अध्वर' अर्थात् प्रजा का अविनाश चाहने वाले (रथिरासः) उत्तम रथी और (सु-हस्ताः) उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीर पुरुष (सपन्ति) प्राप्त होते, समवाय बनाते हैं वही सोम, शास्ता सैन्यों का पति हो।

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८

भा०—(सः) वह शासक (धाता) प्रजा का पालक होकर (सूरे न धाता) सूर्य के अधीन उसके ही तेज को धारण करने वाले चन्द्र के तुल्य, सूर्य के सदृश ज्ञान-प्रकाश वा तेजस्वी पुरुष के अधीन होकर (उप पुनानः) कार्य करता हुआ (उभे रोदसी आ अप्राः) दोनों लोकों को भली प्रकार प्रकाश से पूर्ण करे। (यस्य प्रियसासः ऊती) जिसके सब प्रिय होकर रक्षा के लिये उद्यत हों (सः प्रिया आवः) वह भी सब के प्रिय धनों, कर्मों, गुणों को भी प्रकट करे। और (सः) वह (कारिणे न धनं प्र यंसत्) कर्मकर श्रमी को मज़दूरी के तुल्य ही अपने अधीनों को धन प्रदान करे।

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥

भा०—(येन) जिसके द्वारा (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के (पदज्ञाः पितरः) ज्ञान मार्ग या प्राप्तव्य परम पद को जानने वाले पालक, गुरु आदि जन (स्वः-विदः) प्रकाश, सुख को प्राप्त करने वाले होकर (अद्रिम्

अभि गाः) मेघ को लक्ष्य कर जिस प्रकार चातक या कृषक जलधाराओं को चाहता है उसी प्रकार जिन्होंने जिससे (गाः उष्णन्) नाना ज्ञान वाणियें भूमियों, और इन्द्रिय-सामर्थ्य, शक्तियां प्राप्त की हैं (सः) वह (पूयमानः) उपासना किया गया (सोमः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक प्रभु (वर्धिता) सब को बढ़ाने वाला (वर्धनः) स्वयं भी वृद्धिशील वा सब संकटों को काटने वाला, (मीढ्वान्) सब पर सुखों की वर्षा करनेवाला, (नः) हमें (ज्योतिषा) ज्ञानमय प्रकाश से सूर्य वा चन्द्रवत् (अभि आवीत्) प्राप्त हो, हमें बढ़ावे ।

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा । वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४०।१८

भा०—वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, सब शक्तियों और लोकों का परम आश्रय, (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष रूप से धारण करने वाले इस अन्तरिक्ष में ही (प्रजाः जनयन्) समस्त प्रजाओं, लोकों को गर्भ से बालकवत् उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सृष्टि रचना का कार्य-करता है । वही (भुवनस्य राजा) समस्त जगत् का राजा है । वह (वृषा) बलवान्, सर्व सुखों का वर्षक, वर्धक, सेचक, (पवित्रे) व्यापक (अव्ये) सर्वरक्षक (सानो) उच्च पद पर विराजता हुआ (सुवानः) जगत् को उत्पन्न करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्ययुक्त प्रभु (सोमः) 'सोम' (बृहत्) महान् है, वही (ववृधे) सब से बड़ा है ।

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥

भा०—वह (महिषः) महान् पूज्य (सोमः) सर्वसञ्चालक प्रभु, परमेश्वर (तत् महत् चकार) उस महान् आकाश को भी बनाता है (यत्) जो (अपाम् गर्भः) समस्त प्रकृति के परमाणुओं एवं जीवों के लिंग-शरीरों

को भी (गर्भः) गर्भवत् होकर (देवान् अवृणीत्) देहस्थ इन्द्रियगण के तुल्य जगत् से अग्नि आदि पञ्चभूतों, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और समस्त लोकों को भी आवरण कर रहा है। वह (पवमानः) सबको प्रेरणा करने और व्यापने हारा प्रभु ही (इन्द्रे ओजः अजनयत्) विद्युत् में तेज, बल, पराक्रम प्रकट करता है, वही (इन्दुः) स्वयं तेजोमय प्रभु ही (सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) सूर्य में प्रकाश उत्पन्न करता है।

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ४२

भा०—हे (देव सोम) दानशील तेजस्विन्! उत्तम विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! तू (इष्टये राधसे च) अपने इष्ट लाभ और साध्य कार्य या धन-लाभ के लिये (वायुम् मत्सि) बलवान्, वायुवत् सर्वप्रिय पुरुष को प्रसन्न कर। (पूयमानः) पवित्र वा अभिषिक्त होता हुआ (मित्रा-वरुणा मत्सि) मित्र और वरुण, स्नेही और श्रेष्ठ जनों को प्रसन्न कर। (मारुतं शर्धः मत्सि) प्रजा वा वैश्य वर्ग के बलवान् भाग को प्रसन्न कर। (देवान् मत्सि) वीरों, विद्वानों को प्रसन्न कर (द्यावा-पृथिवी मत्सि) सूर्य भूमि के तुल्य राजा और प्रजा वर्गों को प्रसन्न कर।

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ४३

भा०—हे विद्वन्! सोम! शास्तः! तू (ऋजुः) सरल, धर्मात्मा, होकर (वृजिनस्य हन्ता) पाप, उपद्रव का नाश करने वाला, (अमीवां अप बाधमानः) रोग आदि कष्टदायक कारण को दूर करता हुआ, और (मृधः च अप बाधमानः) हिंसक शत्रुओं और रोगों को ओषधि सोमवत् दूर करता हुआ, (पवस्व) राष्ट्र-शरीर को पवित्र कर। तू (गोनाम् पयः अभि पयसा श्रीणन्) भूमियों के प्राप्त अन्न को पुष्टिकारक बल से सेचित

वृद्धि युक्त करता हुआ, (त्वं इन्द्रस्य सखा) तू राजा वा प्रभु वा जीव मात्र का मित्र वा मेघ, सूर्य के सदृश हो और (वयं तव सखायः) हम तेरे मित्र हों।

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ४४

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (मध्वः सूदं पवस्व) मधुर अन्न के उत्तम रस को प्राप्त कर और करा। और (नः) हमें (वस्वः उत्सम्) धनैश्वर्य के विकास रूप (वीरं च भगं च) वीर, विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (आपवस्व) प्राप्त करा। (पवमानः इन्द्राय स्वदस्व) अभिषिक्त होकर ऐश्वर्ययुक्त राज्य का भोग कर। और (समुद्रान् नः रयिम् आ पवस्व) समुद्र से हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा। समुद्र से रत्न मुक्तादि तथा समुद्र द्वारा व्यापार से नाना ऐश्वर्य प्राप्त करा।

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः॥४५।१४॥

भा०—(सुतः अत्यः धारया न) प्रेरित अश्व जिस प्रकार धारा गति से जाता है उसी प्रकार (सोमः) उत्तम शास्ता, विद्वान् भी (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) धारण शक्ति और उत्तम वाणी से आगे बढ़े। (वाजी सिन्धुः न निम्नम्) वेगवान् नद जिस प्रकार स्वभाव से नीचे देश में बह जाता है उसी प्रकार (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (हित्वा) धारणावान् होकर, अन्यों को बढ़ाता हुआ, (निम्नम् अभि अक्षाः) अपने आगे निम्न, झुके अधीन राष्ट्र को प्राप्त होता है। वह (वन्यं योनिम् आ असदत्) वन्य, सेव्य, तेजोमय गृहवत् आश्रम पर विराजे। ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार वनस्थ आश्रम में प्रतिष्ठित होता है वैसे ही तेजस्वी पुरुष वन = सैन्य दल के ऊपर सभापत्य पद पर विराजे। (पुनानः) अभिषिक्त होकर (गोभिः

अद्भिः सम असरत्) उत्तम वाणियों और आप्त जनों सहित अच्छी प्रकार आगे बढ़े। अध्यात्म में—आत्मा तेजोमय पद को प्राप्त हो, इन्द्रियों और प्राणों सहित आगे बढ़े।

वन्यं योनिं—आत्मा ह तद् वनं तद् वनमित्युपासितव्यम् (केन उप०)।

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान्।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजोमय! राजन्! (एषः स्यः) यह वह (उशते ते) कामनावान् तेरे हितार्थ ही (धीरः) धीर (तवस्वान्) बलवान् (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् (चमूषु पवते) सैन्यों के ऊपर अध्यक्षवत् आगे बढ़ता है। वह (स्वः-चक्षाः) सर्वद्रष्टा, (रथिरः) रथवान् (सत्य-शुष्मः) सत्य के बल से युक्त, (यः) जो (देवयतां) देव, उपास्य प्रभु या विजेता राजा को चाहने वाले जनों का (कामः) अभिलषित रूप में (असर्जि) बना है। अध्यात्म में यह सोम, आत्मा, प्रज्ञावान्, बलवान्, तेज, सुख आनन्द का द्रष्टा, कान्तिमान्, सत्य, बली, देह रथ का महारथी है वह इन्द्र प्रभु का उपासक है।

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

भा०—(एषः) यह (प्रत्नेन वयसा) अपने पुराने ज्ञान-बल से (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) सब सुखों के देने वाली बुद्धि के वा सर्वसुखप्रद परमेश्वर और अपने बीच आये (वर्पांसि) समस्त आवरणों को (तिरः दधानः) दूर करता हुआ, (त्रि-वरूथं शर्म वसानः) तीनों तापों के वारक, परम सुखद गृहवत् शरण में रहता हुआ, (समनेषु रेभन् होता इव) यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण करने वाले होता विद्वान् के समान स्वयं भी (रेभन्) भगवान् की स्तुति करता हुआ

(अप्सु याति) लिंग शरीरों या प्राणों के बीच में गमन करता है। इसी प्रकार राजा अभिषिक्त होकर दुहितावत् प्रजा वा भूमि के समस्त विघ्नों को दूर करता हुआ राज-भवन में रहता हुआ, आज्ञाएं प्रदान करता हुआ प्रजाओं के बीच बिचरे।

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८

भा०—(यः) जो (सविता) सबका उत्तम मार्ग में प्रेरक (सत्य-मन्मा) सत्य ज्ञान और सत्य चित्त वाला है, वह (त्वम्) तू हे (देव सोम) तेजस्विन्! सूर्यवत् शासक! (चम्वोः पूयमानः) दोनों प्रकार की बाह्य, भीतरी सेनाओं के बल पर राष्ट्र को पवित्र, निष्कण्टक करता हुआ (रथिरः) महारथी होकर (परि स्रव) प्रयाण कर। तू (अप्सु) प्रजाओं के बीच में (स्वादिष्टः) अन्नवत् अति मधुर (मधुमान्) सर्वप्रिय, मधुर वचन बोलनेहारा, बलवान् (ऋत-वा) सत्य, तेज को धारण करने वाला हो।

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४६ ॥

भा०—हे शास्तः! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, (वीत्या) अपनी रक्षण शक्ति और तेज से (वायुम् अभि अर्ष) वायु के तुल्य, सर्वप्राण-प्रद पुरुष को प्राप्त कर (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं श्रेष्ठ जनों को (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (रथे-स्थाम्) रथ पर स्थिर (धी-जवनम्) बुद्धि या वाणी द्वारा वेग से जाने वाले, (नरम्) उत्तम नायक पद को (अभि अर्ष) प्राप्त कर और (वज्र-बाहुम्) बल वीर्य को बाहुओं में धारण करने वाले (वृषणं इन्द्रम् अभिअर्ष) सब सुखवर्षक तेजस्वी, रम्य पद को प्राप्त कर।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ५०।२०।

भा०—हे देव सोम! तेजस्विन्! शासक विद्वन्! तू (सुवसनानिवस्त्रा) सुख से आच्छादन करने योग्य वस्त्रों को (अभिअर्ष) धारण कर। (सु-दुघाः धेनूः अभि अर्ष) सुख से खूब दूध देने वाली गौओं को प्राप्त कर। (नः भर्त्तवे) हमारे भरण पोषणार्थ (चन्द्रा हिरण्या अभि) सर्वाह्लादक, रजत सुवर्ण आदि धनों को भी प्राप्त कर। और (अश्वान् रथिनः अभि) रथ वाले अश्वों को भी प्राप्त कर। इति विंशो वर्गः॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः॥ ५१॥

भा०—(नः दिव्या वसूनि अभि अर्ष) हमें दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त करा। हमारे दिव्य धनों को तू प्राप्त कर। (पूयमानः) अभिषिक्त होता हुआ तू (नः) हमारे (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवीस्थ (वसूनि) धनों को प्राप्त कर (येन) जिससे हम लोग भी (द्रविणम् अभि अश्नवाम) ऐश्वर्य प्राप्त करें। तू (नः) हमारे बीच (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि वाले गृहपति के तुल्य (आर्षेयं) ऋषि-पुत्रों के योग्य वा ऋषियों के ज्ञान धन को प्राप्त कर अ र करा।

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात्॥ ५२॥

भा०—(अया पवा) उस पावनी, दुष्टनाशिनी शक्ति से तू (एना वसूनि पवस्व) इन वासस्थानों को स्वच्छ कर और इन नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्, तेजस्विन्! तू (मांश्चत्वे) अभिमानी दुष्ट शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (सरसि) वेग से प्रयाण करने वाले सैन्य बल के आधार पर (प्र धन्व) आगे बढ़। (वातः न) वेगवान् वायु के समान तू (ब्रध्नः) आदित्यवत् तेजस्वी (जूतः) एवं वेगवान् हो कर (पुरु-मेधः चित्) बहुत से शत्रुओं का नाश करता हुआ वा बहु-यज्ञ होकर (तकवे) शरणागत को (नरं दात्) उत्तम नायक प्रदान करे।

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ ५३ ॥

भा०—(उत) और (श्रुते) बहुश्रुत, ज्ञानवान्, (तीर्थे) दुःखों और अज्ञानादि से तारने वाले गुरु के (अधि) अधीन रह कर (श्रवाय्यस्य) श्रवण करने योग्य ज्ञानमय वेद की (एना) इस (पवया) पवित्र करने वाली वाणी से (नः पवस्व) हमें पवित्र कर। (नैगुतः) निम्न, विनीत वाणी बोलने वाले शिष्यजनों का स्वामी, गुरु होकर तू (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ हज़ार धनों को (पक्वं वृक्षं न) पके वृक्ष के तुल्य (रणाय धूनवत्) रमण या आनन्द लाभ के लिये कंपित कर। अर्थात् हम पर पके वृक्ष से फलों के तुल्य ६०००० ऐश्वर्य के तुल्य ज्ञानों को प्रदान कर। (२) इसी प्रकार सोम शासक भी (नैगुतः) नीची भूमि के शत्रु जनों का स्वामी होकर राजा पर सहस्रों सुख ऐश्वर्य वर्षावे।

महीमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥

भा०—(अस्य) इसके (इमे) ये (वृष-नाम) सुखों की वर्षा करने वाली (शूषे) सब को सुख देने वाली, (पृशने) परस्पर लड़ने भिड़ने योग्य, (मांश्चत्वे) युद्ध काल में (वधत्रे) दो शत्रुओं का नाश करने वाली दो सेनाएं हैं। उनसे तू (निगुतः) नीची, भ्रष्ट वाणी बोलने वाले दुष्ट जनों को (अस्वापयत्) सुला दे और (स्नेहयत् च) भगा देता है। और (अचितः) अचेत, अज्ञानी (अमित्रान्) स्नेह रहित जनों को (इतः अप अच) यहां से दूर कर।

सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ५५।२१

भा०—हे (इन्दो) उत्तम तेजस्विन्! तू (त्री पवित्रा सम् एषि)

पवित्र करने वाले, इन शोधक अग्नि, वायु, जल तीनों को एक साथ प्राप्त करता है। तू (पूयमानः) पवित्र होता या करता हुआ (एकम् अनु धावसि) इनमें से एक का अनुधावन करता है। तू (भगः असि) ऐश्वर्यवान् है। तू (दानस्य दाता असि) दान योग्य धन का देने वाला है। तू (मघवद्भ्यः मघवा असि) धनवानों के भी धनों का स्वामी है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥

भा०—(एषः) यह (विश्ववित्) समस्त विश्व को जानने वाला, (मनीषी) मेधावी, सबके मनों में ज्ञान की प्रेरणा करने वाला, (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त भुवन, लोक का राजा, प्रकाशक; (विदथेषु द्रप्सान् ईरयन्) संग्रामों में वेगवान् अश्वों को आगे बढ़ाते हुए सेनापति के समान, (विदथेषु) ज्ञान मार्गों में वा प्राप्तव्य लोकों में (द्रप्सान्) आगे बढ़ने वाले जीवगणों वा रसों को (ईरयन्) प्रेरित करते हुए आ, (समयाति) दोनों प्रकार से (अव्यं वारम् अति याति) रक्षक, स्नेही माता पिता दोनों के वरणीय पद से पार कर जाता है, दोनों से बढ़ जाता है।

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥

भा०—(अदब्धाः) अहिंसित, अविनाशी (महिषाः) बड़े २ महात्मा लोग (इन्दुं) उस परम दयार्द्र प्रभु का (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं, उसका आनन्द-रस प्राप्त करते हैं। (गृध्राः कवयः न) धनार्थी कवियों के समान, (पदे) उस प्राप्तव्य, परम पद प्रभु के बीच में स्थिर होकर (रेभन्ति) उसकी स्तुति करते हैं। और (अपां रसेन) प्राणों के परम बल रूप से वे (दशभिः क्षिपाभिः) दशों इन्द्रियों द्वारा उसका (सम् अञ्जते) साक्षात् करते हैं। उसको प्रकट करते हैं।

त्वया॑ व॒यं पव॑मानेन सोम॒ भरे॑ कृ॒तं वि चि॑नुयाम॒ शश्व॑त् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥५८।२२

भा०—हे (सोम) सर्वशासक ! (पवमानेन त्वया) परम पावन वा अभिषिक्त तुझ से (भरे) इस महान् संग्राम में (वयम्) हम (शश्वत्) सदा (कृते वि चिनुयाम) अपना किया ही विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं (तत्) वही (नः) हमें (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः उत पृथिवी उत द्यौः) वायु, जल, भूमि, नदी, पृथिवी और सूर्य ये पदार्थ और मित्र, श्रेष्ठ जन, माता, पिता, पुत्र, प्राण, भूमि सूर्यवत् प्रजा जन और राजा ये सब (मामहन्ताम्) मुझे प्रदान करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[९८]

अम्बरीष ऋजिश्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् । ३, ५, ९ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒भि नो॑ वाज॒सात॑मं र॒यिम॑र्ष पुरु॒स्पृह॑म् ।
इन्दो॑ स॒हस्र॑भर्णसं तुविद्यु॒म्नं वि॑भ्वा॒सह॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (वाज-सातमं) खूब बल, वेग, ऐश्वर्य, धन, अन्न, ज्ञान आदि देने वाला (पुरु-स्पृहम्) बहुतों को अच्छा लगने वाला, (सहस्र भर्णसम्) सहस्रों को पालन करने में समर्थ, (तुवि-द्युम्नम्) बहुत से अन्नों, यशों, तेजों से युक्त, (विभ्वा-सहं) बहुतसों, बड़ों २ को जीतने वाला (रयिम् अभि अर्ष) बल, वीर्य प्रदान कर । हमसे तू भी प्राप्त कर ।

परि॒ ष्य सु॑वा॒नो अ॒व्यय॑ं रथे॒ न वर्मा॑व्यत ।
इन्दु॑र॒भि द्रुणा॑ हि॒तो हि॑या॒नो धारा॑भिरक्षाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार योद्धा (रथे वर्म न) रथ पर बैठ कर कवच को धारण करता है उसी प्रकार तू (स्यः) वह (सुवानः) अभिषेक प्राप्त करता हुआ (अव्ययं) रक्षक के योग्य (वर्म) सर्व रक्षक पद (परि अव्यत) प्राप्त कर। तू (इन्दुः) तेजस्वी होकर (द्रुणा) द्रुत गति से जाने वाले अश्व वा रथ से (हियानः) जाता हुआ (हितः) पद पर स्थिर होकर (धाराभिः) धाराओं से मेघ के तुल्य, (धाराभिः) अपनी ज्ञान वाणियों से (अभि अक्षाः) सब ओर व्याप। सर्वत्र अधिकार कर।

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः॥ ३॥

भा०—(स्यः सुवानः) वह तू अभिषिक्त होता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी (मद-च्युतः) हर्षप्रद होकर (अव्ये परि अक्षाः) बालों के बने विशेष राजवेश में वा रक्षक के पद पर प्राप्त हो। (यः) जो तू (अध्वरे) यज्ञ में यजमान के समान, (ऊर्ध्वः) ऊंच आसनस्थ होकर (भ्राजा न) दीप्ति से सूर्यवत् (गव्ययुः) उत्तम वाणी और भूमि का स्वामी होकर (धारा एति) अपनी धारण शक्ति से या वाणी से प्राप्त होता है।

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि॥ ४॥

भा०—हे (देव) दानशील! (त्वम्) तू (सः हि) वही है जो (शश्वते) अनेक (दाशुषे) आत्मसमर्पक (मर्त्ताय) मनुष्यगण को (वसु विवाससि) ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह तू हे (इन्दो) ऐश्वर्य और तेज वाले! (सहस्रिणं) सहस्रों से युक्त और (शतात्मानम्) सैकड़ों आत्मा वा धनों वाला (रयिम् विवाससि) ऐश्वर्य प्रदान कर।

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो॥ ५॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! हे धनों के प्राप्त करानेहारे ! हे (वसो) सब में बसने और बसाने वाले ! (वयम्) हम (ते) तेरे (पुरु-स्पृहः वस्वः) बहुतों से चाहने योग्य धन और (इषः सुम्नस्य) अन्न और सुख के भी (नेदिष्टतमाः) अति समीपतम (नि स्याम) नित्य होवें ।

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥ २३ ॥
हरिं त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥

भा०—(यम्) जिस (स्वयशसम्) अपने ही स्वतः बलवान्, (अद्रि-संहतम्) पर्वत के समान दृढ़ शरीर वाले, (प्रियम्) प्रिय, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्य पद की कामना करने वाले, (ऊर्मिणम्) बलवान्, उत्तम भावों वाले उदात्त पुरुष को (पञ्च स्वसारः) पाचों प्रजाएं, भगिनियों के तुल्य पांचों प्रजाएं (द्विः) दो बार विद्या और व्रत में (प्रस्नापयन्ति) स्नान करातीं, अभिषेक करती हैं। (त्यं) उस (हर्यतं) कान्तिमान् (बभ्रुं) भरण पोषण में समर्थ, तेजस्वी (हरिम्) पुरुष को (वारेण परि पुनन्ति) वरण करके सभी पवित्र करते हैं। (यः) जो (विश्वान् देवान् इत्) समस्त कामनावान् पुरुषों को (मदेन सह परि गच्छति) हर्ष सहित प्राप्त होता है।

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥

भा०—आप लोग (अस्य) इसके ही (अवसा) बल, ज्ञान और प्रेम से (वः) अपने (दक्ष-साधनम्) बल को बढ़ाने वाले बल का (पान्तः) पालन करते रहे हो। (यः) जो (हर्यतः न) सूर्यवत्

तेजस्वी होकर (स्वः नः) प्रकाश के तुल्य (श्रवः बृहत्) बड़ा यश, धन और ज्ञान (सूरिषु) विद्वानों को (दधे) धारण कराता है ।

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मानवी) मननशील, (रोदसी) सूर्य भूमिवत् व माता पितावत् जन सभाओ ! हे (देवी) तेजस्विनी सभाओ ! (वां यज्ञेषु) आप लोगों के यज्ञों में—संघों में (देवः इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् (गिरिष्ठाः) वाणी में निष्ठ तुल्य विद्वान् सत्यप्रतिज्ञ नेता (जनिष्ट) प्रकट होता है । उसको सब कोई (तुवि-स्वनि) बहुत स्तुत्य पद पर (अस्रेधन्) प्राप्त कराते हैं ।

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥

भा०—हे (सोमः) शासक ! तू (पातवे) पालन करने वाले (इन्द्राय) शत्रुहन्ता, अन्न-जल-दाता, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी (नरे) नायक (दक्षिणावते) दान और शक्ति वाले (वृत्रघ्ने) दुष्टों का नाश करने वाले (सदनासदे देवाय) आसन पर विराजने वाले राजा या तेजस्वी पुरुष पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जा रहा है ।

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

भा०—(ते) वे (सोमाः) उत्तम विद्वान्, शासकजन (प्रत्नासः) वृद्ध या ज्ञानादिवान् श्रेष्ठजन (वि-उष्टिषु) नाना प्रजाओं की इच्छाओं के बीच, नाना तेजोयुक्त प्रकाशों के बीच, (पवित्रे अक्षरन्) पवित्र कार्य वा पद पर आते हैं । वे (प्रातः) पूर्वकाल में, राज्य या जीवन के प्रथम भाग में ही, (सनुतः) छुपे ((हुरः चितः) कुटिलता से धन बटोरने

वाले, चोर पुरुषों को और (अप्रचेतसः) अविद्वान् मूर्खों को (अप प्रोथन्तः) दूर करते रहते हैं।

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥ २४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगण ! (यूयम् वयम् च सूरयः) तुम और हम सब विद्वान् मिल कर (पुरः रुचम्) सबके आगे, रुचिकर, कान्तिमान्, (वाजगन्ध्यं) बल से शत्रु नाश करने के सामर्थ्य युक्त, (वाज-पस्त्यम्) ऐश्वर्यादि से सम्पन्न गृह वाले पुरुष को, (अश्याम) प्राप्त हों और (सनेम) उसको ही हम पदाधिकार प्रदान करें। (२) इसी प्रकार अन्न के गन्ध से युक्त बलप्रद अन्न को हम खावें और उसका प्रदान करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[९९]

रेभसूनू काश्यपावृषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । २, ३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम्।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥ १

भा०—(हर्यताय) कान्तिमान्, सब के प्रिय (धृष्णवे) शत्रु-धर्षक पुरुष के हितार्थ, वीर जन (पौंस्यं धनुः) पौरुष योग्य धनुष को तानते हैं। और (असुराय) अन्यों को प्राण देने वाले के हितार्थ (महीयुवः) महत्व युक्त पूजा चाहने वाले लोग (विपाम् अग्रे) विद्वानों के सामने (शुक्राम्) शुद्ध कान्तियुक्त (निर्णिजम्) उत्तम वाणी का वस्त्र (वयन्ति) बुनते हैं, उसका विस्तार करते हैं।

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥

भा०—(यदि) जब (विवस्वतः) विशेष परिचर्या करने वाले प्रजा जन की (धियः) बुद्धियें और स्तुतियें (हरिं यातवे) नायक को प्रयाण करने के लिये प्रेरित करती हैं (अत्र) तब वह (परिष्कृतः) अलंकृत, सज धज कर (क्षपा) सेना सहित (वाजान् प्रगाहते) संग्रामों में विचरता है।

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥

भा०—(यः मदः) जो हर्ष, उत्साह (अस्य) इसका (इन्द्रपातमः) ऐश्वर्ययुक्त राजपद वा राष्ट्र को सबसे उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ है (यम् गावः आसभिः दधुः) जिसको वाणियें मुखों द्वारा उच्चारित होकर धारण कराता हैं और (पुरा) पहले जिसको (सूरयः) विद्वान् जन धारण करते हैं। (तम्) उसको हम (मर्जयामसि) और अधिक परिष्कृत करते हैं।

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और (धीतयः) तत्व का प्रकाश करने वाली वाणियें, (देवानां नाम बिभ्रतीः) देवों, विद्वानों का तत्व-प्रकाशक पदार्थों को यथार्थ स्वरूप धारण करती हुई (तं) उसको (कृपन्त) समर्थ, शक्तिशाली बनाती हैं, और (पुराण्या गाथया) अति पुरातन वेद वाणी से विद्वान् जन वा (पुनानं) सर्वप्रेरक, सर्वपवित्रकारक उसकी (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती हैं।

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(मनीषिणः) विद्वान, मेधावी, बुद्धिमान् पुरुष मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, (उक्षमाणं) सब प्रकार के शान्ति-जलों से सेचन

करने वाले मेघवत् शान्तिप्रद (धर्णसि) सब के धर्त्ता । (तं) उसके (अव्यये वारे) अविनाशी परम रूपीय हृदय में (पुनन्ति) स्वच्छ कर प्राप्त करते हैं और (पूर्णचित्तये) पूर्व के ज्ञान प्राप्त करने के लिये वा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के (दूतं न आ शासते) दूत संदेश-हर के तुल्य जानते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (पुनानः) अति स्वच्छ, पवित्र रूप होता हुआ, (मदिन्तमः) अति अधिक आनन्ददायी होकर (सोमः) सर्व प्रेरक आत्मा, (चमूषु) विषयों को रसास्वादन करने वाली इन्द्रियों पर अध्यक्ष के तुल्य (सीदति) विराजता है। वह (पशौ न रेतः) भारवाही पशु पर जिस प्रकार लोग जल लादते हैं उसी प्रकार (पशौ) अर्थद्रष्टा इन्द्रिय में वह आत्मा भी (रेतः आदधत्) अपना तेज और वीर्य प्रदान करता है, उसी के समान सामर्थ्य प्राप्त कर इन्द्रिय अपना ग्राह्य विषय भली प्रकार देखती हैं। वही (धियः पतिः) ज्ञानमयी बुद्धि वाणी और कर्म का स्वामी (वचस्यते) कहलाता है।

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु सन्ददिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (सुतः) वार २ उपासना किया प्रभु या आत्मा (सुकर्मभिः) उत्तम कर्मों से (देवेभ्यः) विद्वानों वा प्राणों से पृथक् रूप में (मृज्यते) बराबर शुद्ध पवित्र किया जाता है (यत्) क्योंकि वह (आसु) इन समस्त प्रजाओं में (सं-ददिः) अपनी शक्ति प्रदान करता है और वही (अपः महीः) देह में जलवत् व्यापक प्राणों और रुधिर आदि द्रवों पदार्थों और यही भूमि के विकार स्थूल देह के तत्वों में (वि गाहते) विविध प्रकार से व्यापता है।

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजःस्वरूप ! इस देह में द्रवित होने वाले (यतः) जिससे तू (नृभिः) मनुष्यों, साधकों वा प्राणों द्वारा (सुतः) अभिषिक्त अध्यक्षवत् प्रेरक होकर (पवित्रे वि नीयसे) परम पावन, स्वच्छ हृदय में विशेष रूप से प्राप्त होता है। तू (इन्द्राय मत्सरिन्तमः) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के लिये हर्षप्रद होता है । तूही (चमूषु) समस्त लोकों, प्राणों, इन्द्रियों में (निषीदसि) विराजता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१००]

रभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, ९ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ १ ॥

भा०—(पूर्वे आयुनि जातं) पूर्व आयु में, बाल्यकाल में उत्पन्न हुए (वत्सं) बच्छड़े को जिस प्रकार (मातरः) माताएं या गौवें (रिहन्ति) चूमती चाटती हैं, उसी प्रकार (इन्द्रस्य) साक्षात् तत्व का दर्शन करने वाले आत्मा को (काम्यम्) अति कामना योग्य, (प्रियम्) अति प्रिय, (वत्सम्) सदा वन्दनीय, स्तुत्य, (पूर्वे आयुनि) पूर्व, सब से पहले विद्यमान आयु अर्थात् मानव हृयद में प्रकट हुए को (अद्रुहः) प्राणिमात्र से द्रोह न करने वाले, अहिंसाव्रती (मातरः) ज्ञानी लोग (रिहन्ति) उस प्रभु के सौम्य रस का आस्वादन करते हैं और (अभि नवन्ते) उसका सर्वत्र सब प्रकार से वर्णन करते हैं ।

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) मेरे इस आत्मा की ओर वा मुझ इस मुक्त के प्रति रस वा दयालु रूप में द्रवित होने वाले परमेश्वर ! हे कृपा सिन्धो, हे (सोम) सर्वैश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) अधिकाधिक स्वच्छ रूप में प्रकट होता हुआ, (द्विबर्हसम्) दोनों लोकों को बढ़ाने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य, बल, (आ भर) प्राप्त करा। क्योंकि (त्वं) तू (दाशुषः) अपने को तेरे हाथों सौंपने वाले त्यागी के (गृहे) गृह में (विश्वानि वसूनि) सब प्रकार के नाना ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥

भा०—(तन्यतुः वृष्टिं न) गर्जता मेघ जिस प्रकार वृष्टि प्रदान करता है उसी प्रकार (त्वं) तू (मनो युजं धियं सृज) मन से वा ज्ञान से योग करने वाले, मन और ज्ञान को प्रेरित करने वाले (धियं) बुद्धि क ° का प्रदान कर। हे (सोम) प्रभो ! सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक (त्वं) तू ही (पार्थिवा दिव्या च) भूमि और आकाश के समस्त (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) खूब २ देता और बढ़ाता है। अतः तू (मनो युजं धियं वृष्टिं सृज) तू मन से योग करने वाले, दुःखोच्छेदक कर्म वा बुद्धि प्रदान कर।

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥

भा०—(सानसिः वाजी इव) जिस प्रकार सधा हुआ वेगवान् अश्व (अव्ययं वारं धावति) अवि अर्थात् रक्षा करने वाले अपने स्वामी के अभिलाषा योग्य उद्देश्य की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार (जिग्युषः) विजयशील, (सुतस्य) उपासित (ते) तुझ प्रभु की (धारा) वाणी, और जगत् की धारक और सब को रस पिलाने वाली पोषक शक्ति,

(रंहमाणा) वेगवती नदी के तुल्य (यथा) यथावत् (अव्ययं वारम्) परम रक्षक प्रभु के वरणीय पद की ओर ही (सानसिः) सुखपात्री (परिधावति) जा रही है, इसी का निर्देश करती है।

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च॥ ५॥ २७॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्, क्रान्तदर्शिन्! हे (सोम) सन्मार्ग में सबको चलाने हारे! तू (क्रत्वे) ज्ञानवान् कर्म करने में समर्थ (दक्षाय) बलवान्, उत्साहसम्पन्न (इन्द्राय) अध्यात्मदर्शी वा ऐश्वर्य से युक्त, ऐश्वर्य-प्रद राज्यपद की रक्षा के लिये (सुतः) अभिषिक्त हो और (मित्राय वरुणाय च पातवे) स्नेही जन और श्रेष्ठजनों के पालन के लिये भी हो।

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः॥ ६॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक! हे बलशालिन्! तू (सुतः) उपासित वा अभिषिक्त होकर (वाज-सातमः) सब से अधिक ज्ञान, धन आदि का देने वाला और (मधुमत्-तमः) सब से उत्तम, मधुर वचन और ज्ञानवान् होकर (इन्द्राय) इस जीवात्मा और (विष्णवे) व्यापक प्रभु और (देवेभ्यः) विद्वान् दानी, तेजस्वी पुरुषों के लिये (पवस्व) यत्न कर।

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि॥ ७॥

भा०—हे (पवमान) सबको पवित्र करने हारे! (धेनवः जातं वत्सं न) गौएं जिस प्रकार अपने उत्पन्न हुए बच्चे को (रिहन्ति) चाटती हैं उसी प्रकार (विधर्मणि) विविध रूप से धारण करने वाले (पवित्रे) पवित्र रूप में वर्त्तमान (त्वां) तुझ (जातं) प्रकट वा प्रसिद्ध (वत्सं) वन्दनीय व स्तुत्य (हरिं) हृदय को आकर्षण करने वाले (त्वां) तुझको

(धेनवः) वेद वाणियां (रिहन्ति) प्राप्त करती हैं, तुझको ही स्पर्श करतीं, तुझे लक्ष्य करतीं, तुझ तक अपना तात्पर्य प्रकट करती हैं।

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (पवमान) परम पावन ! तू (शर्धन्) बलवान् होकर (चित्रेभिः रश्मिभिः) आश्चर्यकारक रश्मियों से सूर्य के समान (महि श्रवः यासि) बड़े यश, धन और श्रवणीय ज्ञान को प्राप्त करता है। (दाशुषः गृहे) अपने को त्यागने वाले के गृह में (विश्वानि तमांसि जिघ्नसे) उसके बहुतसे अज्ञान अन्धकारों को नष्ट करता है।

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ९ ॥ २८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (महिव्रत) महान् कर्म करने वाले (त्वम्) तू (द्याम् च महीं च) आकाश और भूमि को भी (अति जभ्रिषे) बहुत अच्छी प्रकार धारण करता है। और (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (द्रापिं प्रति अमुञ्चथाः) कवचवत् विश्व को धारण करता है।

[१०१]

ऋषिः—१—३ अन्धीगुः श्यावाश्विः। ४—६ ययातिर्नाहुषः। ७—९ नहुषो मानवः। १०—१२ मनुः सांवरणः। १३—१६ प्रजापतिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, ११—१४ निचृदनुष्टुप्। ४, ५, ८. १५, १६ अनुष्टुप्। १० पादनिचृदनुष्टुप्। २ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री॥ षोडशर्चं सूक्तम्॥

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो! (वः) आप लोग अपने में से (पुरः-जीती) शत्रु के नगरों, गढ़ों को जीतने वाले (अन्धसः) प्राण को धारण करने वाले आत्मा के तुल्य वीर पुरुष के (मादयित्नवे) सब को प्रसन्न करने वाले (सुताय) अभिषेक के लिये, (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी लम्बी बातें करने वाले (श्वानम्) कुत्ते के समान केवल पेट भरने वाले लोभी जन को (अप श्नथिष्टन) दूर करो। (२) इसी प्रकार पुर-देह पर विजय करने वाले आत्मा के हर्षप्रद (सुताय) परम रस आत्मानन्द को प्राप्त करने के लिये लम्बी जीभ वाले कुत्ते के तुल्य लोभपर, तृष्णालु चित्त का दमन करो।

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पावकया) पापों और दुष्टों को शोधने वाली (धारया) वाणी या शासन व्यवस्था से (सुतः) अभिषिक्त होकर (परि प्रस्यन्दते) सर्वत्र वेग से भ्रमण करता है वह शासक वा परिव्राजक विद्वान् (इन्दुः) तेजस्वी, चन्द्रवत् आह्लादक, (अश्वः) विद्या में व्यापक और अश्व के तुल्य अन्यों का नेता और (कृत्व्यः) कर्म कुशल होता है। (२) देह में—अश्व, आत्मा, पावनी देहशोधनी धारा, रस-धारा से सर्वत्र बह रहा है।

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥

भा०—(तम्) उस (दुरोषम्) शत्रुओं के लिये दुःखकारी रोष वाले (सोमं) उत्तम शासक रूप से (विश्वाच्या धिया) सब में स्थित, विश्वजन की वाणी या सत्कर्म से (नरः) नायकजन (अद्रिभिः) आदर सत्कारों से (अभि हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं, उसको प्रतिष्ठित करते हैं। (२) इसी प्रकार (नरः) विद्वान् मनुष्य उस आत्मा को (दुरो) जो अग्नि

से जल न सके (यज्ञं) और उपासना के योग्य है उसको (विश्वाच्या धिया) विश्व रूप प्रभु से प्राप्त धी, बुद्धि, सत्कर्म और वेदवाणी द्वारा (अभि हिन्वन्ति) उसका प्रतिपादन करते हैं।

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

भा०—(मधुमत्तमाः) अति मधुर वचन बोलने वाले, (सुतासः सोमाः) अभिषिक्त शासकजन, (मन्दिनः) अति हर्षजनक, (पवित्रवन्तः) पवित्र पद, कर्त्तव्य वाले, (इन्द्राय अक्षरन्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये वेग से जावें। हे वीर शासको ! (वः अदाः) आप लोगों के समस्त सुख हर्षादि (देवान् गच्छतु) उत्तम पुरुषों को प्राप्त हों। अध्यात्म में—दीक्षित, अभिषिक्त, स्नात, सोम्य विद्वान्जन प्रभु परमेश्वर की प्राप्ति के लिये आगे बढ़ें। उनके सब सुख, आनन्द कारी उपाय विद्वानों को प्राप्त हों।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) इन्दु, आत्मा (इन्द्राय पवते) इन्द्र परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये जाता है (इति) इस प्रकार (देवासः) विद्वान् लोग (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं। (वाचः पतिः) वाणी का पालक प्रभु (मखस्यते) पूजा की अपेक्षा करता है वह (ओजसा) बल से (विश्वस्य-ईशानः) समस्त जगत् का स्वामी है।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रस्य सखा) उस परमेश्वर का मित्र (सोमः) सोम—आत्मा, वा विद्वान् भक्त (दिवे दिवे) दिनों दिन (रयीणां पतिः) ऐश्वर्यों का स्वामी (सहस्र-धारः) सहस्रों वाणियों वा शक्तियों से युक्त

(वाचम्-ईंखयः) स्तुतियों का करने वाला होकर भी (समुद्रः) समुद्र के तुल्य स्वयं रसों से पूर्ण होता है। (२) अथवा सोम सर्वोत्पादक प्रभु-समुद्रवत् रस का सागर, भीतरी वाणी का प्रेरक, सब ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रस्य सखा) इस जीवात्मा का मित्र है।

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥

भा०—(अयम्) यह (पूषा) सर्वपोषक, (रयिः) सब का सर्वस्व धन, (भगः) सब ऐश्वर्यों-सुखों का स्वामी, (पुनानः अर्षति) सब को पवित्र परिष्कृत होकर प्राप्त है। वह (विश्वस्य भूमनः) बड़े भारी विश्व का (पतिः) पालक है। वह (उभे रोदसी वि अख्यत्) दोनों लोकों को प्रकाशित करता है। (२) यह आत्मा देहपोषक होने से पूषा, देहवान् होने से रयि, सुखभोक्ता होने से भग, भूमा आत्मा का पालक, इह, पर दोनो लोकों को प्रकाशित करता है।

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥

भा०—(घृष्वयः) एक दूसरे से स्पर्द्धा करने वाली (प्रियाः) हृदय को प्रिय (गावः) वाणियां, (मदाय) अन्तरानन्द के लिये (सम्-अनूषत) भली प्रकार स्तुति करती हैं। (इन्दवः सोमासः) तेजस्वी, सौम्य गुणों वाले (पवमानासः) अपने को पवित्र करने वाले जन (पथः कृण्वते) सामान्य जनों के मार्गों का उपदेश करते हैं।

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ओजिष्ठः) सब से अधिक ओज, तेज, बल को धारण करने वाला है, हे (पवमान) अपना शोधन करने हारे अभ्यासी

जन ! (तं) उसको लक्ष्य करके (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य वेदमय स्तुति को (आभर) प्राप्त कर। (यः) जो (पञ्चचर्षणीः अभि) पांचों प्रकार के मनुष्यों के प्रति पांचों इन्द्रियों में मन वा आत्मा के तुल्य है। (येन) जिससे (वयं) हम (रयिं वनामहे) ऐश्वर्यवत् देह को प्राप्त करें वा 'देह' से कर्मफल भी भोगें।

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(सोमाः) ज्ञानैश्वर्य के धनी, विद्या ज्ञान–में निष्णात, (इन्दवः) तेजस्वी, (गातुवित्-तमाः) वेदवाणी और सन्मार्ग को जानने और जनाने हारों में सर्वश्रेष्ठ, (मित्राः) जगत् के समस्त जीवों को मृत्यु के दुःख से बचाने वाले, (सुवानाः) अभिषिक्त, एवं ऐश्वर्य-विभूति से युक्त होते हुए भी (अरेपसः) पाप-वासना, दुष्कर्मों से रहित (स्वाध्यः) शुभ कर्मों और विचारों का चिन्तन और धारण करने वाले (स्वर्विदः) सुख, तेज, उत्तम उपदेश प्राप्त कराने वाले उपदेष्टा, सूर्यवत् तेजस्वी होकर (पवन्ते) सूर्य के किरणों के तुल्य सर्वत्र गमन करते, सबको पवित्र करते हैं। द्वितीयो वर्गः ॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ११ ॥

भा०—वे (अद्रिभिः) आदर करने योग्य, वा मेघवत् उदार वा पर्वत-शिलावत् दृढ़ पुरुषों द्वारा (सु-स्वानाः) उत्तम रीति से निरन्तर अभिपूजित होते हुए, (गोः त्वचि अधि) भूमि की पीठ पर वेदवाणी का (चितानाः) ज्ञान-सम्पादन करते हुए, (वसुविदः) सर्वत्र बसे प्रभु का और जगत् में बसे प्राणियों वा आत्माओं का तत्व जानते हुए (अस्मभ्यम् अभितः) हमारे सब ओर (इषम् सम् अस्वरन्) उत्तम वाणी का

उपदेश करें। सूर्यकिरणों के तुल्य सुखों, अन्नों और उत्तम ज्ञान-धाराओं को प्रकट करें।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥

भा०—(एते) ये (पूताः) पवित्र हृदय और पवित्र आचार वाले (विपश्चितः) ज्ञानों का सञ्चय करने वाले, (सोमासः) ज्ञानी पुरुष, (दधि-आशिरः) ध्यान-धारणा में आश्रय लेने वाले, (सूर्यासः न) सूर्यों वा सूर्य किरणों के तुल्य (दर्शनासः) दर्शनीय और ओरों को सत्य तत्व का दर्शन कराने वाले, (जिगत्नवः) सदा आगे बढ़ने वाले होकर भी (घृते) धारण किये वा पकड़े हुए उद्देश्य वा व्रत में (ध्रुवाः) स्थिर, न डिगने वाले होते हैं।

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्त्तो न वृत तद्वचः।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥

भा०—(सुन्वानस्य) उपासना किये जाते हुए, परमैश्वर्य-सम्पन्न (अन्धसः) अन्नवत् सब जीवनतत्व को धारण कराने वाले उस प्रभु वा आत्मा के (तत्) उस (वचः) गूढ़ वचन, गति, चेष्टा, सामर्थ्य को (मर्त्तः) मरणधर्मा, स्थूलदेहवान् (न वृत) सीमित नहीं कर सकता प्राप्त नहीं कर सकता। हे विद्वानो ! आप लोग (भृगवः) तेजस्वी होकर (मखं न) सुख से हीन, दुःखदायी बाधक कारण, क्रोध के तुल्य ही (अराधसम्) अभव्य, काबू न आने वाले, दुःसाध्य दुर्दान्त (श्वानम्) कुत्ते के तुल्य अति लोभ को (अप हत) मार भगाओ। लोभ और क्रोध को दूर करने के बाद ही उस प्रभु की वाणी का सत्य ज्ञान और आत्मा की परम शक्तियों का साक्षात् होता है।

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥

भा०—सोम-प्रभु, सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक, जगत् का शासक परमेश्वर (ओण्योः भुजे) माता पिता के भुजा वा रक्षा में (पुत्रः न) पुत्र के तुल्य हमारा (जामिः) बन्धु होकर (भुजे) सबके पालन करने वाले (अत्के) उत्तम रूप में (ओण्योः आ अव्यत) आकाश और भूमि दोनों के (भुजे) पालानार्थ सब ओर से प्राप्त है। (योषणां जारः न) स्त्री को उसके जीवन भर के संगी पति के तुल्य वह (योषणाम्) व्यापक प्रकृति को (सरत्) व्यापता है, और (वरः योनिम् न आसदम्) वरणीय पुरुष जिस प्रकार अपने उचित स्थान पर बैठने के लिये आसन की ओर बढ़ता है उसी प्रकार वह (योनिम्) जगत् उत्पादक प्रकृति को (आसदम्) व्यापने के लिये (आ अव्यत) सर्वत्र विद्यमान है।

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥

भा०—(सः) वह (वीरः) विविध प्रकार से जगत् को प्रेरित करने वाला, (दक्ष-साधनः) जगत् भर को भस्म कर देने वाले महान् अग्नि के दक्ष, बल, ज्ञान शक्ति को अपने वश करने वाला है (यः) जो (रोदसी) दोनों लोकों को (वि तस्तम्भ) विशेष रूप से थाम रहा है। वह (हरिः) सर्व-दुःखभयहारी, अति चित्तहारी, प्रभु (वेधाः योनिम् न) घर को गृह स्वामी के तुल्य (आसदम्) अध्यक्षवत् विराजने के लिये, (वेधाः) जगत् का विधाता होकर (पवित्रे अव्यत) परम पावन रूप में प्रकाशित होता है।

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—(गव्ये अधि त्वचि कनिक्रदत् सोमः) चर्म पर विराजमान विद्वान् के तुल्य, (गव्ये अधि त्वचि) वाङ्मय साहित्य के भी ऊपर वह (सोमः) आनन्द रस-रूप में साक्षात् करने योग्य प्रभु (अव्यः

वारेभिः पवते) स्नेह, समृद्धि, कान्ति, दीप्ति आदि के नाना सुन्दर रूपों से प्रकट होता है। वह (वृषा) सुखों का वर्षक मेघवत् (हरिः) मनोहर, कान्तिमान, (इन्द्रस्य निष्कृतम् अभि एति) आत्मा के स्थान को साक्षात् प्राप्त होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१०२]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ८ निचृदुष्णिक्। ५—७ उष्णिक्। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

भा०—(क्राणा) जगत् को रचने वाला प्रभु (महीनां शिशुः) महान् प्रकृति के परमाणुओं, उसकी विकृतियों वा महती शक्तियों में (शिशुः) व्यापक, उनका शासक है। वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (दीधितिं) प्रकाशक और धारक वेदमय शब्द की (हिन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (विश्वा प्रिया) समस्त प्रिय पदार्थों को (परि भुवत्) व्यापता और (अध द्विता अभवत्) इह और पर दोनों लोकों में विद्यमान है।

उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम्।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

भा०—और (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्यापक प्रभु के (पाष्योः) शिलाओं के तुल्य आकाश और भूमि इन के बीच और (गुहा) बुद्धि में (यद् पदम्) जिसका ज्ञानमय रूप सेवन किया जाता है, उस (यज्ञस्य) यज्ञमय प्रभु का (सप्त धामभिः) सातों जगत् के धारक सामर्थ्यों, लोकों वा प्राणों द्वारा (प्रियम्) प्रिय मनोहर रूप है।

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम्।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्यापक प्रभु (त्रीणि) तीनों रूपों को (धारया) वाणी द्वारा (ईरय) बतला। (पृष्ठेषु) समस्त लोकों में (रयिम्) जीवन प्रकाश आदि देने वाले उस प्रभु की (आ ईरय) सर्वत्र स्तुति कर। (सु-क्रतुः) उत्तम कामों को करने वाला, मनुष्य (अस्य) इस प्रभु के (योजना) जगत् के सञ्चालक अनेक बलों को (वि मिमीते) विशेष रूप से जानता और उन को विविध रूपों में बनाता, प्रकट करता है।

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् ध्रुवः) यह नित्य, वा सब जगत् का सञ्चालक और धारक प्रभु (रयीणां) समस्त ऐश्वर्यों को (चिकेत) जानता है। (मातरः) जगत् का निर्माण करने वाले प्रकृति के परमाणु, (सप्त) संख्या में सात प्रकृति विकृतियें उस (जज्ञानं) जगत् को उत्पन्न करने वाले (वेधाम्) विधाता, कर्त्ता की (श्रिये) हे मनुष्यो ! ऐश्वर्य लाभ और आश्रय के प्राप्ति के लिये (आ शासत) स्तुति करो।

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य व्रते) इसके व्रत या कर्म में लगे (विश्वे देवासः) सब मनुष्य (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, (अद्रुः) परस्पर द्रोह से रहित, (स्पार्हाः) परस्पर प्रेम करने वाले, और (रन्तयः) सुखी प्रसन्न (भवन्ति) होते हैं (यत् जुषन्त) जिससे वे प्रेम करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः॥

यमीं गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन्।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—(गर्भम्) सब को वश करने वाले, जगत् को गर्भ में धारण करने वाले (यम् ईम्) जिस (चारुम्) व्यापक को (ऋत-वृधः) सत्य

के बढ़ाने वाले, जन (दृशे) दर्शन करने के लिये (अजीजनन्) वाणी वा कर्म-साधनों द्वारा प्रकट करते हैं। उस (कविम्) क्रांतदर्शी (मंहिष्ठम्) अति दानशील, (अध्वरे पुरु-स्पृहम्) अविनाशी, यज्ञ में बहुतों को स्पृहा करने योग्य, सर्व प्रिय को सब (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं।

समीचीने अभित्मना यह्वी ऋतस्य मातरा।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥

भा०—(समीचीने) परस्पर सुसम्बद्ध, (यह्वी) दोनों महान् (ऋतस्य) जगत् रूप यज्ञ का निर्माण करने वाले, ब्रह्म और प्रकृति दोनों हैं। (यत्) जिनके रूप को (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ का विस्तार करते हुए विद्वान् जन (आनुषक् अंजते) निरन्तर प्रकट करते हैं।

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः।
हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म-सामर्थ्य से हे विभो ! प्रभो ! (शुक्रेभिः) शुद्ध कांतियुक्त और शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करने वाले तेजः-सामर्थ्यों से (दिवः व्रजं ऋणोः) आकाश के गतिशील लोकसमूह को दूर २ तक चलाता है। वह तू (अध्वरे) अविनाशी आत्मा में (ऋतस्य दीधितिं) सत्य-ज्ञान की किरण को प्रेरता हुआ हमारे (दिवः) प्रकाशमय आत्मा से (व्रजं) पापवृत्ति के समूह को (अप ऋणोः) दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०३]

द्वित आप्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ उष्णिक्। २, ५ निचृदुष्णिक्। ४ पादनिचृदुष्णिक्। ६ विराडुष्णिक् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

भा०—(मतिभिः) स्तुतियों से (जुजोषते) प्रसन्न करने वा होने

वाले, वा (मतिभिः जुजोषते) विद्वान् पुरुषों द्वारा प्रेमपूर्वक सेवन किये जाते हुए, (पुनानाय) निरन्तर अभ्यास द्वारा स्वच्छ रूप में साक्षात् होने वाले, (वेधसे) जगत् के विधाता (सोमाय) सर्वेश्वर, सर्वपालक प्रभु के लिये (उद्यतम् वचः) उत्तम रीति से सुसंयत, सुगठित स्तुत वाणी का (भृतिं न भर) वेतन के तुल्य प्रदान कर। अर्थात् प्रभु की स्तुति प्रार्थना नित्य नियम से बंधे रूप से करनी चाहिये।

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।
त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥

वह प्रभु (त्रीणि) तीनों (अव्यया) अविनाशी (वाराणि) जीवों की रक्षा करने वाले लोकों को सूर्य के तुल्य (गोभिः अंजानः) किरणों से, वाणियों से वा इन्द्रियों वा सूर्यादि लोकों द्वारा प्रकाशित करता हुआ (हरिः) तीनों तापों का हरण करने वाला, तीनों लोकों का प्रभु (पुनानः) व्यापता हुआ (त्री सधस्था कृणुते) तीनों लोकों को रचता और (अर्षति) तीनों में व्यापता है।

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥

भा०—(अव्यये वारे) अविनाशी, सर्वरक्षक परम वरणीय, रूप में वह प्रभु (मधुश्चुतम् कोशम् परि) मधु, परमानन्द वा ज्ञान को प्रदान करने वाले, आनन्दमय कोश वा तेजोमय हिरण्यगर्भ को वह (परि अर्षति) व्यापता है। और (ऋषीणां वाणीः सप्त अधि नूषत) साक्षात् करने वाले ऋषियों की सातों छन्दोमयी वाणियां उसकी साक्षात् स्तुति करती हैं।

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः ।
सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥

भा०—वह (विश्वदेवः) सब सुखों का देने वाला, सब लोकों का प्रकाशक, सब का उपास्य देव, (अदाभ्यः) अविनाशी (सोमः) सर्व

जगत् का उत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (मतीनां नेता) सब स्तुतियों बुद्धियों और विद्वानों का नायक, प्रवर्त्तक, (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (पुनानः) व्यापता हुआ (चम्वोः परि विशत्) भूलोक और द्यौलोक दोनों को व्यापता है।

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्।
पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो! तू (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, अमृतस्वरूप, स्वयं (वाघत्) विद्वान् और (वाघद्भिः पुनानः) विद्वानों द्वारा हृदय में परिष्कृत किया जाता हुआ, (इन्द्रेण) सूर्यवत् तेजस्वी कान्तियुक्त स्वप्रकाश आत्मा के साथ (दैवीः स्वधाः अनु) देवों, इन्द्रियों, प्राणों, और विद्वानों की अपनी शक्तियों के अनुसार (सरथम्) एक समान रस को (परि याहि) प्राप्त हो।

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—यह (सप्तिः न-वाजयुः) वेगवान् अश्व के समान् वेग से व्यापने वाला, (देवः) प्रकाशस्वरूप, (देवेभ्यः सुतः) देवों, विद्वानों द्वारा उपासित (वि आनशिः) विशेष रूप से व्यापने वाला (पवमानः) सब को पवित्र करता हुआ (वि धावति) विविध प्रकार से व्यापता वा जाता है। इति षष्ठो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

[१०४]

पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ उष्णिक्। २, ५, ६ निचृदुष्णिक् ॥

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो (आ नि सीदत) आओ, चारों ओर घेरा

लगा कर समीप बैठ जाओ। (पुनानाय) सब को पवित्र करने वाले प्रभु के लिये (प्र गायत) खूब स्तुति करो। (शिशुं) बालक के तुल्य स्वच्छ-पवित्र, निष्पाप एवं सब के हृदयहारी, सर्वत्र व्यापक एवं प्रिय उपदेशप्रद-प्रभु को (श्रिये) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (यज्ञैः परि भूषत) यज्ञों और उपासनाओं से सुशोभित करो, उस की ही स्तुति करो।

समी॑ व॒त्सं न मा॒तृभि॑ः सृ॒जता॑ गय॒साध॑नम्।
दे॒वा॒व्यं॑१ मद॑म॒भि द्विश॑वसम् ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सं न) माताओं से (गयसाधनं) घर को चमकाने वाले बच्चे को जिस प्रकार (संसृजन्ति) संसृष्ट कर लेते हैं उसी प्रकार (गय-साधनम्) प्राणों के वशीकार द्वारा साधना करने योग्य (वत्सं) बन्दनीय पति, स्तुत्य प्रभु को (मातृभिः) ज्ञानकारिणी वा शब्दमयी वाणियों से (सं सृजत) संसृष्ट करो, वाणियों का संयोग प्रभु से कराओ, प्रभु को अपनी वाणियों का लक्ष्य करो। उसी (देव—अव्यं) देवों में व्यापक (मदम्) आनन्ददायक (द्विशवसम्) नर नारी, माता पिता, दोनों प्रकार के बल को धारण करने वाले प्रभु की (प्र गायत) स्तुति करो।

पु॒नाता॑ द॒क्ष॒साध॑नं॒ यथा॒ शर्धा॑य वी॒तये॑।
यथा॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय॒ शन्त॑मः ॥ ३ ॥

भा०— (यथा शर्धाय वीतये) उचित बल और उचित ज्ञान, तेजः कांति प्राप्त करने के लिये (दक्ष-साधनं) बल-उत्साह के देने, वश करने और उत्पन्न करने वाले को (पुनात) छानने से बलप्रद ओषधि के तुल्य अन्तःकरण द्वारा विमर्श—विचार करो, उसके निर्दोष रूप का विवेक करो। (यथा) क्योंकि वह (मित्राय) स्नेह करने वाले और (वरुणाय) वरण करने वाले, भक्त नरनारी जनों को (शंतमः) अति अधिक शान्ति सुख देने वाला है।

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

भा०—(अस्मभ्यं वसु-विदम्) हमें अनेक धनों को प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझको (वाणीः अभि अनूषत) नाना वाणियें स्तुतियां करता हैं। हे प्रभो ! हमें (ते वर्णम्) तेरे वर्ण अर्थात् तेरे प्रति अपनी अभिलाषा या चाह को (गोभिः अभि वासयामसि) नाना वेदवाणियों से आच्छादित करते हैं, उन्हीं द्वारा प्रकट करते हैं। वाणियां हमारी इच्छाओं के प्रकट रूप हैं।

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (मदानां पते) समस्त आनन्दों के पालक (इन्दो) हे तेजस्विन् ! हे रसस्वरूप ! तू (सः नः) वह हमारे में (देवप्सराः असि) देवरूप है। तू (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य (नः गातु-वित्-तमः भव) उत्तम उपदेश, उत्तम भूमि वा आश्रय और उत्तम मार्ग प्राप्त कराने वाला और हमारी (गातु-वित्तमः) वाणी को सब से अधिक जानने वाला तू ही है।

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—तू (अस्मत्) हमसे (रक्षसम् अत्रिणं) विघ्नकारी, हमारा नाश करने वाले, (अदेवं) दानशीलता से रहित, दुःखदायी, (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले, भीतर कुछ और बाहर कुछ, कपटी, (कंचित्) चाहे वह कोई भी हो उसको (अस्मत् अप आकृधि) हम से दूर कर और (नः) हमारे पाप को हम से (अप युयोधि) दूर कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१०५]

ऋषी पर्वतनारदौ ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ उष्णिक् । ३, ४, ६ निचृदुष्णिक् । ५ विराडुष्णिक् ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (वः पुनानम्) आप लोगों को पवित्र करने वाले (तम् अभि गायत) उसको लक्ष्य कर स्तुतियां किया करो। और (गूर्त्तिभिः) उत्तम अनेक स्तुतियों के साथ २ (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (शिशुं न) शिशु के समान अति प्रिय को (स्वदयन्त) भोजन कराने के तुल्य, अग्नि में आहुति दो, एवं उस (शिशुं) सर्वत्र व्यापकप्रभु को जान कर (स्वदयन्त) मान्य जनों को भोजन कराओ। सबको अन्नदान करो। ईश्वरभावना से ही यज्ञ करो और उसी भावना से अतिथि यज्ञ, नृयज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ और पितृयज्ञ करो। इनमें सर्वत्र देव-भावना हो।

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सः इव) माताओं द्वारा जिस प्रकार बच्चा (हिन्वानः सम् अज्यते) पालित पोषित होकर उत्तम रूप और गुणों से प्रकट होता है उसी प्रकार (देवावीः) देवों, सूर्यादि लोकों, विद्वानों, प्राणों और मनुष्यों के रक्षक उन में व्यापक और उन में स्नेही, (मदः) आनन्द-मय (इन्दुः) तेजोमय प्रभु भी (मतिभिः परिष्कृतः) स्तुतियों, विद्वान् जनों द्वारा अलंकृत, वर्णित, सुभूषित (सम् अज्यते) भली प्रकार व्यक्त, प्रकट होता है।

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं दक्षाय साधनः) वह बल, और उत्साह का बढ़ाने और वश करने वाला है। (अयंः शर्धाय) वह बल और कार्य करने और (वीतये) व्यापने, और प्रकाश करने के लिये समर्थ है। (सुतः) उपासित होकर (अयं देवेभ्यः) यह दिव्य गुण वाले विद्वानों और इच्छा-वान् जनों के लिये (मधुमत्-तमः) अति मधुर सुख देने वाला है।

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व ।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (सुतः) अभिषिक्त राजा के तुल्य उपासित होकर तू (नः) हमें (गोमत् अश्ववत्) गौओं और अश्वों से सम्पन्न धन और शस्त्र बल, (धन्व) प्रदान कर। मैं (ते) तेरे (शुचिं वर्णम्) शुद्ध, कान्तिमय रूप को (गोषु अधि) वेदवाणियों के भीतर, उनके आश्रय (दीधरम्) अपने को धारण करूं। (२) वे राजा के शुद्ध वर्ण को भूमियों पर स्थापित करें।

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (हरीणां पते) समस्त मनुष्यों के पालक ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! प्रजाजन के प्रति दयालो ! (देवप्सरस्तमः) दानशील मेघ और देदीप्यमान सूर्य के समान सर्वोपरि श्रेष्ठ रूप वाला तू (सः) वह (नः) हमारे प्रति (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य सब मनुष्यों का हितकारी और (रुचे भव) हमारी दीप्ति, कांति और इच्छा पूर्त्ति के लिये हो।

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कंचिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥ ८ ॥

भा०—(त्वम् अस्मत् सनेमि) तू हमारा सदा से (सखा इव) मित्र के तुल्य है। तू हम से सदा (अदेवं कंचित् अत्रिणम्) अदानशील, शत्रुवत्,

हमारे धन को खाजाने वाला चाहे वह कोई हो, उसको भी (अस्मत्) हमसे दूर कर और उसे (साह्वान्) पराजित करने वाला तू ही है। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले को (परिबाधः, अप बाधः) पीड़ित कर और दूर कर। चित्त में बैठे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, चिन्ता, शोक आदि अनेक शत्रुगण वा रोगादि मनुष्य को खाते रहते हैं। प्रभु उनको प्रजापालक, राजा के तुल्य दूर करे।

यह सूक्त पूर्व सूक्त का अनुवादमात्र है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०६]

ऋषिः—१—३ अग्निश्चाक्षुषः। ४—६ चक्षुर्मानवः ॥ ७—९ मनुराप्सवः। १०—१४ अग्निः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ८, १०, १४ निचृदुष्णिक्। २, ५—७, ११, १२ उष्णिक्। ९, १३ विराडुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(श्रुष्टी जातासः) अन्न द्वारा उत्पन्न (स्वः-विदः इन्दवः) सुख जनक वीर्यगण जिस प्रकार (वृषणम्) वीर्यसेचक अंग को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (इमे) ये (सुताः) उत्पादित वा प्रेरित, (हरयः) समस्त विद्वान् (इन्दवः) इस प्रभु के उपासक जन, (स्वर्विदः) प्रभु के प्रकाशमय और शब्दमय रूप को जानने वाले विद्वान् (श्रुष्टी) शीघ्र ही (जातासः) उत्पन्न होकर (वृषणम्) बलवान् सर्वसुख सेचक (इन्द्रम्) उस प्रभु को (अच्छ यन्तु) प्राप्त होते हैं।

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

भा०—(अयं) यह (सानसिः) भजन, सेवन करने वाला (सुतः) उत्पन्न

जीव, (भराय इन्द्राय) सर्वपोषक प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने (यथा विदे) यथार्थ रूप से जानने के लिये (सोमः) जीव (जैत्रस्य) सब कष्टों पर विजय पाने वाले उसी परमेश्वर का (चेतति) स्मरण करता है ।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य मदेषु) इस के ही हर्षों के लिये (इन्द्रः) मेघवत् ऐश्वर्यवान् प्रभु (सानसिं ग्राभम्) सुख से सेवन योग्य ग्रहण, पकड़ या अवलम्ब को (गृणीत) ग्रहण करे । वह (अप्सुजित्) प्रकृति के परमाणुओं पर भी शासन करने वाला प्रभु (वृषणं वज्रं च) वृष्टिकारक विद्युत् के तुल्य (वृषणं) सुखवर्षी (वज्रम्) बल को (संभरत्) एक साथ धारण करता है ।

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममाभरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! तू (जागृविः) जागरणशील, नित्य सावधान रह ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (प्र धन्व) आगे बढ़ । तू (परि स्रव) उस के लिये आगे बढ़ । और (स्वः-विदम्) सुख प्राप्त करने वाले, (द्युमन्तं शुष्मम्) तेज से युक्त बल को (आ भर) प्रदान कर या धारण कर ।

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।
सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (विश्व-दर्शतः) सबों से दर्शनीय ! समस्त विश्वों और जीवात्माओं को भी देखने हारा (सहस्र-यामा) सहस्रों, अनेकों जीवों का एक मात्र मार्ग, चारा या सहस्रों लोकों का नियन्ता, (पथिकृत्)

सब मार्गों का उपदेश करने वाला, (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का विशेष उपदेष्टा वा विश्व का विशेष द्रष्टा है। वह तू हे प्रभो ! (वृषणम् मदम्) सुखवर्षक, हर्षदायक रस को तू (इन्द्राय पवस्व) जीवात्मा मात्र के उपकार के लिये प्रवाहित कर। इति नवमो वर्गः ॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (गातुवित्-तमः) सर्वोपरि उपदेश ज्ञान देने वाला और मार्ग जानने वाला है। तू (देवेभ्यः) हम नाना जीवों के लिये (मधुमत्-तमः) अति मधुर आनन्द और ज्ञान को धारण करने वाला है। तू (सहस्रं पथिभिः) सहस्रों मार्गों से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ बरसते मेघवत् (याहि) प्राप्त है।

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमान्सोम नः सदः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! हे (सोम) सर्वशासक ! तू (देव-वीतये) देवों विद्वानों को प्राप्त होने के लिये वा उनकी कामना की पूर्त्ति के लिये (धाराभिः) धाराओं से मेघवत्, वाणियों से गुरुवत्, गतियों से अश्ववत्, धारकशक्तियों से और (ओजसा) पराक्रम से (मधुमान्) बलवान् होकर (कलशम् आ सदः) कला ज्ञानशक्ति से सम्पन्न चेतना के अधिष्ठान् देह वा अन्तःकरण में भी (आ सदः) विराजता है।

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥

भा०—(तव द्रप्साः) तेरे रस, (उद-प्रुतः) जल के समान ही अपने स्रोत से वेगपूर्वक निकलने वाले हैं। वे (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिये (इन्द्रं वृधुः) आत्मा की शक्ति को बढ़ाते हैं। (देवासः) विद्वान्

जन (अमृताय) अमृत, अविनाशी मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये (कं) सुखमय तेरा ही रस (पपुः) पान करते हैं।

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

भा०—हे (नः सुतासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न जीव-आत्माओ ! आप लोग (वृष्टि-द्यावः) कर्मबन्धन के विच्छेद के लिये ज्ञान, प्रकाश को प्राप्त करने वाले और (रीति-आपः) जलों के तुल्य प्राणों को वा प्रकृति को निर्गमन मार्गों में से क्षेत्रिक के तुल्य कर लेने वाले और (स्वर्विदः) सुख-प्रकाश को प्राप्त करने वाले होकर (रयिम्) सुख-प्रदाता, ऐश्वर्य-वान् प्रभु को लक्ष्य कर (पुनानः) अपने तईं पवित्र होकर (आ धावत) और वेग से आगे बढ़ो।

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(ऊर्मिणा पुनानः) उत्तम उपदेशमय वेदज्ञान से (पुनानः) पवित्र होता हुआ (सोमः) जीव-आत्मा (अव्यः वारम्) सर्वरक्षक प्रभु के परम वरणीय रूप को, ज्ञान को शिष्य के तुल्य (वि धावति) विशेष रूप से प्राप्त करता है। वह (पवमानः) पवित्र होता हुआ (अग्रे) सर्व प्रथम (वाचः कनिक्रदत्) नाना वेदवाणियों, वा स्तुतियों का अभ्यास करे। इति दशमो वर्गः ॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥

भा०—(मतयः) ज्ञानी जन (वाजिनम्) ज्ञानी, बलवान्, पर-मैश्वर्यवान् (वने क्रीड़न्तं) जीवादि से सेवनीय, जगत् में बालवत् अना-यास चेष्टाएं करने वाले, (अति-अविम्) पृथ्वी वा सूर्य से भी अति अधिक

महान् (त्रि-पृष्ठम् अभि) तीनों लोकों में व्यापक उस प्रभु को लक्ष्य करके (सम् अस्वरन्) उसकी स्तुति करते हैं।

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

भा०—(वाजयुः सप्तिः न) (मीढे) संग्राम में वेगवान् अश्व के तुल्य, (कलशान् अभि असर्जि) कलशों के तुल्य अन्तःकरणों में प्रकट होता है। (वाचं जनयन्) वाणी को प्रकट करता और (पुनानः) पवित्र करता हुआ, संन्यासी के तुल्य (असिष्यदत्) सर्वत्र विचरता है।

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥

भा०—(हरिः) तेजस्वी, (हर्यतः) कान्तिमान्, आत्मा, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं, विद्वानों को (रंह्या) वेग से (ह्वरांसि अति) समस्त कुटिल विघ्नों को पार करता हुआ, (पवते) प्राप्त होता है। वह (वीरवत् यशः अभि अर्षन्) वीरों सहित यश वा अन्न को प्राप्त करावे।

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रभो ! (रेभन्) उपदेश देता हुआ तू (देवयुः) शुभ गुणों वा विद्वानों की कामना करने हारा है। तेरी (मधोः धाराः असृक्षत) तृप्तिकारक जल की धाराओं वा अन्न की धारण शक्तियों के तुल्य वाणियां उत्पन्न होती हैं। और तू (विश्वतः) सब प्रकार से, (पवित्रं) परम पवित्र, परमापावन प्रभु को (परि एषि) प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०७]

सप्तर्षय ऋषयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ९, १४, २१ विराड् बृहती। २, ५ भुरिग् बृहती। ८, १०, १२, १३, १६, २५

बृहती । २३ पादनिचृद् बृहती । ३, १६ पिपीलिका मध्या गायत्री । ७, ११ १८,२०,२४,२६ निचृत् पंक्तिः ॥ १५, २२ पंक्तिः ॥ षड्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो ऐश्वर्यवान् (उत्तमं हविः दधन्वान्) उत्तम हवि, अन्न और उपाय को प्राप्त करता हुआ और (यः) जो (अप्सु अन्तरा) आप प्रजाजनों के बीच (नर्यः) समस्त मनुष्यों वा नायक नेताओं में श्रेष्ठ, उत्तम हैं उसको (अद्रिभिः) आदर योग्य, निर्भय पुरुषों द्वारा (आ सुषाव) सब प्रकार के प्रजाजन अभिषिक्त करें । हे विद्वान् लोगो ! ऐसे ही (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, वीर्यवान् (सुतम्) निष्णात पुरुष को (इतः) इस राष्ट्र में (परि सिञ्चत) सब ओर अभिषेक करो, उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा करो ।

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

भा०—तू (अदब्धः) कभी पीड़ित न होकर (नूनम्) निश्चय से (पुनानः) राज्य को दुःखदायी जनों से रहित, निष्कण्टक करता हुआ (अविभिः) राज्यरक्षक सैन्यों सहित (परि स्रव) सर्वत्र आ जा । तू (सुते चित्) अभिषिक्त पद पर (सुरभि-तरः) और अधिक उत्तम रीति से कार्य-संपादन करने वाला और अधिक सच्चरित्र होकर रह । (अप्सु) प्रजाओं के बीच (उत्तरम्) अन्यों से अधिक उत्कृष्ट गुणवान्, चरित्र-वान् (त्वा) तुझ को देखकर तेरी हम (श्रीणन्तः) सेवा करते हुए (त्वा) तुझे (अन्धसा गोभिः) अन्नों और गो-दुग्धों से (मदामः) तृप्त करें और (गोभिः मदामः) वाणियों से तेरी स्तुति करें ।

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

भा०—जो व्यक्ति (देव-मादनः) सामान्य मनुष्यों और विद्वान् तेजस्वी जनों को प्रसन्न करने वाला, (क्रतुः) कर्म करने में कुशल, (इन्दुः) तेजस्वी, दयालु, (वि-चक्षणः) विशेष तत्वदर्शी, तीक्ष्ण दृष्टि हो उसको (चक्षसे) प्रजा पर अध्यक्ष कार्य करने के लिये (परि सुवानः) अभिषिक्त किया जाता है।

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! बलवन्! हे ज्ञानवन्! तू (धारया पुनानः) उत्तम जलधारा के तुल्य वेदवाणी से पवित्र, अभिषिक्त एवं निष्णात होकर (वसानः) नियम से ब्रह्मचर्यपूर्वक रहता हुआ (अपः अर्षसि) आप्त-जनों को प्राप्त होता है। और (रत्न-धाः) रमणीय गुणों, ज्ञानों को रत्नों के तुल्य धारण करता हुआ (ऋतस्य योनिम्) सत्य, ज्ञान, न्याय, और तेज के स्थान वा पद को (आ सीदसि) विराज, प्राप्त कर, हे (देव) राजन्! हे विद्वन्! तू (उत्सः) झरने के तुल्य सत्य ज्ञान और उत्तम सुख का देने वाला, (हिरण्ययः) हित, रमणीय वचन कहने वाला हो।

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—(दिव्यम् ऊधः) आकाशस्थ ऊधस् अर्थात् मेघ से (मधु दुहानः) जल का दोहन कराने वाले (वाजी) वेगवान् वायु के तुल्य ज्ञानी और बलवान् पुरुष (दिव्यम्) श्रेष्ठ (प्रियम्) सर्वप्रिय (मधु दुहानः) मधु अर्थात् मधुर वचन और अन्न को (दिव्यं ऊधः) भूमि के जलसिंचित स्थान से कृषकवत् प्राप्त करता हुआ, (प्रत्नम् सधस्थम्) श्रेष्ठ पद को (आ असदत्) प्राप्त करता है, और फिर वह (आ-पृच्छ्यम्) सबके पूछने योग्य, सर्वादरणीय, (धरुणं) राष्ट्र-धारक पद को (अर्षति) प्राप्त करता

है। वह (वि-चक्षणः) विशेष द्रष्टा अध्यक्ष हो, (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा (धूतः) कम्पित और सुपरीक्षित हो। इति द्वादशो वर्गः ॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम अध्यक्ष ! तू (जागृविः) सदा जागरणशील और तू (प्रियः) सर्वप्रिय, (विप्रः) मेधावी, होने के कारण (अव्यः वारे) सर्वरक्षक सैन्यवर्ग के सर्वश्रेष्ठ अंश पर (परि पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ, (अंगिरस्तमः) देह में जीव नर के समान राष्ट्र-शरीर में सबसे अधिक तेजस्वी, (अभवः) हो। तू (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (मध्वा मिमिक्ष) मधुर आनन्द से, सुख से सींच, बढ़ा।

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

भा०—सोमः सर्वशास्ता प्रभु, (मीढ्वान्) मेघ के समान सुखों की वर्षा करने वाले पुरुष के समान सब जीव प्रजाओं का उत्पादक (पवते) जाना जाता है। वह (गातु-वित्-तमः) मार्ग, ज्ञान और वाणी के जानने और जनाने वालों में सर्वश्रेष्ठ, गुरुओं का भी गुरु, (ऋषिः) सबका द्रष्टा, (विप्रः) ज्ञानदर्शी, (विप्रः) मेधावी, (विचक्षणः) विविध प्रकार से सर्वाध्यक्ष है। हे प्रभो ! (त्वं कविः अभवः) तू कवि, तत्वदर्शी है। तू (देव-वीतमः) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों में भी सबसे अधिक कान्तिमान् है। तू (दिवि) आकाश में (सूर्यम् आ रोहयः) सूर्य को आकाश में स्थापित करता है।

सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

भा०—(सोतृभिः) उपासना करने वाले जनों द्वारा (सुवानः) उपासना किया गया (सोमः) सर्वोत्पादक, सर्व-संचालक प्रभु (अवीनां स्नुभिः) सूर्यों के उन्नत तेजों से (अश्वया इव हरिता) वेग से जाने वाली, मनोहर कान्तियुक्त (धारया) धारण शक्ति से (अधि याति) सब पर शासन करता है। वह (मन्द्रया धारया) अति हर्षदायक धारा या वाणी से (अधि याति) सब पर शासन करता, सबको अपने वश करता है। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा भी (अवीनां स्नुभिः) भेड़ के बालों से बने उत्तम पवित्र वस्त्रों से धारागति से अश्व द्वारा एक हर्षप्रद वाणी से सब पर शासन करता है।

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥

भा०—वह प्रभु (गोमान्) उत्तम वाणियों का स्वामी, (गोभिः) वाणियों द्वारा ही (अनूपे) समीप के हृदय देश में (अक्षाः) व्यापता है। वह (सोमः) सर्वप्रेरक प्रभु (दुग्धाभिः) कामनाओं को पूर्ण करने वाली वाणियों से (अक्षाः) व्यापता है। (सं-वरणानि) जल जिस प्रकार (समुद्रं न अग्मन्) समुद्र को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार रसों के सागर प्रभु को समस्त (सं-वरणानि) उत्तम प्रार्थना-वचन प्राप्त होते हैं। (मन्दी) आनन्दवान् प्रभु ही (मदाय) परम सुख प्राप्त करने के लिये (तोषते) बार बार प्राप्त किया जाता है।

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ १० ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू (अद्रिभिः) आदर-योग्य गुरु जनों से (आ-सुवानः) शिक्षित होता हुआ और (अव्यया वाराणि तिरः) कान्तिरहित प्रकृति वा अविद्या के आवरणों को दूर

करता हुआ, (जनः पुरि न) पुर में मनुष्य के समान (हरिः) कान्तिमान्, चित्ताकर्षक होकर तू (चम्वोः) प्राण अपान दोनों के आश्रय पर (पुरि विशत्) देहपुरी वा मस्तिष्क-रूप ब्रह्मपुरी में प्रवेश करता हुआ, (वनेषु सदः दधिषे) सेवनीय अन्नादि के आश्रय पर अपने को धारण कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स मा॑मृजे ति॒रो अण्वा॑नि मे॒ष्यो॑ मी॒ळ्हे सप्ति॒र्न वा॑ज॒युः ।
अ॒नु॒मा॒द्यः॒ पव॑मानो मनी॒षिभि॒ः सोमो॒ विप्रे॑भि॒रृक्व॑भिः ॥११॥

भा०—(सः) वह आत्मा (मेष्यः) अन्धकारयुक्त प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म २ बन्धनों को भी (तिरः) दूर कर (ममृजे) शुद्ध होजाता है । (मीढे सप्तिः न) वेगवान् अश्व के तुल्य (वाज-युः) बल, वेग और ऐश्वर्य चाहता हुआ, (पवमानः) पवित्र करता हुआ, (मनीषिभिः) बुद्धिमान् (विप्रेभिः) विद्वान् (ऋक्वभिः) स्तुतिकर्त्ता जनों द्वारा (अनुमाद्यः) प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है ।

प्र सो॑म दे॒ववी॑तये॒ सिन्धु॒र्न पि॑प्ये॒ अर्ण॑सा ।
अं॒शोः पय॑सा मदि॒रो न जागृ॑वि॒रच्छा॒ कोशं॑ मधु॒श्चुत॑म् ॥१२॥

भा०—(अर्णसा सिंधुः न) जल से समुद्र के समान (देव-वीतये) देवों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों को व्यापने और प्रकाशित करने के लिये हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (अर्णसा प्र पिप्ये) महान् ऐश्वर्य से परिपूर्ण है । (अंशोः पयसा मदिरः न) सोमलता के रस से जिस प्रकार हर्षदायक दुग्धादि से युक्त होकर पात्र की ओर आता है, उसी प्रकार तू भी (जागृविः) सदा जागरण करता हुआ, जाग्रत् रूप होकर (अंशोः पयसा) व्यापक प्रभु के दिव्य रस से (मदिरः) अति आनन्दप्रद होकर (मधु-श्चुतम् कोशम्) आनन्द रस के देने वाले आनन्दमय कोश को (अच्छ) प्राप्त हो ।

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

भा०—वह आत्मा (सूनुः नः प्रियः) पुत्र के समान प्यारा (मर्ज्यः) झाड़ पोंछ कर वा स्नानादि द्वारा शुद्ध करने योग्य (सूनुः) देहादि का प्रेरक, (प्रियः) अतिप्रिय, (हर्यतः) कान्तिमान्, (अर्जुने अत्के आ अव्यत) शुद्ध कान्तियुक्त रूप में प्रकट होता है । (अपसः) कार्यकुशल जन (यथा रथं हिन्वन्ति) जिस प्रकार रथ को वेग से चलाते हैं, उसी प्रकार वे (रथं) रसस्वरूप (तम् ईम् हिन्वन्ति) उसकी भी उपासना करते हैं उसी को (गभस्त्योः) प्राण अपान के आश्रय (नदीषु) नाड़ियों में (हिन्वति) प्रेरित करते, उसी को खोजते और उसी का अभ्यास करते हैं ।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि) रसों के अपार सागर प्रभु परमेश्वर के, विना ताप के, परम शान्तिमय आश्रय में (अधि) रह कर (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, (मत्सरासः) रसों से परितृप्त, तृष्णादि से रहित, (स्वः-विदः) सुखमय प्रकाशस्वरूप प्रभु को जानने और जनाने हारे, (सोमासः) वीर्यवान् (आयवः) विद्वान् जन (मद्यम् मदम्) परम सुखकारी, अतिस्तुत्य, हर्षानन्दमय प्रभु को लक्ष्य कर (अभि पवन्ते) आगे बढ़ते हैं ।

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षान्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्॥१५॥१४॥

भा०—(राजा देवः) प्रकाशमान राजा के समान तेजस्वी, (देवः) नाना सुखों के चाहने वाला, परम आत्मा प्रभु (बृहत) महान् (ऋतम्) सत्य

कारण रूप (समुद्रम्) सरिर-मय समुद्र को, (तरत्) पार कर जाता और प्राप्त होता है। (मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा) वह प्रभु मित्र, दिन और वरुण, रात्रि के तुल्य जगत् को धारण करनेवाले नियम से दिन-रात्रिवत् संसार की उत्पत्ति और प्रलय करता हुआ (बृहत् ऋतम् अर्षन्) बड़े भारी जगत् के कारण रूप प्रधान तत्व को उत्तम रीति से सञ्चालित करता, व्यक्त रूप में प्रकट करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥

भा०—(समुद्रियः) समस्त लोकों, रसों, सुखों और बलों का उद्भव-स्थान और आकर तथा महान् समुद्र और आकाश के तुल्य अनन्त प्रभु (राजा) समस्त जगत् का प्रकाशक, (देवः) सब का दाता, (हर्यतः) कान्तिमान्, सबकी इच्छा वा अभिलाषा का पात्र, सर्वप्रिय, (वि-चक्षणः) विशेषरूप से सबको देखने वाला परमेश्वर (नृभिः येमानः) ठीक २ मार्गों में ले जाने वाले बलों, प्राणों और विद्वानों द्वारा जगत् के लोकों, देहों और जीवों को व्यवस्थित किया करता है।

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

भा०—(मदः सोमः) आनन्दमय, सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (मरुत्वते इन्द्राय) नाना प्राणों के स्वामी जीव के लिये (सहस्र-धारः) सहस्रों धारा वाले मेघ के समान अनेक सुख, शान्ति का दाता होकर (पवते) उस पर कृपा करता है। (अव्यम् अति अर्षति) इस पार्थिव और प्राणमय आवरण से पार कर अन्तरात्मा में प्रकट होता है, (आयवः) इस तक पहुंचने वाले जन (तम् ईम् मृजन्ति) उसी को शोध लगाते हैं, उसी का परिष्कार करते हैं, उसी को वाणियों, और स्तुतियों से अलंकृत करते हैं।

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

भा०—वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (सोमः) सर्वोत्पादक और सर्व-प्रेरक प्रभु (चमू पुनानः) आकाश और भूमि दोनों को प्रेरित करता हुआ (मतिं जनयन्) ज्ञान को प्रकट करता है, (देवेषु) ज्ञान-प्रकाश से युक्त और अन्यों को ज्ञान देने वाले विद्वानों में (रण्यति) गुरु वा परि-व्राजकवत् उपदेश करता है, वह (अपः वसानः) प्रकृति के परमाणुओं और लोकों को आच्छादित करता हुआ, उनमें व्यापता हुआ, (वनेषु सीदन्) काष्ठों में अग्नि के तुल्य (उत्-तरः) सबसे उत्कृष्ट होकर (गोभिः परि अव्यत) रश्मि-तुल्य ज्ञान का प्रकाश करता है। (२) इसी प्रकार (सोमः) सर्वप्रेरक विद्वान् परिव्राजक वा दीक्षित ज्ञानी पुरुष, (चमू पुनानः) प्राण-अपान दोनों को वा ज्ञान और कर्म की दोनों इन्द्रियों को पवित्र करता हुआ, (मतिं जनयन्) ज्ञान प्रकट करता हुआ शिष्यों में उपदेश करे। वह (अपः वसानः) त्याग-दीक्षा काल में जलों में रहकर (उत्तरः सीदन्) (वनेषु परि अव्यत) सर्वोत्कृष्ट रहकर भी वनों में निवास करे। (२) राजा के पक्ष में—वनेषु रथेषु। गोभिः अश्वैः। देवेषु राजसु।

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥१६॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (सोम) मेरे आत्मा के तुल्य प्रिय! (दिवे दिवे) दिनों दिन (अहम् तव सख्ये) मैं तेरे मित्र-भाव में (ररण) अति प्रसन्न होता हूँ। (पुरूणि) मेरी इन्द्रियां ही (माम् नि चरन्ति) मेरा तिरस्कार करती हैं, (माम् अव चरन्ति) मुझे नीचा करके नाना भोग भोगती हैं, (परिधीन् तान्) चारों ओर से घेरे खड़े इन शत्रुओं को (अति इहि) अतिक्रमण करके तू उनको पराजित कर।

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २० ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) मेरी आत्मा के तुल्य परात्मन् ! (अहम्) मैं (नक्तम् उत दिवा) रात और दिन, (सख्या) मित्रभाव बनाने के लिये (ते ऊधनि) तेरे समीप में हा रहूँ । हे (बभ्रो) सबके पालन पोषण करने हारे ! (घृणा) दीप्ति से (तपन्तं) तपते (सूर्यम्) सूर्य को देख (शकुनाः इव) ऊपर उठकर उन्नत मार्ग से जाने वाले पक्षियों के तुल्य हम (अति पप्तिम) सब बन्धनों और कष्टों से पार पहुंच जावें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥

भा०—हे (सुहस्त्य) उत्तम हस्त में स्थित शक्ति वाले ! तू (समुद्रे मृज्यमानः) हृदय में महान् आकाशवत् विशाल, हृदयाकाश में परिमार्जित सुसंस्कृत होता हुआ, (वाचम् इन्वसि) स्तुति-वाणी को प्रेरित करता है । हे (पवमान) सर्वप्रेरक एवं परिसंस्कृत होनेहारे आत्मन् ! तू (पिशंगं) तेजोयुक्त, दीप्तिमान् (पुरु-स्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य, (बहुलं) अति अधिक, (रयिं) ऐश्वर्य को हमें प्रदान कर ।

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥

हे (सोम) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (अव्यये) अविनाशी (वारे) सर्ववरणीय रूप में (मृजानः) परिशुद्ध, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, (वृषा) सब सुखों का वर्षक होकर तू (वने अव चक्रदः) सेवनीय, परम सुखद रूप में प्राप्त होता है । हे (पवमान) सर्वव्यापक, परिशुद्ध ! तू (गोभिः) वाणियों द्वारा रश्मियों से सूर्य के तुल्य (अंजानः)

प्रकाशित होता हुआ (देवानाम्) विद्वानों, जीवों वा समस्त लोकों के (निःकृतम् अर्षसि) निःशेष रूप से किये उपासनादि कर्म वा हृदय स्थान को प्राप्त करता है।

पव॑स्व वाज॑सातये॒ऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑।
त्वं स॑मु॒द्रं प्र॑थ॒मो वि धा॑रयो दे॒वेभ्य॑ः सोममत्स॒रः ॥ २३ ॥

भा०—(वाज-सातये) ज्ञान प्रदान करने के लिये (विश्वानि काव्या अभि) समस्त विद्वानों के ज्ञान योग्य, ज्ञान-वाणियों को (अभि पवस्व) प्रदान कर। हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो ! (त्वं) तू (समुद्रं) ज्ञान के अपार सागर को (प्रथमः) सर्वप्रथम होकर (मत्सरः) सबको आनन्ददायक होकर (देवेभ्यः विधारयः) विद्वानों को प्रदान करता है।

स तू प॑वस्व॒ प॑रि॒ पार्थि॑वं॒ रजो॑ दि॒व्या च॑ सोम॒ धर्म॑भिः।
त्वां विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्विचक्षण शु॒भ्रं हि॑न्वन्ति धी॒तिभि॑ः॥२४॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष ज्ञान के देखने हारे ! तू (पार्थिवं रजः परि) पृथिवी लोक के प्रति, (धर्मभिः) धारक बलों से (दिव्या) पृथिवी के प्रति आकाशीय बलों को मेघवत् इस देह के प्रति दिव्य सुखों को (परि पवस्व) प्राप्त करा। (त्वां शुभ्रम्) तुझ शुद्ध चेतन को लक्ष्य कर (विप्रासः) विद्वान् जन (मतिभिः धीतिभिः) ज्ञान वाणियों और कर्मों से (त्वां हिन्वन्ति) तेरी स्तुति करते तेरी, महिमा बढ़ाते हैं।

पव॑माना असृक्षत प॒वित्र॒मति॒ धार॑या।
म॒रुत्व॑न्तो मत्स॒रा इ॑न्द्रि॒या हया॑ मे॒धाम॒भि प्रया॑सि च ॥२५॥

भा०—(मरुत्वन्तः) प्राणों से युक्त (पवमानाः) वेद वाणी द्वारा पवित्र होते हुए, विद्वान् जन (पवित्रं अति असृक्षत) सब बन्धनों को पार कर परम-पावन प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे (मत्सराः) अति आनन्द-युक्त (इन्द्रियाः) परमेश्वर को भजन करते हुए उसी में दत्तचित्त होकर

(हयाः) आगे बढ़ते हुए (मेधाम् अभि) परम बुद्धि और (प्रयांसि अभि च असृक्षत) उत्तम अन्नों के तुल्य उत्तम कर्म-फलों का निर्माण करता है ।

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद् गाः कृण्वानो न निर्णिजम् २६।१६

भा०—(सोतृभिः हियानः इन्दुः) उत्पन्न करने वाले माता पिता आदि से प्रेरित होता हुआ द्रवित शुक्र रूप जीव (अपः वसानः) सूक्ष्म जलीय अंशों वा प्राणों में आच्छादित होकर (कोशम् परि अर्षति) गर्भ की ओर जाता है । (होतृभिः हियानः) उपासकों से प्रेरित (इन्दुः) तेजोमय आत्मा, (अपः वसानः) आप्त जनों के बीच में रहता हुआ, (कोशम् परि अर्षति) विशुद्ध आनन्दमय प्रभु को प्राप्त होता है। वह (ज्योतिः जनयन्) दीप्तिमय रूप को प्रकट करता हुआ (मन्दनाः गाः कृण्वानः) आनन्दजनक स्तुति-वाणियों को करता हुआ (निः निजम् कृण्वानः) अपने अति विशुद्ध रूप को प्रकट करता है । इति षोडशो वर्गः ॥

[१०८]

ऋषिः—१, २ गौरिवीतिः । ३, १४—१६ शक्तिः । ४, ५ उरुः । ६, ७ ऋजिष्वाः । ८, ९ ऊर्द्धसद्मा । १०, ११ कृतयशाः । १२, १३ ऋणञ्चयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११ उष्णिक् ककुप् । ३ पादनिचृदुष्णिक् । ५, ७, १५ निचृदुष्णिक् । २ निचृद्बृहती । ४, ६, १०, १२ स्वराड् बृहती । ८, १६ पंक्तिः । १४ निचृत्पंक्तिः । १३ गायत्री ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) सोम ! सब को सन्मार्ग में प्रेरणा देने हारे ! हे ऐश्वर्यवन्, हे स्वयं आत्मन् ! तू (मधुमत्-तमः) अतिमधुर रस

से युक्त है। तू (क्रतुवित्तमः) कर्मों और ज्ञानों को जानने वालों में श्रेष्ठ है। तू (मदः) स्तुत्य है और तू (द्युक्ष-तमः) अति तेजोमय और (मदः) आनन्दस्वरूप है तू (इन्द्राय) इस जीव के लिये (अति पवस्व) अनेक सुख प्रदान कर।

यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विदः॑।
स सु॒प्रके॑तो अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषो॒ऽच्छा वाजं॒ नैत॑शः ॥ २ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे परम रस का पान करके, (वृषभः) बलवान् पुरुष भी सूर्यवत् (वृषायते) मेघ तुल्य आनन्द-ज्ञान-जल की अन्यों के प्रति वृष्टि करता है। (अस्य स्वः-विदः) इस सुख प्राप्त करने वा कराने वाले की रक्षा में (सः) वह (सु-प्र-केतः) उत्तम ज्ञानवान् जीव (एतशः वाजं नः) संग्राम को जाने वाले अश्व के तुल्य (इषः अभि अक्रमीत्) नाना इच्छायोग्य पदार्थों और लोकों को प्राप्त होता है।

त्वं ह्य॑ङ्ग दैव्या॒ पव॑मान॒ जनि॑मानि द्यु॒मत्त॑मः।
अ॒मृ॒त॒त्वाय॑ घो॒षयः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अंग) हे (पवमान) परम पावन! (त्वं हि) निश्चय तू ही (द्युमत्-तमः) अति तेजोमय, दीप्तिमान्, (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले जीवों को (अमृतत्वाय घोषयः) अमृत पद, मोक्ष प्राप्ति का उपदेश करता है।

येना॒ नव॑ग्वो द॒ध्यङ्ङ॑पोर्णु॒ते येन॒ विप्रा॑स आपि॒रे।
दे॒वानां॑ सु॒म्ने अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑णो॒ येन॒ श्रवां॑स्यान॒शुः ॥ ४ ॥

भा०—(येन) जिस के द्वारा (दध्यङ्) धारण और ध्यान का अभ्यासी, (नवग्वः) उत्तम प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, (चारुणः अमृतस्य) भोक्ता अमृत, आत्मा के स्वरूप को (अप ऊर्णुते) खोलता है, (येन) जिससे (विप्रासः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (देवानां) विद्वानों

वा इन्द्रियों के (सुम्ने) सुख में (अमृतस्य चारुणः) अमर फल के भोक्ता आत्मा के (श्रवांसि) ज्ञानों को प्राप्त करते हैं। और (येन श्रवांसि आनशुः) जिससे वे नाना ज्ञान प्राप्त करते हैं वही उनको (अमृतत्वाय घोषयः) अमृत होने का उपदेश करता है।

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(क्रीड़न् अपां ऊर्मिः इव) खेलते जलों के तरंग के तुल्य (एषः) यह (स्यः) वह आत्मा, (धारय सुतः) धारा, वेदवाणी द्वारा उपासित होकर (अव्यः वारेभिः) परम रक्षक के श्रेष्ठ वरण योग्य उत्तम साधनों से (पवते) प्राप्त होता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

य उस्त्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जिस प्रकार सूर्य (ओजसा) तेज, पराक्रम से (अश्मनः अन्तः) मेघ में से (गाः अप्याः उस्त्रियः) वेग से जाने वाली जल की धाराओं को (निः अकृन्तत्) निकाल कर बाहर खण्ड २ करता है, उसी प्रकार (यः) जो प्रभु (ओजसा) अपने बल से (अश्मनः अन्तः) भोक्ता आत्मा के अन्तःकरण से (उस्त्रियाः) ऊपर को स्वयं आने वाली (अप्याः) कर्म प्रवृत्तियों और (गाः) नाना स्तुति वाणियों को प्रेरित करता है और (गव्यं व्रजं) वाणियों के व्यापने योग्य मार्ग और (गव्यं व्रजम्) जीवों के चलने योग्य मार्ग को (अभि तत्निषे) बनाता है, विस्तृत करता है, (धृष्णो) हे दुष्टों के नाशक प्रभो ! वह तू (वर्मी-इव) कवचधारी वीर पुरुष के समान (आ रुज) बाधक कारणों को दूर कर।

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (अश्वं न स्तोमं) अश्व के समान वेगवान्, बलवान्, व्यापक, स्तुतियोग्य, (अप्-तुरम्) प्रकृति परमाणुओं के चलाने वाले, (रजः-तुरम्) समस्त लोक लोकान्तरों के संचालक (वनक्रक्षम्) तेज, भोग्य ऐश्वर्यों, लोकों में व्यापक, काष्ठों में अग्नि के तुल्य अव्यक्त, (उद-प्रुतम्) जल से पूर्ण समुद्र वा जलाशय के तुल्य प्रभु की (आ स्रोत परि सिंचत) आदर से उपासना करो और उसके रस से ही अपने को बढ़ाओ।

स॒हस्र॑धारं वृष॒भं प॑यो॒वृधं॑ प्रि॒यं दे॒वाय॒ जन्म॑ने ।
ऋ॒तेन॒ य ऋ॒तजा॑तो विवावृ॒धे राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ॥ ८ ॥

भा०—(सहस्र धारम्) सहस्रों धाराओं वाले मेघ के तुल्य सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न, (वृषभम्) समस्त सुखों के वर्षक, (पयः-वृधम्) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों को बढ़ाने वाले, (जन्मने देवाय प्रियम्) जन्म लेने वाले देव, आत्मा को तृप्त करने वाले की उपासना करो, (यः) जो (ऋत-जातः) ऋत, सत्यज्ञान रूप में प्रकट होने वाले (ऋतेन) अपने ज्ञान, बल और सामर्थ्य से (देवः राजा) चमचमाते सूर्य वा राजा के तुल्य (बृहत् ऋतम् वावृधे) बड़े भारी सत्य ज्ञान को बढ़ाता, व्यक्त जगत् को फैलाता है। (२) पक्षान्तर में—राजा (ऋतेन) ज्ञानमय वेद के द्वारा (बृहत् ऋतं वि वावृधे) बड़े भारी सत्य-न्याय की वृद्धि करे।

अ॒भिः द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ इष॑स्पते दिदी॒हि दे॑व देव॒युः ।
वि कोशं॑ मध्य॒मं यु॑व ॥ ९ ॥

भा०—हे (इषः पते) अन्नों और समस्त कामनाओं के स्वामिन् ! तू (बृहत्) बड़े भारी (द्युम्नं) तेज और (यशः) कीर्त्ति को (अभि दिदीहि) लक्ष्य कर, प्रकाश कर (देवयुः) देवों, विद्वानों और जीवों की कामना करने वाला उनका प्रिय स्वामी, तू हे (देव) दान देनेहारे दातः !

तु (मध्यमं कोशम्) बीच के खज़ाने को अन्तरिक्षस्थ मेघ के तुल्य (वि युव) खोलदे। (२) सब इच्छाओं का स्वामी होने से आत्मा 'इषःपति' है। इन्द्रियों का स्वामी होने से 'देवयु' है। मनोमय कोश मध्यकोश है, प्रथम कोश अन्नमय और अन्तिम कोश आनन्दमय है। प्राणमय, विज्ञानमय और मनोमय बीच के कोश हैं जो आत्म-प्रत्यक्ष में बाधक हैं। सो इच्छा-शक्ति की तीव्रता अर्थात् एकाग्रता से उनका भी बन्धन टूटता है और आत्मा का स्वच्छ तेजोमय रूप प्रकट होता है। सेनाएं 'इषः' हैं उनका पति 'इषःपति' सेनापति 'सोम' है। वह प्रतापमय यश के लिये चमके विजयाभिलाषियों का स्वामी 'देवयु' है। विजिगीषु होने से 'देव' है। वह मध्यम कोश को पृथक् करे और युद्ध करे।

आ व॑च्यस्व सुदक्ष च॒म्वोः॑ सु॒तो वि॒शां वह्नि॒र्न वि॒श्पतिः॑।
वृ॒ष्टिं दि॒वः प॑वस्व री॒तिम॒पां जिन्वा॒ गवि॑ष्टये॒ धियः॑ ॥१०॥१८॥

भा०—हे (सु-दक्ष) उत्तम बलशालिन्! उत्तम तेजस्विन्! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (चम्वोः) दो मुख्य सेनाओं के ऊपर (आ-वच्यस्व) अध्यक्ष पद पर आ और (विशां वह्निः) प्रजाओं के बीच उनका कार्य-भार अपने ऊपर लेने हारा, उनको वहन करता हुआ, (विश्पतिः न) प्रजाओं के स्वामी के तुल्य (दिवः वृष्टिं) आकाश से बरसती वृष्टि को मेघ के तुल्य (दिवः) तेज की (वृष्टिं) शत्रु को काट गिराने वाली सेना को (पवस्व) प्रेरित कर और (अपां रीतिम्) जलों की धारा के तुल्य (अपां रीतिम्) आप्त जनों की शैली, परिपाटी को प्रवृत्त कर। (गविष्टये) भूमि के इच्छुक कृषकवत् भूमि के प्रार्थी प्रजा-जन के उपकारार्थ (धियः जिन्व) नाना कर्मों को प्रवृत्त करा। (२) इसी प्रकार परमेश्वर 'प्रजापति' है, वह (चम्वोः) आकाश और भूमि में व्याप रहा है। वह आकाश से जलों की धारा और सुखमय वर्षा करे। और सर्व

जन्तुओं के उपकारार्थ वा स्तुति-वाणी के निमित्त हमारी (धियः) बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

भा०—(एतम्) उस (त्यं) परम (सहस्र-धारं) मेघ के तुल्य सहस्रों धारक शक्तियों के स्वामी, सहस्रों वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य, (वृषभं) मेघवत् अनेक, अनन्त सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले प्रभु से (दिवः) नाना कामना करने वाले पुरुष (दुहुः) रस-आनन्द का दोहन करते और अपने नाना मनोरथ पूर्ण करते हैं । वे (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाले उसी प्रभु को प्राप्त कर, (विश्वा वसूनि दुहुः) समस्त ऐश्वर्य उसी से प्राप्त करते हैं ।

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

भा०—(सः) वह (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी, प्रभु (जनयन्) जगत् को उत्पन्न करता हुआ ही (वृषा) वीर्यसेक्ता पिता के समान (वि जज्ञे) विशेष रूप से जाना जाता है । वह (ज्योतिषा) अपने तेज से (प्र-तपन्) सूर्यवत् तपता हुआ (तमः वि जनयन्) अन्धकार को दूर करता है । वह (कविभिः सु-स्तुतः) विद्वान् क्रान्तदर्शी जनों से भली प्रकार स्तुति को प्राप्त करता और (निः-निजं दधे) अपना विशुद्ध रूप धारता है । (अस्य दंससा) इसके ही कर्म-सामर्थ्य से (त्रि-धातु) यह जगत् तीन लोकों में तीन गुणों से तीन दोषों से इस देहवत् धारित है ।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वसूनां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यों, जनों और लोकों का स्वामी वा उत्पादक है, (यः रायां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यों और धनों का स्वामी है और (यः इडानां आनेता) जो समस्त प्राणियों का प्रवर्त्तक, नायक है और (यः सुक्षितीनां सुन्वे) जो समस्त प्रजाओं का शासक है (सः सोमः) वही सर्वोत्पादक प्रभु, सर्वशासक प्रेरक, सर्वैश्वर्यवान् 'सोम' 'परमेश्वर' कहाने योग्य है ।

यस्य॑ न॒ इन्द्रः॒ पिबा॒द्यस्य॑ म॒रुतो॒ यस्य॑ वार्य॒मणा॒ भगः॑ ।
आ येन॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ करा॑मह॒ एन्द्र॒मव॑से म॒हे ॥ १४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके बल से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हमारा (पिबात्) पालन करता है । अथवा (यस्य) जिसके दिये को (नः इन्द्रः पिबात्) हमारा आत्मा वा राजा पान करता, उपभोग करता है, (यस्य वा मरुतः) और जिसके दिये ऐश्वर्य को ये प्राणगण वा मनुष्य जन भोग करते हैं, और (यस्य वा अर्यमणा भगः) जिसके ऐश्वर्य को शत्रुओं का नियन्ता ऐश्वर्यवान् राजा भी भोगता है (येन) जिसके द्वारा हम लोग (मित्रावरुणौ) मित्र स्नेही जन और वरुण श्रेष्ठ जनों को (आ करामहे) प्राप्त करते हैं और जिसकी कृपा से हम (अवसे महे) अपनी बड़ी भारी रक्षा के लिये (इन्द्रम् आकरामहे) अपने तेजोमय आत्मा वा तेजस्वी स्वामी वा गुरु को स्वीकार करते हैं वही 'सोम' है ।

इन्द्रा॑य सोम॒ पात॑वे॒ नृभि॑र्य॒तः स्वा॑यु॒धो म॒दिन्त॑मः ।
पव॑स्व॒ मधु॑मत्तमः ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे उत्तम शासन करने हारे ! हे अभिषेक-योग्य ! तू (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्यप्रद राज्य-पद के पालन के लिये, (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर (नृभिः यतः) नायक उत्तम जनों से सुसंयत, नियमबद्ध और यत्नवान् होकर (मदिन्तमः)

सबसे अधिक हर्षदायी (मधुमत्-तमः) अति बलशाली और अति मधुर वचन वाला होकर (पवस्व) सुख प्रदान कर।

इन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श समु॒द्रमि॑व॒ सिन्ध॑वः।
जुष्टो॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ दि॒वो वि॑ष्ट॒म्भ उ॑त्त॒मः ॥१६॥१६॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) नदियां जिस प्रकार समुद्र को प्राप्त होतीं और उसी में प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार हे (सोम) उत्पन्न होने हारे जीव ! तू भी (सोम-धानम्) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले परम सामर्थ्य रूप वीर्य के एकमात्र आश्रय (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (हार्दि) हृदयंगम मनोहर रूप में (आ विश) प्रवेश कर। वह परमेश्वर (मित्राय) स्नेही, (वरुणाय) वरण करने वाले (वायवे) ज्ञानी पुरुष के लिये (जुष्टः) प्रीतियुक्त (दिवः) ज्ञान और प्रकाश तथा सू र्य और महान् आकाश का भी (उत्तमः) सर्वोत्तम (वि-स्तम्भः) विशेष रूप में, स्तम्भ के तुल्य ही थामने वाला, सब का महान् आश्रय है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१०९]

अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री। २—६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड् गायत्री। २०, २१ आर्ची गायत्री। १६ पादनिचृद् गायत्री ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

परि॒ प्र ध॑न्वेन्द्रा॑य सोम स्वा॒दुर्मि॒त्राय॑ पू॒ष्णे भगा॑य ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) बलवन् ! जीव ! तू (इन्द्राय) तत्वदर्शी ऐश्वर्ययुक्त तेजस्वी (मित्राय) स्नेही (पूष्णे) पोषक (भगाय) सेवनीय सुखप्रद प्रभु को प्राप्त करने के लिये (परि प्र धन्व) आगे बढ़।

इन्द्र॑स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेया॒: क्रत्वे॒ दक्षा॑य॒ विश्वे॑ च दे॒वाः ॥२॥

भा०—हे (सोम) जीवात्मन् वा जीव गण ! (सुतस्य ते) उत्पन्न हुए तेरी (इन्द्रः पेयाः) ऐश्वर्यप्रद स्वामी जगदीश्वर रक्षा करे । और (क्रत्वे) तेरे ज्ञान प्राप्त करने और (दक्षाय) बल-उत्साह की वृद्धि करने के लिये (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् गण भी तेरा पालन करें । (२) सोम वनस्पति अन्नादि को ज्ञान बल की वृद्ध्यर्थ (इन्द्रः) जीवगण और विद्वान् (पिबन्तु) भोग करें वा पालन करें ।

ए॒वामृता॑य म॒हे क्षया॑य॒ स शु॒क्रो अ॑र्ष दि॒व्यः पी॒यूष॑: ॥३॥

भा०—हे (सोम) विद्वान्, आत्मन् ! (सः) वह (शुक्रः) अति कान्तिमान्, शुद्ध तेजोयुक्त (दिव्यः) दिव्य, (पीयूषः) पान करने योग्य, परम रसस्वरूप प्रभु परमेश्वर है । उस (महे अमृताय) महान् अमृत के लिये और (महे क्षयाय) बड़े भारी प्रासाद के तुल्य परम शरण्य प्रभु को प्राप्त करने के लिये (एव) ही तू (अर्ष) आगे बढ़, उसको प्राप्त करने का उद्योग कर ।

पव॑स्व सोम म॒हान्त्स॑मु॒द्रः पि॒ता दे॒वा॒नां विश्वा॒भि धाम॑॥४॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (देवानां पिता) समस्त तेजोमय सूर्य आदि लोकों का पिता पालक है, (समुद्रः) समुद्र वा आकाश के समान व्यापक है, तू (विश्वा धाम) समस्त लोकों में (अभि पवस्व) सुखों की वर्षा कर । (२) हे (सोम) जीव ! (समुद्रः) परमेश्वर और (विश्वा धाम अभि) समस्त लोकों में आकाशवत् व्यापक और सबका पालक है, तू सर्वत्र निर्भय होकर (अभि पवस्व) विचर ।

शु॒क्रः प॑वस्व दे॒वेभ्य॑: सोम दि॒वे पृ॑थि॒व्यै शं च॑ प्र॒जायै॑ ॥५॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! हे प्रभो ! तू (शुक्रः) देदीप्यमान

सूर्यवत्, जलवत्, शुद्ध वायुवत् आशु कर्मकारी और सर्वत्र गतिदायक है, तू (देवेभ्यः पवस्व) सूर्यादि लोकों के हितार्थ व्याप, उनको शक्ति दें, (दिवे पृथिव्यै, प्रजायै च शम्) आकाश, पृथिवी और प्रजाओं को शान्ति (पवस्व) प्रदान कर।

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६॥

भा०—हे प्रभो! तू (दिवः धर्त्ता असि) आकाश का, सूर्य का वा तेज का धारण करने वाला, (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान् (पीयूषः) दुष्टों का नाशक, और साथी सज्जनों से पान करने योग्य, रस के तुल्य है। तू (सत्ये) सत् प्रकृति से उत्पन्न (विधर्मन्) विशेष रूप से धारण करने योग्य इस विश्व में (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् (धर्त्ता असि) धारण करने हारा है।

पवस्व सोमद्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक (पूर्व्यः) तू सब से पूर्व एवं पूर्ण, अन्यों को पालन करने वाला, (द्युम्नी) तेजस्वी, यशस्वी, ऐश्वर्य का स्वामी (महान्) बड़े २ (अवीनाम्) सूर्यों को भी (सु-धारः) सुख से धारण करने वाला है। वह तू (पवस्व) हमें प्राप्त हो, (अनु-पवस्व) हमपर अनुग्रह कर।

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥

भा०—(नृभिः) मनुष्यों द्वारा (येमानः) यमनियमादि द्वारा साधित, (जज्ञानः) जाना गया वा प्रकट किया गया, (पूतः) पवित्र, (मन्द्रः) अति हर्षदायक, (स्वः-वित्) सर्वज्ञ, एवं प्रकाश और सुख का देने वाला है। वह प्रभु (विश्वानि क्षरत्) समस्त सुख प्रदान करे।

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥

भा०—वह (इन्दुः) देदीप्यमान (प्रजाम् उराणः) महान्, अनेक कार्य करने वाला, प्रजा का उत्पन्न करने वाला और बहुत २

(पुनानः) सब को पवित्र करने वाला प्रभु (नः) हमारे (विश्वानि द्रविणानि) समस्त ऐश्वर्य (करत्) उत्पन्न करे ।

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय १०।२०

भा०—हे (सोम) सर्वैश्वर्यवन् ! सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (निक्तः अश्वः न) जुते अश्व के समान, (वाजी) वेगवान्, ज्ञानवान् और बलवान् है । तू (क्रत्वे) ज्ञान, (दक्षाय) बल और (धनाय) धन प्राप्त करने के लिये (पवस्व) हमपर अनुग्रह कर । इति विंशो वर्गः ॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभो ! (सोतारः) उपासक लोग (ते मदाय) तेरे परमानन्द को प्राप्त करने के लिये और (ते महे द्युम्नाय) तेरे महान् तेज और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (तम्) उस अनिर्वचनीय, (रसम्) रसस्वरूप, (सोमम्) सर्वोत्पादक तुझ को (पुनन्ति) प्राप्त होते हैं, तेरा परिशोध करते हैं ।

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्॥१२॥

भा०—वे (शिशुम् जज्ञानम्) उत्पन्न होते बालक के तुल्य, सर्वत्र देहों और हृदयों में व्यापक (सोमं) सर्वोत्पादक और (हरिं) सर्व दुःखहारी (इन्दुम्) तेजोमय प्रभु को (देवेभ्यः) सब मनुष्यों के कल्याण के लिये (पवित्रे) पवित्र हृदय में, पवित्र कार्य में (मृजन्ति) पवित्र (अभिषेक) करते, उसका ध्यान, अभ्यास और उत्तम स्तुति करते हैं ।

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजःस्वरूप, इस देह की ओर जाने वाला, (चारुः) कर्मफल का भोक्ता (कविः) स्तुति करने वाला, जीव वा क्रान्तदर्शी विद्वान् साधक (मदाय) आनन्दस्वरूप (भगाय) ऐश्वर्यवान् प्रभु

को प्राप्त करने के लिये (अपाम् उपस्थे) प्राणों के बल पर (पविष्ट) अपने को पवित्र करे। वह प्राणायाम द्वारा साधना करे।

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

भा०—वह (इन्द्र) उस ऐश्वर्यवान्, सब विघ्नों के नाशक प्रभु, परमेश्वर का (चारु नाम बिभर्त्ति) सुन्दर नाम लेता है, धारण करता है, (येन) जिससे (विश्वानि वृत्रा जघान) वह समस्त विघ्नों का नाश कर देता है।

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

भा०—(नृभिः सुतस्य) नेता, उत्तम मनुष्यों से पूजित, संस्कृत और (गोभिः श्रीतस्य) उत्तम वाणियों द्वारा सेवित, (अस्य) इस के परम रस का (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोग पान करते हैं।

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

भा०—वह (सुवानः) उत्तम रीति से उपासना और प्रार्थना किया गया, (सहस्र-धारः) सहस्रों धारक शक्तियों से सम्पन्न अनेक वेद-वाणियों का आश्रय वा सहस्र अर्थात् समस्त जगत् को धारण करने वाला (पवित्रम्) व्यापक, परम पवित्र, (अव्यम्) अविनाशी, सर्वरक्षक (वारम्) सर्वश्रेष्ठ रूप वा सामर्थ्य को (प्र अक्षाः) प्राप्त करता है।

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

भा०—(सः) वह (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान्, (सहस्र-रेताः) सहस्रों और सर्वाधिक बलयुक्त, वीर्यवान्, (अद्भिः) जलों के तुल्य, आप्त जनों से (मृजानः) विवेचित, (गोभिः श्रीणानः) दुग्ध-धाराओं के तुल्य वेदवाणियों से सुसंस्कृत होता हुआ (अक्षाः) व्यापता और प्रकट होता है।

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) प्रयत्नशील साधक! तू (अद्रिभिः) दृढ़ आचारवान्, आदर योग्य (नृभिः) सन्मार्ग से लेजाने वाले गुरुजनों से (सुतः) प्रेरित होकर (येमानः) यम नियम का पालन करता हुआ, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (कुक्षौ) बीच वा तत्वदर्शी गुरु के विद्यामय गर्भ में (प्र याहि) आगे, सन्मार्ग में गमन कर।

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १६ ॥

भा०—(सहस्र-धारः) सहस्रों, शक्तियों वा दृढ़ वाणी वाला, (वाजी) ज्ञानी, बलवान्, (सोमः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्राय) इन्द्र, प्रभु, परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (पवित्रम्) अपने अन्तःकरण को पवित्र करने के साधन-कलाप को (तिरः असर्जि) प्राप्त करे।

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥

भा०—साधक लोग (एनम्) उस (इन्दुम्) प्रभु की ओर द्रवित होने वाले आत्मा को (वृष्णः) परम सुखवर्षी (इन्द्राय मदाय) परमेश्वर के परमानन्द को प्राप्त करने के लिये (मध्वः रसेन अञ्जन्ति) ज्ञान-मधु के रस से प्रकाशित करते हैं।

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥

भा०—वे साधक जन, हे सोम! आत्मन्! (अपः वसानम्) कर्मों के वासनामय लिङ्ग शरीर को धारण करने वाले (हरिम्) कान्तियुक्त (त्वा) तुझ को (देवेभ्यः पाजसे) देवों की बल-सिद्धि के लिये (मृजन्ति) परिष्कृत करते हैं।

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥२१॥

भा०—(इन्दुः) इस आत्मा को (इन्द्राय) परमेश्वर के प्राप्त्यर्थ ही (तोशते) तप द्वारा पीड़ित किया जाता है, (नि तोषते) नियमों द्वारा क्लेशित किया जाता है, (श्रीणन्) वह सेवा करता हुआ ही

(उग्रः) बलशाली होकर (अपः रिणन्) नाना कर्म करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[११०]

त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद् बृहती । ६ बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

भा०—वनस्थ वा संन्यस्त परिव्राजक के कर्त्तव्य—हे विद्वन्! तू (वाज-सातये) ज्ञान लाभ करने और कराने के लिये (परि प्र धन्व) परिव्राट् होकर चारों ओर भ्रमण कर। और (सक्षणिः) सहनशील होकर (वृत्राणि परि) विघ्नों वा बाधक कारणों को भी नाश करने के लिये परिव्राट् के तुल्य हो। तू वीर के समान ही (ऋणयाः) देव पितृ आदि के ऋणों से मुक्त होकर (द्विषः) समस्त द्वेष करने वाले वा द्वेषभावों को पार करने वा तरने के लिए (नः ईयसे) हमें प्राप्त हो।

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! व्रतनिष्ठ! अभिषिक्त! (त्वां सुतम् अनु) तुझ अभिषिक्त दीक्षित के साथ ही हम भी (मदामसि) प्रसन्न होते हैं। हे (पवमान) पवित्र एवं पावन! तू (महे) बड़े (स-मर्य-राज्ये) मनुष्यों सहित राज्य में राजा के तुल्य (वाजान् अभि) ज्ञानों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (प्र गाहसे) आगे बढ़। (२) इसी प्रकार राजा भी अभिषिक्त हो, उसके साथ प्रजा भी प्रसन्न हो। वह मनुष्यों से बसे

राज्य में शत्रु-विजयार्थ सैन्यों के साथ देश-देशान्तर का विजय करे। (३) परमेश्वर उपासित होने से 'सुत' है, जीवमय जगत् रूप राज्य में समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) सब को पवित्र करने और विश्व में व्यापने वाले! तू (वि-धारे) विविध लोकों को कारण करने वाले अन्तरिक्ष में (शक्मना) अपनी महान् शक्ति से (सूर्यम् अजीजनः) सूर्य को प्रकट करता है। और (पयः) पोषक अन्न और जल को भी उत्पन्न करता है। और (पुरन्ध्या) विश्व के पोषक बल से और (गो-जीरया) पृथ्वी और रश्मियों को प्रेरित करने वाली शक्तियों से (रंहमाणः) संञ्चालित करता है। (२) इसी प्रकार राजा और विद्वान् वाणी और बुद्धि से यत्न करते हैं और वे तेजस्वी पुरुष को विशेष प्रजापालक पद पर स्थापित करें।

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अमृत) अविनाशिन्! हे दीर्घजीविन्! तू (मर्त्येषु) मनुष्यों में (धर्मन्) धर्म में स्थित होकर (अमृतस्य) अविनाशी, कभी न नष्ट होने वाले (चारुणः) अति उत्तम, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान को (अजीजनः) प्रकट कर। और (सदा) सदा (वाजम् सनिष्यदत्) ज्ञान को प्रदान करता हुआ (अच्छ असरः) आगे भ्रमण कर। (२) वीर राजा (वाजम् अच्छ सदा असरः) संग्राम को लक्ष्य कर आगे २ प्रयाण करे।

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

भा०—तू (श्रवसा) श्रवण योग्य आत्मज्ञान से (उत्सम् न कंचित्) किसी जल-निकास वा कूप के तुल्य (अक्षितम् जनपानम्) अक्षय इस जीव-जगत् के पालक प्रभु को (ततर्दिथ) खन ले, यत्न से प्राप्त कर। और (गभस्त्योः) बाहुओं में लगी अंगुलियों से जैसे पदार्थ धारण किया जाता है उसी प्रकार सूर्य-चन्द्रवत् प्राण-अपान की (शर्याभिः) साधनाओं से (भरमाणः) अपने बल को धारण करता हुआ, अपने को पुष्ट करता हुआ उस प्रभु को प्राप्त कर। (२) राजा बाहुओं में, अपने वश में शत्रु-नाशक शक्तियों से अपने को पुष्ट करता हुआ अक्षय जन-रक्षक राष्ट्र बनावे।

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—(केचित्) कई (दिव्याः) ज्ञान-प्रकाश के उपासक (वसु-रुचः) उस सबको बसाने वाले एवं समस्त लोकों के प्रकाशक प्रभु को चाहते हुए (आत्) अनन्तर (ईं पश्यमानासः) उस प्रभु को ही सर्वत्र अपना बन्धुवत् परम प्राप्य देखते हुए (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करते हैं कि वह (देवः सविता) सब सुखों का दाता, प्रकाशस्वरूप प्रभु सब जगत् का उत्पादक है। वही (वारं न॰ यूर्णुते) अन्धकार के तुल्य अज्ञान के आवरण को दूर करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के उत्पादक ! प्रभो ! (प्रथमाः) पहले श्रेष्ठ जन (वृक्तबर्हिषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं को तृणों के तुल्य छेदन करते हैं। (महे वाजाय) बड़े भारी ज्ञान, बल और ऐश्वर्य को प्राप्त

करने के लिये (त्वे) तेरे सम्बन्ध में ही (श्रवसे) ज्ञानोपदेश श्रवण के लिये (धियं दधुः) कर्म और बुद्धि को लगाते हैं। (सः त्वम्) वह तू हे (वीर) विशेष मार्ग में प्रेरक ! बलशालिन् ! (नः) हमें भी (वीर्याय) उस पर उपदेश्य ज्ञान और वस्तु को प्राप्त करने के लिये (चोदय) प्रेरित कर।

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः) ज्ञानमय, प्रकाशमय प्रभु का (पीयूषं) पान करने योग्य (यत् पूर्व्यं उक्थ्यं) जो पूर्व विद्वानों वा प्रभु द्वारा, पूर्ण उपदिष्ट प्रशंसनीय ज्ञान है उसको (दिवः) उसी तेजोमय (महः गाहात्) महान् गंभीर प्रभु से वे (निर् अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं। (जायमानं) हृदय में प्रकट होने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को लक्ष्य कर (सम् अस्वरन्) उसी की स्तुति करते हैं।

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे नः निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) सब जगत् के चालक और व्यापक ! (यत्) जो (इमा विश्वा भुवना) इन समस्त लोकों पर (मज्मना) अपने बल से (यूथे वृषभः न) जूथ में बिजार सांड के तुल्य सर्वत्र प्रजोत्पादक बीजवपन करने वाला होकर (अभि निःस्थाः) विराजता है और (वि तिष्ठसे) उनमें विविध प्रकार से विराजता है। अतएव तू महान् 'सोम' सर्वोत्पादक है। अर्थात् इन लोकों में तेरी निष्ठा अर्थात् नित्य नियमानुसार स्थिति भी है और वि-स्था अर्थात् विशेष २, नाना प्रकार से विकृति-कारक स्थिति भी तेरी ही है।

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥

भा०—(एषः) यह (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (मधुमान्) अति आनन्द से युक्त, (ऋत-वा) सत्य तेज से युक्त, (स्वादुः) उत्तम सुखद, (ऊर्मिः) तरङ्गवत् उत्तम एवं (वाज-सनिः) बलदायक, ज्ञान-प्रद, (वरिवः-वित्) धनों को प्राप्त करने वाला, (वयःधाः) बलों का धारक, (इन्दुः) तेजोमय प्रभु (इन्द्राय) परमैश्वर्य वा प्रभु रूप से (पवते) प्रकट होता है। वह इस आत्मा के हितार्थ प्राप्त होता है वा सूर्य मेघादिवत् प्राप्त हो।

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥

भा०—(सोमः) सोम, वह सबका शासक प्रभु (अव्यये) अविनाशी (वारे) परम वरणीय रूप में (पुनानः) प्रकट होता हुआ, (शिशुः न क्रीडन्) बालकवत् जगत् के सर्जन-संहार आदि कर्म अनायास करता हुआ, (पवमानः) जगत् भर को चलाता हुआ, (सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों और वाणियों वाला और (शत-वाजः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वा बल पराक्रमों वाला (इन्दुः) परम तेजस्वी और दयार्द्र है।

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (सः) वह तू (पृतन्यून्) संग्राम में आगे बाधक शत्रुओं को (सहमानः पवस्व) सबको पराजित करता हुआ राजा के समान कण्टक-शोधनवत् हृदय को पवित्र करता हुआ (दुर्गहाणि रक्षांसि) बड़ी कठिनता से वश में आने वाले, दुःसाध्य दुष्ट भावों को (अप सेध) दूर कर। और तू (सु-आयुधः) उत्तम आयुधों

से सम्पन्न होकर (शत्रून् सासह्वान्) दुःखदायी शत्रुओं को पराजित करने हारा हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१११]

अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगाष्टिः । ३ अष्टिः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

भा०—वह (अया) इस (हरिण्या रुचा) पापहारिणी, मनोहर दीप्ति एवं कान्ति से (स्वयुग्वभिः सूरः) अपनी रश्मियों से सूर्य के समान तेजस्वी होकर (स्व-युग्वभिः) अपने समाहित प्राणों से वा अपने नियुक्त पुरुषों से राजा के तुल्य (पुनानः) कण्टक-शोधनवत् चित्त को राग, द्वेष, क्रोध, मोहादि से रहित, स्वच्छ करता हुआ (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष करने वालों और सब प्रकार के द्वेष भावों और कर्मों को (तरति) तर जाता है, सबसे पार हो जाता है। (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सर्पणशील मुखों वाले तेजों से सूर्य के तुल्य (ऋक्वभिः) ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा (यत्) जब (विश्वा रूपा परियाति) समस्त रुचिकर पदार्थों को का प्राप्त करता, जान लेता है, तब वह (अरुषः) कान्तिमान्, रोषरहित, (हरिः) मनोहर (पुनानः) अति पवित्र, अभिषिक्त होता है तब (सुतस्य) उस अभिषिक्त विद्वान् की (धारा रोचते) अभिषेक धारा के तुल्य वाणी भी सबको अच्छी लगती है।

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः । त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

भा०—हे सोम आत्मन् ! हे राजन् ! (त्वं) तू (पणीनां त्यत् वसु-विदः) व्यवहार-मार्ग में रहने वाले इन्द्रियगणों का वह धन, ग्राह्य ज्ञान जान लेता है और (मातृभिः) ज्ञान करने वाले अन्तः-साधनों या विद्वानों से उस (वसु) प्राप्त ऐश्वर्य वा ज्ञान को (स्वे दमे) अपने गृह में और (दमे) दमनशील चित्त में (ऋतस्य धीतिभिः) तेज वा सत्य ज्ञान के धारण करने वाले विद्वानों द्वारा (सं मर्जयसि) उनसे मिल कर खूब शुद्ध कर लेता है, (यत्र) जहां (धीतयः) ज्ञान के धारण करने वाले (परावतः) परम रक्षास्थान से (साम न) साम गान वा सामवचन के तुल्य ग्राह्य ज्ञान का (रणन्ति) उपदेश करते हैं वहां तू (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) तीनों लोकों, वर्णों वा त्रिविध प्रजाओं को धारण करने वाली, दीप्तियुक्त नीतियों वा सेनाओं से राजावत्, वाणियों से (वयः दधे) बल, ज्ञान, तेज और दीर्घायु को धारण करता है। और वह तू (रोचमानः) खूब तेजोमय, एवं सर्वप्रिय होकर (वयः दधे) बल को धारण करता है।

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥ ॥

भा०—(पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) जिस प्रकार सूर्य पूर्व दिशा की ओर (रश्मिभिः याति) रश्मियों सहित आता और (दर्शतः) दर्शनीय रमणीय होकर (यतते) उद्यत होता है, इसी प्रकार वह भी (पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) पूर्व, सब से पूर्व विद्यमान एवं ज्ञान से पूर्ण सर्वोत्तम आदेश रूप गुरुवाणी, ज्ञानवाणी, वेदवाणी, को अनुसरण कर (चेकितत् याति) ज्ञान प्राप्त करता हुआ सन्-मार्ग में गमन करता है। और वह (दैव्यः) देव, प्रभु का उपासक होकर (दर्शतः) दर्शनीय

(रथः) महारथीवत् परमानन्द रस से युक्त होकर (रश्मिभिः) अपनी नियम-मर्यादाओं या साधनों से यत्न करता है। हे (सोम) विद्वन् ! हे (इन्द्र) आचार्यवर ! आप दोनों (समत्सु अनपच्युता) संग्रामों में भी कभी कुमार्गों में न गिरने वाले, दृढ़, स्थिर वीरों के तुल्य (वज्रः-च यत् अनपच्युता भवथः) बल वीर्य से युक्त और स्थिर, अडिग होजाते हो तब, लोग (जैत्राय) इस परम विजय के लिये (इन्द्रं) उस तत्वदर्शी ज्ञानी को (हर्षयन्) हर्षित करते हैं, और (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुष युक्त वचनों को कहा करते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११२]

शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ विराट् पंक्तिः । ४, निचृत् पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(नः धियः नानानं) हमारे कर्म और बुद्धियां नाना प्रकार की हैं। (जनानां व्रतानि वि) मनुष्यों के कर्म भी विविध प्रकार के हैं। जैसे—(तक्षा) तरखान (रिष्टम् इच्छति) लकड़ी काटना चाहता है, (भिषक् रुतम् इच्छति) वैद्य जो रोग दूर करने वाला है, वह रोगी को चाहता है। और (ब्रह्मा) वेद का विद्वान् (सुन्वन्तम्) यज्ञ करने वाले को (इच्छति) चाहता है। उसी प्रकार हे (इन्दो इन्द्राय) हे ऐश्वर्यवन् ! तू ऐश्वर्यवान् पद के लिये वा अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करने और देने के लिये (परि स्रव) आगे बढ़, प्रजा पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा कर।

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥२॥

भा०—जिस प्रकार (जरतीभिः ओषधीभिः) जीर्ण होने वाली, परिपक्व ओषधियों, सरकण्डे आदि से, (शकुनानाम् पर्णेभिः) पक्षियों के पंखों से और (द्युभिः अश्मभिः) तीक्ष्ण करने वाले शिला खण्डों से नाना बाण बनाने वाला (कार्मारः) क्रियाकुशल शिल्पी (हिरण्यवन्तम्) किसी धन-सम्पन्न को प्राप्त करना चाहता है उसी प्रकार हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (जरतीभिः ओषधीभिः) शत्रु के जीवन-हानि करने वाली तेजस्विनी सेनाओं से, और (शकुनानाम् पर्णेभिः) शक्तिशाली, अपने को और तुझे ऊपर, उन्नत पद तक उठा लेने वाले वीर पुरुषों के पालन सामर्थ्यों और वेग से जाने वाले रथों से, वा बाणों से, और (द्युभिः-अश्मभिः) तेजस्वी, चमचमाते शस्त्रों से (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद, शत्रु-हननकारी सैनापत्य के लिये (परि स्रव) आगे बढ़ ।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

भा०—(अहं कारुः) मैं उत्तम स्तुतियों का करने वाला, उत्तम शिल्पों का सम्पादन करने वाला हूं । (ततः भिषक्) मेरा पुत्र वा पिता, रोगों की चिकित्सा करने वाला है । अ र (नना) माता वा बहिन (उपलप्रक्षिणी) पत्थरों या शिल-बट्टा से जौं को पीस कर सत्तू आदि बनाने वाली है । हम लोग सभी (वसूयवः) धन की इच्छा करते हुए (नाना धियः) नाना मति और कर्मों वाले होकर (गाः इव) गो-पालक के प्रति गौओं के सदृश (अनु तस्थिम) तेरी ही आज्ञानुसार नाना कार्य करते हैं । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्, तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय) हमारे ऐश्वर्य के देने, अन्न जल प्रदान करने के लिये (परि स्रव) मेघवत् सुख की वृष्टि कर, हमें ऐश्वर्य प्रदान कर । (२) अध्यात्म में—मैं आत्मा कर्मकर्त्ता हूं, यज्ञ में ब्रह्मा के समान व्यापक प्राण देह में 'भिषक्' है । 'नना'-वाणी, समीप स्थित आत्मा के सम्बन्ध में सदा तर्क वितर्क करती

है, हम सब प्राण वा जीव इस देह में वास के इच्छुक होकर नाना कर्म करते हैं। हे आत्मन्! प्रभु तू जीव पर सुखों की वर्षा कर। 'ततः'—तन्यते अस्मादिति ततः पिता। तन्यतेऽसाविति ततः पुत्रः॥ 'कारुः स्तोमानां कर्त्ता। ततः संताननाम पितुर्वा पुत्रस्य वा। 'उपलप्रक्षिणी'—उपलाभ्यां दृषद्भ्यां प्रक्षिणोति धान्यादि सा। अथवा उपलं समीपस्थमात्मानमुद्दिश्य पृच्छति समोपे क्षेति वा॥ अधिभूत में—उपलप्रक्षिणी—मेघ को पूर्ण करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् 'तत'—मेघ जल वा ओषधिवर्ग। इन्दु—मेघ-इन्द्र।

अश्वो॒ वोळ्हा॑ सु॒खं रथं॑ हस॒नामु॑पम॒न्त्रिणः॑। शेपो॒ रोम॑ण्वन्तौ भे॒दौ वारिन्म॒ण्डूक॑ इच्छ॒तीन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव॥ ४॥ २५॥

भा०—(वोढा अश्वः) भार उठाने वाला अश्व वा बैल (सुखम्) उत्तम बैठने योग्य, अवकाश वाले वा सुख से ले चलने योग्य (रथम्) वेग से जाने वाले रथ वा गाड़ी को (इच्छति) चाहता है। (उपमन्त्रिणः) समीप के सलाहकार मित्र लोग (हसनाम्) परस्पर उपहास-विनोद(इच्छन्ति) चाहते हैं। (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ इच्छति) पुरुष का कामांग लोमयुक्त दो खण्ड अर्थात् युवति के अंग की अपेक्षा करता है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! तू उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पद की ओर (परि स्रव) गमन कर और उसे प्राप्त कर। अश्व का सदुपयोग उत्तम रथ लेजाना, सचिवों का कार्य राजा को प्रसन्न रखना, काम-अंग का उपयोग युवति से सन्तान उत्पन्न करना है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष का सदुपयोग राज्य-पद प्राप्त करना है। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[११३]

कश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ५, ६, ८—११ निचृत पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्।

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(आत्मनि) अपने में (महत् वीर्यं करिष्यन्) बड़ा भारी बल सम्पादन करना चाहता हुआ और (महत् बलं दधानः) बड़ा भारी बल धारण करता हुआ, (वृत्र-हा) विघ्न रूप शत्रुओं को नाश करने वाला, (इन्द्रः) तेजस्वी राजा और आत्मा, (शर्यणावति) शत्रु-हिंसक सेना से युक्त बल-सैन्य के आश्रय पर (सोमम् पिबतु) ऐश्वर्य का उपभोग और शासक पद की रक्षा करे, और प्रजा का पालन करे ।

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

भा०—हे (मीढ्वः) ऐश्वर्यों की प्रजाओं पर और शस्त्रों की शत्रु जनों पर वर्षा करने हारे उदार ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (दिशां-पते) वायुवत् समस्त दिशाओं के पालक ! तू (सुतः) अभिषिक्त, पूजित होकर (ऋत-वाकेन) त्रिकालाबाधित सत्य ज्ञानमय वेद-वचन और (सत्येन) सज्जनों के उपदिष्ट, वा उनमें स्थित व्यवहार से और (श्रद्धया) सत्य धारण करने वाली बुद्धि और (तपसा) तप से युक्त होकर (आर्जी-कात्) ऋजु, धर्मनीति से युक्त उच्च पद से (आ पवस्व) हमें प्राप्त हो । हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यप्रद पद प्राप्त करने के लिये उद्योग कर ।

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर २ तक जाने वाली शक्ति वा सेना ही (पर्जन्य-वृद्धम्) मेघवत् बड़े २ शत्रुओं के विजेता, (महिषम्) महान्,

भूमि के उपभोक्ता (तम्) उसको (आभरत्) सब ओर से पुष्ट करता है। (गन्धर्वाः) भूमि को धारण करने वाले सामन्त जन (तम् प्रति अगृभ्णन्) उसको अपनाते हैं और (सोमे) उस उत्तम शासक में या उसके बल पर ही (रसम् आदधुः) अपना विशेष बल और सारयुक्त ऐश्वर्य रखते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय) ऐसे शत्रुहन्ता और ऐश्वर्यप्रद राज्य के लिये (परि स्रव) उद्योग कर।

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्। श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ४॥

भा०—हे (ऋत-द्युम्न) सत्य, ज्ञानमय वेद से कान्तियुक्त ! हे (सत्य-कर्मन्) सत् पुरुषों के आचरित, हित कर्म करने हारे ! हे (सोम) उत्तम ऐश्वर्य-शक्ति के पालक ! तू (ऋतम् वदन्) यथावत् न्याय, सत्य, वेदानुसार वचन कहता हुआ (सत्यं वदन्) सत्य का उपदेश करता हुआ, (श्रद्धां वदन्) सत्य को धारण करने वाली बुद्धि वा वाणी का उपदेश करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (धात्रा) राजकर्त्ता पुरोहित वा पोषक जन से (परि-कृतः) सुसज्जित होकर (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यवान् पद के लिये आगे बढ़।

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः। सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ५॥ २६॥

भा०—(सत्यम्-उग्रस्य) सत्य को सर्वोपरि बोलने वाले, सचमुच दुष्टों के लिये भयप्रद, (बृहतः) महान् उस प्रभु के (संस्रवाः सं स्रवन्ति) अच्छी प्रकार एक साथ बहने और प्रवाह से निरन्तर चलने वाले ज्ञान, ऐश्वर्य और बल के प्रवाह (सं स्रवन्ति) एक साथ खूबी से बहते, बढ़ते और प्राप्त हो रहे हैं। (रसिनः) उस बलवान्, वेगवान् के (रसाः)

बल, सैन्य, एवं सुस्वादु रस-प्रवाह भी (सं यन्ति) एक साथ जा रहे हैं, इस प्रकार हे (हरे) संकटों और दुःखों के हरने हारे ! हे मनोहर प्रिय ! तू (ब्रह्मणा पुनानः) वेद ज्ञान और अन्य और महान् बल से पवित्र, देश को स्वच्छ निष्कण्टक करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यवान् पद के लिये आगे बढ़। (२) अध्यात्म में—हे (इन्दो) जीव ! तू उस प्रभु को पाने के लिये आगे बढ़ उस सत्यमय महान् प्रभु के नाना ऐश्वर्य वह रहे हैं। उस आनन्द-घन के रस उमड़ रहे हैं। इति षडविंशो वर्गः ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे ! (यत्र) जहां (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान्, स्वामी, (छन्दस्यां वाचं वदन्) छन्दोमय वेदवाणी का उपदेश करता हुआ वा 'छन्दः' अर्थात् प्रजानुरञ्जनी वाणी को बोलता हुआ (ग्रावणा) विद्वान् जन के सहयोग से वा (ग्रावणा) क्षात्रयुक्त शस्त्र-बल से (सोमे) शासक पद पर (महीयते) प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और (सोमेन आनन्दं जनयन्) ऐश्वर्य से सब को आनन्द उत्पन्न करता हुआ बिराजता है उसी (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू भी (परि स्रव) उद्योग कर, आगे बढ़ ।

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥७॥

भा०—हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे स्वामिन् ! प्रभो ! (यत्र) जहां (अजस्रं ज्योतिः) प्रकाश, ज्ञान कभी नाश को प्राप्त नहीं हो, सदा प्रकाश बना रहे, (यस्मिन् लोके) जिस लोक में सदा (स्वः हितम्) सुख बना रहता है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमृत, मृत्युरहित, अक्षय, बिनाशरहित, नित्य लोक में

(माम् धेहि) मुझे रख । (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) हे दयार्द्र-स्वभाव ! प्रभो ! तू (इन्द्राय) इस जीव-आत्मा के लिये सब ओर से सुखों को बहा । वा हे जीव ! तू उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ ।

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र वैवस्वतः राजा) जहां वह विविध ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी, प्रकाशमान, सब का स्वामी विराजता है, (यत्र) जहां (दिवः) प्रकाश, ज्ञान की सदा स्थिति है, (यत्र अमूः) जहां वे परम उत्कृष्ट (यह्वतीः आपः) महान् आप्त जन एवं व्यापक शक्तियां वा सब का उत्पादक व्यापक प्रभु है (तत्र माम् अमृतं कृधि) उस लोक में मुझ को भी अमृत, मरणरहित बना । (इन्द्राय इन्दो परिस्रव) हे दयालो ! तू इस अन्नोपभोक्ता कर्मफलाकांक्षी जीव के लिये (परि स्रव) दया कर, और सर्वत्र सुखों की वर्षा कर ।

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥९॥

भा०—(यत्र अनुकामं चरणं) जहां कामनानुसार विचरण हो, (त्रि-नाके) तीनों प्रकार के सुख और (त्रि-दिवे) तीनों प्रकार के प्रकाशों से युक्त, (यत्र) जिस लोक में (लोकाः दिवः ज्योतिष्मन्तः) कामनामय लोक, जीवगण सूर्यवत् स्वयं आत्मज्योति से सम्पन्न हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) वहां मुझ को अमृत, जरा-मृत्यु से रहित कर । (इन्द्राय इन्दो, परि स्रव) हे दयालो ! तू जीव के लिये सुखों की वर्षा कर । वा हे इन्दो,उपासक आत्मन् ! तू उस परमैश्वर्य पद के लिये आगे बढ़ ।

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१०॥

भा०—(यत्र कामाः) जहां सब प्रकार की अभिलाषाएं और (निकामाः च) नित्य की इच्छाएं पूर्ण हो सकें (यत्र) और जहां (ब्रध्नस्य) सूर्य के प्रकाश में (विष्टपम्) विना ताप का, सुखप्रद आश्रय करने योग्य शान्तिमय स्थान हो (यत्र) और जहां (स्वधा च) स्व, आत्मा को धारण करने वाले जल और अन्न के सदृश शान्ति सुख देनेवाली सामग्री और (तृप्तिः च) जल-पान के समान तृष्णा को शान्त करने वाली शान्ति हो (तत्र) उस लोक में हे (इन्दो) दयालो, प्रभो ! तू (माम्) मुझ (अमृतम्) कभी न नाश होने वाले जीव को (कृधि) उत्पन्न कर। अथवा, उक्त प्रकार के लोक में मुझे अमृत अर्थात् दीर्घायु कर । (इन्द्राय इन्दो परि स्रव) हे प्रभो, दयालो, तेजस्विन् ! तू इन्द्र जीव गण के हितार्थ सर्वत्र सुख शान्ति की धारायें बहा। वा हे जीव ! तू उस परम सुख ज्ञान के दाता प्रभु को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ ।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(यत्र आनन्दाः च मोदाः च) जिस लोक में समस्त प्रकार की ऋद्धियां और हर्ष हैं, जहां (मुदः प्रमुदः आसते) हर्षदायी समस्त सम्पदाएं और अति आह्लादकारी ऐश्वर्य विराजते हैं, (कामस्य) इस अभिलाषायुक्त जीव की (यत्र कामाः आप्ताः) जहां समस्त कामनाएं प्राप्त हो जाती हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) वहां, उस लोक में मुझे अमृत, मरणरहित, दीर्घायु-युक्त कर । (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) हे दयालो ! इस जीव, तत्वदर्शी आत्मा के हितार्थ तू दया से द्रवीभूत हो, कृपाकर आनन्द-घन बरसा दे । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[११४]

कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् पंक्तिः । ३, ४, पंक्तिः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(यः) जो (इन्दोः) ऐश्वर्यवान् (पवमानस्य) सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक प्रभु के (धामानि) तेजों, बलों और कार्यों का (अनु अक्रमीत्) अनुगमन करता है (तम्) उसको (सु-प्रजाः इति) उत्तम प्रजा और उत्तर पुत्र-पौत्रादि वाला राजा वा उत्तम गृहपति ऐसा (आहुः) कहते हैं। हे (सोम) उत्तम वीर्यवन्! उत्तम शास्तः! और (यः ते) जो तेरे (मनः अनु अविधत्) ज्ञान और चित्त के अनुकूल आचरण करता है, (तम् सुप्रजाः इति आहुः) उसको भी उत्तम प्रजा का स्वामी, 'प्रजापति' ऐसा ही कहते हैं। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (इन्द्राय परिस्रव) ऐश्वर्य देने वाले, स्वामिपद के लिये आगे बढ़। वा हे प्रभो! तू इस जीव के लिये सुखों की सब ओर से वर्षा कर। हे विद्वन्! तू ऐश्वर्ययुक्त जीव के लिये ज्ञान प्रदान कर।

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥२॥

भा०—हे (ऋषे) मन्त्रार्थों के द्रष्टा! हे (कश्यप) तत्वज्ञान के देखने वाले! तू (मन्त्र-कृतां) मन्त्रों का उपदेश करने वाले विद्वानों के (स्तोमैः) उपदिष्ट मन्त्रसमूहों से (गिरः उत्-वर्धयन्) अपनी वाणियों को उत्तम रीति से बढ़ाता हुआ (यः वीरुधां पतिः) जो ओषधियों के तुल्य भूमिपर विविध रूपों से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का पालक है उस (राजानं सोमम्) चन्द्रवत् प्रकाशमान शासक को (नमस्य) आदर से नमस्कार कर। हे (इन्दो इन्द्राय परिस्रव) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन् स्वामिन्! प्रभो! तू 'इन्द्र' अन्न का उपभोग करने वाले जीव के लिये सुखों की वर्षा कर।

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः । देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—(सप्त दिशः) सात दिशाएं, उनके तुल्य सात आदेश करने वाले, (सप्त होतारः) यज्ञ में सात ऋत्विजों के तुल्य ये सात, आज्ञा देने वाले, ये (देवाः आदित्याः सप्त) तेजस्वी, सात ऋतुओं के तुल्य भूमि के रक्षक वा सूर्य वा तेजस्वी राजा के अधीन सात सचिव आदि हैं (तेभिः) उनसे हे (सोम) शासक ! तू (नः अभि रक्ष) हम प्रजाओं की प्रभुवत् रक्षा कर । हे (इन्दो) युद्ध में द्रुतगति से जाने वाले, हे प्रजा के प्रति दयाभाव से द्रवित होने वाले ! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और अन्न को देने वाले राष्ट्र के हित के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा, और युद्ध आदि कर ।

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ २८ ॥ ७ ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! हे तेजस्विन् ! (यत् ते श्रुतं हविः) जो तेरा परिपक्व हवि, अन्न और ज्ञान है (तेन नः अभि रक्ष) उससे तू हमारी सब ओर से रक्षा कर (अरातीवा) शत्रु भाव से युक्त जन (नः मां तारीत्) हमारा नाश न करे । (नः किंचन मो आममत्) हमें कुछ भी पदार्थ किसी प्रकार का कष्ट न दे । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त, समस्त प्रजा को अन्न जल देने वाले मेघ सूर्य आदि के तुल्य तेजस्वी पद के लिये (परि स्रव) आगे बढ़ । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ इति पावमानं सौम्यं नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति श्रीमीमांसातीर्थ-विद्यालंकार विरुदोपशोभित-
श्रीपण्डितजयदेवशर्मणा कृते ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये
नवमं पावमानं सौम्यं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

[१]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान्निर्ज॒ग॒न्वान्तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॒न्यप्राः ॥ १ ॥

भा०—(अग्रे) सबसे पूर्व जिस प्रकार (बृहन् अग्निः) महान् अग्नि (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से और (उषसाम् ज्योतिषा) उषाओं की ज्योति से (निः-जगन्वान्) निकलता हुआ (तमसः ऊर्ध्वः) अन्धकार के भी ऊपर (अस्थात्) विराजता और (ऊर्ध्वः आगात्) ऊपर उठता है और (सु-अङ्गः जातः) तेजस्वी होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब लोकों को अपने दीप्त प्रकाश से पूर्ण करता है । उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष भी (बृहन्) महान् (उषसाम्) तेजस्वी पुरुषों के शत्रुनाशक बलों और कामनायुक्त प्रजाओं के ऊपर विराजे, (निर्जगन्वान्) निकलता हुआ, उदय को प्राप्त होकर शत्रु रूप तम को पराजय करे, (सु-अङ्गः) उत्तम तेजस्वी, सुदृढ़ अंग होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब गृहों, आश्रमों और पदों को अपने तेज से पूर्ण करता है । (२) इसी प्रकार बड़ा विद्वान् भी ज्ञान-ज्योति से उदय हो, ज्ञानेच्छुकों के ऊपर विराजे, सबको गृहों के समान ज्ञान-प्रकाशों से पूर्ण करे ।

स जा॒तो गर्भो॑ असि॒ रोद॑स्यो॒रग्ने॒ चारु॒र्विभृ॑त॒ ओष॑धीषु ।
चि॒त्रः शिशु॒ः परि॒ तमां॑स्य॒क्तून्प्र मा॒तृभ्यो॒ अधि॒ कनि॑क्रदद् गाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रोदस्योः गर्भः) उत्तरारणि और अधरारणि दोनों के बीच गर्भवत् गुप्त रहता है, (जातः) उत्पन्न होकर (ओषधीषु विभृतः) तापधारक काष्ठों में धारित होता है (तमांसि परि) अन्धकारों को दूर करके (मातृभ्यः गाः अक्तून् कनिक्रदत्) ज्ञाता, इन्द्रिय चक्षुओं को किरणें देता और प्रकाशित पदार्थों को बतलाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू माता पिता के बीच गर्भवत् उत्पन्न बालक के सदृश (जातः रोदस्योः) उत्पन्न या प्रकट होकर ही स्व और पर सैन्यों या शास्य-शासक दोनों वर्गों का (गर्भः) वश करने हारा (असि) है। तू (चारुः) प्रजाओं का भोक्ता और (ओषधीषु विभृतः) अन्न आदि ओष-धियों पर परिपुष्ट बालकवत् ही (ओषधीषु) तेज प्रताप धारण करने वाली सेनाओं के आश्रय, उनके द्वारा ही (विभृतः) विशेष रूप से परिपुष्ट है। तू (शिशुः) शिशु के समान (चित्रः) परिवर्धन करने योग्य, अद्भुत आश्चर्य कर्मकारी, (शिशुः) प्रजाओं के बीच सोने या शासन करने वाला होकर (तमांसि परि) अन्धकारवत् समस्त खेदों, दुःखों को दूर करता हुआ (अक्तून्) सब दिनों, (मातृभ्यः) मातृवत्, उत्तम राष्ट्रनिर्माता प्रकृति जनों के लिये (गाः अधि कनिक्रदत्) वाणियों और उत्तम भूमियों पर अध्यक्षवत् शासन करे।

विष्णुरि॒त्था प॑र॒मम॑स्य वि॒द्वाञ्जा॒तो बृ॒हन्न॒भि पा॑ति तृ॒तीय॑म् ।
आ॒सा यद॑स्य॒ पयो॒ अक्र॑त॒ स्वं सचे॑तसो अ॒भ्य॑र्च॒न्त्यत्र॑ ॥ ३ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (विष्णुः) व्यापनशील, विद्याओं के पारंगत, विविध विद्याओं में निष्णात होकर (अस्य परमं विद्वान्) इस लोक के परम श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता हुआ, (बृहन् जातः) बड़ा होकर (तृतीयम् अभि पाति) सूर्य जिस प्रकार तीसरे लोक 'द्यौ' को पालता है उसी प्रकार वह (तृतीयम् अभिपाति) तीसरे आश्रम को पालन करता है। (यत्) जो (सचेतसः) समान चित्त होकर (अस्य आसा) इसके

मुख से (पयः) अपने दुग्धवत् ज्ञान को (अक्रत) प्राप्त करते हैं वे (अत्र) उसको (स्वं) अपना जानकर (अभि अर्चन्ति) पूजा करते हैं।

अत॑ उ त्वा पितुभृतो॒ जनि॑त्रीरन्ना॒वृधं॒ प्रति॑ चर॒न्त्यन्नैः॑ ।
ता ई॒ प्रत्ये॑षि॒ पुन॑र॒न्यरू॑पा॒ असि॒ त्वं वि॒क्षु मानु॑षीषु॒ होता॑ ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (जनित्रीः) अग्नि के उत्पादक काष्ठ ही उसको अन्नवत् काष्ठों से बढ़ाते हैं वह (अन्यरूपाः प्रति एति) शुष्क हुए उनको भस्म कर देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (पितुभृतः) अन्नादि-पालक साधनों को धारण करने वाली प्रजाएं (अन्नावृधं त्वा) अन्न से बढ़ने वाले शिशु के सदृश तुझ को नाना (अन्नैः प्रति चरन्ति) अन्नों, भोग्य ऐश्वर्यों से सेवा करते हैं। (पुनः) और तू (अन्य रूपाः) शत्रुरूप हुई, शुष्क स्नेहरहित उनको (प्रति एषि) विपरीत होकर प्राप्त होता है, उनको निर्मूल करता है और तू (मानुषीषु विक्षु) मानुष प्रजाओं में (होता असि) सबको सुखों का दाता और कष्टादि का ग्रहण कर्त्ता होता है।

होता॑रं चि॒त्रर॑थमध्व॒रस्य॑ य॒ज्ञस्य॑यज्ञस्य के॒तुं रुश॑न्तम् ।
प्रत्य॑र्धिं दे॒वस्य॑देवस्य म॒ह्ना श्रि॒या त्व१॒॑ग्निमति॑थिं॒ जना॑नाम् ॥५॥

भा०—(होतारं) सब सुखों वा ज्ञानों के देने वाले, (चित्र-रथम्) आश्चर्यजनक रथ वाले, वा (अध्वरस्य) हिंसा से रहित वा अहिंसनीय, अविनाशी, (यज्ञस्य-यज्ञस्य) प्रत्येक उत्तम यज्ञ, दान सत्संगादि कर्म के (केतुम्) ज्ञाता और ज्ञापक, (रुशन्तम्) तेजस्वी और (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवस्य-देवस्य) प्रत्येक तेजोयुक्त, दानशील, को (प्रत्यर्धि) बढ़ाने वाले (जनानां अतिथिम्) मनुष्यों के बीच अतिथिवत् पूज्य (त्वा) तुझ (अग्निम्) ज्ञान के प्रकाशक विद्वान्,

स्वामी, प्रभु की (श्रिया) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये आश्रय लेता और उपासना करता हूं।

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥ ६॥

भा०—(अध) और (सः तु) वह तू (पेशनानि वस्त्राणि वसानः) उत्तम २ वस्त्रों को धारण करके (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (पृथिव्याः नाभा) भूमि के मध्य सब को बांधने या प्रबंध करने योग्य केन्द्र स्थान में स्थित होकर (अरुषः) तेजस्वी, रोषरहित, (इडायाः-पदे जातः) भूमि के प्राप्त करने के निमित्त सामर्थ्यवान् होकर हे राजन्! तू (पुरः-हितः) सबके समक्ष स्थित होकर (देवान् यक्षि) तेजस्वी पुरुषों की संगति कर, मिल और उनका आदर सत्कार कर।

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥ ७ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! प्रतापशालिन्! राजन्! विद्वन्! सूर्यवत् तू (द्यावापृथिवी उभे हि) सूर्य और भूमि के समान मूर्धन्य शासक जन और आश्रित भूमिवासी प्रजाजन दोनों को तू (मातरा पुत्रः न) माता पिताओं को पुत्र के समान (सदा आततन्थ) सदा वृद्धि कर, उनको बढ़ा। हे (यविष्ठ) बलशालिन्! हे (सहस्य) शत्रुपराजय-कारिन्! (अथ) और तू (उशतः देवान्) कामनावान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषों को (प्र याहि) प्राप्त हो और (इह आ वह) इस राष्ट्र में अपने ऊपर धारण कर, उनको मान आदर से रख। (२) अध्यात्म में—यह अग्नि आत्मा वा प्रभु है जो सूर्य के समान स्वप्रकाश और सर्वोपरि लोक में विद्यमान है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (यविष्ठ) बलशालिन्, (त्वं) तू (उशतः देवान्) कामनावान् मनुष्यों को (पिप्रीहि) पालन कर और (विद्वान्) विद्वान् होकर हे (ऋतु-पते) सूर्यवत् ऋतुओं के सदृश, राजसभा के सदस्यों और तेजस्वी राजभ्राताओं को भी (इह यज) इस राष्ट्र में आदरपूर्वक मिला कर रख । (ये) जो (दैव्या ऋत्विजः) विद्वान् ऋतु २ में यज्ञ करने वाले वा विद्वानों के आदरकर्त्ता हैं (तेभिः) उनके साथ (त्वं) तू भी (होतृणाम् आयजिष्ठः असि) दाताओं और उपदेष्टाओं में सब से श्रेष्ठ दाता, उपासक, पूजक हो ।

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् , प्रतापशालिन् ! तू (होत्रं वेषि) दानकर्म को चाहता है और (उत पोत्रं वेषि) पवित्र करने के कर्म को भी चाहता है । तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (मन्धाता) ज्ञान का धारण करने वाला विद्वान् और (द्रविणः-दाः) धनों का दाता और (ऋत-वा) सत्य ज्ञान और तेज का स्वामी, (असि) है । (वयम्) हम लोग (हवींषि) दातव्य अन्नों का (स्वाहा कृणवाम) उत्तम पत्रों में प्रदान करें । और (अग्निः देवः) ज्ञानी, सर्वप्रकाश तेजस्वी (अर्हन्)

पूज्य होकर देवान् यजतु) विद्वानों का आदर करे वा किरणोंवत् शुभ गुणों का प्रकाश करे ।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ३

भा०—हम (देवानाम् अपि) विद्वान् लोगों के (पन्थाम् अगन्म) मार्ग पर अवश्य चलें । (यत् शक्नवाम) जो कार्य हम कर सकें (तत्) उसे (अनु) पश्चात् क्रम से (प्रवोढुम्) अच्छी प्रकार धारण, समाप्त भी कर सकें । (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशक होता है। (सः यजात्) वही यज्ञ करता, दान देता है, (स इत् उ होता) वही (होता) ग्रहण करने वाला है । (सः अध्वरान् कल्पयाति) वही हिंसा रहित कर्मों को करता है और (ऋतून् कल्पयाति) वही ऋतुओं को अपने २ उत्तम फलोत्पादन में समर्थ करता है । 'पन्थाम्'—वैदिक-मार्गम् इति सायणः ॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ४ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (विदुषां वः यद् व्रतानि) आप विद्वान् जनों के जो कर्म, व्रत-नियमादि (वयं) हम (अविदुस्तरासः) अत्यन्त अज्ञानी होकर भंग करें, विद्वान् तेजस्वी पुरुष (येभिः ऋतुभिः) जिन ऋतुओं, सत्य बलों से (देवान् कल्पयाति) विद्वानों को कार्य करने और फल प्राप्त करने में समर्थ करता है उनही से वह हमारे (तत् विश्वम्) उस सब को (आ पृणाति) पूर्ण करे ।

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥ ५ ॥

भा०—(दीनदक्षाः) हीन-बल (मर्त्यासः) मनुष्य (यत्) जब (पाकत्रा मनसा) अपने न्यून ज्ञान से (यज्ञस्य) यज्ञ के अर्थात् दान, पूजा सत्संग आदि सत्कर्म के विषय में (न मन्वते) नहीं जानें (तत्) तब (क्रतु-वित्) यज्ञकर्मों का जानने वाला (विद्वान् अग्निः) ज्ञानवान्, ज्ञानप्रकाशक पुरुष, (होता) आहुति करने वा ज्ञान देनेवाला, (यजिष्ठः) उत्युत्तम यज्ञशील और दानशील होकर (देवान् ऋतुशः यजाति) देवों, विद्वानों वा काम्य फलों को चाहने वाले जनों को ऋतु अनुसार (यजाति) यज्ञ करे, उनको ज्ञान आदि प्रदान करे।

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (अध्वराणाम्) यज्ञों का (अनीकं) प्रमुख, (चित्रं केतुम्) आश्चर्यकारक ज्ञाता (त्वा) तुझको (जनिता) तेरे गुरु वा पिता ने (जजान) उत्पन्न किया है। (सः) वह तू (नृवतीः क्षाः अनु) मनुष्यों से बसी, भूमियों में (स्पार्हाः) सबसे चाहने योग्य, (क्षुमतीः) अन्नों से परिपूर्ण, (विश्व-जन्याः) सब हितकारिणी, (इषः) नाना वृष्टियों के तुल्य ज्ञानवृष्टियों को (आ यजस्व) प्रदान कर।

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७।३०

भा०—(यं त्वा) जिस तुझको (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमिवत् उत्तम माता पिता उत्पन्न करते हैं, और (यं त्वा आपः) जिस तुझको आप्त जन उत्पन्न करते हैं, (यं त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान) जिस तुझको उत्तम जन्म देने वाला गुरु उत्पन्न करता है, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! तू (पितृ-याणम्) पालक माता पिताओं द्वारा गमन करने योग्य (पन्थाम् प्र विद्वान्) मार्ग को भली भांति जानता हुआ (द्युमत्) तेजस्वी और (समिधानः)

अच्छी प्रकार प्रकाशवान् होता हुआ (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[३]

त्रित ऋषिः अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५—७ त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! तेजस्विन् ! तू (इनः) सब का स्वामी (अरतिः) अति अधिक मतिमान् , (समिद्धः) अग्नि के समान चमकने वाला, (रौद्रः) दुःखों को दूर करने और दुष्टों को रुलाने वाला, (दक्षाय) ज्ञान और कर्म करने के लिये (सु-सु-मान्) उत्तम २ ज्ञान-सामर्थ्यों से सम्पन्न (अदर्शि) दिखाई दे। सूर्य के समान (चिकित्) ज्ञानी पुरुष (बृहता भासा) बड़े तेज से (वि भाति) प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सूर्य (रुशतीम् अपाजन् असिक्नीम् एति) दीप्त वर्ण की उषा को दूर करता हुआ श्याम वर्ण की रात्रि को प्राप्त होता और (असिक्नीम् अपाजन् रुशतीम् एति) श्यामा रात्रि को दूर कर शुक्लवर्ण उषा को प्राप्त करता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी दिन वेला को दूर करके रात्रि को और रात्रि को त्याग कर दिन वेला को प्राप्त हो। अर्थात् वह नियमपूर्वक दिन रात्रि व्यतीत करे। व्रत को खण्डित न करे। अथवा (रुशतीम् अपाजन्) रोचमान विषय रति को छोड़कर (असिक्नीम्) वीर्य-त्याग से रहित ब्रह्मचर्य दीक्षा को प्राप्त करें और फिर (असिक्नीम् अपाजन् रुशतीम् एति) व्रतदीक्षा को छोड़ रोचमाना स्त्री का लाभ करे, विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृहस्थ ग्रहण करे। अथवा असिक्नी अर्थात् रात्रिवत् अविद्या को त्याग विद्या को प्राप्त करे।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (कृष्णाम् एनीम् वर्पसा अभिभूत्) सूर्य कृष्ण वर्ण की रात्रि को अपने उज्ज्वल रूप से अभिभव करता है और (पितुः जाम् योषाम्) बड़े पालक से उत्पन्न उषा को स्त्री समान (जनयन्) प्रकट करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष अपने (वर्पसा) रूप से (कृष्णाम् एनीम् अभिभूत्) कृष्ण वर्ण की मृगछाला को धारण करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे फिर (बृहतः पितुःजाम्) बड़े उत्तम वंश के पिता की कन्या को (योषां जनयन्) अपनी स्त्री करता हुआ (सूर्यस्य भानुं) सूर्य की कान्ति को (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) धारण करता हुआ (वसुभिः) अन्य विद्वानों के साथ (दिवः अरतिः) कामना योग्य पत्नी का स्वामी, उत्तम गृहपति होकर (वि भाति) प्रकाशित हो । (२) उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष बड़े पालक राजा की प्रजातुल्य प्रजा को प्राप्त करे, सूर्य का तेज धारग करता हुआ, (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (दिवः अरतिः) भूमि वा राजसभा का पति होकर चमके ।

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्यैति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रिकाल का जारण, अर्थात् विनाश करता हुआ सूर्य (स्वसारं पश्चात् अभि एति) अपनी भगिनी के तुल्य, वा अन्धकार परे हटाने वाली उषा के पीछे २ आता है और स्वयं (भद्रः) सुखकारी होकर (भद्रया सचमानः आगात्) सुखदायिनी उषा वा कांति के साथ मिलकर आता है, और वह (उशद्भिः वर्णैः) उज्ज्वल रश्मियों से (रामम् अभि अस्थात्) रात्रि के अन्धकार को पराजित करता है उसी प्रकार (भद्रः) प्रजा को सुख देने वाला, विद्वान् उत्तम पुरुष (भद्रया

सचमानः) प्रजा को सुख देने वाली धर्मपत्नी वा बुद्धि वा नीति से युक्त होकर (आगात्) प्राप्त हो। वह (जारः) शत्रु या दुष्टों का नाश करने हारा होकर (स्वसारं) सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली सेना वा (स्वसारं) स्वयं अपनी इच्छानुसार आने वाली प्रजा के (पश्चात् अभिएति) पीछे तदनुकूल रहकर अपने वश करे। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, (सु-प्र-केतैः) उत्तम ज्ञानवान् (द्युभिः) रश्मि-तुल्य विद्वानों के साथ (वितिष्ठन्) विविध कार्यों को करता हुआ, (उशद्भिः) उज्ज्वल वा नाना कामना वाले (वर्णैः) स्वयंकृत विद्वानों के साथ (रामम् अभि अस्थात्) अन्धकार तुल्य शत्रु पर चढ़ाई करे।

अस्य यामा॑सो बृह॒तो न व॒ग्नूनिन्धा॑ना अ॒ग्नेः सख्यु॑ः शि॒वस्य॑।
ईड्य॑स्य॒ वृष्णो॑ बृह॒तः स्वासो॒ भामा॑सो॒ याम॑न्न॒क्तव॑श्चिकित्रे ॥४॥

भा०—(अस्य) इस (बृहतः) महान् (अग्नेः) अग्निवत् तेजस्वी (सख्युः) सब के मित्र (शिवस्य) सबके कल्याणकारक प्रभु एवं राजा के (वग्नून् इन्धानाः) उत्तम २ शब्दों को प्रकट करते हुए (यामासः) राज्यप्रबन्ध, व्यवस्थादि और (ईड्यस्य) स्तुतियोग्य (वृष्णः) सुखों के वर्षक, (बृहतः) महान्, (स्वासः) सुमुख, सौम्य उसके (भामासः) क्रोध वा तेज भी (यामन् अक्तवः) मार्ग में प्रकाश करने वाले रश्मियों के समान (यामन्) राज्यनियन्त्रण में (अक्तवः) स्नेहाधायक वा प्रकाशयुक्त दीपकों के तुल्य (चिकित्रे) ज्ञात हों।

स्व॒ना न यस्य॒ भामा॑सः॒ पव॑न्ते॒ रोच॑मानस्य बृह॒तः सु॒दिव॑ः।
ज्येष्ठे॑भि॒र्यस्तेजि॑ष्ठैः क्रीळु॒मद्भि॒र्वर्षि॑ष्ठेभि॒र्भा॒नुभि॒र्नक्ष॑ति॒ द्याम् ॥५॥

भा०—(यस्य सु-दिवः) जिस उत्तम कामनावान्, सूर्यवत् तेजस्वी (बृहतः) महान् (रोचमानस्य) सब को अच्छा लगने वाले, कान्तिमान्

के (स्वनाः न) आज्ञा-वचनों या गर्जनाओं के समान (भामासः) क्रोध, वा पराक्रम (पवन्ते) प्रकट होते हैं, और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः) अति उत्तम (तेजिष्ठैः) अति तेजस्वी, (क्रीडुमद्भिः) विनोदी, (वर्षिष्ठैः) वयोवृद्ध, (भानुभिः) रश्मितुल्य अज्ञानान्धकार के नाशक, मार्गदर्शक पुरुषों के साथ (द्याम् नक्षति) आकाशवत् पृथिवी को प्राप्त होता है वही उत्तम नेता प्रभु है ।

अस्य शुष्मा॑सो ददृशा॒नप॑वे॒र्जेह॑मानस्य स्वनयन्नि॒युद्भिः॑ ।
प्र॒त्नेभि॒र्यो रुश॑द्भिर्दे॒वत॑मो॒ वि रेभ॑द्भिरर॒तिर्भाति॒ विभ्वा॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देव-तमः) सब देवों, विद्वानों में श्रेष्ठ, (विभ्वा) महान् सामर्थ्यवान् (अरतिः) अतिमतिमान्, सब का स्वामी है वह (प्रत्नेभिः) पुराने, पूर्व से चले आये, वृद्ध, (रुशद्भिः) दीप्तियुक्त (रेभद्भिः) उपदेष्टा जनों सहित (वि भाति) विशेष रूप से सुशोभित होता है। (नियुद्भिः जेहमानस्य) अश्वों, सैन्यों के साथ जाते हुए वायु के समान बलवान् (ददृशान-पवेः) प्रकट बल शस्त्रादि वाले (अस्य) इसके (शुष्मासः) नाना बल (स्वनयन्) मेघ के समान गर्जते हैं ।

स आ व॑क्षि॒ महि॑ न॒ आ च॑ सत्सि दि॒वस्पृ॑थि॒व्योर॑र॒तिर्यु॑व॒त्योः ।
अ॒ग्निः सु॒तुकः॑ सु॒तुके॑भि॒रश्वै॒ रभ॑स्वद्भी॒ रभ॑स्वाँ॒ एह ग॑म्याः ७।३१

भा०—(सः) वह तू (नः) हमें (महि) बड़ा ऐश्वर्य(आ वक्षि) प्राप्त करा । (युवत्योः दिवः-पृथिव्योः) परस्पर मिले आकाश और पृथिवी दोनों पर सूर्य के समान युवा युवति, एवं शासक शास्य जनों पर (आ सत्सि च) तू अध्यक्षवत् विराज, उनका शासन कर । वह तू (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक, अग्रणी नायक होकर (सु-तुकेभिः अश्वैः) सुख से जाने वाले अश्वों से (स्वयं सु-तुकः) सुख से जाने वाला और (रभस्वद्भिः रभस्वान्) वेगवान् अश्वों से वेगवान् होकर (इह स्वान् आगम्याः) यहां अपनों को प्राप्त कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् ॥ ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते॑ यक्षि॒ प्र त॑ इयर्मि॒ मन्म॒ भुवो॒ यथा॒ वन्द्यो॑ नो॒ हवे॑षु ।
धन्व॑न्निव प्र॒पा अ॑सि॒ त्वम॑ग्न इय॒क्षवे॑ पू॒रवे॑ प्रत्न राजन् ॥ १ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! हे दीप्यमान ! सबके मनों का अनुरञ्जन करने हारे प्रभो ! मैं (ते प्रयक्षि) तेरी अच्छी प्रकार पूजा करूं । (ते मन्म प्र इयर्मि) तेरी मैं खूब स्तुति करूं (यथा) जिस प्रकार से भी हो तू (हवेषु) यज्ञों में (नः वन्द्यः भुवः) हमारा वन्दना करने योग्य है । हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय ! तू (इयक्षवे पूरवे) पूजा करने वाले, सत्संगी मनुष्य के लिये (धन्वन् इव प्रपा असि) चातक के लिये आकाश में स्थित मेघवत् और मरुस्थल में विद्यमान् 'प्रपा' प्याऊ के समान उत्तम रसपान कराने और उत्तम रक्षा करने हारा है । इसी प्रकार राजा भी (हवेषु) युद्धों में स्तुत्य है । वह (धन्वन् प्रपा) धनुष के बल पर प्रजा का उत्तम रक्षक हो ।

यं त्वा॒ जना॑सो अ॒भि सं॒चर॑न्ति॒ गाव॑ उ॒ष्णमि॑व व्र॒जं य॑विष्ठ ।
दू॒तो दे॒वाना॑मसि॒ मर्त्या॑नाम॒न्तर्म॒हाँश्च॑रसि रोच॒नेन॑ ॥ २ ॥

भा०—(गावः उष्णम् इव व्रजम्) गौएं जिस प्रकार शीत से पीड़ित होकर उष्ण, गोशाला की ओर आजाती हैं, उसी प्रकार हे (यविष्ठ) बलशालिन् ! (यम् उष्णम्) जिस अग्निवत् प्रतापी (त्वा) तुझ को (जनासः) मनुष्य शीतार्त्त जनों के समान (अभि सञ्चरन्ति) शरण आते हैं, वह तू (देवानाम्) उत्तम पुरुषों के बीच में (दूतः) पूजित एवं प्रतापी, गुणों में महान् सूर्य वा अग्निवत् ही (मर्त्यानाम् अन्तः) मनुष्यों के भीतर (रोचनेन) अपने प्रकाश से (चरसि) विचरता है ।

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः॥ ३॥

भा०—(शिशुं न माता) जिस प्रकार माता बच्चे को (सचनस्यमाना बिभर्त्ति) अपने संपर्क में रखना चाहती हुई पालती पोषती है, उसी प्रकार (माता) पृथिवी, (त्वा) तुझ (जेन्यं) विजयशील को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई और (सचनस्यमाना) तेरे साथ सम्पर्क रखती हुई (त्वा बिभर्त्ति) तुझे धारण करती है तुझे पुष्ट करती है। और तू (हर्यन्) धनादि की कामना करता हुआ, (अवसृष्टः पशुः इव) छूटे हुए पशु के समान स्वच्छन्द होकर (धनोः अधि) धनुष के बल पर (प्रवता यासि) अपने नीचे के स्थानों को प्राप्त करता और (जिगीषसे) उनको जीतना चाहता है।

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! हे (अमूर) अमूढ़! मोहरहित! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! (वयं मूराः) हम मोह में पड़े मनुष्य (महित्वं न विद्मः) तेरे महान् सामर्थ्य को नहीं जानते। (अंग) हे तेजस्विन्! (त्वं वित्से) तू ही उसे जानता है। तू (वव्रिः) रूपवान्, वरणीय, होकर (शये) सुख से सोता है और (जिह्वया अदन् चरति) जिस प्रकार मनुष्य जीभ से भोजन करता है वा अग्नि ज्वाला से पदार्थों को खाता हुआ फैलता है, उसी प्रकार तू भी (जिह्वया) वाणी के बल से (अदन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ विचरता है, और (विश्पतिः सन्) प्रजा का पालक राजा होकर (युवतिं रेरिह्यते) स्त्रीवत् भूमि का उपभोग करता है।

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥

भा०—(धूम-केतुः) धूम की ध्वजा वाला अग्नि, (पलितः वने तस्थौ) व्याप कर वन या काष्ठ में रहता है, (नव्यः सनयासु चित् जायते) स्वयं नया होकर पुरानी सूखी गतिशील लकड़ियों में कहीं भी उत्पन्न होजाता है, वही अग्नि (वृषभः) जल-वर्षणकारी मेघस्थ विद्युत् होकर (अस्नाता आपः प्रवेति) विना गीला हुए ही जलों में व्यापता है, और (यं मर्त्ता सचेतसः प्र-णयन्त) ज्ञानवान् मनुष्य जिसे उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (नव्यः) स्तुत्य जन् (सनयासु) पूर्व विद्यमान प्रजाओं में, नीतियुक्त सभाओं के बीच में (क्वचित् जायते) कहीं भी बनाया जाता है और वह (पलितः) वयो-वृद्धवत् पूज्य ज्ञानवान् (धूम-केतुः) शत्रुओं को कंपित करने वाले ज्ञापक ध्वजा से युक्त, अथवा स्वयं केतुवत् उन्नत होकर (वने तस्थौ) ऐश्वर्य युक्त पद पर वा सैन्यदल में विराजता है। और (वृषभः आपः न) बैल जिस प्रकार पिपासित होकर जलों के पास जाता है उसी प्रकार स्वयं वह (अस्नाता) अनभिषिक्त होकर, भी (आपः प्रवेति) आप्त प्रजाजनों को प्राप्त करता है, और तब (मर्त्ताः) मनुष्य (स-चेतसः) एक समान चित्त वाले होकर (यं प्र-नयन्त) जिसको प्रधान पद पर स्थापित करते हैं।

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्।
इयन्ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा) अपने देह को त्यागने वाले, वन में विचरने वाले पापकर्मा दो चोर (दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्) दसों रस्सियों से मनुष्य को बांध डालते हैं और जिस प्रकार (तनूत्यजा) देह को त्याग कर, धड़ से पृथक् लटकती (तस्करा) नाना और निरन्तर काम करने वाली (वनर्गू) ग्राह्य पदार्थों तक पहुंचने

वाली बाहुएं (दशभिः रशनाभिः) दसों अंगुलियों से पदार्थ को (अभि अधीताम्) अच्छी प्रकार पकड़ती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! नायक ! तेरी ये दोनों सेनाएं (तनूत्यजा इव) अपना देह छोड़ने में समर्थ, (तस्करा) निरन्तर दिन-रात कर्म करने में समर्थ (वनर्गू) सैन्य-ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा हिंसनीय शत्रुदल में जाने वाली, दोनों सेनाएं दो बाहुओं के समान (दशभिः रशनाभिः) प्रबल २ दूर २ तक व्यापने वाली शक्तियों, रश्मियों या मर्यादा व्यवस्थाओं से शत्रु वा राष्ट्र को (अभि अधीताम्) बांध लें। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! (इयं ते) यह तेरी (नव्यसी मनीषा) अतिस्तुत्य बुद्धि है, इससे (शुचयद्भिः) शुचि, ईमानदार होकर काम करने वाले (अंगैः) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों से (रथं न) अश्वों से रथ के तुल्य इस राष्ट्र को (युक्ष्व) जोड़, सञ्चालित कर।

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन्७।३२

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त उत्तम पदार्थों को जानने वाले ! विद्वन् ! समस्त वेदस् अर्थात् धनैश्वर्यों के स्वामिन् ! एवं बुद्धिमन् ! (ब्रह्म च) वेद और (इयं च गीः) यह वाणी (ते सदम् इत्) तेरी सदा ही (वर्धनी भूत्) बढ़ाने हारी हो। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी ! ज्ञानवन् ! (नः तनयानि तोका) हमारे पुत्रों और पौत्रादि संततियों की (रक्ष) रक्षा कर। (उत नः तन्वः) और हमारे शरीरों की (अप्रयुच्छन् रक्ष) विना प्रमाद किये हुए रक्षा कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[५]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २—५ त्रिष्टुप्। ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥ १ ॥

भा०—वह प्रभु, राजा, (एकः) एक, अद्वितीय, (समुद्रः) समस्त संसार का उद्भवस्थान, समुद्र के समान अपार, गम्भीर रत्नों के खान के समान, (रयीणां धरुणः) सब ऐश्वर्यों का आश्रय है । वह (भूरि-जन्मा) नाना जनों का स्वामी होकर (अस्मत् हृदः) हमारे हृदयों तक को भी (विचष्टे) विशेष रूप से देखता है । जिस प्रकार सूर्य (निण्योः उपस्थे) आकाश और भूमि के बीच (ऊधः) अन्तरिक्ष में (सिषक्ति) स्थित होता है, उसी प्रकार (निण्योः) अधीन, सन्मार्ग पर चलाने योग्य शासक और शास्य वर्ग दोनों के (उपस्थे) समीप वह (ऊधः) उत्तम पद पर (सिषक्ति) स्थिर हो, और (उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः) जिस प्रकार अग्नि विद्युत् रूप मेघ के बीच में स्थान को व्यापता है उसी प्रकार वह (उत्सस्य) मेघ या कूपवत् उन्नत वा अवनत, ऊंचे या नीचे जन समुदाय के (मध्ये) बीच में (निहितं पदं) स्थित 'पद', अधिकार को भी (वेः) प्राप्त करता है । राजा के सर्वाधिकार हैं । (२) परमेश्वर एक, अपार, सर्वाश्रय, सर्वोद्भव, सर्वद्रष्टा, बहुत से पदार्थों का जन्मदाता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है ।

समानं नीळं वृषणो वसानाः सञ्जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥ २ ॥

भा०—(वृषणः) बलवान् (महिषाः) बड़े २ पुरुष (समानं नीडं वसानाः) एक समान पद को धारण करते हुए, (अर्वतीभिः) शत्रु-हिंसक सेनाओं के साथ (संजग्मिरे) मिल कर रहें । (कवयः) विद्वान् लोग (ऋतस्य पदं नि पान्ति) सत्य न्याय पद को खूब सुरक्षित रक्खें । (गुहा) बुद्धि में (पराणि नामानि) पर, सर्वोत्कृष्ट नामों, विनयकारी

उपायों को (दधिरे) धारण करें। (२) वीर्यवान् बड़े प्रजपालक जन एक आश्रय में रहकर ज्ञानप्रकाशक वाणियों से युक्त हों। विद्वान् जन सत्य ज्ञान वेद से गन्तव्य तत्व की रक्षा करते हैं, वही परम प्रभु के उत्कृष्ट रूपों को अपनी बुद्धि में धारते, विचारते हैं।

ऋतायिनी मायिनी सं दधात मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः॥३॥

भा०—(ऋतायिनी मायिनी) अन्नवाले बुद्धिमान् माता पिता जिस प्रकार (शिशुं सं दधाते) बालक को मिलकर पोषण करते हैं (वर्धयन्ती शिशुं मित्वा जज्ञतुः) उसको बढ़ाते हुए, माप २ कर उसको बड़ा करते हैं। उसी प्रकार शास्य और शासक दोनों वर्ग भूमि आकाशवत् अधरोत्तर रहकर (ऋतायिनी) अन्न और तेज से सम्पन्न, (मायिनी) ज्ञान, धन और बल से सम्पन्न होकर (सं दधाते) मिलकर रहें। और (शिशुं) शासन करने वाले राजा को (मित्वा) बना कर (वर्धयन्तीः) उसको बढ़ाते हुए (जज्ञतुः) उसको प्रकट करें। और (चरतः ध्रवस्य) जङ्गम और स्थावर दोनों प्रकार के (विश्वस्य) जगत् के (नाभिं तन्तुं) बांधने वाले और विस्तार करने वाले को (मनसा) चित्त से, ज्ञानपूर्वक (वियन्तः) विशेष रूप से जानते हुए (कवेः) इस जगत् के परे विद्यमान प्रभु के विषय में भी (चित्) ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। संसार की रचना में आत्मा और प्रकृति दोनों ज्ञान, परम कारण रूप ऋत से युक्त चित् और माया, अर्थात् निर्मात्री शक्ति से युक्त होकर, इस जगत् को शिशुवत् उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार विद्वान् लोग उन दोनों को ही, स्थावर जङ्गमात्मक संसार के नाभि और तन्तुवत् जान कर उस परम सर्वज्ञ प्रभु का स्मरण करते हैं।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम्॥४॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतस्य वर्तनयः) अन्न के उत्पादक विद्वान् लोग (वाजाय इषः) अन्न को चाहते हुए (प्रदिवः सुजातम् सचन्ते) अति तेजस्वी सूर्य से उत्पन्न मेघ को या परमाकाश में स्थित सूर्य को कारण जानते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य वर्तनयः) ज्ञान, सत्य निर्णय और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, उसके लिये चेष्टाशील, ज्ञानार्थी, सत्यार्थी और धनार्थी लोग (वाजाय इषः) ज्ञान-ऐश्वर्य की कामना करते हुए (प्र-दिवः) उत्तम ज्ञान और तेज से (सु-जातम्) सुपूजित और प्रसिद्ध विद्वान् और राजा को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों (आधीवासं वावसाने) सूर्यरूप अग्नि को अपने ऊपर अध्यक्षवत् वा उत्तरीयवत् धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलों और अन्नों से (मधूनां) मधुर पदार्थों के उत्पादक अध्यक्ष सूर्य की ही महिमा बढ़ाते है उसी प्रकार (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाला रुद्र, सेनापति और उसकी सेना दोनों मिलकर अपने ऊपर (अधीवासं वावसाने) उत्तरीय पटवत् अधिशासक नायक राजा को धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलों और अन्नों द्वारा (मधूनां) मधुर, सुखप्रद पदार्थों, ऐश्वर्यों और बलों के अध्यक्ष की ही (वावृधाते) वृद्धि करें।

सप्त स्वसॄरुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम्।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥ ५ ॥

भा०—(विद्वान्) ज्ञानवान्, चेतनावान् आत्मा (सप्त) सात, वा गतिमान् (स्वसॄः) स्व आत्मा से ही उत्पन्न होकर निकलने वाली (अरुषीः) कान्तियुक्त, सात ज्वालाओं के समान आंख नाक, कान मुख द्वारों में स्थित सात प्राणधाराओं को (वावशानः) चाहता या वश करता हुआ (दृशे)बाह्य पदार्थ को देखने के लिये (मध्वः कम् उत् जभार) मधुर रसरूप मधुर सुख को उत्तम शिरःस्थान में प्रकट करता है। और वह (पुराजाः) पूर्ववत् जन्म लेने हारा जीव (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्यवत् अन्तःकरण में स्थित

रह कर उन सब प्राणों को (अन्तः येमे) अपने भीतर ही बद्ध रखता है। और (वव्रिम् इच्छन्) अपने बाह्य रूप देह को चाहता हुआ (पूषणस्य अविदत्) पोषक माता पिता को भूमिवत् प्राप्त करता है। उसी प्रकार (विद्वान्) ज्ञानी, ऐश्वर्यपद को प्राप्त करने वाला राजा (स्वसृः) स्वयं आगे बढ़ने वा अच्छी प्रकार राष्ट्र को सञ्चालन करने में कुशल (अरुषीः) तेजस्विनी रोषादि रहित सौम्य-स्वभाव वाली (सप्त) सात प्रकृतियों को (वावशानः) चाहता और उनको अपने वश करता हुआ, (मध्वः) मधुर प्रजा को तृप्त करने वाले बल और ऐश्वर्य या राष्ट्र को (दृशे) देखने के लिये (कम् उत् जभार) उनको उत्तम पद पर स्थापित करे वह (पुराजाः) पूर्ववत् प्रसिद्ध राजा (अन्तरिक्षे अन्तः) अपने भीतरी राष्ट्र के भीतर ही उन सातों को (येमे) नियम में रक्खे। और (वव्रिम्) उत्तम तेजस्वी रूप को चाहता हुआ, (पूषणस्य अविदत्) राष्ट्र पोषक वर्ग को वा भूमि को प्राप्त करे। अथवा-(पूषणस्य इच्छन् पवित्रं अविदत्) प्रजापोषक अन्न को चाहता हुआ जलप्रद कूप को प्राप्त करे।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

भा०—(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) विद्वान् लोगों ने सात 'मर्यादाएं' कही हैं। मनुष्य को खाजाने या नाश करने से उनको 'मर्यादा' कहा है। (तासाम् एकाम् इत्) उनमें से एक को भी जो (अभि गात्) प्राप्त हो वह (अंहुरः) पापी है। (उपमस्य आयोः) समीपवर्ती मनुष्य को (स्कम्भः) थम्भे के समान बांधने वा थामने वाला, (पथां विसर्गे) मार्गों के विविध दिशाओं में जाने के केन्द्र स्थान में (स्कम्भः) दीपक या दिग्दर्शक स्तम्भ के रूप में वा (धरुणेषु स्कम्भः) गृह में लगे धरन के दण्डों के बीच थम्भे के समान राजा भी (धरुणेषु) राष्ट्र के बीच वा धारण करने योग्य प्रजाजनों के बीच में केन्द्रस्थ स्तम्भ के समान (तस्थौ)

स्थिर होकर विराजे। राजा या व्यवस्थापक दोनों का यही कर्त्तव्य है। सात मर्यादाएं—पानमक्षाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारुष्यमन्यदूषणम् इति सप्त मर्यादाः ॥ यद्वा स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां सुरापानं दुष्कृतकर्मणः पुनः पुनः सेवनं पातकेऽनृतोद्यमिति। निरु० ॥ सुरापान, जूआ खेलना, स्त्री, व्यसन, मृगया, कठोर दण्ड, कठोर वचन और दूसरे पर मिथ्या, दोषारोपण, ये सात कार्य मनुष्यों को भक्षण कर जाने से 'मर्य-अदाः' 'मर्यादा' कहाती है। अथवा–चोरी, गुरु-स्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, सुरापान, दुष्कर्म का बार २ सेवन और पाप करके असत्य भाषण ये सात 'मर्यादा' कही हैं।

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ७।३३।५

भा०—(परमे व्योमन्) सर्वश्रेष्ठ, विशेष रक्षा करने वाले और (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (जन्मन्) उत्पत्ति स्थान और (अदितेः-उपस्थे) 'अदिति' अखण्ड वा अदीनशक्ति के धारण करने वाले अध्यक्ष पर ही (असत् च सत् च) असत् और सत् दोनों निर्भर हैं। जैसे सर्वरक्षक सर्वशक्तिमान्, प्रकृति के भी आश्रय प्रभु में व्यक्त अव्यक्त, कार्य और कारण दोनों आश्रित हैं। (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और न्याय-व्यवस्था का (प्रथम-जाः) सबसे प्रथम, मुख्य प्रकट करने वाला (अग्निः ह) निश्चय से वह सर्वप्रकाशक तेजस्वी राजा वा प्रभु है। (पूर्वे आयुनि) पहले जन समुदाय में भी वही (वृषभः च) मेघ के समान सुखों की वर्षा करने वाला और (धेनुः) माता गौ के समान पालक पोषक था। (२) वही प्रभु सत्य का प्रथम प्रकाशक और पूर्व के कल्प में भी वही (वृषभः) जगत् का धारण करने वाला और (धेनुः च) गौ के समान सर्वपोषक रहा। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

[६]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । २ विराट् पंक्तिः । ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् पंक्तिः । ६ पंक्तिः । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ १ ॥

भा०—(अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञान के प्रकाशक के (शर्मन्) गृह या शरण या सुख में (अभिष्टौ) अभीष्ट फल प्राप्त करने के लिये (जरिता) स्तुति करने वाला पुरुष (यस्य अवोभिः) जिसके रक्षाओं, ज्ञानों और स्नेहों से (एधते) बढ़ता है, और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः भानुभिः) उत्तम कान्तियों से (ऋषूणां पर्येति) ज्ञानदर्शी विद्वानों और विद्यार्थियों के बीच (परिवीतः) कान्ति युक्त सूर्यवत् तेस्वस्वी वा उपवीत होकर (परि एति) प्राप्त होता है (सः) वह ही (वि-भावा) विशेष कांति से उज्ज्वल (अयं सः) यह (अग्निः) तेजस्वी 'अग्नि' नाम से कहाने योग्य है ।

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (भानुभिः) प्रकाशों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशक होकर (वि भाति) विशेष रूप से चमकता और प्रकाश करता है उसी प्रकार (यः) जो (अजस्रः) न नाश होने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञानवान्, यज्ञवान् पुरुष भी (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों और उत्तम विद्वानों, विजयी वीरों से (वि-भाति) चमकता है और (यः)

जो (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सख्या आ विवाय) सख्य भाव से प्राप्त होता है वह (सप्तिः न अत्यः) वेगवान् अश्व के समान (अपरिह्वृतः) कभी कुटिल मार्गगामी नहीं होता ।

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वस्याः देववीतेः) समस्त संसार के प्रकाशमान सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने में (ईशे) समर्थ है, और जो (विश्वायुः) सर्वव्यापक, सबका जीवनदाता होकर (उषसः) प्रभात के (वि-उष्टौ ईशे) प्रकाशित करने में सूर्यवत् समर्थ है। (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निवत् प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय में (मना हवींषि) समस्त विचार योग्य ज्ञान हों अग्नि में हवि के समान हैं, वह (अरिष्ट-रथः) अति मंगलकारक रमणीय स्वरूप वाला प्रभु (शूषैः स्कभ्नाति) अपने बलों से समस्त जगत् को थामता है। (२) इसी प्रकार जो सब वीरों के भोजन देने में समर्थ है, जो सबका जीवन रक्षक, (उषसः) कामना करने और शत्रु को भस्म करने वाली प्रजा वा सेना को तीक्ष्ण करने में समर्थ है जिस में सब स्तुति और देने योग्य भेटें, करादि प्राप्त हों वह अनष्ट रथ वाला अपने बलों से राष्ट्र को दृढ़ करता है ।

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति । मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥

भा०—(सः) वह (शूषेभिः वृधः) नाना बलों से स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाला, और (अर्कैः जुषाणः) अर्चना, स्तुत्यादि करने योग्य, स्तुति वचनों से सेवनीय, प्रीति करने वाला, (रघुपत्वा) तीव्र गामी रथों, अश्वों से जाने वाला, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (देवान् अच्छ जिगाति) समस्त विद्वानों, वीरों को आदर पूर्वक प्राप्त

करता है। वह (मन्द्रः) स्तुति योग्य (होता) सब सुखों का दाता, शत्रुओं को ललकारने वाला, (जुह्वा यजिष्ठः) उत्तम वाणी से सब का सत्कार करने वाला, (सं-मिश्लः) सब के साथ प्रेमभाव से सम्बद्ध, (अग्निः) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (देवान् आ जिघर्त्ति) सब उत्तम गुणों, जनों और वीरों को प्राप्त करता है।

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रं न रेजमानं) देदीप्यमान सूर्य के समान चमकने वाले (उस्राम्) नाना ऐश्वर्यों के देने वाले, (तम् अग्निम्) उस अग्नि तुल्य ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष को (नमोभिः गीर्भिः) विनय युक्त वाणियों,अन्नादि सत्कारों द्वारा (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो। (यं) जिसको (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (मतिभिः) नाना स्तुतियों से (आ गृणन्ति) साक्षात् स्तुति और उपदेश करते हैं उस (जात-वेदसं) ऐश्वर्यों, ज्ञानों से सम्पन्न (सहानां) समस्त बलों के (जुह्वम्) मुख्य एवं दाता प्रतिगृहीता को तुम भी (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो।

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥ ६ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके अधीन (विश्वा वसूनि सं जग्मुः) समस्त ऐश्वर्य एकत्र हैं, और जिसके अधीन (वाजे सप्तीवन्तः अश्वाः न एवैः) संग्राम में तीव्रगामी अश्वों के समान सभी जन अपने २ कर्मों सहित एकत्र हैं, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! वह तू (अस्मे) हमारे लिये (इन्द्र-वात-तमाः) तेजस्वी पुरुषों द्वारा प्राप्त (ऊतीः) रक्षाएं (अर्वाचीनाः) प्राप्त (आ कृणुष्व) करा।

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥१॥

भा०—(अध हि) और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (सद्यः जज्ञानः) अति शीघ्र प्रकट होकर ही (हव्यः) स्तुत्य (बभूथ) होता है। (ते देवासः) वे सूर्यादिवत् तेजस्वी एवं नाना कामना वाले, व्यवहारवान् जन भी (ते केतम् अनु आयन्) तेरे ही ज्ञान-प्रकाश का अनुसरण करते हैं। (अध) और वे (प्रथमासः ऊमाः) सब गुणों में उत्कृष्ट और सुरक्षित होकर (अवर्धन्त) वृद्धि को पाते और रक्षक होकर अन्यों को बढ़ाते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

[७]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । विराट् त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप, सब सुखों के दाता ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! सब पापों को दग्ध करने हारे ! तू (विश्वायुः) सब का जीवन और अन्नवत् प्राणाधार है। तू (यजथाय) यज्ञ के लिये (नः) हमें (दिवः पृथिव्या) आकाश और भूमि से (स्वस्ति) सुख कल्याण (धेहि) प्रदान कर। हे (दस्म) सब दुःखों के नाश करने वाले (तव प्र-केतैः) तेरे उत्तम ज्ञानों से (सचेमहि) हम सदा युक्त हों। हे (देव) तेजस्विन् ! तू (नः) हमारी (उरुभिः शंसैः) बड़े उत्तम, बहुत से अनु-शासनों से (उरुष्य) रक्षा कर।

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! स्वप्रकाशक ! (इमाः मतयः) ये वाणियें (तुभ्यं जाताः) तेरी स्तुति के लिये प्रकट हुईं (गोभिः अश्वेभिः राधः गृणन्ति) गौवों, अश्वों सहित समस्त धन (तुभ्यं) तेरा ही बतलाती हैं। (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (ते भोगम् अनु आनट्) तुझ से ही अपना सब भोग्य पदार्थ, भोजन आदि प्राप्त करता है, हे (वसो) सबको बसाने वाले ! हे (सुजात) उत्तम गुणों से प्रकाशित ! तब वह मनुष्य (मतिभिः दधानः) उत्तम मतियों से ही उसको प्राप्त करता है।

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—मैं (अग्निम्) उस प्रकाशमान तेजस्वी, पापों के भस्म करने वाले, सर्व प्रथम, सर्वोपास्य, सर्व-प्रकाशक, ज्ञानदाता मार्गदर्शी को ही (पितरं मन्ये) पालक पिता के समान मानता हूँ। (अग्निम् आपिम्) उस अग्रणी को ही बन्धु मानता हूँ। (अग्निं भ्रातरम्) उस तेजस्वी को ही भ्राता के समान सहायक और (सदम् इत्) सदा ही (सखायम्) मित्र (मन्ये) मानता हूँ। मैं (बृहतः अग्नेः) उस महान् सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक अग्नि के (अनीकं) भारी बल की (सपर्यम्) उपासना करता हूँ। (दिवि) आकाश में (सूर्यस्य) सूर्य के समान सबके संचालक, सर्वोत्पादक प्रभु के (यजतं शुक्रं) अतिपूज्य, शुद्ध कान्तिमय स्वरूप की मैं उपासना करूं।

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे धियः) हमारी बुद्धियां, स्तुतियां और हमारे किये काम (सिध्राः) सिद्ध होकर (अस्मे सनुत्रीः) हमें उत्तम २ फलदायक हों। तू (नित्य-होता) सदा, नित्य

ऐश्वर्यों का देने वाला, प्रभु (यं दमे त्रायसे) जिसको गृह में या अपने शासन में रख कर उसकी रक्षा करता है (सः ऋतावा) वह सत्य ज्ञान और धन का स्वामी, (रोहित्-अश्वः) लाल अश्वों का स्वामी, नायक और वह (पुरु-क्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी होजाता है। हे प्रभो! (द्युभिः अहभिः) तेजोयुक्त सब दिनों (अस्मा वामम् अस्तु) हमें उत्तम धन प्राप्त हो और हमारा कल्याण हो।

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम्।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥

भा०—(द्युभिः हितम्) दीप्तियों, प्रकाशों से युक्त, (मित्रम् इव प्रयोगं) स्नेही मित्र के समान उत्तम योग करने योग्य, योग द्वारा प्राप्य, (प्रत्नम्) अनादि, पुराण, (ऋत्विजम्) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, काल में उत्तम सुखद फल के दाता, (अध्वरस्य) अविनाशी यज्ञ, जगत् के (जारम्) विनाश करने वाले वा अविनाशी यज्ञ के उपदेष्टा, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक अग्नि को (बाहुभ्याम् अजनयन्त) जिस प्रकार मथ कर बाहुओं से प्रकट करते हैं उसी प्रकार उस प्रभु को (बाहुभ्यां अजनन्त) बाहुएं फैला कर याचना करते हुए उसकी महत्ता को प्रकट करते हैं। और उसी (होतारं) सर्वदाता प्रभु को (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (नि असादयन्त) प्राप्त करते हैं।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः। उप० ॥

(२) इसी प्रकार तेजस्वी, प्रजास्नेही, उत्तम प्रयोक्ता, नियन्ता तेजस्वी पुरुष को वीर लोग (बाहुभ्याम्) अपने बाहुबलों के पराक्रमों से बनावें और प्रजाओं में सिंहासन पर राजा बनाकर स्थापित करें।

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के दातः ! हे प्रकाशस्वरूप ! तू (देवान्) समस्त सूर्यादि लोकों का (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ करता है, उनको तू ही प्रकाश देता है । (अप्रचेताः) अविद्वान् (पाकः) अपक्व बुद्धि वाला पुरुष वा दुःखों से तप्त पुरुष (ते किं कृणवत्) तेरी क्या उपासना करेगा ? हे (देव) देव ! दानशील ! तू (ऋतुभिः) ऋतुओं से (यथा देवान् अयजः) जिस प्रकार सूर्य वायु जलादि की परस्पर संगति करता है (एवा) उसी प्रकार हे (सु-जात) सर्वोत्तम प्रकाशक ! (तन्वं) इस महान् ऐश्वर्य या विश्व वा देह को भी तू (यज) सुसंगत कर ।

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वोऽअप्रयुच्छन् ७।२

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् प्रभो ! तू (नः अविता उत गोपा भव) हमारा पालक और रक्षक हो। तू (नः वयः-कृत् उत वयोधाः भव) हमें जीवन देने वाला और हमारा बल धारण कराने वाला हो । तू (नः सुमहः हव्यदातिं रास्व) हमें बहुत बड़े अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का दान कर । (उत नः तन्वः) हमें और हमारे शरीरों वा पुत्र पौत्रादि की भी (अप्रयुच्छन्) विना प्रमाद किये (त्रास्व) रक्षा कर । इति द्वितीयो व र्गः ॥

[८]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषिः ॥ १—६ अग्निः । ७—९ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५—७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥
अष्टमं सूक्तम् ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ १ ॥

भा०—वह (अग्निः) प्रकाशस्वरूप प्रभु (बृहता केतुना) बड़े

भारी ज्ञान से और प्रकाश से सूर्यवत् (प्र याति) सर्वोपरि पद को प्राप्त है। वह (वृषभः) सब सुखों का वर्षक (रोदसी) आकाश और भूमि को मेघ के समान व्याप कर (आ रोरवीति) गर्जता है, उनको नाना ध्वनियों से पूर्ण करता है। (दिवः चित् अन्तान्) आकाश के छोरों और (उपमाम्) समीप के स्थानों में सबको (उद् आनट्) व्याप कर भी सर्वों पर विद्यमान है। वह (महिषः) महान् होकर (अपाम् उपस्थे) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और समस्त जीवों के भी ऊपर स्थित रहकर (ववर्ध) सबसे बड़ा है। इसी प्रकार तेजस्वी राजा बड़े भारी ध्वजा से प्रयाण करे, आकाश भूमि को मेघवत् गर्जना से गुंजावे। दूर और पास सब का शासन करे, (अपाम्) प्रजाओं के बीच वह महान् सामर्थ्य होकर बढ़े।

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत्।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह आत्मा (गर्भः) सबको अपने में ग्रहण करने वाला, (वृषभः) मेघवत् समस्त सुखों का वर्षक, बलवान् (ककुद्मान्) सर्वोच्च तेजस्वी, (अस्रेमा) सर्वश्रेष्ठ, (वत्सः) स्तुत्य, सब में व्यापक वा उपदेष्टा, (शिमीवान्) कर्मों को करने में कुशल, (अरावीत्) उपदेश करता है। (सः) वह (देवताति) पृथिव्यादि समस्त लोकों और किरणों में सूर्यवत् (स्वेषु क्षयेषु) अपने समस्त ऐश्वर्यों व लोकों में (उद्यतानि कृण्वन्) उत्तम २ व्यवस्थाएं करता हुआ, (प्रथमः) सबसे प्रथम होकर (जिगाति) विराजता व्यापता है। (२) वह जीवात्मा सब में श्रेष्ठ देह-शकट का बलीवर्द, प्रथम गर्भ रूप में और फिर वत्सरूप में उत्पन्न होता है, रोता है। वह देव अर्थात् इन्द्रियों के अपने २ स्थानों को स्थापित करता है। वह सबसे मुख्य होकर व्यापता है। 'अस्रेमा' प्रशस्यनामैतत् ॥

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्धन्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (पित्रोः) सब जीवों के पालक माता पिता के तुल्य आकाश और भूमि या सूर्य भूमि के (मूर्धानं) सर्वोच्च या मुख भाग को बनाता है या जो माता पिताओं के सर्वोच्च पद को प्राप्त है, उस (सूरः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, शक्तिशाली पुरुष के ही (अर्णः) तेज को (अध्वरे दधिरे) यज्ञ में अग्निवत् इस विराट यज्ञरूप में सब दिव्य पदार्थ धारण करते हैं। (अस्य पत्मन्) इसके शासन में ही (अरुषीः) तेजस्विनी (अश्व-बुध्नाः) भोक्ता आत्मा से बद्ध वा मन इन्द्रियों के आश्रय रूप (तन्वः) नाना देहों को (ऋतस्य योनौ) सत्य कारण रूप प्रकृति-तत्व में जीवगण (जुषन्त) सेवन करते हैं। (२) वह राजा वा गुरु मा बाप से भी उच्च पद पर स्थित है, उसके शासन में अश्वादि सैन्य, अन्न के आश्रय रहते हैं।

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सब में बसने हारे आत्मन् ! जिस प्रकार (उषः-उषः) प्रत्येक उषा में (त्वम् अग्रम् एषि) तू सर्वप्रथम पद को प्राप्त होता है, तू (यमयोः) दिन रात के जोड़ों में सूर्यवत् (यमयोः) भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध से बद्ध युगल जीव और प्रकृति दोनों में (वि-भावा अभवः) विशेष कान्ति और सामर्थ्य से युक्त है। (ऋताय) संचालन करने के लिये ही, तू (सप्त पदानि दधिषे) सातों लोकों को धारण करता है। (स्वायै तन्वे) अपने ही विस्तृत जगत्-मय देह के लिये (मित्रं जनयन्) मित्र, वायु, जल आदि प्राण को भी प्रकट करता है। (२) इसी प्रकार प्राण अपान यम में प्रभु अपने देहार्थ प्राण को प्रकट कर,

सात प्राणों को धारता है। (३) इसी प्रकार वाणी से बद्ध होकर विवाह करने वाले स्त्री पुरुषों में 'विभावा' विशेष कान्तिमान् पुरुष (सप्त पदानि) सात चरण रखकर 'ऋत' यज्ञादि कर्म और अपनी तन्तु-सन्तति की वृद्धि के लिये स्त्री को मित्र बनावे।

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः॥५॥३॥

भा०—तू (गोपाः) रक्षक, वाणियों, इन्द्रियों का पालक होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य ज्ञान एवं मूल प्रकृति वा सत्कारण का (चक्षुः भुवः) आँखवत् द्रष्टा, प्रकाशक है। तू ही (ऋताय वेषि) ऋत, मूलकारण प्रकृति को व्यापता, जगत् को व्यापता, सत्य ज्ञान को प्रकाशित करता, इसी से (वरुणः भुवः) तू 'वरुण', सर्वश्रेष्ठ है। हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! तू ही (अपां नपात्) जलों में पाद रहित नौकावत् सबका तारक है, वा जलों के न गिरने देने वाले सूर्य वा मेघवत् समस्त प्रकृति के परमाणुओं, जीवों, लोकों का (नपात्) व्यवस्थापक है। तू (यस्य हव्यं जुजोषः) जिसके हव्य, उपकार-वचन को प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूतः भुवः) दूत व ज्ञान देने वाला होता है। इति तृतीयो वर्गः॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥६॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक! अग्ने! तू (यज्ञस्य) यज्ञ, विराट् यज्ञ का और (रजसः च) समस्त लोकों का भी (नेता) संचालक (भुवः) है, रहा, और रहेगा। (यत्र) जिनमें तू (शिवाभिः) कल्याण-कारक, अन्तः-व्यापक (नि-युद्भिः) प्रेरक शक्तियों से (सचसे) व्याप रहा है। तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को देने वाले सूर्य

को (मूर्धानं) शिरोवत् सर्वोपरि (दधिषे) धारण करता है और तू ही (हव्य-वाहम्) ज्ञान प्राप्त कराने वाली (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि, जिह्वा के तुल्य सत्य प्रकाशक वेदवाणी को वा जगत् के सञ्चालक, प्रलयकाल में जगत् को अपने भीतर ले लेने वाली ज्वाला को (चकृषे) प्रकट करता है।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥

भा०—(त्रितः) तीनों गुणों से बद्ध जीव (परस्य पितुः) परम पालक पिता, परमेश्वर की (एवैः) नाना ज्ञानों और कर्मों से (धीतिम्) ध्यान, और उपासना की (इच्छन्) कामना करता हुआ (क्रतुना) अपने कर्म द्वारा (अस्य) उसको (अन्तः वव्रे) अपने भीतर अन्तःकरण में वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) माता पिता की गोद में बैठे बालक के तुल्य वह जीव भी ब्रह्म और प्रकृति दोनों की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद में प्राप्त होकर (जामि ब्रुवाणः) योग्य स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधक कारणों से युद्ध करने के नाना साधनों को प्राप्त करता है।

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भा०—(सः) वह आत्मा (पित्र्याणि) परम पालक पिता से प्राप्त (आयुधानि) उत्तम उपकरणों को वीरवत् (विद्वान्) प्राप्त कर उनका अच्छी प्रकार ज्ञान करके, वह (आप्त्यः) लिंग शरीरस्थ जीव (इन्द्रे-षितः) परमेश्वर से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरों, गुणों से युक्त (सप्त-रश्मिं) सात बन्धनों से बद्ध इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रितः) तीनों गुणों में बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु परमेश्वर की दी (गाः निः ससृजे) वाणियों को प्रकट करता है। वा उसकी बनाई भोग-भूमियों, देहों और इन्द्रियों को प्राप्त करता है।

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क्॥४

भा०—वह (सत्पतिः) सज्जनों, सत् जीवों का पालक परमेश्वर (मन्यमानम्) अभिमान करने वाले (भूरि ओजः) बहुत बल (उद्-इनक्षन्तम्) प्राप्त कराने वाले को (अव अभिनत्) भेद डालता है और वह (विश्व-रूपस्य त्वाष्ट्रस्य) उस देहमय विश्वरूप अर्थात् आत्मा के रूप से युक्त देह की (गोनाम् आचक्राणः) इन्द्रियों के स्थान बनाने की चेष्टा करता हुआ (त्रीणि शीर्षाणि) तीन शिरस्थ प्राणों को (परा वर्क्) छेदन करता है, वह शिर में प्राण, मुख और कान इनके तीन प्रकार के छिद्र बनाता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

९

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१—४, ६ गायत्री । ५ वर्धमाना गायत्री । ७ प्रतिष्ठा गायत्री ८, ९ अनुष्टुप् ॥
नवर्चं सूक्तम् ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

भा०—(आपः) हे आप्त जनो ! हे व्यापक प्रभो ! आप (मयः-भुवः स्थ) जलों के समान सुख को उत्पन्न करने वाले हो । (ताः) वे आप (ऊर्जे) हमें उत्तम अन्न और बल को प्राप्त कराने के लिये (दधातन) धारण करो, हमें अन्न बल प्राप्त कराओ । आप हमें (महे रणाय) बड़े भारी आनन्द सुख प्राप्त करने और (चक्षसे) ज्ञानदर्शन के लिये (दधातन) धारण करें अर्थात् हमें आनन्द, सुख, ज्ञान, दर्शन कराओ ।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

भा०—हे (आपः) जलवत् आप्त जनो ! हे सर्वव्यापक प्रभो ! (उशतीः इव मातरः) पुत्र को चाहने वाली माताओं के समान (वः यः शिवतमः रसः) आप का जो अति कल्याणकारी रस, ज्ञान और बल है (तस्य) इसका (इह नः भाजयत) हमें यहां सेवन कराइये ।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्त जनो ! हे व्यापक प्रभो ! आप लोग (चनः) अन्नवत् उत्तम ज्ञान को (जनयथ) उत्पन्न करो, अन्यों के प्रति प्रकट करा दो । (यस्य क्षयाय) आप लोग जिसके ऐश्वर्य की वृद्धि करते हो, (तस्मै अरं गमाम) हम भी उसी को शीघ्र ही प्राप्त हों ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ४ ॥

भा०—(देवीः) ज्ञानप्रकाशमय, सुख देने वाले (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्तजन, और व्यापक परमेश्वर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । और वे (अभिष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिये हों । (पीतये भवन्तु) हमारे रसपानवत् पालन के लिये भी हों । वे (नः) हमारे (शं योः) शान्ति देने और कष्ट को दूर करने के लिये (नः अभि स्रवन्तु) हमें सब ओर से प्राप्त हों । (२) उत्तम सुखद जल हमें शान्ति दें, हमें इष्ट सुख देवें और पीने के लिये हों तो सुख देने और कष्ट दूर करने के लिये हमारे चहुं ओर बहें ।

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (अपः) जल (वार्याणां) 'वारि' अर्थात् जलों

से उत्पन्न स्थावर-वृक्ष, वनस्पति आदि के (ईशानाः) स्वामी हैं, उनको उत्पन्न करने और बढ़ाने वाले हैं उनके अभाव में वे भी नष्ट होजाते हैं और (चर्षणीनां क्षयन्तीः) वे जल विचरणशील प्राणियों को भी इस जगत् पर बसाने वाले, वा उनके नाना मलादि दोषों को नाश करते हैं।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥ ६ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ७ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ८ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ९ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो मं० १ । सू० २३ । मन्त्र, २०, २१, २२, २३ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०]

ऋषिः—१,३,५,—७,११,१३ यमी वैवस्वती । २, ४, ८—१०,१२,१४ यमो वैवस्वत ऋषिः ॥ १, ३, ५—७, ११, १३ यमो वैवस्वतः २, ४, ८ —१०, १२, १४ यमी वैवस्वती देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ९, १० १२ त्रिष्टुप् । ७, १३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

भा०—स्त्री पुरुष को कहती है। मैं (सखी आ) समान आख्यान-अर्थात् नाम वाली मित्र होकर अथवा (सख्या) सख्य भाव के लिये (सखायं)

सखा, मित्र रूप में तुझको (ओ (आ-उ) ववृत्यां चित्) आदर से प्राप्त करूं। (तिरः पुरु चित्) अति विस्तृत, बहुत बड़े (अर्णवं जगन्वान् वेधाः) सागरवत् दीर्घ जीवन के पार जाता हुआ, प्रजा को उत्पन्न करने वाला प्रजापति, गृहस्थ (पितुः नपातम्) पिताके वंश को न गिरने देने वाले पुत्र वा वधू के पिता के नाती को (प्रतरं दीध्यानः) जगत्-सागर से पार होनेके लिये नौकावत् उत्तम साधन समझता हुआ (क्षमि) भूमि तुल्य पुत्रोत्पादन समर्थ स्त्री में (अधि आ दधीत) आधान करे। यह वचन पुत्राभिलाषिणी, पुत्रोत्पादन में समर्थ स्त्री का जीवन के उत्तर भाग में विद्यमान निष्पुत्र पति के प्रति है। पति पत्नी दोनों एक नाम से कहाने योग्य होने से 'सखा और सखी' हैं। पुत्रोत्पादन करके ऋण रूप अर्णव के पार जाना गृहस्थ का कर्तव्य है। स्त्री की दृष्टि में उसका पुत्र उसके पिता का नाती और पुरुष के वंश को चलाने से भी 'नपात्' है। विवाहबन्धन में परस्पर एक दूसरे को बांधने वाला संस्कार 'उपयम' कहाता है। बंधने वाले स्त्री और पुरुष दोनों यम और यमी हैं। विविध प्रजाएं 'वि-वसु' हैं उनका स्वामी विवस्वान् वा वधू के माता पिता हैं और उनके वंशज वा वधू 'वैवस्वत' हैं। परस्पर विवाह-बन्धन में बन्धने से वे 'वैवस्वत यमयमी' कहाते हैं।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भा०—पुरुष कहता है-(ते सखा) तेरा मित्रभूत पुरुष (ते एतत् सख्यं) तेरे इस सखा-भाव की (नवष्टि) नहीं कामना करता। (यत्) क्योंकि (सलक्ष्मा) समान लक्षण वाली स्त्री ही (विषु-रूपा भवाति) बहुत प्रजा आदि से सम्पन्न होता है। (उर्विया) इस भूमि में (महः) बड़े (असुरस्य) बलवान् वीर्यवान् पुरुष के (पुत्रासः) पुत्र ही (वीराः) वीर, बलवान् विद्यावान्, (दिवः धर्त्तारः) कामनाशील भूमिवत् माता

के (धर्त्तारः) धारण पोषक (परि ख्यन्) दिखाई देते वा शास्त्र में कहे गये हैं।

यह वचन स्त्री के असमान निर्बल, नपुंसक, वा पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुष का प्रतीत होता है। इसीसे वह स्त्री के संग को स्वयं स्वीकार न करके बलवान् पुरुष से पुत्र प्राप्त करने की ओर इशारा करता है। अन्य बलवान् पुरुष से प्राप्त क्षेत्रज पुत्र भी गृहस्थ की अवधि के बाद माता के रक्षक वा पिता के दायभागी होने के निमित्त शास्त्र में कहे हैं।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ३

भा०—पुनः पुत्रार्थिनी स्त्री कहता है—(ते अमृतासः) वे कभी नाश को प्राप्त न होने वाले दीर्घायु पुरुष भी (एतत् उशन्ति घ) ऐसा अवश्य चाहते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसं) एक मनुष्य का भी उत्तम पुत्र हो। और (ते मनः अस्मे निधायि) तेरा मन मेरे मन में निहित है। तू (जन्युः पतिः) पुत्रोत्पादक स्त्री का पति है। तू ही (तन्वम् आ विविश्याः) देह में गर्भ रूप से प्रविष्ट हो। स्त्री विवाहबन्धन से बन्धी होकर असमर्थ पुरुष से ही पुत्र प्राप्त करने का आग्रह करती है।

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

भा०—पुरुष कहता है—(यत् कत् ह पुरा न चकृम) वह कौनसा उपाय है जो हम पहले नहीं कर चुके। पुत्र प्राप्ति के सभी उपाय कर चुके हैं। (ऋता वदन्तः) सदा सत्य वचन बोलते हुए (नूनम्) अवश्य ही हम (अनृतम् रपेम) असत्य बोलें, यदि कहें कि अमुक उपाय नहीं किया। (गन्धर्वः अप्सु) गम्या भूमि को धारण करने वाला पुरुष भी जलीय अंशों में है और (अप्या च योषा) जलीय परमाणुओं से युक्त स्त्री भी

है । (नः सा नाभिः) हम दोनों का वही एक आश्रय है । वही (नौ तत् जामि) हम दोनों में यही दोष है। जिससे कि एक प्रकृति के ही स्त्री और पुरुष होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती। अथवा—एक ही नाभि अर्थात् एक ही गोत्र में से स्त्री पुरुष हों तो भी सन्तान नहीं होती । यदि भ्रमसे ऐसा जोड़ा हो तो क्षेत्रज विधि से पुत्र प्राप्त करना चाहिये । एक गोत्र के होने से भी वे बहिन-भाई के सदृश होजाते हैं। बहुत उपाय कर लेने पर भी जब सन्तति नहीं होती तब पुरुष को अपने सन्तान न होने का ऐसा कारण ज्ञात होता है ।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नाकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ।५।६

भा०—स्त्री कहती है—(जनिता) उत्पादक पिता (देवः) कन्या को पुरुष के हाथ में देने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी (सविता) सर्वोत्पादक (विश्वरूपः) विश्वात्मा प्रभु (गर्भे) गर्भ धारण करने के निमित्त ही (नौ दम्पती कः) हम दोनों स्त्री पुरुषों को पति-पत्नी बनाता है । (अस्य व्रतानि नकिः प्रमिनन्ति) इसके नियमों, कर्त्तव्यों का कोई नाश नहीं करता । (नौ अस्य) हमारे इस पति-पत्नी भाव के कर्त्तव्यों को (पृथिवी उत द्यौः) भूमि और सूर्य भी (वेद) जानते या प्राप्त करते हैं । और भूमि और सूर्य दोनों भी पति-पत्नी के समान ही सम्बद्ध हैं । अतः तू ही मुझ पत्नी में गर्भ धारण करा । इति षष्ठो वर्गः ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

भा०—पुरुष कहता है—(अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) इस प्रथम दिन के सम्बन्ध की कौन जानता है । (ईं कः ददर्श) और इस गर्भ-धारण होने वा न होने के मूल कारण को कौन देख सकता है? (इह कः प्रवोचत्) इस सम्बन्ध में कौन बतला सकता है ? (मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम)

सर्वस्नेही, सर्वःदुखवारक प्रभु का तेज बहुत बड़ा है। हे (आहनः) कटाक्ष से कहने वाली! स्त्रि! (नून् वीच्य कत् उ ब्रवः) मनुष्यों का विवेक करके भी भला कौन, कब क्या कह सकता है? अर्थात् स्त्री पुरुष के विवाह होने के पूर्व वा प्रथम दिन ही उनके सन्तानादि के सम्बन्ध में कोई भी ठीक २ नहीं बतला सकता।

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने ये नौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

भा०—(यमस्य कामः) विवाह बन्धन से बद्ध तेरी अभिलाषा (मा यम्यं) मुझ यमी को (समाने योनौ) एक स्थान में (सह-शेय्याय) एक साथ सोने के लिये (आ अगन्) प्राप्त हो। (पत्ये जाया इव) पति के लिये जाया के समान ही मैं (पत्ये) तुझ पति के लिये अपने (तन्वं) देह को (रिरिच्यां) प्रदान करूं। हम दोनों (रथ्या इव चक्रा) रथ के दो चक्रों के समान (वि वृहेवचित्) गृहस्थ-भार को उठावें।

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥

भा०—(इह) इस लोक में (ये) जो (स्पशः) सब लोकों को देखने वाले चरों के समान (देवानां स्पशः) लोगों के द्रष्टा ये दिन (चरन्ति) विचरते हैं, चलते चले जा रहे हैं। वे (न तिष्ठन्ति) किसी के लिये खड़े नहीं रहते। (न निमिषन्ति) वे किसी के लिये पल भर भी नहीं चूकते। व्यर्थ समय खोने से क्या लाभ? हे (आहनः) आक्षेप-कारिणि! हे प्रिये! तू (मत् अन्येन तूयं याहि) मुझसे अन्य पुरुष के साथ शीघ्र संगत हो और (रथ्या इव चक्रा वि वृह) रथ के चक्रों के समान विशेष रूप से गृहस्थ-भार को उठा।

रात्री॑भिरस्मा अह॑भिर्दशस्ये॒त्सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒र्मुहु॒रुन्मि॑मीयात् ।
दि॒वा पृ॑थि॒व्या मि॑थु॒ना सब॑न्धू य॒मीर्य॒मस्य॑ बिभृया॒दजा॑मि ॥ ९ ॥

भा०—पुनः पुत्रार्थिनी कहती है । (रात्रीभिः अहभिः) कुछ दिनों, कुछ रातों के अनन्तर (दशस्येत्) प्रभु हमारा मनोरथ हम को देवे । (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्य का प्रकाशक तेज (मुहुः उन्मिमीयात्) पुनः भी उदित हो । (दिवा पृथिव्याः) आकाश और भूमि या सूर्य-पृथिवी के समान हम दोनों का (मिथुना) जोड़ा (स-बन्धू) समान बन्धन में बंधे हैं, अतः (यमीः) विवाह-बन्धन से बंधी, परिणीता स्त्री ही (यमस्य) विवाह से बद्ध पुरुष के वीर्य का गर्भ (बिभृयात्) धारण करे, यही (अजामि) दोष-रहित है ।

आ घा॒ ता ग॑च्छा॒नुत्त॑रा यु॒गानि॒ यत्र॑ जा॒मय॑: कृ॒णव॒न्नजा॑मि ।
उप॑ बर्बृहि वृष॒भाय॑ बा॒हुम॒न्यमि॑च्छस्व सुभगे॒ पतिं॒ मत् ॥१०॥७॥

भा०—(ता उत्तरा युगानि आ गच्छान्) वे नाना उत्तम से उत्तम वर्ष प्राप्त हों (यत्र) जिनमें (जामयः) अपत्य उत्पन्न करने में समर्थ कन्याएं, बहुएं (अजामि कृणवन्) निर्दोष सन्तान उत्पन्न करें । इसलिये हे (सुभगे) सौभाग्यवति ! तू (वृषभाय) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के (बाहुम्) बाहु का (उप बर्बृहि) आश्रय ले और (मत् अन्यम् पतिम् इच्छस्व) मुझ से दूसरे पुरुष को पति रूप से चाह । पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुष स्त्री को अगली सन्तानें उत्तम होने की आशा से ही वीर्यवान् पुरुष से पुत्र प्राप्त करने की सम्मति देता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

किं भ्राता॑स॒द्यद॑ना॒थं भवा॑ति॒ किमु॒ स्वसा॒ यन्निर्ऋ॑ति॒र्नि॒गच्छा॑त् ।
काम॑मूता ब॒ह्वे३॒॑तद्र॑पामि त॒न्वा॑ मे त॒न्व॑१ं सं पि॑पृग्धि ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुष ! जो तू अपने से अन्य को पति रूप से चाहने के लिये कहता है तो (किं भ्राता असत्) क्या तू भाई है, (यत्)

कि जिस कारण तू (अनाथं भवाति) नाथ अर्थात् पति के समान नहीं हो रहा है। (किम् उ स्वसा) क्या मैं बहिन हूँ (यत् निर्ऋतिः) जो निर्गति, लाचार होकर (नि गच्छात्) चली जावे। अर्थात् तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ। अतः (काम-मूता) काम से युक्त होकर (एतत् बहु रपामि) यह बहुत कुछ कह रही हूँ कि तू (मे तन्वा) मेरे देह से (तन्वं) अपने देह को (सं पिपृग्धि) संगत कर।

यह उसी प्रकार का आग्रह है जैसा माद्री ने कामार्त्त होकर अशक्त पाण्डु से किया था।

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

भा०—(वा उ) यदि ऐसा ही विकल्प है अर्थात् तू मुझे भाई और अपने को बहन समझती है तो भी (ते तन्वा) तेरी देह से मैं (तन्वं न सं पपृच्याम्) अपने देह का संपर्क न कराऊं क्योंकि (यः स्वसारं निगच्छात्) जो भगिनी का संग करे उसे भी (पापं आहुः) पापी कहते हैं। (अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व) तू मुझसे भिन्न के साथ नाना प्रमोद कर। हे (सुभगे) सौभाग्यवति! (ते भ्राता) तेरा भरण पोषण करने वाला पति पुरुष भी भाई के समान ही (एतत् न वष्टि) ऐसे संग की कामना नहीं करता।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

भा०—पुनः स्त्री पति के हृदय के भाव की परीक्षा करने के निमित्त कहती है—हे (यम) विवाह से बद्ध पुरुष! (बत बतः असि) खेद है कि तू बड़ा निर्बल है। (ते मनः हृदयं च नैव अविदाम) तेरे मन और हृदय को हम न जान पाये। (किल युक्तं त्वा अन्या) क्या समर्थ तुझ

को कोई अन्य स्त्री (वृक्षम् लिबुजा-इव) वृक्ष को लता के समान (परि स्वजाते) आलिंगन करती है।

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्
॥ १४ ॥ ८ ॥

भा०—पुरुष अन्तिम आज्ञा देता है। हे (यमि) विवाहित स्त्री! (त्वं) तू (अन्यम् उ वृक्षम् लिबुजा इव) अन्य पुरुष को वृक्ष की लता के समान आलिंगन कर। और (अन्यः उ त्वां परि स्वजाते) और अन्य पुरुष तुझे आलिंगन करे। (तस्य वा त्वं मनः इच्छ) तू उसके मन को चाह। और (स वा तव) वह तेरे मन को चाहे। (अध) और तू (सु-भद्राम् संविदं कृणुष्व) शुभ कल्याणकारिणी उत्तम मति को कर। इस शब्द योजना से बहनभाई के परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध का भी निषेध किया है और रक्त में एक समान तत्व वाले स्त्री पुरुषों में यदि परस्पर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति न हो तो भी अतिरिक्त पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा अर्थात् 'नियोग' वेद में प्रतिपादित है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[११]

हविर्धान आंगिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती। ३—५ विराड् जगती। ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृषा) वर्षा करने वाला सूर्य (यह्वः) महान् होकर (वृष्णे दोहसा) वर्षणशील मेघ के दोहन या पूर्ण-सामर्थ्य से

(दिवः) आकाश से (पयांसि दुदुहे) जलों की वर्षा करता है इसी प्रकार (वृषा) बलवान् उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (यह्वः) बलों में महान् और (अदाभ्यः) शत्रुओं से अहिंस्य होकर (अदितेः) अपराधीन, स्वतन्त्र, अखण्ड (दिवः) भूमि से (दोहसा) अन्नादि देने के सामर्थ्य से (पयांसि दुदुहे) नाना प्रकार के पुष्टिकारक अन्नों को प्राप्त करे। (स वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ राजा, (धिया) ज्ञान और बुद्धि या कर्म द्वारा (यथा विश्वं वेद) जिस प्रकार समस्त राष्ट्र को प्राप्त करे और जाने उसी प्रकार वह (यज्ञियः) राष्ट्र-यज्ञ का कर्त्ता (यज्ञियान् ऋतून् यजतु) यज्ञ, परस्पर संगति करने वाले सदस्यों और ऋतुओं को सूर्यवत् ही एकत्र करे।

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अप्या) जल से प्राप्त करने योग्य, वा जल में उत्पन्न (गन्धर्वी) वाणी को धारण करने वाली विद्युत् (रपत्) गर्जती है। उसी प्रकार (अप्या) जल प्रकृति की (गन्धर्वी) भूमि के समान वा वाणी को धारण करने वाली विदुषी (योषणा) स्त्री वा प्रजा (रपत्) कहे कि (नदस्य) गर्जनशील मेघ के समान उदार समृद्ध पुरुष के (नादे) शासन समृद्धि में (मे मनः परि पातु) मेरा मन मेरी रक्षा करे। वह (अदितिः) अखंड शासक होकर (नः) हमें (इष्टस्य मध्ये) इष्ट, प्रिय, ऐश्वर्य के बीच में (नि धातु) स्थापित करे और (नः) हम में से (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा (भ्राता) सबका पालक पोषक, (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः विवोचति) हमें विविध विद्याओं का उपदेश करे, विविध आज्ञा दे।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

भा०—(यद्) जब (उशताम्) नाना ऐश्वर्य चाहने वालों के बीच में (उशन्तं) स्वयं कामना करने वाले (क्रतुं) कर्म कुशल (अग्निं) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (विदथाय) यज्ञार्थ यज्ञाग्निवत् (होतारं) ग्रहीता रूप से (जीजनन्) विशेष रूप से प्रकट करते हैं, उस समय (सो चित नु उषा) वह कामनावती स्त्री भी प्रभात वेला के समान (क्षु-मती) उत्तम वचन बोलती हुई, (यशस्वती) उत्तम गुणों से कीर्त्ति युक्त (स्वर्वती) सुखसम्पदा वाली होकर (मनवे उवास) मनुष्य के हितार्थ रहे। उसी प्रकार राज्येच्छुओं में से एक को जब सर्वोपरि होता शासक बनाते हैं तब वह प्रजा प्रशंसा वचनों से युक्त यशस्विनी होकर उस (मनवे) प्रबन्धक की सुखकारिणी होकर रहे।

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥

भा०—(यदि) जब (आर्याः विशः) वे श्रेष्ठ प्रजाएं (दस्मं) शत्रु वा दुष्ट पुरुषों को नाश करने वाले, (होतारम्) भृत्यों को वेतनादि देने वाले, (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को नायक रूप से (वृणते) वरण करती हैं (अध) अनन्तर ही (धीः अजायत) वह राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होजाता है। (अध) और उसी समय (विः) कांतिमान् तेजस्वी (श्येनः) बाज़ के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा, एक प्रशस्तगति वाला वीर सेनापति, (इषितः) प्रेरित होकर (त्यं) उस (द्रप्सं) बलवान्, (विभ्वं) महान्, (वि-चक्षणं) बुद्धिमान् पुरुष को (अध्वरे) इस राष्ट्र रूप यज्ञ वा अहिंसनीय पद पर (आभरत्) प्राप्त करता है।

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः॥५॥६

भा०—(पुष्यते यवसा इव) अपना पोषण करने वाले पशु को

जिस प्रकार नाना तृण उत्तम लगते हैं उसी प्रकार (पुष्यते) अपना पोषण करने वाले राष्ट्र के लिये हे नायक ! तू (सु-अध्वरः) उत्तम अहिंसक (मनुषः) मननशील पुरुष की (होत्राभिः) अपनी वाणियों द्वारा (सदा रण्वः असि) सदा रमण योग्य, प्रजा को प्रिय हो । और (शशमानः) उपदेश किया जाकर (विप्रस्य) विद्वान्‌गण के (उक्थं वाजं) प्रशंसनीय ज्ञान को (ससवान्) सेवन करता हुआ तू (भूरिभिः उप यासि) बहुत से अनुगामियों सहित वा अनेक साधनों से अनेक बार प्राप्त हो । इति नवमो वर्गः ॥

उदी॑रय पि॒तरा॑ जा॒र आ भग॒मिय॑क्षति हर्य॒तो हृ॒त्त इ॑ष्यति ।
विव॑क्ति वह्निः॑ स्वप॒स्यते॑ म॒खस्त॑विष्यते॒ असु॑रो॒ वेप॑ते म॒ती ॥६॥

भा०—हे विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! नायक ! (जारः आभगम्) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य जिस प्रकार अपने सेवनीय प्रकाश को सब ओर फैलाता है उसी प्रकार तू भी (पितरा) माता पिता के तुल्य पूज्यों के प्रति (उद् ईरय) उत्तम वचन कह, आदर से उनके लिये अभ्युत्थान किया कर । (भगम् आ ईरय) ऐश्वर्य सुख सब प्रकार से प्राप्त करा । क्योंकि (हर्यतः) कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष ही (इयक्षति) दान देने में समर्थ होता है, वह (हृत्तः इष्यति) उनको हृदय से चाहा करता है। वह (वह्निः) कार्य-भार को उठाने में समर्थ होकर (वि वक्ति) विविध वचन कहता है, (सु-अपस्यते) शुभ २, उत्तम कार्य करता है, और (मखः) यज्ञवान्, पूज्य होकर (तविष्यते) बल के कर्म करता है, और (असुरः) बलवान् होकर (मती वेपते) अपनी वाणी और बुद्धि से शत्रुओं को कंपाता है ।

यस्ते॑ अग्ने सुम॒तिं मर्तो॑ अ॒क्षत्सह॑सः सूनो अति॒ स प्र शृ॑ण्वे ।
इषं॒ दधा॑नो॒ वह॑मानो॒ अश्वै॒रा स द्यु॒माँ अम॑वान्भूषति॒ द्यून् ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ते सुमतिम् अक्षत्) तेरे उत्तम ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक ! बल के उत्पादक ! (सः अति प्रश्रृण्वे) वह सबसे बढ़ कर प्रसिद्ध हो जाता है । (सः) वह (इषं) अन्न सम्पदा और सेना को (दधानः) धारण करता हुआ (अश्वैः वहमानः) आशुगामी अश्व आदि साधनों से राज्य को धारण करता और देश देशान्तर जाता हुआ (द्यून्) सब दिनों (द्युमान् अमवान्) तेजस्वी, बलवान् (भूषति) बना रहता है ।

यद॑ग्न एषा समि॑तिर्भवा॑ति देवी देवेषु॑ यज॒ता य॑जत्र ।
रत्ना॑ च॒ यद्वि॒भजा॑सि स्वधावो भा॒गं नो॑ अत्र॒ वसु॑मन्तं वीतात् ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! सेनापते ! राजन् ! (यजत्र) हे पूज्य ! हे दानशील ! (यत्) जब (यजता देवेषु) परस्पर सुसंगत विजयेच्छुक जनों में (एषा देवी) यह तेजस्विनी, विजयेच्छुक वा विदुषी (समितिः) समिति, सभा, (भवति) हो, और (यत्) जब हे (स्वधावः) अन्नादि के स्वामिन् ! हे 'स्व' ऐश्वर्य के द्वारा धारण पोषण करने हारे ! तू (रत्ना विभजासि) नाना रत्न वा रमणीय पदार्थ विभक्त करे तब (अत्र) इस अवसर पर (नः) हमारा (वसुमन्तं भागं) ऐश्वर्ययुक्त भाग हमें भी (वीतात्) प्राप्त हो ।

श्रु॒धी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम् ।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः॑ ॥ ९ ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (सधस्थे सदने) एक साथ स्थित होने के सभाभवन में तू (नः) हमारे वचन श्रवण कर । और (अमृतस्य) अमृत के समान अविनाशी, नित्य सत्य ज्ञान को (द्रवित्नुम्) प्रवाहित करने वाले (रथम्) रथ के समान रमणीय उपदेश को (युक्ष्व)

संयोजित कर। (देव-पुत्रे) दानशील तेजस्वी पुरुषों को पुत्र के तुल्य पालन करने वाला (नः) हमारे (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् तेजस्वी राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (आ वह) धारण कर। जिससे (देवानाम्) विद्वानों और वीरों में से कोई भी हम से (माकिः अपभूः स्याः) अपमानित और तिरस्कृत न हो। (देवानां अप भूः माकि स्याः) विद्वानों और वीरों के बीच में कोई कभी अपमानित न हो। इति दशमो वर्गः॥

[१२]

हविर्धान आङ्गिर्ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

द्यावा॑ ह॒ क्षामा॑ प्रथ॒मे ऋ॒तेना॑भिश्रा॒वे भ॑वतः स॒त्यवाचा॑।
दे॒वो यन्मर्ता॑न्य॒जथा॑य कृ॒ण्वन्त्सीद॒द्धोता॑ प्र॒त्यङ् स्वमसुं॒ यन्॥१॥

भा०—(देवः) तेजस्वी, (होता) दानशील पुरुष (प्रत्यङ्) प्रत्यक् तत्व, आत्मा के समान सर्वप्रिय होकर (स्वम् असुं यन्) अपने प्राण-बल के समान शत्रु को उखाड़ देने वाले महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता हुआ (मर्त्तान्) अधिकार के लिये मरने और शत्रुओं को मारने वाले मर्द, जवान वीर पुरुषों को (यजथाय) सुसंगत (कृण्वन्) करता हुआ (सीदत्) प्रधान पद पर विराजता है, उस समय ही (द्यावा क्षामा) सूर्य और भूमिवत् (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ, शास्य-शासक गण और अग्नि के समक्ष स्त्री पुरुषों के समान ही (ऋतेन अभिश्रावे) वेद-वचन द्वारा अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा श्रवण कराते हुए (सत्यवाचा भवतः) सत्यवाणी से बद्ध होते हैं।

दे॒वो दे॒वान्प॑रि॒भूर्ऋ॒तेन॒ वहा॑ नो ह॒व्यं प्र॑थ॒मश्चि॑कि॒त्वान्।
धू॒मके॑तुः स॒मिधा॒ भाऋ॑जीको म॒न्द्रो होता॒ नित्यो॑ वा॒चा यजी॑यान्॥२

भा०—हे विद्वन् ! बलवन् ! तू (देवः) दानशील, तेजस्वी, (देवान्) विद्वानों, वीरों और तेजस्वियों पर भी (ऋतेन) तेज, बल और सत्य-ज्ञान, वेदधर्म के द्वारा (परि-भूः) सर्वोपरि शासक होकर (चिकित्वान्) ज्ञानवान् और (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः हव्यं वह) हमें उत्तम ग्राह्य ज्ञान, निर्णय और उत्तम धनादि प्राप्त करा, वा वैसा कर (नः हव्यं वह) हमारा अन्नादि प्राप्त कर। राजादि भी जो वृत्ति प्राप्त करे तो वह धर्मानुसार सबका शासन करके ही प्राप्त करे अन्यथा नहीं। वह तू (धूम-केतुः) धूम की ध्वजा से युक्त अग्नि के तुल्य (धूम-केतुः) शत्रु वा अधर्म को कम्पित करने वाली ध्वजा वाला (समिधाः) सबके सहयोग से तेजस्वी, (भा-ऋजीकः) अपनी कांति वा तेज से दुष्टों को भून देने वाला (मन्द्रः) सर्वस्तुत्य, (होता) सब को आदर पूर्वक बुलाने हारा (नित्यः) नित्य और (वाचायजीयान्) वाणी से सबका सत्कार करने वाला, सबको ज्ञान और सुख देने हारा, सबको संगत सुसम्बद्ध करने वाला हो।

स्वावृंग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३ ॥

भा०—(यदि देवस्य गोः) जब तेजस्वी सूर्य का (स्वावृक्) सुखप्रद (अमृतं) जीवनप्रद जल उत्पन्न होता है तब (अतः) इस जल से ही (उर्वी) पृथिवी पर (जातासः अमृतं धारयन्त) उत्पन्न हुए प्राणी जीवन को धारण करते हैं। और (यद् एनी) जब वह दीप्त सूर्य कान्ति या आकाश वा सूर्यमयी द्यौ, (दिव्यं) आकाश से उत्पन्न (घृतं दुहे) जल को प्रवाहित करती है (तत् यजुः अनु) उस दान को लक्ष्य करके ही (विश्वे देवाः अनु गुः) सब सुखाभिलाषी जीव, उसकी स्तुति करते और अन्य दाता भी उसी का अनुकरण करते हैं। इसी प्रकार तेजस्वी राजा का उत्तम कृपापूर्ण अमर-दान प्रजा को प्राप्त होता है, तब वे

जीवन धारते हैं। जब यह भूमि खूब जल और अन्न देती है तब अन्य भी सब उसकी स्तुति करते हैं।

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे।
अहा यद्द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

भा०—हे (घृतस्नू द्यावाभूमी) जल के वर्षाने और बहाने वाले भूमि और आकाश के समान स्नेह की वर्षा करने वाले, माता पिता, गुरु आचार्य, (रोदसी) उत्तम उपदेष्टा जनो ! मैं (वर्धाय) अपनी वृद्धि के लिये (वां अपः अर्चामि) आप दोनों के उत्तम उपकार रूप कर्म का आदर करता हूं। मे शृणुतं) आप मेरा वचन ध्यानपूर्वक श्रवण करें। (यत्) जब (द्यावः) सूर्य की तेजस्वी किरण (अहा) सब दिनों (असु-नीतिम् अयन्) जीवों के जीवन प्राप्त करने का कार्य करते हैं उसी समय (अत्र) इस लोक में (पितरा) आकाश और भूमिवत् माता पिता भी (मध्वा) अन्न, जल और मधुर वचन और वेद द्वारा (नः शिशीताम्) हमें शक्ति दें, और अनुशासन करें।

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(राजा) सूर्यवत्, तेजस्वी राजा (नः किं स्वित् जगृहे) हमारा क्या स्वीकार करे ? (अस्य व्रतं) उसके नियम को हम (कत् अति चक्रम) कब २ उल्लंघन करते हैं ? (कः विवेद) इस बात को विशेष रूप से कौन जानता है ? वह राजा वस्तुतः हम प्रजाओं का (मित्रः चित्) स्नेही मित्र के समान (जुहुराणः हि) सदा आमन्त्रित होकर (नः देवान् याताम्) हम अभिलाषी जनों को प्राप्त हो। वह (वाजः अपि अस्ति) निश्चय बलवान् , ऐश्वर्यवान्, वेगवान् है तो भी वह (श्लोकः नः) वेदो-

पदेश के तुल्य माननीय और विश्वसनीय होकर हमें प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (सलक्ष्मा) समान लक्षणों से युक्त स्त्रीवत् प्रकृति (विषु-रूपा भवाति) विविध रूपों से सम्पन्न होती है इस सम्बन्ध में (अमृतस्य) अमृत स्वरूप उस प्रभु का (नाम) स्वरूप (दुर्मन्तु) बड़ा दुर्विज्ञेय है। (यः) जो पुरुष उस (यमस्य) पति के तुल्य सर्वनियन्ता, नियामक प्रभु के (सु-मन्तु) सुख से मनन करने योग्य अमृतमय रूप का (मनवते) मनन करता है, हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (ऋष्व) महान्! तू (अ प्रयुच्छन्) निष्प्रमाद होकर (तम् पाहि) उसकी रक्षा कर।

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् विदथे) ज्ञानस्वरूप जिसमें (देवाः मादयन्ते) विद्वान, ज्ञानवान्, धन और ज्ञान के इच्छुक पुरुष अति हर्ष को प्राप्त होते हैं और (यस्य विवस्वन्तः सदने) नाना वसने योग्य ग्रहों के अध्यक्ष सूर्य के तुल्य जिसके आश्रय में (देवाः) किरणों के तुल्य विद्वान् और वीर जन (धारयन्ते) अपने में व्रत-नियमादि गुण धारण करते हैं। जिस (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्वी के अधीन रह कर (ज्योतिः अदधुः) वे तेज और ज्ञान को धारण करते हैं और (मासि अक्तून्) चन्द्रमा के तुल्य जिसके आश्रय रहकर लोग रात्रियों के समान विशेष सौम्य गुण धारण करते हैं उस (द्योतनिं) तेजस्वी पुरुष के आश्रय ही (अजस्रा) सब नर नारी एक दूसरे का नाश और हिंसा आदि न करते हुए, निरन्तर (परि चरतः) सेवा करें।

यस्मिन्देवा मन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

भा०—(यस्मिन् सन्मनि) मनन करने योग्य ज्ञानमय जिसमें वा जिसके अधीन (देवाः संचरन्ति) विद्वान् और तेजस्वी लोग सम्यक् आचरण करते हैं। (वयम् अस्य) हम लोग उस प्रभु के (अपीच्ये) अप्रकट रूप में, विद्यमान स्वरूप को (न विद्म) नहीं जानते। वह (मित्रः) स्नेही, सब दुःखों से त्राण करने वाला, (अदितिः) अविनाशी, (सविता) सर्वोत्पादक, (देवः) सर्व-ज्ञानप्रद (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त करने के लिये (अनागान् नः) अपराध-रहित, निष्पाप हम को (अत्र) उस अजेय प्रभु के सम्बन्ध में (वोचत्) उपदेश करे, जिससे हम मुक्त हों।

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥९॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ११ । ९ ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

[१३]

विवस्वानादित्य ऋषिः ॥ हविर्धाने देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों को (नमोभिः) विनय-आचार आदि लक्षणों सहित (पूर्व्यं) ज्ञान में पूर्ण और पूर्व विद्वानों से सेवित और उपदिष्ट (ब्रह्म) वेद और ब्रह्म-ज्ञान का (युजे) उपदेश करता हूं। (सूरेः) सर्वजगत् के उत्पादक सञ्चालक प्रभु का वह (श्लोकः)

वेदमय ज्ञानोपदेश (पथ्या इव) सन्मार्ग पर लेजाने वाली पगदण्डी के समान है। (विश्वे) समस्त (अमृतस्य पुत्राः) अमृत, मोक्षमय, अविनश्वर, अजर अमर परमेश्वर के पुत्र आप सब लोग और (ये) जो (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) कामना योग्य उत्तम लोकों, स्थानों और जन्मों को प्राप्त हैं वे सब (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

यमेइव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥ २॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग (यद्) जब (यमे इव) परस्पर सम्बद्ध होकर, विवाहित पतिपत्नी के समान यम-नियम में बद्ध होकर (यतमाने) यत्न करते हुए (आ एतं) प्राप्त होवो, तो (वां) आप दोनों को (देवयन्तः मनुषाः) विद्वानों को चाहने वाले मनुष्य (प्रभरन्) अच्छी प्रकार पोषण-पालन करें। आप लोग (स्वम् उ लोकं विदाने) अपने प्रकाश रूप आत्मा को जानते हुए (आ सीदतम्) आदरणीय पदपर विराजो। और (नः इन्दवे) हमारे ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (सु-आसस्थे भवतम्) शुभ आसन पर विराजो।

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सम्पुनामि ॥ ३ ॥

भा०—(रुपः पदानि) सीढ़ी के पग-दण्डों के समान मैं (रुपः) उन्नत पद तक चढ़ने के साधन रूप योगमार्ग के (पञ्च पदानि) पांच पदों, पांचों भूमियों वा पांचों यमों को (अनु अरोहम्) क्रमसे चढ़ूं। और (व्रतेन) व्रत के ग्रहण और पालनपूर्वक मैं (चतुष्पदीम्) चार पदों वा चार आश्रमों से युक्त जीवन-पद्धति वा चार ज्ञानमय वेदों से युक्त वाणी को (अनु एमि) क्रम से प्राप्त होऊं। (एताम्) उस वाणी को (अक्षरेण) अक्षर, वर्ण ककारादि द्वारा वाणी के समान ही (अ-क्षरेण) अविनाशी

वेदमय ज्ञान से (प्रति मिमे) प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान करूं । और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (नाभौ) केन्द्र, आश्रय रूप प्रभु में रह कर, उसके आधार पर मैं अपने आप को (अधि सम् पुनामि) खूब पवित्र करूं ।

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४॥

भा०—(देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों के हितार्थ (मृत्युं) मृत्यु को (अवृणीत कम्) दूर करो और (प्रजायै) प्रजा के लिये (अमृतं) दीर्घ जीवन को (न अवृणीत) नष्ट न होने दो । (बृहस्पतिम्) वेद-वाणी के पालक (यज्ञं) पूज्य, सत्संग योग्य (ऋषिं) वेद मन्त्रों के यथार्थ द्रष्टा पुरुष को (अकृण्वत) नियुक्त करो और (मनः) विवाह आदि बन्धन से बद्ध पुरुष (प्रियां तन्वं) अपने प्रिय तनु, सन्तति आदि को (प्रारिरेचित्) उत्पन्न करे ।

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५।१३॥

भा०—(पित्रे पुत्रासः) पिता के लिये पुत्र जिस प्रकार प्रेम-भाव दर्शाते हैं उसी प्रकार (मरुत्वते) प्राणों के अध्यक्ष (शिशवे) भीतर सोने वाले, गुप्त शासन करने वाले पालक वा स्तुत्य आत्मा के सुखार्थ ही ये (सप्त) सातों वा सर्पणशील पुत्रवत् प्राणगण (ऋतम् अपि अवीवृतन्) सत्य ज्ञान वा सुख को भोग्य अन्न वा जलवत् प्राप्त कराते हैं । (अस्य उभयस्य) ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले इसके (उभे इत् राजेते) दोनों ही ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय गण प्रकाशित होते हैं । (पुष्यतः) पोषक दोनों वर्गों के स्वामी आत्मा के वे दोनों ही प्रकार के प्राण-गण राजा के भृत्यों के समान (यतेते) यत्न करते हैं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

यम ऋषिः ॥ देवताः—१—५, १३—१६ यमः । ६ लिंगोक्ताः । ७—९ लिंगोक्ताः पितरो वा । १०—१२ श्वानौ ॥ छन्दः—१, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । १३, १४ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १५ विराड् बृहती ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

प॒रे॒यि॒वांसं॑ प्र॒वतो॑ म॒हीरनु॑ ब॒हुभ्यः॒ पन्था॑मनुपस्पशा॒नम् ।
वै॒व॒स्व॒तं स॒ङ्गम॑नं॒ जना॑नां य॒मं राजा॑नं ह॒विषा॑ दुवस्य ॥ १ ॥

भा०—(प्रवतः महीः) उत्तम २ कर्म करने वालों को (महीः परेयिवांसम्) उत्तम भूमियों को प्राप्त कराने वाले, वा स्वयं (प्रवतः महीः) दूर २ तक के उत्तम देशों और भूमियों को दूर तक प्राप्त करने वाले, और (अनु) अनन्तर (बहुभ्यः) बहुतों के हितार्थ (पन्थाम्) मार्ग को (अनुपस्पशानम्) साक्षी वा पहरेदार के समान सबके मार्ग को देखने वाले और (वैवस्वतं) विविध बसी प्रजाओं के स्वामी, (जनानां संगमनम्) मनुष्यों के एक स्थान पर मिल जाने का आश्रय, शरण्यरूप (यमं राजानं) नियन्ता राजा को (हविषा दुवस्य) उत्तम अन्न, वचन आदि से सत्कार कर। ऐसा सत्कार राजा, आचार्य, गुरु, विवाह्य सभी को होना आवश्यक है । ये सभी 'यम' नाम से कहे जाते हैं । परमेश्वर, गुरु, और राजा तीनों क्रम से विश्व, शिष्य और प्रजाओं के नियन्ता होने से 'यम' हैं, वर उपयम, अर्थात् विवाह द्वारा पत्नी को बांधने से 'यम' है ।

य॒मो नो॑ गा॒तुं प्र॑थ॒मो वि॑वेद॒ नैषा गव्यू॑ति॒रप॑भर्त॒वा उ॑ ।
यत्रा॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ परे॒युरे॒ना ज॑ज्ञा॒नाः प॒थ्या॒३ अनु॒ स्वाः ॥२॥

भा०—(प्रथमः) सबसे उत्कृष्ट पुरुष (यमः) नियन्ता है । वह

(नः) हमारी (गातुं) भूमि को (विवेद) प्राप्त करे। वह (नः गातुं विवेद) हमारी वाणी और स्तुति का पात्र हो, वह हमारी वाणी सुने, हमारा अभिप्राय जाने। (नः गातुं विवेद) हमारे मार्ग को जाने, हमें मार्ग जनावे। (एषा) वह (गव्यूतिः) मार्ग (अपभर्त्तवा न उ) त्याग करने योग्य नहीं है। (यत्र) जिसमें (नः) हमारे (पितरः) पालक पिता, गुरु, चाचा, ताऊ, मातामह, पितामह आदि (स्वाः पथ्याः) अपने २ हितकारी मार्गों को (जज्ञानाः) जानते हुए (एना) इसी मार्ग से (अनु परेयुः) जाते हुए दूर तक चले जाते रहे, दीर्घ जीवन व्यतीत कर परलोक तक गये।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ मनु० ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

भा०—(मातली) ज्ञान मार्ग को प्राप्त कराने वाला, (काव्यैः) विद्वानों के ज्ञानों से और (यमः) नियन्ता व्यवस्थापक पुरुष (अंगिरोभिः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों से, और (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् (ऋक्वभिः) वेदज्ञ विद्वानों द्वारा (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता है। (ये देवाः) जो विद्वान् जन (यान् च वावृधुः) जिनको बढ़ाते हैं उन्नत करते हैं और जो जन (देवान् वावृधुः) इन विद्वानों, ज्ञान धनादि देने वालों को बढ़ाते हैं उनमें से (अन्ये) एक वर्ग के (स्वाहा) उत्तम वाणी और शुभ दान-सत्कार से (मदन्ति) तृप्त, प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे जन (स्वधया) अन्न-जल द्वारा (मदन्ति) तृप्त होते हैं।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! तू (इमं) इस (प्र-स्तरम्) विस्तृत, श्रेष्ठ आसन पर (आसीद हि) अवश्य विराज। और (पितृभिः) पालन करने वाले, प्रजापालक शासकों वा पिता, पितामह आदि और (अङ्गिरोभिः) विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों से (सं-विदानः) भली प्रकार उत्तम-उत्तम ज्ञान प्राप्त करता हुआ, हे (राजन्) राजन्! तेजस्विन्! तू राजा (हविषा) इस उत्तम अन्न आदि सत्कार योग्य साधन से (मादयस्व) प्रसन्न हो। (कवि-शस्ताः मन्त्राः) उत्तम मेधावी, बुद्धिमान् पुरुषों से उपदेश किये गये, मननयोग्य विचार (त्वा आवहन्तु) तुझे आगे, उत्तम मार्ग पर ले जावें।

अङ्गि॑रोभि॒रा ग॑हि य॒ज्ञिये॑भि॒र्यम॑ वैरू॒पैरि॒ह मा॑दयस्व।
विव॑स्वन्तं हुवे॒ यः पि॒ता ते॒ऽस्मिन्य॒ज्ञे ब॒र्हिष्या नि॒षद्य॑ ॥५॥१४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! व्यवस्थापक ! तू (यज्ञियेभिः) यज्ञ, आदर-सत्कार, पूजा, सत्संग के योग्य (अंगिरोभिः) तेजस्वी, (वैरूपैः) विविध रूपों, रुचि और कान्ति वाले, नाना विद्या, कलाओं में निपुण विद्वानों सहित (आ गहि) आ और (मादयस्व) सबको अन्न शिल्पादि से तृप्त, प्रसन्न कर। (यः) जो (पिता) पालक पिता के समान प्रजा का रक्षक है उस (विवस्वन्तं) विविध वसु, प्रजाओं और धनों के स्वामी को मैं (हुवे) प्रार्थना करता हूँ कि वह (ते अस्मिन् यज्ञे) तेरे इस यज्ञ में (बर्हिषि) वृद्धियुक्त आसन पर (नि-सद्य) विराजे और (आ) सब को हर्षित करे।

अङ्गि॑रसो नः पि॒तरो॒ नव॑ग्वा॒ अथ॑र्वाणो॒ भृग॑वः सो॒म्यासः॑।
तेषां॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिया॑ना॒मपि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ॥ ६ ॥

भा०—(अंगिरसः) ज्ञानवान्, अंगारों के समान तेजस्वी, (नः) हम प्रजाओं के (पितरः) पालक (नवग्वाः) सदा नवीन, सनातन, स्तुत्य

वाणियों को प्रकट करने वाले, श्रेष्ठ आचारवान् (अथर्वाणः) अहिंसक, (भृगवः) तपस्वी, पापनाशक, (सोम्यासः) ऐश्वर्य, बल-वीर्य युक्त, सोम, ओषधि अन्नादि से सत्कार करने योग्य हैं। (यज्ञियानाम्) यज्ञ, पूजा सत्संग के योग्य उनकी (सु-मतौ) शुभ मति और उनकी (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारक सुखजनक शुभचित्तता में हम (स्याम) सदा रहें। उनकी अनुमति लें और उनकी प्रसन्नता चाहें।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (पूर्व्येभिः पथिभिः) पूर्व के विद्वान् ऋषियों, ज्ञानी पुरुषों द्वारा बनाये या उपदेश किये और चले हुए मार्गों से (प्र इहि प्र इहि) निरन्तर आगे ही आगे बढ़े जा। (यत्र) जिन मार्गों में (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व पिता, पितामह, गुरु आदि जन (परा ईयुः) दूर २ तक दीर्घ जीवन-मार्ग पार किये हैं, उस मार्ग पर चलते हुए ही तू (स्वधया मदन्ता) ज्ञान, अन्न और शक्ति से तृप्त और प्रसन्न होते हुए (यमं) नियन्ता और (वरुणं च) दुष्टों के वारण करने वाले दिन रात्रिवत् (राजाना) तेजस्वी (उभा) दोनों स्त्री पुरुषों को (पश्यासि) देख।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥

भा०—हे पुरुष ! वा हे स्त्री ! तू (पितृभिः) पालन करने वाले माता पिता, गुरुजनों से (सं गच्छस्व) सत्संग लाभ कर। (यमेन सं गच्छस्व) नियन्ता, शास्ता जन से और (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट आकाशवत् रक्षा स्थान, शरण्य प्रभु के अधीन रह कर (इष्ट-आपूर्तेन) यज्ञ दान, पालन पोषण के साधनों से (सं गच्छस्व) सदा युक्त रहे। (अवद्यं हित्वाय) निन्दनीय आचरण को छोड़ कर (पुनः अस्तम् एहि) बार २

गृह को प्राप्त हो। और (सु-वर्चाः) उत्तम तेजस्वी होकर (तन्वा) सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री, और कुलवर्धक पुत्रादि से (सं गच्छस्व) संगति लाभ कर।

संसार के आवागमन पथ में विचरते जीव के प्रति—हे जीव! तू नाना माता, पिताओं से संगति कर। नियन्ता प्रभु द्वारा उत्तम यज्ञादि, श्रौत, स्मार्त्त कर्म के उत्तम फल से युक्त हो, निन्द्य कर्म को त्याग कर उत्तम तेजोयुक्त देह से पुनः २ युक्त होकर (अस्तं) परम शरण को पुनः प्राप्त हो, मुक्त हो, या देह लाभ कर।

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन्।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषो! (अतः अप इत) तुम यहां से दूर भागो। (वि इत) विविध दिशाओं में जाओ। (वि सर्पत च) परे चले जाओ। (पितरं) पालक जन, ओषधि वनस्पतियां (एतं लोकं) इस लोक को (अस्मै) इस प्रजा के लिये (अहोभिः अक्तुभिः) दिन रात (अद्भिः) जलों से (वि-अक्तं) विविध प्रकार से सींचे, इस लोक को सुन्दर हराभरा (अक्रन्) बनावें। (यमः) नियन्ता राजा वा प्रभु (अस्मै) इसके लिये यहां ही (अवसानं ददाति) आश्रय देता है। (२) जीवात्मा पक्ष में—हे जीवो! तुम इस लोक से जाते ही नाना योनियों, देहों और लोकों में जाते हो। इस लोक को पालक जलादि, ओषधियों, वा प्राणगण, वा सूर्य की रश्मियों से इस जीव के लिये दिनों रातों वा जलों से उत्तम २ सुखदायी बनाते हैं। सर्व-नियन्ता सूर्य वा प्रभु जीवगण को इस लोक में आश्रय देता है।

अति॑ द्रव सारमे॒यौ श्वानौ॑ चतुर॒क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था।
अथा॑ पि॒तॄन्त्सु॑वि॒दत्राँ॒ उपे॑हि य॒मेन॒ ये स॑ध॒मादं॒ मद॑न्ति ॥१०॥१५॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (सारमेयौ) सूर्य की वेग से जानेवाली प्रभा या कान्ति से उत्पन्न होने वाले (श्वानौ) अति वेगवान्, (चतुरक्षौ) चारों दिशाओं में व्यापक, (शबलौ) श्याम-रक्त वर्ण से युक्त दिन रात्र दोनों को (साधुना पथा) उत्तम सदाचारयुक्त धर्म-मार्ग से (अति द्रव) व्यतीत किया कर। ये जो विद्वान् सज्जन लोग (यमेन) सर्व-नियन्ता प्रभु के साथ (सधमादं) हर्ष आनन्द (मदन्ति) अनुभव करते हैं उन (सु-विदत्रान्) उत्तम ज्ञानवान्, (पितॄन्) पालक माता, पिता और ज्ञानी पुरुषों को भी (उपेहि) प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार हे जीव ! जीव के साथ रमने वाली चेतना से उत्पन्न वेग युक्त प्राणापान रूप शक्तिप्रद दोनों को सत्साधना रूप योग मार्ग से वश कर। जो प्रभु के साथ रमते हैं उन आत्माराम ज्ञानियों को प्राप्त कर, मोक्ष का लाभ कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥११॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! यम नियम के पालक गुरो ! (ते) तेरे (यौ श्वानौ) जो सदा चलने वाले, (रक्षितारौ) तुझे मृत्यु से बचाने वाले, (चतुरक्षौ) चारों आश्रमों में व्याप्त, (पथि-रक्षी) जीवन भर के मार्ग में रक्षा करने वाले, (नृ-चक्षसौ) देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान हैं। हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप ! (ताभ्याम्) उनसे (एनं) इस जीव को (परि देहि) मुक्त कर और (अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि) उसको सुख, और नीरोग शरीर और जीवन प्रदान कर। (२) राजा के पक्ष में—दो प्रकार के गुप्त और प्रकट राजपुरुष (पोलिस) राष्ट्र के रक्षक, चार आंखों वाले अर्थात् सदा सावधान, चौकन्ने, मार्ग पर रक्षार्थ नियुक्त कर, वे सब मनुष्यों के द्रष्टा हों, उनसे इस प्रजाजन को रक्षित कर और राष्ट्र को सुखकारी और रोगरहित कर।

उ॒रु॒ण॒सावसु॒तृपा॑ उदुम्ब॒लौ य॒मस्य॑ दू॒तौ च॑रतो॒ जनाँ॒ अनु॑ ।
तावस्मभ्यं॑ दृ॒शये॒ सूर्या॑य॒ पुन॑र्दाता॒मसु॑म॒द्येह भ॒द्रम् ॥ १२ ॥

भा०—(यमस्य दूतौ) सर्वनियन्ता राजा के (दूतौ) प्रतिनिधियों के समान, दोनों प्रकार के राजपुरुष (पोलिस) (उरु-णसौ) ऊंची नाक वाले, बलवान् वा तीक्ष्ण शक्ति वाले, (असु-तृपा) प्राण रक्षा योग्य द्रव्य मात्र से तृप्त होने वाले, भृति से संतुष्ट, (उदुम्बलौ) अति बलशाली जन (जनान् अनु चरतः) प्रजाजनों को देखते हुए विचरते हैं । (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे लिये और (सूर्याय दृशये) सूर्यवत् तेजस्वी द्रष्टा अध्यक्ष के लिये (इह अद्य) इस देश और काल में (भद्रम् असुम् पुनः दाताम्) कल्याणकारक बल और जीवन बार २ देवें ।

इसी प्रकार नासिकागत, प्राणतर्पक बली दोनों प्राण अपान और दिन रात्रि परमेश्वर के दिये प्रत्येक जन्तु को प्राप्त हैं । वे हमें नित्य सूर्य का दर्शन करावें, सुख दें, तथा दीर्घजीवी करें ।

य॒माय॒ सोमं॑ सुनुत य॒माय॑ जुहुता ह॒विः ।
य॒मं ह॑ य॒ज्ञो ग॑च्छत्य॒ग्निदू॑तो॒ अरं॑कृतः ॥ १३ ॥

भा०—(यमाय) यम नियम की व्यवस्था करने वाले राजा के लिये (सोमं) आदरार्थ ओषधि, अन्न, ऐश्वर्य (सुनुत) उत्पन्न करो, और (यमाय) उस नियन्ता के उपकारार्थ ही (हविः जुहुत) यज्ञाग्नि में आहुतियोग्य द्रव्य दो, और अन्न प्रदान करो । (यज्ञः) यज्ञ और सत्संगादि भी (अग्नि-दूतः) अग्निवत् तेजस्वी दूतों वाला और (अरंकृतः) सुशोभित होकर (यमं ह गच्छति) उस नियन्ता को ही शरणार्थ प्राप्त होता है ।

य॒माय॑ घृ॒तव॑द्ध॒विर्जु॒होत॒ प्र च॑ तिष्ठत ।
स नो॑ दे॒वेष्वा य॑मद्दी॒र्घमायु॒ः प्र जी॒वसे॑ ॥ १४ ॥

भा०—(यमाय) उस नियन्ता के लिये ही (घृतवद् हविः) घृत से युक्त अन्न और स्नेह से युक्त कर (जुहोत) प्रदान करो। और (प्र तिष्ठत च) उत्तम मार्गों पर चलो, उत्तम पदों पर स्थिर रहो और देश-देशान्तर में प्रस्थान और प्रयाण करो। (सः) वह (नः देवेषु) हमारे बीच विद्वानों और वीर पुरुषों में (जीवसे) उनके जीवनार्थ (दीर्घायुः (प्र आ यमद्) दीर्घजीवन प्रदान करे।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥

भा०—(यमाय राज्ञे) नियन्ता व्यवस्थापक (राज्ञे) राजा के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर, अन्नयुक्त (हव्यं) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (जुहोतन) प्रदान करो। (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिये यह आदर और (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज और (पूर्वेभ्यः) पूर्व के (पथिकृद्भ्यः) मार्ग उपदेश करने वालों को (इदं नमः) यह इस प्रकार अन्न, वचनादि द्वारा आदर-सत्कार प्राप्त हो।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥ १६ ॥

भा०—(एकम् इत् बृहत्) यह एक ही महान् ब्रह्म (त्रि-कद्रुकेभिः) तीन द्रुतगामी गुणों द्वारा (षट् उर्वीः) छहों महान् शक्तियों को (पतति) प्राप्त होता है। जैसे एक सूर्य, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीन गुणों से छहों ऋतुओं को व्यापता है उसी प्रकार एक प्रभु ज्योति, गौ, आयु, अर्थात् सूर्य, भूमि और जीवन तत्व इन तीनों द्वारा इन छहों बड़ी शक्तियों को चला रहा है। द्यौ, पृथिवी, आपः, ओषधिगण, ऊर्क्, सूनृता अर्थात् सूर्य, भूमि, जल, वनस्पति अन्न और वाणी ये छः बड़ी शक्तियां 'षट् उर्वी' हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५]

शंखो यामायन ऋषिः ॥ पितरो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ७, १२—१४ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६ निचृत त्रिष्टुप् । ५ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ निचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अवरे उत् ईरताम्) पर पद को अप्राप्त, निकृष्ट अल्प ज्ञान और अल्प आयु वाले जन ऊपर उठें । (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (पितरः) पालक जन भी (उत् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त हों। इसी प्रकार (मध्यमाः सोम्यासः)मध्यम, अर्थात् उक्त दोनों वर्गों के बीच,मध्यम श्रेणी के भी पालक माता पिता जन (उद् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त करें । (ये) जो (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले विद्वान् जन (असुम् ईयुः) प्राण, बल, आयु, जीवन को प्राप्त हों (ते) वे (पितरः) पालक जन (अवृकाः) वृक के समान हिंसक और चौरवत् दाम्भिक न होकर (हवेषु) संग्रामों और यज्ञों के अवसरों पर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ २ ॥

भा०—(ये पूर्वासः) जो पूर्व, विद्या आदि शुभ गुणों में पूर्ण, और (ये उपरासः) सर्वोपरि विद्यमान अथवा (ये पूर्वासः, ये उ परासः) जो हमसे पूर्व और जो हमारे उपरान्त या बाद के (अद्य ईयुः) आज, अब हमें प्राप्त हैं (ये पार्थिवे) जो पार्थिव लोक, इस भूलोक पर (आ निषत्ताः) सब ओर उत्तम पदों पर विराजमान हैं और (ये वा) जो

निश्चय करके (सु-वृजनासु) शत्रु और प्रजा के दुःखों को दूर करने वाली, उत्तम बलशालिनी सेनाओं में अध्यक्ष होकर विराजते हैं उन (पितृभ्यः इदं नमः अस्तु) प्रजापालक जनों को यह इस प्रकार का अन्न, वेतन, भृति, दण्ड, शासन-अधिकार और आदर-वचन प्राप्त हो।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

भा०—(अहं) मैं (सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) उत्तम, शुभ ज्ञानवान्, और शुभ, सुख प्राप्त कराने वाले पालक, माता पिता और गुरु-जनों को प्राप्त करूं। और मैं (विष्णोः नपातं) व्यापक प्रभु के अविनाशी स्वरूप और (वि-क्रमणं च) विविध सर्ग-रचना-कौशल या व्यापक रूप को (अवित्सि) जानूं। (ये) जा (बर्हि-सदः) यज्ञ, अन्तरिक्ष और बुद्धिमान्, मुक्त पद वा उत्तम आसन पर विराजते और (सुतस्य पित्वः) उत्पन्न औषध, अन्न को (स्वधया भजन्त) अपने स्व-शरीर पोषक रूप से सेवन करते हैं (ते) वे सौम्य पुरुष (इह आगमिष्ठाः) यहां उत्तम आदर पूर्वक आने वाले हों।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ४ ॥

भा०—हे (बर्हि-षदः पितरः) यज्ञ में विराजने वाले गुरु जनो! आप लोगों की (ऊती अर्वाक्) हमारे प्रति सदा रक्षा, प्रीति और प्रसन्नता हो। (इमा हव्या) इन स्वीकारने, खाने और दान देने योग्य अन्न, वस्त्र, धनादि पदार्थों को हम (वः) आप लोगों के निमित्त (चकृम) समर्पण करते हैं। (ते) वे आप लोग (आगत) आइये, (अथ) और (शन्तमेन अवसा) अति शान्तिदायक, रक्षा, प्रीति आदि से (नः शंयोः) हमें शान्ति सुख प्राप्ति और हमारे दुःख का नाश (दधात) करो। और (अरपः दधात) पापों को दूर करो और पुण्यों को शुभ कर्मों को प्राप्त कराओ।

उप॑हूताः पि॒तर॑ः सो॒म्यासो॑ बर्हि॒ष्ये॑षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑ ।
त आ ग॑मन्तु त इ॒ह श्रु॑व॒न्त्वधि॑ ब्रुवन्तु॒ ते॑ऽवन्त्व॒स्मान् ॥५॥१७॥

भा०—(सोम्यासः पितरः) सोम, अन्न, जल, ओषधि, ऐश्वर्यादि के योग्य (पितरः) माता पिता, गुरुजन (बर्हिष्येषु) यज्ञोपयोगी (प्रियेषु) तृप्तिदायक, (निधिषु) नियम से धारण करने योग्य पदार्थों के निमित्त (उप-हूताः) आदर पूर्वक बुलाये हों । (ते) वे (इह आगमन्तु) यहां आवें । (ते इह अधि श्रुवन्तु) वे यहां अध्यक्ष होकर हमारे वचन सुनें । और (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा और हम से प्रेम करें ।

आच्या॒ जानु॑ दक्षिण॒तो नि॒षद्ये॒मं य॒ज्ञम॒भि गृ॑णीत॒ विश्वे॑ ।
मा हिं॑सिष्ट पितरः॒ केन॑ चिन्नो॒ यद्व॒ आग॑ः पुरु॒षता॒ करा॑म ॥६॥

भा०—हे (पितरः) माता पिता, गुरु जनों के तुल्य प्रजापालक जनो ! (विश्वे) आप सब लोग (दक्षिणतः) दाएं ओर (जानु आच्य) गोड़े सिकोड़ कर (नि-सद्य) विराज कर (इमं यज्ञम् अभि गृणीत) इस यज्ञ वा उपास्य प्रभु को लक्ष्य कर उपदेश कीजिये । (यद् वः) जो आप लोगों के प्रति हम (पुरुषता आगः कराम) मनुष्य होने के कारण अपराध कर दें (केन चित्) किसी भी कारण से (नः मा हिंसिष्ट) आप लोग हमें पीड़ित न करें । गुरुजनों को आदरार्थ दक्षिण अर्थात् दायें हाथ बैठाना चाहिये ।

आसी॑नासो अरु॒णीना॑मु॒पस्थे॑ र॒यिं ध॑त्त दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
पु॒त्रेभ्य॑ः पितर॒स्तस्य॒ वस्व॒ः प्र य॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात ॥ ७ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक जनो ! (अरुणीनाम् उपस्थे) सब ओर उत्तम रूप, कान्ति आदि से चमकने वाली, भूमियों प्रजाओं और सहचारिणियों के समीप (आसीनासः) विराजते हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के उपकारार्थ उसके (रयिं धत्त)

दातव्य धन को धारण करो और कालान्तर में (तस्य पुत्रेभ्यः) उसके ही पुत्र पौत्रों के उपकारार्थ (वस्वः प्रयच्छत) उस धन का प्रदान करें। (ते) वे आप लोग (इह ऊर्जं दधात) इस यज्ञ में बल आधान करें, अधिकार धारण करें।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥

भा०—(नः) हमारे (ये) जो (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, वृद्ध, विद्या आदि गुणों में पूर्ण (सोम्यासः पितरः) अन्न, ओषधि, ऐश्वर्य शिष्यपुत्रादि के योग्य हितैषी (वसिष्ठाः) उत्तम 'वसु' अर्थात् अन्यों को बसाने वाले होकर (सोमपीथं अनु ऊहिरे) सोम अर्थात् शिष्यादि से पालन करने योग्य ज्ञान को प्रतिदिन धारण करते वा तर्क द्वारा विवेचन करते हैं (तेभिः उशद्भिः) उन प्रिय गुरु जनों के साथ (सं-रराणः यमः) अच्छी प्रकार सुख पूर्वक रहता हुआ यमनियमों का पालक शिष्य वा नवगृहस्थ (प्रतिकामम् उशन्) प्रत्येक उत्तम पदार्थ को चाहता हुआ (हवींषि अत्तु) उत्तम अन्नों का उपभोग करे।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ ९॥

भा०—(ये) जो (होत्रा-विदः) अग्निहोत्र, दान और 'होत्रा' अर्थात् वेदवाणी को जानने हारे (स्तोम-तष्टासः) वेद के सूक्तों को खोल २ कर बतलाने वाले, विद्वान् पुरुष (देवत्रा) विद्या के इच्छुक शिष्यों को (जेहमानाः) प्राप्त होकर उनके लिये (तातृषुः) धनादि चाहते हैं उन (अर्कैः) अर्चनीय (सुविदत्राभिः) उत्तम ज्ञानवान् (सत्यैः) सत्यभाषी, सज्जन, (कव्यैः) क्रान्तदर्शी, (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी, तपस्वी, यज्ञस्थ, (पितृभिः)

पितृवत् पूज्य गुरुजनों सहित हे, (अग्ने) तू विनीत शिष्य ! हे उत्तम नायक ! तू सबके (अर्वाङ् आयाहि) समक्ष आ ।

ये स॒त्यासो॑ हवि॒रदो॑ हवि॒ष्पा इन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ दधा॑नाः ।
आग्ने॑ याहि स॒हस्रं॑ देवव॒न्दैः परैः॒ पूर्वैः॑ पि॒तृभि॑र्घर्म॒सद्भिः॑॥१०॥१८॥

भा०—(ये) जो (सत्यासः) सत्याचरणशील, (हविः-अदः) उत्तम अन्न के खाने वाले, निरामिष, (हविष्पाः) उत्तम अन्नरस का ही पान करने वाले, (इन्द्रेण देवैः) आत्मदर्शी गुरु और विद्याभिलाषी शिष्यजनों के साथ (स-रथं दधानाः) एक समान रथ को धारण करने वाले, उनके समान आदर प्राप्त हैं, उन (देव-वन्दैः) शिष्यजनों से वन्दनीय, (परैः पूर्वैः) श्रेष्ठ, पूर्व, विद्यादि में पूर्ण (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी, तपस्वी जनों के साथ हे (अग्ने) ज्ञानवन् तेजस्विन् ! तू भी (सहस्रं आयाहि) बलवान् पद को प्राप्त हो, वा अनेक ऐश्वर्य-अधिकार प्राप्त कर ।

अग्नि॑ष्वात्ताः पितर॒ एह ग॑च्छत॒ सदः॑ सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अ॒त्ता ह॒वींषि॒ प्रय॑तानि ब॒र्हिष्यथा॑ र॒यिं सर्व॑वीरं दधातन ॥११॥

भा०—(अग्नि-सु-आत्ताः) अंग में विनयशील शिष्यों, और अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से आश्रित (पितरः) उनके पालक गुरुजनो ! हे (सुप्रणीतयः) शुभ, उत्कृष्टमार्ग में लेजाने वालो ! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आइये । और (सदः सदः सदत) प्रत्येक सभा में और उत्तम २ आसन पर विराजिये । आप लोग (प्रयता हवींषि) नियत अन्न, भृति, वेतन आदि का (अत्त) उपभोग कीजिये । (अध) और (बर्हिषि) इस राष्ट्र यज्ञ में (सर्व-वीरं रयिं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करें ।

त्वम॑ग्न ईळि॒तो जा॑तवे॒दोऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वी ।
प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॑ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ १२

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जातवेदः) धन, ऐश्वर्य और ज्ञान, विद्या मे प्रसिद्ध ! (त्वम् ईडितः) तू स्तुतिपात्र और सर्वप्रिय होकर (हव्यानि) खाने और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वी) उत्तम गन्ध युक्त और उत्तम वलप्रद करके (अवाट्) प्रदान कर। तू (पितृभ्यः प्रादाः) उस प्रकार के ही अन्न अपने पालक गुरुजनों को भी आदरपूर्वक प्रदान कर। (ते) वे उस अन्न का (स्वधया) 'स्व-धा' अर्थात् अपने शरीर के पोषण धारण के निमित्त ही (अक्षन्) प्राप्त करें। और (त्वं) तू भी हे (देव) दानशील ! विनीत ! (प्रयता हवींषि) अपने गुरुजनों से प्रदान किये अन्नों को (अद्धि) भोजन किया कर।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ १३ ॥

भा०—(ये च इह पितरः) जो यहां पिता, पालक गुरुजन हैं, (ये च न इह) और जो यहां नहीं हैं। (यान् च विद्म) और जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्र-विद्म) जिनको हम नहीं जानते हैं, हे (जात-वेदः) विद्यावन् ! ऐश्वर्यवन् ! (यति) यदि (ते) उनको (त्वं वेत्थ) तू जानता है तो (स्वधाभिः) अन्न जलों, वेतनों सहित (सुकृतं) उत्तम रीति से किये (यज्ञं जुषस्व) यज्ञ, दान का सेवन कर, उनको भी आदर पूर्वक अन्नादि प्रदान कर।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥१६॥

भा०—ये (अग्नि-दग्धाः) जो लोग अग्नि, ज्ञानवान् प्रभु या गुरु द्वारा अपने अज्ञान पापादि को भस्म कर देने वाले, वा अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, और (ये अनग्नि-दग्धाः) अग्नि, यज्ञ, गुरु आचार्यादि द्वारा अभी कर्मों को भस्म नहीं कर पाये वा जो संन्यासी अग्निहोत्र नहीं करते

और (मध्ये दिवः) भूमि में वा ज्ञान-ज्योति वा प्रकाश के बीच ही (स्वधया) अन्न वा जल, वा स्वशरीर की धारणा शक्ति के बल से (मादयन्ते) सदा तृप्त, वा सुखी रहते हैं (तेभिः) उनके साथ तू (स्वराट्) स्वयं देदीप्यमान होता हुआ (एताम्) इस (असु-नीतिं) प्राण वा बल प्राप्त करने वाले (तन्वं) देह को (यथावशं) यथाशक्ति (कल्पयस्व) समर्थ बना । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

दमनो यामायन ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्, २, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । १० स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ अनुष्टुप् । १२ निचृदनुष्टुप् । १३, १४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! गुरो ! (एनं) इस प्रजा जन वा शिष्य को (मा वि दहः) विशेष रूप से भस्म मत कर । (मा अभि शोचः) शोक से संतप्त मत कर । हे जातवेदः ! विद्याओं में सम्पन्न ! हे ऐश्वर्यवन् ! (यदा) जब तू इसे (शृतं कृणवः) परिपक्व करे, तब (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इसकी त्वचा को मत विछिटा, अर्थात् कठोर शारीरिक दण्ड से त्वचा को भंग करने वाली असह्य पीड़ा न दे । (मा शरीरं चिक्षिपः) देह को भी विक्षिप्त या बेचैन मत कर । (अथ) अनन्तर (एनं) परिपक्व बल-वीर्य से सम्पन्न इस जन को (पितृभ्यः) माता, पिता, चाचा, ताऊ, आदि जनों की सेवा के लिये (प्र हिणुतात्) भेज देना

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ २ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त विद्याओं के जानने हारे गुरो ! (यदा) जब तू (एनं श्रृतं इं करसि) इसको सब प्रकार से परिपक्व कर ले (अथ एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) तब ही उसको माता पितादि की सेवा में प्रदान कर, पूर्ण विद्वान् होने के पूर्व नहीं । क्योंकि (यदा) जब पुरुष (एताम् असु-नीतिं गच्छति) इस प्रकार की प्राण और बल के धारण करने की शिक्षा को प्राप्त कर लेता है (अथ) तभी वह (देवानां) विषय-क्रीड़ाशील इन्द्रियों को वश करने में समर्थ होता है । उससे पूर्व अजितेन्द्रिय होने के कारण उसका नाना प्रलोभनों में पड़ जाना सम्भव है ।

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥

भा०—हे मनुष्य ! जीव ! (सूर्यं चक्षुः गच्छतु) आंख सूर्य के प्रकाश को प्राप्त करे । (आत्मा वातम्) आत्मा, यह प्राण या देह वायु को प्राप्त करे, शुद्ध वायु ग्रहण करे । तू (धर्मणा) धर्म, सामर्थ्य के अनुसार, (द्यां च गच्छ) आकाश और (पृथिवीं च) पृथिवी को वा माता और पिता को भी वा काम्य फल और देह को प्राप्त कर । (वा अपः गच्छ) वा तू कर्म, जलतत्व, आप्त जनों, प्राप्तव्य पदार्थों को भी प्राप्त कर । (यदि ते तत्र हितम्) यदि उनमें तेरा हितकारी अभिप्राय विद्यमान है तो तू (शरीरैः) शरीरों, उसके अंगों द्वारा (ओषधीषु) ओषधियों और अन्नों के आधार पर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा प्राप्त कर ।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ४ ॥

भा०—(भागः) नाना कर्मफलों का भोक्ता आत्मा (अजः) जन्मादि से रहित है। हे (जातवेदः) विद्वन्! (तं) उसको (तपसा तपस्व) तप से संतप्त कर, आत्मा को तप द्वारा शुद्ध कर। (ते शोचिः) तेरा शुद्ध प्रकाश (तं) उस आत्मा को (तपतु) तप्त करे और (तं ते अर्चिः तपतु) उसी आत्मा को तेरा अर्चनीय ज्ञान तप्त करें, शुद्ध करे। (याः) जो (ते शिवाः तन्वः) शान्तिदायक कल्याणकारी रूप हैं (ताभिः एनं सुकृताम् लोकम् वह) उनसे उसको तू पुण्यकर्म जनों के स्थान में प्राप्त करा, जहां वह भी उत्तम कर्म करने वाला बने।

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑त॒श्चर॑ति स्व॒धाभि॑ः।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ वेतु॒ शेष॒ः सं ग॑च्छतां त॒न्वा॑ जातवेदः ॥५॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! (यः) जो (ते आहुतः) तेरे अधीन समर्पित होकर (स्वधाभिः) भिक्षादि अन्नों द्वारा तेरी सेवा करता है उस शिष्य को तू (पुनः) फिर (पितृभ्यः अव सृज) पालक जनों के हितार्थ प्रेरित कर। वह (वसानः) अपने को उत्तम वस्त्रों से आच्छादित कर (शेषः आयुः उपवेतु) अपनी शेष आयु को माता पिता के साथ व्यतीत करे। हे (जातवेदः) विद्वन्! वह (तन्वा संगच्छताम्) दृढ़ शरीर से सदा युक्त रहे। इति विंशो वर्गः॥

यत्ते॑ कृ॒ष्णः श॑कु॒न आ॑तु॒तोद॑ पि॒पीलः॑ स॒र्प उ॒त वा॒ श्वाप॑दः।
अ॒ग्निष्टद्वि॒श्वाद॑ग॒दं कृ॑णोतु॒ सोम॑श्च॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ ॥६॥

भा०—(यत्) जब (ते) तुझे (कृष्णः) काला वा काटने वाला (शकुनः) पक्षी वा शक्तिशाली वा दुःखदायी जन्तु, वृश्चिक आदि (आ तुतोद) खूब व्यथित करे (पिपीलः) कीड़ा, मकोड़ा काटे वा (सर्पः) सांप जाति का जन्तु काटे (उत वा श्वा-पदः) वा कुत्ते के समान पंजे वाला, कुत्ता, गीदड़, बिल्ली, बिल्ला, सिंह व्याघ्र आदि काटे, (तत्) उसको

(अग्निः) अग्नि वा ज्ञानवान् पुरुष (विश्वात्) सब प्रकार से (अगदं कृणोतु) पीड़ारहित करे। (सोमः च) और जो ओषधि-विज्ञ पुरुष (ब्राह्मणान् आ विवेश) वेदज्ञ विद्वान् को प्राप्त है वह भी उसको नीरोग करे।

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते ॥ ७ ॥

भा०—तू (अग्नेः गोभिः) ज्ञानवान् पुरुष की शुभ वाणियों द्वारा (वर्म) अपने को रक्षा करने के योग्य वस्त्र कवचादि (परि व्ययस्व) धारण करा। और (पीवसा मेदसा च) पुष्टिकारक और स्नेहयुक्त देहधातुओं से अपने को (सं प्र ऊर्णुष्व) अच्छी प्रकार आच्छादित कर। जिससे (धृष्णुः) धर्षणशील, अग्नि सदृश गुरु (जर्हृषाणः) अति प्रसन्न होकर (दधृक्) अति कठोर होकर (वि-धक्ष्यन्) विपरीत पापादि को दग्ध करना चाहता हुआ (त्वा नेत् पर्यंखयाते) तुझे न घेर ले, तुझे दण्डित न करे।

इ॒मम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म्।
ए॒ष यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न्दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ते ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् प्रकाश देने हारे! तू (इमं चमसं) इस कृपापात्र जन को (मा विजिह्वरः) कभी विपरीत दिशा में कुटिल मत बनने दे। प्रत्युत वह (देवानाम् प्रियः) ज्ञान धनादि देने वालों को प्रिय और (सोम्यानाम् प्रियः) सोम, पुत्रवत् शिष्य के प्रिय माता पिता आदि को भी प्रिय हो। (यः) जो (चमसः) पात्र के समान विनीत होकर (एषः) वह (देवपानः) विद्वानों का पालक वा शुभ गुणों वा ज्ञान रसों का पान करने वाला है (तस्मिन्) उस पर समस्त (देवाः) विद्वान् (अमृताः) दीर्घायु जन (मादयन्ते) अति हर्षित होते हैं।

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॒मरा॑ज्ञो गच्छतु रिप्रवा॒हः ।
इ॒हैवाय॒मित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥ ९ ॥

भा०—उक्त प्रकार के गुरु शिष्य की व्यवस्था के द्वारा, मैं (क्रव्यादम्) मांस के खाने वाले (अग्निं) संतापदायक दुष्ट जन्तु वा मृत्यु को भी (दूरं प्र हिणोमि) दूर करने में समर्थ होऊं। और (रिप्र-वाहः) पाप को धारने वाले पुरुष (यम-राज्ञः गच्छतु) नियन्ता राजा के पुरुषों के हाथों जावे । (इतरः) और उससे अन्य निष्पाप जन (जात-वेदाः) विद्यावान् और धनसंपन्न होकर (प्र-जानन्) भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करता हुआ, (इह एव) यहां, इस आश्रम में ही, (देवेभ्यः हव्यं वहतु) ज्ञान धन आदि के दाता विद्वानों को अन्न आदि प्रदान करे । वह गुरु (देवेभ्यः) विद्या के अभिलाषी अन्नों को (हव्यं) ग्राह्य ज्ञानआदि प्रदान करे ।

यो अ॒ग्निः क्र॒व्यात्प्र॑वि॒वेश॑ वो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम् ।
तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दे॒वं स घ॒र्ममि॑न्वात्पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥१०॥२१॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्नि के समान संतापदायक (क्रव्यात्) मांसभक्षी जन (इतरं) अपने से भिन्न (जात-वेदसं) विद्या और ऐश्वर्य से संपन्न को देखकर (इमं वः गृहम्) इस आप के घर में (प्र-विवेश) प्रवेश करे मैं (तं हरामि) उसको दूर करूं । और (सः) वह विद्या और ऐश्वर्य से संपन्न पुरुष (पितृ-यज्ञाय) पालक माता पिता और गुरुजनों के यज्ञ अर्थात् आदर-सत्कार और सत्संग लाभ के लिये (परमे) सर्वोत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान पर स्थित (देवं घर्मं) दीप्तिमान् , तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशमान प्रभु, तपस्वी वा ज्ञानी पुरुष को (इन्वात्) प्राप्त करे । घरों में मांसाहारी क्रूर, पुरुष विद्वान् का वेश बना कर स्थान न पावे । प्रत्युत गृहस्थी जन बड़े गुरुजनों के सत्संग-लाभ के उद्देश्य से भी विद्वान्, सूर्यवत् तपस्वी के पास जावें, न कि धन हरे लोलुपों के पास । क्योंकि वे

श्मशानाग्नि वा भेड़िये के तुल्य संतापक होते हैं। अथर्ववेद में 'देवं' के स्थान में 'दूरं' पाठ है, 'इन्वात्' के स्थान पर 'इन्धात्' पाठ है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (क्रव्य-वाहनः अग्निः) कटे काष्ठादि में लगे अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष (क्रव्य-वाहनः) उत्तम अन्नों या कटी हुई समिधादि को हाथ में धारण करने वाला होकर (ऋतवृधः पितॄन् यक्षत्) सत्य-ज्ञान को बढ़ाने वाले गुरु आदि पालक जनों का आदर-सत्कार और सत्संग करता है वह ही (देवेभ्यः च) उत्तम विद्वानों और (पितृभ्यः) गुरु जनों के (हव्यानि) उत्तम ग्राह्य ज्ञानों को (प्र वोचति, आ वोचति) प्रवचन करता और कराता और अन्यों को उपदेश करता है।

'क्रव्य-वाहनः'—क्रव्यस्य हविषः वोढा इति सायणः ॥ क्रविषः—भक्षितस्य (यजु २५।३३) अथवा गन्तुः इति दयानन्दः (यजु० २५। ३२। निष्क्रव्यादम्—क्रव्यम् पक्कं मासम् अत्ति इति दयानन्दः। (यजु० १।७)। क्रव्यं विकृत्ताज्जायते इति नैरुक्ताः (निरु० ६।३२)

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन्! हम (उशन्तः) तुझे चाहते हुए ही (त्वा नि धीमहि) तुझे स्थापित करते हैं और (उशन्तः) तुझे वा तुझ से ज्ञानादि की कामना करते हुए ही (सम् इधीमहि) तुझे प्रज्वलित करते हैं। हे ज्ञानवन्! तू (उशन्) अग्निवत् प्रदीप्त और इच्छावान् होकर ही (उशतः पितॄन्) तुझे चाहने वाले माता, पिता, गुरुजनों को (हविषे अत्तवे) उत्तम अन्न भोजन कराने के लिये (आ वह) रथादि द्वारा प्राप्त

करा और (आ वह) अपने कन्धों पर उनके भरण पोषण का भार वहन कर। अथवा, हे विद्वन्! तू विद्यार्थियों को चाहता हुआ (उशतः पितॄन् आ वह) विद्याभिलाषी व्रतपालकों को ग्राह्य ज्ञान प्राप्त कराने के लिये धारण कर।

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑ः।
कि॒याम्ब्वत्र॑ रोहतु पाकदू॒र्वा व्य॑ल्कशा ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि जिस स्थान पर घास को जला देता है उसको भस्म कर देने पर वह स्वयं शान्त होकर बाद में और भी अधिक घास उत्पन्न होने का कारण बनता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञान के प्राप्त कराने वाले! उपदेष्टः! गुरो! (त्वं) तू (यम्) जिस शिष्य को (सम् अदहः) अग्निवत् संतप्त करे। (तम् उ) उसको ही (पुनः) कालान्तर में वा बार २ (निर्वापय) जल के समान शीतल दयार्द्र होकर, शान्त, अनुद्विग्न, सुखी किया कर। (अत्र) उसमें (कियाम्बु) कितना अथाह जलवत् ज्ञानसागर (रोहतु) उत्पन्न हो और (पाक-दूर्वा) पकी दूब के समान (वि-अल्कशा) विविध शाखायुक्त वेद-विद्या (रोहतु) लता के समान उगे और बढ़े।

शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति।
म॒ण्डू॒क्या॒३॒॑ सु सं ग॑म इ॒मं स्व॑१॒॑ग्निं ह॑र्षय ॥ १४ ॥ २२ ॥ १ ॥

भा०—हे (शीतिके) शीतल स्वभाव वाली! हे (शीतिकावति) शीतवत् शान्तिदायक वाणियों से युक्त! हे (ह्लादिके) आल्हाददायिनि! हे (ह्लादिकावति) आह्लाद देने वाली वाणियों से युक्त विद्ये! तू (मण्डूक्या) तत्वज्ञान में जल में मण्डूकी के समान निमग्न होने अर्थात् गहरी डुबकी लगाने वाली बुद्धि के द्वारा (आ गमः) प्राप्त हो, (सं गमः) अच्छी प्रकार विदित हो। और (इमं अग्निम्) उस विद्वान् को (सु हर्षय) अच्छी प्रकार हर्षित कर। इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः।

[१७]

देवश्रवा यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१, २ सरण्यूः । ३—६ पूषा । ७—९ सरस्वती । १०, १४ आपः । ११—१३ आपः सोमो वा ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, ९—११ निचृत् त्रिष्टुप् । १३ ककुम्मती बृहती । १७ अनुष्टुप् । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वष्टा॑ दुहि॒त्रे व॑ह॒तुं कृ॑णो॒तीती॒दं विश्वं॒ भुव॑नं॒ समे॑ति ।
य॒मस्य॑ मा॒ता प॑र्यु॒ह्यमा॑ना म॒हो जा॒या विव॑स्वतो ननाश ॥ १ ॥

भा०—(त्वष्टा) संसार का रचने वाला परमेश्वर (दुहित्रे) सर्व जगत् को पू॰ करने वाली प्रकृति को (वहतुं कृणोति) वहन या धारण करता है । तभी (इदं विश्वं भुवनं) यह समस्त उत्पन्न होने वाला जगत् (सम् एति) उत्पन्न होता है । (यमस्य महः विवस्वतः) महान्, सर्व जगत् के नियन्ता विविध लोकों के स्वामी प्रभु परमेश्वर की (जाया) विश्व की उत्पादक प्रकृति (पर्युह्यमाना) सब प्रकार से प्रभु द्वारा धारण की जाकर (माता) जगत् की जननी, माता होकर (ननाश) अव्यक्त रूप से विद्यमान रहती है । उसी प्रकार (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (दुहित्रे) अन्नादि देने वाली भूमि के तुल्य सब काम्य सुखों की देने हारी स्त्री के हितार्थ ही (वहतुं कृणोति) विवाह करता है, (इति इदं विश्वं भुवनं समेति) इसी कारण यह समस्त लोक ठीक २ चलता है । (यमस्य विवस्वतः) विवाह कर्त्ता, विविध धनों के स्वामी पुरुष द्वारा (पर्युह्यमाना) परिणयपूर्वक विवाह की गयी (जाया) पुत्रोत्पादन में समर्थ स्त्री (माता सती महः ननाश) कालान्तरों में माता होकर अति महान् पति के समान पूज्यपद को प्राप्त होती है ।

उपाध्यायाद् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पदान्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ मनु । २ । १४५ ॥

यास्क के अनुसार—त्वष्टा सूर्य दुहिता उषा को धारण करता है तब यह सब विश्व प्रकट होता है। तब उस महान् सूर्य की उत्पादक माता रात्रि, उससे लुप्त हो जाती है।

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ २ ॥

भा०—जल, भूमि आदि तत्व उस (अमृतां) अविनाशिनी प्रकृति को (अप अगूहन्) अपने भीतर छिपा कर रखते हैं। वे (विवस्वते सवर्णाम्) विविध लोकों के स्वामी, परमेश्वर के समान वर्ण की, अव्यक्त, व्यापक प्रकृति को (कृत्वा) व्यक्त करके (मर्त्येभ्यः) मरणधर्मा जीव, प्राणियों के उपभोग के लिये (अदधुः) प्रदान करते हैं। वह (सरण्यूः) सरण-शील, गतिशील, विकृति को प्राप्त प्रकृति (द्वा मिथुना अजहात्) दो जोड़ों को उत्पन्न करती है (उत) (यत् तत् आसीत्) जो अव्यक्त रूप में थी वही (अश्विनौ अभरत्) आकाश और पृथ्वी को उत्पन्न करती है। यास्क के अनुसार—यह वाणी का वर्णन है। विवस्वान् उस प्रभु की (अमृतां) उस नित्य वाणी को विद्वान् गण (सवर्णां कृत्वा) वर्णों सहित करके (अप अगहून्) खोल २ कर वर्णन करते हैं और (मर्त्येभ्यः अददुः) मनुष्यों के हितार्थ प्रवचन द्वारा प्रदान करें। (यत् तत् आसीत्) वह जो परम ब्रह्म-ज्ञानमय वाणी है वह (अश्विनौ) विद्या में व्यापनशील, जितेन्द्रिय गुरु शिष्य दोनों को (अभरत्) धारण-पोषण करती है। वह (सरण्यूः) गुरु से शिष्य को प्राप्त होने वाली वाणी, (द्वा मिथुना) दोनों जोड़ों को (अजहात्) उत्पन्न करती है। अर्थात् आगे भी इसी प्रकार गुरु से शिष्य-परम्परा चलती है।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(पूषा) सबको पोषण करने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (त्वा इतः प्र च्यवतु) तुझे उत्तम मार्ग की ओर ले जावे। वह (अनष्ट-पशुः) ऐसे पशु पालक के समान है जिसकी रक्षा में रहते हुए पशुगण कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। (सः अग्निः) वह ज्ञानवान् सर्वप्रकाशक प्रभु (त्वा) तुझ जीव को (एतेभ्यः पितृभ्यः) इन माता पिता, चाचा आदि पूज्य एवं (देवेभ्यः) सुख आदि के देने वाले तुझे चाहने वाले (सुविदत्रियेभ्यः) उत्तम ज्ञान के रक्षक गुरुओं के हाथ (परि ददत्) प्रदान करता है।

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

भा०—(विश्वायुः) सब को जीवन देने वाला, सर्वत्र व्यापक, (आयुः) वायुवत् सबका प्राणाधार प्रभु (त्वा परि पासति) तेरी सर्वत्र रक्षा करे। (पूषा) सर्वपोषक प्रभु (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पुरुस्तात्) आगे से (पातु) रक्षा करे। (यत्र सुकृतः आसते) जिस स्थान पर उत्तम कर्म करने हारे पुण्यात्मा लोग विराजते हैं और (यत्र ते ययुः) जिस उत्तम लोक में वे जाते हैं वा जिस मार्ग पर चलते हैं (तत्र) वहां, उस मार्ग में (देवः सविता) प्रकाशदाता, सर्वोत्पादक प्रभु (त्वा दधातु) तुझे भी स्थापित करे।

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥२३॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक प्रभु (इमाः सर्वाः आशाः) इन समस्त दिशाओं और हमारी इच्छाओं को (अनु वेद) प्रतिक्षण जानता है। (सः अस्मान्) वह हमें (अभय-तमेन) अत्यन्त भय से रहित मार्ग से (नेषत्) ले चले। (स्वस्ति-दाः) वह समस्त कल्याणों का देने वाला

आ-घृणिः) सर्वत्र सब प्रकार से प्रकाशों से युक्त, सूर्यवत्, (सर्व-वीरः) सब वीरों का स्वामी, सब प्राणों का स्वामी, सब को विविध विद्याओं का उपदेश करने वाला, (प्र-जानन्) सब उत्तम ज्ञान को जानता हुआ, सर्वज्ञ प्रभु (अप्र-युच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (नः पुरः एतु) सदा हमारे आगे मार्गदर्शी होकर रहे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

भा०—(पथाम् प्रपथे) सब मार्गों में से उत्तम मार्ग में (पूषा अजनिष्ट) सर्वपोषक प्रभु ही सबको मार्ग दिखाने वाला होता है । वही (दिवः प्रपथे, पृथिव्याः प्रपथे) आकाश और भूमिके उत्तम मार्ग में रक्षक होता है । वह ही (प्र-जानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न प्रभु (उभे प्रिय-तमे सध-स्थे) दोनों अति प्रिय इह लोकों और परलोकों में भी (आ च परा च चरति) समीप और दूर भी विद्यमान रहता है । वह ही (आ चरति च) पुण्य कर्मों का अनुकूल फल देता है और (परा चरति च) दुष्ट कर्मों का प्रतिकूल फल देता है । वह ही (प्रजानन्) खूब जानता है कि इसने यह बुरा वा अच्छा काम किया है और इस २ कर्म का यह २ फल है ।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥

भा०—(देवयन्तः) ज्ञान-प्रकाश देने वाले, परम सुखदाता, प्रभु की कामना करते हुए विद्वान् लोग उसको (सरस्वतीम् हवन्ते) सर्वप्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न शक्ति स्वीकार करते हैं और (अध्वरे तायमाने) यज्ञ के विस्तृत होने पर (सरस्वतीम् हवन्ते) ज्ञानमय वेदवाणीवत् उस प्रभु का स्मरण करते हैं । (सुकृतः) उत्तम आचरण करने वाले पुण्यात्मा लोग (सरस्वतीं अह्वयन्त) उस ज्ञानमयी वेदवाणी और प्रभु को ही पुकारते

हैं। क्योंकि वह (सरस्वती) उत्तम ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही (दाशुषे वार्यं दात्) आत्मसमर्पक, दानशील, त्यागी पुरुष को सब वरण योग्य उत्तम ज्ञान, धन प्रदान करता है। (२) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री भी 'सरस्वता' कहाती है, विद्वान्, पुत्र चाहने वाले, यज्ञकर्त्ता और पुण्य चरित्रवान् पुरुष उत्तम विदुषी स्त्री को पत्नीरूप से अंगीकार करते हैं। वह उत्तम, बीजप्रद स्वामी को उत्तम पुत्र देती है।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आ सद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ८ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान की स्वामिनि ! वा हे विदुषी ! (देवि) ज्ञानप्रकाश की देनेहारी ! (या) जो तू (स्वधाभिः) उत्तम अन्न, (पितृभिः) पालक माता पिता, गुरुजनों सहित (मदन्ती) स्वयं तृप्त और अन्यों को प्रसन्न करती हुई (स-रथं ययाथ) एक समान रथ में जाती है, वह तू (अस्मिन् आ-सद्य) इस यज्ञ में उत्तम आसन पर आदरपूर्वक विराज कर (अस्मे) हमें (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न और उत्तम काम्य पदार्थ प्रदान कर। (२) प्रभु 'सरस्वती' है। वह भी (पितृभिः स्वधाभिः) सर्वपालक अन्न, जलादि अपनी धारण-पोषणकारिणी शक्तियों, अन्नों, ओषधियों, से सब को तृप्त करता और स्वयं भी पूर्णकाम है। हमारे रमणयोग्य देह रूप रथ में भी विद्यमान है। वह हमारे यज्ञ में विराजता है, वह हमें उत्तम अदुःखदायी अन्नवत् इष्ट कर्मफल दे।

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ ९ ॥

भा०—(यज्ञम् अभि-नक्षमाणाः) यज्ञ को प्राप्त होते हुए, (पितरः) बसे गृहस्थ जन (यां) जिस (सरस्वतीं) उत्तम वेदज्ञान से युक्त विदुषी को (दक्षिणा) अपने दक्षिण भाग में (हवन्ते) स्वीकार करते हैं। वह तू

(अत्र) हे विदुषि ! इस लोक में, (सहस्र-अर्घम्) सहस्रों प्रकार से पूज्य, उपयोगा, (इडः भागं) अन्न के सेवनीय भाग और (सहस्रार्घं रायः पोषम्) सहस्रों गुण मूल्यवान् धन की वृद्धि (यजमानेषु धेहि) यज्ञशील, दानी जनों में धारण करा। वा यज्ञशील और दानशील जनों के अधीन तू अन्न या धन के श्रेष्ठ भाग को धारण कर। (२) इसी प्रकार जिस ज्ञानवान् प्रभु को पालक गुरुजन (दक्षिणा) दक्षिणभाग से यज्ञ में आकर पूज्य भावसे स्तुति करते हैं, वह हमें सहस्र-गुण मूल्य वाला अन्न धन प्रदान करे।

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि १०।२४

भा०—(अस्मान्) हमें (आपः) जलोंके समान आप्त, (मातरः) माता के तुल्य शुद्ध, पवित्र स्नेह से युक्त विद्वान् पुरुष (शुन्धयन्तु) पवित्र करें और (घृत-प्वः) जलवत् स्नेह से पवित्र करने वाले विद्वान् जन (नः घृतेन) हमें जलवत् शान्तिदायक स्नेह से ही (पुनन्तु) पवित्र करें। वे (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त भद्र जन (विश्वं रिप्रं प्रवहन्ति) सब प्रकार का पाप बहा देते हैं। (आभ्यः इत् शुचिः) उनसे ही पवित्र होकर मैं (उत् एमि) अभ्युदय को प्राप्त होऊं। (घृत-प्वः) तेजोमय ज्ञान से पवित्र करने वाला (आपः) आप्त वा व्यापक गुणों से युक्त प्रभु 'आपः' शब्द से कहा जाता है, वह सर्वोत्पादक होने से 'माता' है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ११ ॥

भा०—(द्रप्सः) द्रव रूप से वा द्रुतगति से जाने वाला सूर्य (यः च पूर्वः) जो सब से पूर्व विद्यमान रसरूप तेज, (प्रथमान् द्यून् अनु) प्रथम के सब दिनों वा (प्रथमान् द्यून् अनु) पूर्व उत्पन्न सब तेजस्वी लोकों और (इमं योनिम् च अनु) इस भूमि लोक को भी (चस्कन्द) प्राप्त

होता है और (समानं योनिम् सञ्चरन्तं अनु) एक समान लोक या स्थान को जाते हुए जिसके पीछे २ (सप्त होत्राः) सात ऋतुगग जाते हैं उसी प्रकार (द्रप्सः) तेजोरूप, रस रूप आत्मा जो इस देह से पूर्व विद्यमान है, जो (प्रथमान् द्यून्) पूर्व के काम्य देहों और (इमं योनिम्) इस देह को भी प्राप्त होता है। एक समान देह में विचरते उस आत्मा के प्रति (सप्त होत्राः जुहोमि) मैं अपने सातों प्राणों की आहुति करता हूं। सातों प्राण उसी के अधीन रखता हूं।

(द्रप्सः)—वह तेजोमय मूल तत्त्व है जिससे सूर्यादि समस्त लोक बने हैं, वही 'सोम' है, वही समस्त लोकों का उत्पादक वीर्य के तुल्य है। उसी समानता से प्राणियों का उत्पादक वीर्य भी 'सोम' और 'द्रप्स' कहाता है।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शुर्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त्।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् १२

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा तेजोमय रस (स्कन्दति) सर्वत्र प्रवाहित होता है, (यः ते अंशुः) जो तेरा व्यापक रस (धिषणायाः उपस्थात्) सर्वोपरि दातृशक्ति से (बाहु-च्युतः) मानो बाहुओं द्वारा प्रदत्त वा सर्वतोविभक्त और प्रेरित है, (वा अध्वर्योः) अथवा कभी नाश को प्राप्त न होने वाला प्रभु से प्रेरित है (वा यः पवित्रात् परि) अथवा जो 'पवि' नाम विद्युत रूप वज्र के रक्षक मेघादि से भूमि पर जल रूप से, वा पवित्र, सर्वशोधक प्रभु वा सूर्य वा वायु से प्राप्त होता है, (तं) उस (ते) तेरे तेजोमय, व्यापक, गन्धमय, शक्तिमय, रसमय प्राण तत्व को (मनसा वषट्-कृतम्) मनोबल से देह में छः विभागों में विभक्त वा प्रदत्त कर (जुहोमि) प्राप्त करता हूँ।

यज्ञ-पक्ष में—अधि-सवन फलक वा अध्वर्यु या पवित्रादि से प्राप्त सोम रस को मैं मन से 'स्वाहा' कह कर आहुति दूं। वही भगवान् का दिया जीवनाधार घटक तत्व है जिसको मैं चित्त के बल से प्राणों में धारण करता हूँ।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शुर॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृह॒स्पति॒ः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा सर्वोत्पादक तत्व रस स्कन्नः) सर्वत्र प्रवाहित है, (यः ते अंशुः) जो तेरा व्यापक सूक्ष्म अंश (स्रुचा) प्राण शक्ति द्वारा (अवः च, परः च) इस लोक में और दूर के लोकों में भी व्याप्त हैं (तं) उस रस को (अयं देवः बृहस्पतिः) यह सर्व-तेजोदायक, तेजस्वी, सब बड़े लोकों का पालक सूर्य (राधसे) ऐश्वर्य वृद्धि, जगत् के व्यवहार संचालन के लिये (सं सिञ्चतु) उसी जीवन तत्व का अच्छी प्रकार जल और तेज के रूप में सेचन, वर्षण करे ।

पय॑स्वती॒रोष॑धय॒ः पय॑स्वन्माम॒कं वच॑ः ।
अ॒पां पय॑स्व॒दित्पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत ॥ १४ ॥ २५ ॥

भा०—हे (ओषधयः) तेज को धारण करने वाली शक्तियो ! आप लोग (पयस्वतीः) वृष्टि जल से युक्त ओषधियों के समान पुष्टि-कारक रस से युक्त हो । (मामकं वचः) मेरा वचन भी (पयस्वत्) पुष्टिकारक, बल से युक्त, मधुर हो । (अपां पयः) जलों का सारभूत पुष्टिकारक, अंश भी (पयस्वत्) सारयुक्त है । (तेन) उससे आप लोग (सह) साथ (शुन्धत) मुझे शुद्ध करो । ओषधिरस, मधुर वचन और जलों और क्षीरादि से मनुष्य के देह, मन वाणी आदि को पवित्र करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१८]

सङ्कुसुको यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१—मृत्युः ५ धाता । ३ त्वष्टा । ७—१३ पितृमेधः प्रजापतिर्वा ॥ छन्दः—१,५,७—६ निचृत् त्रिष्टुप् । २—४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । भुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत् पंक्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

भा०—हे (मृत्यो) मरणशील पुरुष ! तू (परं पन्थाम्) सब से उत्तम मा र्ग का (अनु इहि, परा इहि) अनुसरण कर और दूर दीर्घकाल तक जा । तू उस मार्ग का ग्रहण कर (यः ते स्वः) जो तेरा अपना अभिमत है और (देव-यानात् इतरः) देव, तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी, सर्वविजयी, मुमुक्षुओं से जाने योग्य मोक्ष मार्ग से अतिरिक्त है । (चक्षुष्मते) आंख वाले, और (शृण्वते) सुनने वाले (ते ब्रवीभि) तुझे उपदेश करता हूँ कि तू (नः प्रजां मा रीरिषः) हमारी संतान का नाश न कर (उत मा वीरान्) और पुत्रों वा प्राणों का भी नाश न कर ।

चतुर्थ चरण में अथर्ववेद (१२ । २ । २१) में 'इहेमे वीराः बहवो भवन्तु' पाठ है । यहां ये बहुत से पुत्र हों । फलतः देवयान मार्ग अर्थात् अमृतमय मोक्ष-मार्ग से जाने में असमर्थ पुरुष मृत्यु-मार्ग वा पितृयाण मार्ग से जाता है। वही मृत्यु है। तो भी वह लोक में सबसे उत्तम गृहस्थ मार्ग का अवलम्बन करे, दीर्घ से दीर्घ जीवन व्यतीत करे जिससे उत्तम २ अगली संतानें हों और वे भी दीर्घजीवी हों ।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

भा०—हे (यज्ञियासः) उत्तम यज्ञशील जनो ! आप लोग (मृत्योः पदं) मृत्यु के आने के कारण को (योपयन्तः) दूर करते हुए (यत् ऐत) जब जाओगे तो आप लोग (द्राघीयः) अतिदीर्घ (प्रतरं) अति उत्तम (आयुः दधानाः भवत) जीवन धारण करने वाले होवोगे । और (प्रजया धनेन) प्रजा और धन से (आ-प्यायमानाः) बढ़ते हुए और (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध पवित्र होकर रहा करो ।

इ॒मे जी॒वा वि मृ॒तैराव॑वृत्र॒न्नभू॑द्भ॒द्रा दे॒वहू॑तिर्नो अ॒द्य ।
प्राञ्चो॑ अगाम नृ॒तये॑ ह॒साय॑ द्रा॒घीय॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥ ३ ॥

भा०—(इमे जीवाः) ये जीवित जन (मृतैः वि आववृत्रन्) मरे बन्धुजनों से घिरे न रहें, उनसे परे रहें। उनमें मृत्युएं न हुआ करें। (अद्य) आज के तुल्य सदा (नः) हमें (भद्रा) सुखदायी, कल्याण-कारी (देव-हूतिः) विद्वानों का उपदेश (अभूत्) हो। जिससे हम (द्राघीयः प्रतरं आयुः) दीर्घतम अति उत्कृष्ट जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए (नृतये हसाय) नृत्य, हास्य, आनन्द-प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये (प्राञ्चः अगाम) उत्तम, आगे के मार्ग पर अग्रसर हों, आगे बढें।

इ॒मं जी॒वेभ्यः॑ परि॒धिं द॑धामि॒ मैषां॒ नु गा॒दप॑रो॒ अर्थ॑मे॒तम् ।
श॒तं जीव॑न्तु श॒रदः॑ पुरू॒चीर॒न्तर्मृ॒त्युं द॑धतां॒ पर्व॑तेन ॥ ४ ॥

भा०—मैं (जीवेभ्यः) जीवनधारी मनुष्यों के हितार्थ (इमं परि-धिं) इस प्राणरक्षक व्यवस्था को (दधामि) स्थापन करता हूँ। (एषां) इन जीवों में से (अपरः) कोई भी (एतम् अर्थं मा गात् नु) उस मृत्यु के मार्ग से न जावे। समस्त जीवगण (शतं शरदः) सौ बरस (पुरूचीः) और भी बहुत अधिक वर्ष (जीवन्तु) जीवें। और (पर्वतेन) पालन पोषणकारी उपाय से (मृत्युम् अन्तः दधताम्) प्रकोट से शत्रु के समान मृत्यु को अन्तर्हित करें, दूर करें।

'तिरो मृत्युं' इति अथर्व (कां० १२ । २ । २३) गतः पाठः ।

यथाहा॑न्यनु पू॒र्वं भव॑न्ति॒ यथ॑ ऋ॒तव॑ ऋ॒तुभि॒र्यन्ति॑ सा॒धु ।
यथा॒ न पूर्व॒मप॑रो॒ जहा॑त्ये॒वा धा॑त॒रायूं॑षि कल्पयै॒षाम् ॥५॥२६॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अहानि) दिन (अनु पूर्वं भवन्ति) एक दूसरे के पश्चात् होते हैं (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जिस

प्रकार ऋतुएं ऋतुओं का साथ एक दूसरे के पीछे बराबर जुटी २ गुजरती हैं। (यथा पूर्वम्) जिस प्रकार से पूर्व विद्यमान पिता आदि को (अपरः) आगे आने वाला पुत्र न त्याग करे (एव) इसी प्रकार हे (धातः) पालक प्रभो ! तू (एषाम् आयूंषि कल्पय) इनका दीर्घ जीवन कर। अर्थात् पुत्र पिता के जीवन काल में उसे त्याग न करें। षड्विंशो वर्गः ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (अनु-पूर्वं) पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों के अनुकूल (यतमानाः) सन्मार्ग में यत्नवान् होते हुए (यति स्थ) जितने भी हो जाओ वे सब (जरसं वृणानाः) वार्धक्य को प्राप्त होते हुए (आयुः आरोहत) जीवन की नसैनी पर चढ़ो। (इह) इस लोक में (त्वष्टा) तेजस्वी, सब जगत् का विधाता प्रभु, सूर्य (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (वः सु-जनिमा) आप लोगों की उत्तम उत्पत्ति और रूप, और (जीवसे) जीने के लिये (दीर्घम् आयुः) दीर्घ आयु (करति) करे।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥

भा०—(इमाः) ये (अविधवाः) पति से अविरहित (नारीः) स्त्रियें (सु-पत्नीः) उत्तम पति से युक्त और पति की उत्तम धर्मपत्नी होकर (आंजनेन सर्पिषा) देह पर लगाने योग्य घृतादि गंधयुक्त पदार्थ से सुशोभित होकर (सं विशन्तु) अपने गृह में प्रवेश किया करें वा पतियों का संग किया करें। वे (अनश्रवः) आंसुओं से रहित, (अनमीवाः) रोग से रहित, (सुरत्नाः) सुन्दर रत्न, आभूषणादि वा रम्य गुणों, व्यवहारों वाली (जनयः)

उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियें (अग्रे) प्रथम, आदरपूर्वक (योनिम् आ रोहन्तु) गृह में आवें, वा रथ, सेज, आसन आदि पर बैठें।

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ ८ ॥

भा०—हे (नारि) स्त्री ! तू (जीव-लोकम् अभि) जीवित जनों को लक्ष्य करके (उत् ईर्ष्व) उठ खड़ी हो। (एतं गतासुम् उप शेषे) तू इस प्राणरहित के समीप पड़ी है। (आ इहि) उठ आ। (हस्त-ग्राभस्य) पाणिग्रहण करने वाले और (दिधिषोः) धारण पोषण करने वा वीर्याधान करने वाले (तव पत्युः) तेरे पालक पति के (इदं जनित्वं) इस सन्तान को (अभि) लक्ष्य करके तू (सं बभूथ) उससे मिलकर रह। अर्थात् पति का शोक त्याग कर जीवित संतान की फिकर करे। [यदि संतान जीवित न हो तो (जनित्वम् अभि) केवल सन्तान को लक्ष्य कर (संबभूथ) नियोग विधि से पुत्र उत्पन्न कर और वह सन्तान पाणिग्रहीता पति का कहावे।]

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

भा०—(मृतस्य हस्तात्) मृत पुरुष के हाथ से (धनुः आददानः) धनुष अर्थात् अधिकार ग्रहण करता हुआ, हे अगले अधिकारवान् पुत्र ! तू (अस्मे) हमारे (क्षत्राय) क्षत्र, वीर्य, (वर्चसे) तेज और (बलाय) बल की वृद्धि के लिये (त्वं अत्र एव) तू यहां ही स्थिर रह। जिससे (इह) इस राष्ट्र में (वयं) हम (सु-वीराः) उत्तम वीर, पुत्र वाले होकर (विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम) सब अभिमान युक्त शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें।

इस मंत्र में 'धनुष' यह राजदण्ड के समान अधिकार का उपलक्षण

है। मृत पुरुष की स्त्री तो तो जीवित सन्तान की फिक्र करें और पुत्रादि नवाधिकारी उसके गृहादि का अधिकार प्राप्त करें।

उप॑ सर्प मा॒तरं॒ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म्।
ऊर्णम्रदा युव॒तिर्दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु॒ निर्ऋ॑ते॒रु॒पस्था॑त् १०।२७

भा०—हे मनुष्य! तू (मातरम्) माता के समान आदर करने योग्य पूज्य, (एतां) इस (उरु-व्यचसम्) आकाश के समान विशाल, व्यापक, (पृथिवीम्) अतिविस्तृत (सु-शेवाम्) उत्तम सुख के देने वाली, (भूमिम्) सब को पैदा करने वाली भूमि को (उप सर्प) प्राप्त हो। (एषा) वह (ऊर्ण-म्रदाः) ऊन के समान मृदु (दक्षिणावतः) दान देने योग्य उत्साह और शक्तिजनक धन, अन्न के स्वामी की (युवतिः) युवती स्त्री-वत् सर्वस्वामिनी है। वह (त्वा) तुझे (निर्ऋतेः उपस्थात्) पापाचरण से (पातु) बचावे। प्रसंगवश ये सब विशेषण माता, भूमि, स्त्री, आचार्य राजा और परमेश्वर के पक्ष में भी लगते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः॥

उच्छ्व॑ञ्चस्व पृथिवि॒ मा नि बा॑धथाः सूपाय॒नास्मै॑ भव सूपवञ्च॒ना।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि॥ ११॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी! मातः! हे भूमिवत् विशाल-हृदये! (उत् श्वञ्चस्व) उत्साहपूर्वक उत्तम मार्ग की ओर लेजा। तू (मा नि बाधथाः) पीड़ित मत कर। (अस्मै सूपायना) इसको सुख से समीप आने वाली, समीप रह कर सुख देने वाली, (सु-उपवञ्चना) सुख से सदा समीप रहने वाली, वा उत्तम वचन प्रयोग करने वाली, (भव) होकर रह। हे (भूमे) सर्वोत्पादिके, (यथा माता पुत्रं सिचा अभि ऊर्णुते) जैसे माता पुत्र को अपने वस्त्रांचल से ढांपती है उसी प्रकार तू (एनम् अभि सिच) उसको अभिषेक कर, और (अभि ऊर्णुहि) सब ओर से आच्छादित कर। अथवा (एनं सिचा अभि ऊर्णुहि) इसे अभिषेक क्रिया से वा, वस्त्र-वल्कल आदि से आच्छादित कर।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ १२ ॥

भा०—(पृथिवी उत् श्वञ्चमाना) पृथिवी उत्साह उत्पन्न करती हुई उन्नति को प्राप्त करती हुई वा उत्तम पूज्य पद प्राप्त करती हुई (सु तिष्ठतु) सुख से विराजमान हो। (संहस्रं मितः) सहस्रों परिमाण अन्नादि और अनेक संख्या वाले जन (उप श्रयन्ताम् हि) उस पर आश्रय लें। (ते) वे (गृहासः) हमारे घर (घृतश्चुतः भवन्तु) घृतवत् स्नेह युक्त और जलवत् शीतलता और शांति सुख देने वाले हों। वे (अस्मै) इस मनुष्य को (अत्र) यहां (शरणाः सन्तु) सुखदायक, दुःख विनाशक शरण हों।

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३

भा०—हे राजन्! उत्तर अधिकारिन्! (ते) तेरे अधीन इस (पृथिवीं) पृथिवी, भूमि को (उत् स्तभ्नामि) उत्तम रीति से प्रबन्धयुक्त, व्यवस्थित करता हूँ। (इमं लोगं) इस लोक, जनसमूह को (त्वत् परि निदधत्) तेरे आश्रय में संभलाता हुआ (अहं मो रिषम्) मैं दुःखी न होऊं, वा इस प्रजाजन का नाश न करूं। तू उत्तराधिकार प्राप्त कर, प्रजाजन का अच्छी प्रकार जिम्मेवारी से पालन कर। (ते) तेरी (एतां स्थूणां) इस स्थिर टेक, या व्यवस्था की प्रतिज्ञा को (पितरः) पालक शासक वर्ग (धारयन्तु) धारण करें। (अत्र) इस लोक में (यमः) नियन्ता प्रभु (ते सदना मिनोतु) तेरे गृहों को, या तेरे पदाधिकारों को (मिनोतु) व्यस्थित करे, मापे, उनकी जांच करे।

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥ १४ ॥ २८ ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् लोग (इष्वाः पर्णम् इव) बाण के मूल में उसके वेग को तीव्र करने के लिये जिस प्रकार 'पर्ण' पांख लगाते हैं उसी प्रकार वे (प्रतीचीने अहनि) किसी सर्वपूज्य दिन (माम्) मुझ को (इष्वाः) शत्रु के प्रति ठीक मार्ग में चलाने योग्य सेना वा प्रजा के पीठ पर (पर्णम्) पालक, संचालक रूप से (आ दधुः) स्थापित करें। और मैं (प्रतीचीं वाचम्) प्रजा वा सेना द्वारा आदर से ग्रहण करने योग्य वाणी रूप आज्ञा को (जग्रभ) उस आज्ञा द्वारा प्रजा वा सेना को अपने ऐसे वश करूं (यथा रशनया अश्वं) जैसे रास या रस्सी से घोड़े को वश किया जाता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

[१९]

मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः॥ देवताः ११, २—८आपो गावो वा। १२ अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—१, ३–५ निचृदनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप् ७, ८ अनुष्टुप्। ६ गायत्री। अष्टर्चं सूक्तम्॥

नि व॑र्तध्वं॒ मानु॑ गाता॒स्मान्त्सि॑षक्त रेवतीः।
अग्नी॑षोमा पुनर्वसू अ॒स्मे धा॑रयतं र॒यिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (रेवतीः) उत्तम धनसम्पन्न ! प्रजाओ ! (नि वर्त्तध्वं) बुरे मार्ग से तुम लौट जाओ। (मा अनु गात) उसका अनुगमन मत करो। (अस्मान् सिषक्त) हमें धन से पुष्ट करो। हे (अग्नि-सोमा) अग्नि और सोम के समान तेजस्वी और ओषधि के समान, बलदायक और प्रजाओं की वृद्धि करने में समर्थ जनो ! तुम दोनों (पुन-र्वसू) पुनः पुनः नये २ धन को कमाने वाले ! वा (पुनः-वसू) पुनः २ इस राष्ट्र में वसने वाले आप दोनों अब (अस्मे रयिम् धारयतम्) हमें धन-ऐश्वर्य धारण कराओ।

पुनरेना निवर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नियच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! तू (एना) इन को (नि वर्तय) पाप मार्ग से लौटा । (एना पुनः नि आ कुरु) इन को पुनः पुनः वश कर । (इन्द्रः) शक्तिमान्, तेजस्वी होकर (एना नि यच्छतु) इनको नियमों में रखे और (अग्निः) तेजस्वी, पुरुष (एना उ अजतु) इनको आगे सन्मार्ग में लेजावे । इसी प्रकार साधक भी अपनी इन्द्रियों, चित्त वृत्तियों और प्रजाओं को राजा के तुल्य और गौओं को गोपालवत् कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग में लेजावे ।

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३ ॥

भा०—(एताः) ये सब (पुनः निवर्तन्ताम्) बार बार लौट कर आवें, और (अस्मिन् गोपतौ) इस गौओं के पालक गोपाल, भूमिपाल, इन्द्रियों के पालक के अधीन रहकर (पुष्यन्तु) पुष्टि, समृद्धि को प्राप्त करें, बढ़ें । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू (इह एव नि धारय) इस स्थान में ही इन को अच्छी प्रकार नियम में धारण कर (या रयिः) जो द्रव्य सम्पत् है वह (इह तिष्ठतु) यहां स्थिर रूप से रहे । अध्यात्म में-ये इन्द्रिय-वृत्तियां बार २ बाहर जाकर फिर २ आत्मा में ही लौट आती हैं । (३) इसी प्रकार उस इन्द्र प्रभु में मुक्त जीवों का वर्णन भी समझना चाहिये । अध्यात्म में—'रयि' मूर्त्त देह का वाचक है । देहवान् आत्माएं 'रेवती' हैं । 'अग्नि' जीव, मन 'सोम' है, दोनों पुनः देह में आकर बसने से 'पुनर्वसू' हैं । 'इन्द्र' आत्मा प्रभु है । वही सर्वपालक 'गोपति' है ।

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ ४ ॥

भा०—(यत् नियानं) जो जीवों का नीचे जाना, और (नि-अयनम्) निम्न लोक या स्थिति में रहना, और (सं-ज्ञानं) उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना और (यत् परा अयनम्) जो दूर, परम पद को प्राप्त करना और इसी प्रकार (आ-वर्त्तनं) इस संसार में लौट कर आना इस सब का मैं (हुवे) ज्ञान प्राप्त करूं और अन्यों को इस का उपदेश करूं। (यः गोपाः) जो सब इन्द्रियों, लोकों और वेदादि वाणियों का पालक रक्षक है (तम् अपि हुवे) उसको भी मैं स्वीकार करता, स्मरण और उपदेश करता हूं।

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम्।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा निवर्तताम् ॥ ५ ॥

भा०—(यः गोपाः) जो रक्षक, (वि-अयनं) विविध लोक या प्राप्तियोग्य पदों को भी (उत् आनट्) उत्तम मार्ग से प्राप्त करता वा कराता है, (यः परा-अयनम् उत् आनट्) जो दूर, परम प्राप्य मोक्ष तक प्राप्त कराता है, वह रक्षक (आ-वर्त्तनं नि-वर्त्तनम्) इस लोक में और पुनः यहां से लौटने की व्यवस्था को भी (अपि नि वर्तताम्) नियमपूर्वक चला रहा है। वह सर्वत्र व्यापक, सर्वव्यवस्थापक है।

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (नि-वर्त्त) नियम से संसार को चलाने हारे! (आ वर्तय) तू ही लौटा कर लाता है और तू ही (नि वर्तय) लौटा कर लेजाता है, गौओं को गवाले के समान! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः पुनः गाः देहि) हमें फिर २ इन्द्रियगण, ज्ञान रस आदि ग्रहण के स्थूल साधन (देहि) प्रदान कर। (जीवाभिः) प्राण के संसर्ग से चेतनायुक्त उन इन्द्रिय-वृत्तियों से हम (पुनः भुनजामहै)

फिर भी नाना भोग करें। मुक्त दशा में मोक्ष सुख का काल क्षय होजाने पर निद्रा-क्षय के बाद पुनः प्रबोध के तुल्य जीवों का यही संकल्प उदय होता है। और पुनः वे इस लोक में आते हैं।

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा।

ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः॥ ७॥

भा०—हे (देवाः) नाना कामना वाले जीवो! (वः) तुम सब को मैं (ऊर्जा घृतेन पयसा) अन्न, तेज, और जल, दुग्ध आदि पुष्टि-कारक पदार्थ से (विश्वतः परि दधे) सब प्रकार से सर्वत्र पालन पोषण करता हूं। (ये के च) और जो कोई भी (देवाः) उत्तम भोगों की कामना करने वाले (यज्ञियाः) परम पूज्य प्रभु की उपासना से पवित्र हैं वे (नः) हमारे बीच (रय्या) श्रेष्ठ सम्पदा से (सं सृजन्तु) संसर्ग करते हैं।

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय।

भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना निवर्तय॥ ८॥ १॥

भा०—हे (निवर्तन) जगत् को नियम में चलाने हारे (आवर्तय) तू हमें सन्मार्ग में चला। हे (निवर्त्तन) हमें दुःखों और पापों से हटाने हारे! तू (निवर्त्तय) हमें दुःखों और दुःखदायी मार्गों से सदा हटा लिया कर। (भूम्याः चतस्रः प्रदिशः) जीवों के उत्पन्न होने के लिये भूमि की चार मुख्य दिशाएं हैं (ताभ्यः एनाः निवर्त्तय) उन सब से उनको रोक, उन सब में जाने के लिये नियम-पूर्वक उन पर शासन कर।

अथवा हे—इन्द्रियगण हे प्रजाओ! तुम (नि-वर्तन नि-वर्तन) बुरे २ मार्ग से सदा निवृत्त रहो, सदा निवृत्त रहो। हे स्वामिन्! तू (आवर्तय निवर्तय) उनको सन्मार्ग में चला, बुरे मार्ग से रोक। चारों दिशाओं से उनका निग्रह कर। 'आ निवर्त्त निवर्त्तय नि निवर्त्त निवर्त्तय।' इति च पाठः। इति प्रथमो वर्गः॥

[२०]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आसुरी त्रिष्टुप् । २, ६ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ७ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ८ विराड् गायत्री । १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः मनः) हमारे चित्त को (भद्रं अपि वातय) कल्याणकारी सुखजनक मार्ग की ओर प्रेरित कर । (२) अथवा (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमें सुखकर उत्तम ज्ञान प्रदान कर । (३) (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमारे उत्तम मन को प्रबल कर ।

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्वरेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥ २ ॥

भा०—(भुजां अग्निम्) पालन करने वाले वीरों के बीच में सब के अग्रणी, तेजस्वी, (यविष्ठं) खूब जवान, बलवान्, शक्तिशाली, (शासा) शासन बल एवं शस्त्र बल से (दुर्धरीतुम्) संग्राम में शत्रु से पराजित न होने वाले, (मित्रं) प्रजा के जीवन को बचाने वाले, सर्वस्नेही, पुरुष की मैं (ईडे) स्तुति करूं, (यस्य धर्मन्) जिसके धारण करने के बल पर (एनीः) उसे प्राप्त होने वाले जीव-प्रजागण (मातुः ऊधः) माता के स्तन के समान (यस्य स्वः सपर्यन्ति) जिसके सुखदायी प्रकाश का सेवन करते हैं ।

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति ।
भ्राजते श्रेणिदन् ॥ ३ ॥

भा०—जो (श्रेणि-दन्) प्रजाओं और सेनाओं के पंक्तिबद्ध सब दलों को वेतन अन्नादि देने वाला है,. और (यम्) जिस (कृप-नीडम्) महान् कर्म-सामर्थ्य और परानुग्रह, दया-कृपा के परम आश्रय, और

(भासा-केतुं) ज्ञान दीप्ति से सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाले को (आसा) मुख द्वारा वा (आसा) उपासना द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वह (भ्राजते) सर्वत्र देदीप्यमान होता है।

अ॒र्यो वि॒शां गा॒तुरे॑ति॒ प्र यदान॑ड् दि॒वो अन्ता॑न्।
क॒विर॒भ्रं दीद्या॑नः ॥ ४ ॥

भा०—(विशां अर्यः) प्रजाओं का शरण करने योग्य स्वामी, (गातुः) चलने योग्य मार्ग के समान सब के प्राप्त करने योग्य है। वह (यत्) जो (दिवः अन्तान्) आकाश के दूर २ के मार्गों तक भी सूर्य-वत् (आनट्) व्याप्त है। वह (अ दीद्यानः) मेघ को विद्युत् के तुल्य महान् आकाशवत् हृदयाकाश को भी ज्ञान से प्रकाशित करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, ज्ञानी, (प्र एति) उत्तम पद को प्राप्त होता है।

जु॒षद्ध॒व्या मानु॑षस्यो॒र्ध्वस्त॑स्थावृ॒भ्वा य॒ज्ञे।
मि॒न्वत्सद्म॑ पु॒र ए॑ति ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (यज्ञे मानुषस्य हव्या जुषत् ऊर्ध्वः तस्थौ) यज्ञ में मनुष्य के हवि को ग्रहण करता हुआ ऊपर उठता है उसी प्रकार (ऋभ्वा) सत्य ज्ञानवान्, गुणों में महान्, विद्वान् पुरुष (यज्ञे) यज्ञ, परस्पर संग के अवसर पर (मानुषस्य) मनुष्य के (हव्या) नाना दातव्य अन्नादि पदार्थों को (जुषत्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) सब से उत्तम आसन पर विराजे, वह (सद्म मिन्वन्) गृह वा आसन को प्राप्त होता हुआ (पुरः एति) आगे आता है, (२) इसी प्रकार ज्ञानी, मुमुक्षु मानुष-अन्नादि को स्वीकार करता हुआ भी (यज्ञे) परमेश्वर के आश्रय से ऊपर उठता है वह (सद्म मिन्वन्) गृहवत् देह-बन्धन को दूर फेंक कर भी (पुरः एति) आगे बढ़ता है।

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (हवि-यज्ञः) हवि, उत्तम अन्नादि चरु द्वारा किया गया यज्ञ, दान, (क्षेमः हि) कल्याणकारक और प्रजा का रक्षण करने वाला होता है । (अस्य) इसका (गातुः) विद्वान् पुरुष (श्रुष्टी इत्) उत्तम फल शीघ्र ही (एति) प्राप्त करता है । (देवाः) विद्वान् ज्ञान का इच्छुक पुरुष (वाशीमन्तम् अग्निम्) उत्तम वाणी से युक्त, ज्ञानवान् पुरुष की उपासना करते हैं । इति द्वितीयो वर्गः ॥

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य ।
अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥ ७ ॥

भा०—जिस (अद्रेः सूनुम्) मेघ के प्रेरक को (आयुम् आहुः) सब का जीवन रूप कहते हैं उस (यज्ञ-साहं) महान् यज्ञ को धारण करने वाले (अग्निं) महान् अग्नि, नायक वा सूर्यवत् प्रभु की (पूर्वस्य शेवस्य) सब से उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति के लिये (दुवः इषे) उपासना करता हूँ ।

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आस्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् ये के च नरः) हमारे जो भी उत्तम पुरुष हों (ते) वे (अग्निं हविषा वर्धन्तः) ज्ञानस्वरूप प्रभु को स्तुति द्वारा और सेव्य यज्ञाग्नि की हवि से वृद्धि करते हुए (विश्वा इत् वामे) समस्त प्रकार से सेव्य उत्तम प्रभु में (आ स्युः) रमें ।

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत्त शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस प्रभु परमेश्वर का (यामः) जगत् को नियम

में रखने वाला नियन्त्रग (कृष्णः) दुष्टों को पीड़ित करने वाला, (श्वेतः) शुभ्र, निर्दोष (अरुषः) दीप्तिमान् (ब्रध्नः) महान्, सूर्य के समान तेजस्वी, जगत् को बांधने वाला, सर्वाधार (ऋज्रः) ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग में चलाने वाला (उत) और (शोणः) अति वेगवान् (यशस्वान्) अन्न, धनैश्वर्य से सम्पन्न है। जिसको (जनिता) सर्वोत्पादक प्रभु (हिरण्यरूपं जजान) हित और रमणीय, सुखकारी रूप में प्रकट करता है।

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः॥१०।३॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! प्रभो! (वि-मदः) विशेष आनन्द में मग्न, (अमृतेभिः) अमृत, दीर्घजीवी वृद्ध-जनों से (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त, पुरुष (सु-मतीः इयानः) शुभ बुद्धियों को प्राप्त करता हुआ (ते) तेरे विषय में अपनी (मनीषाम्) मन की उत्तम भावना, सद्बुद्धि और (गिरः) नाना वाणियों को (आ वक्षत्) धारण करता है। हे (ऊर्जः नपात्) बल के देनेहारे! तू (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल और (सु-क्षितिम्) उत्तम निवास योग्य भूमि और मनुष्य (विश्वम्) ये सब (आअभाः) प्रदान कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[२१]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् पंक्तिः। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ३, ५, ७ विराट् पंक्तिः। ६ आर्ची पंक्तिः॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे॥१॥

भा०—हम लोग (स्तीर्ण-बर्हिषे यज्ञाय) विस्तृत लोकों, प्रजाजनों, और बिछे कुशादि आसनों से युक्त (यज्ञाय) यज्ञ के लिये (स्व-वृक्तिभिः)

उत्तम, दोष-वर्जित, अन्तरात्मा को आकर्षण करने वाली स्तुतियों द्वारा (अग्निं न) अग्नि के समान मार्गदर्शक, ज्ञानप्रकाशक अग्रणी, (होतारं) सब सुखों के देने वाले, (पावक-शोचिषे) सब को पवित्र करने वाले तेजःप्रकाश वाले, (शीरं) सर्वव्यापक, (त्वा) तुझ को (आ वृणीमहे) वर्णन करते हैं और (मदे) आनन्द और हर्ष लाभ के लिये (वि वृणीमहे) विशेष रूप से अपनाते हैं। तू (विवक्षसे) उसको धारण कर, तू महान् है। (२) इसी प्रकार यज्ञ को करने के लिये ज्ञानवान्, तेजस्वी, पवित्रकारक विद्वान् को वरण करे।

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे॥२॥

भा०—(अश्व-राधसः) इन्द्रियों और अश्वों की साधना करने वाले (ते) वे बहुत से (स्वाभुवः) स्वयं आत्म-सामर्थ्य वा ऐश्वर्य से सम्पन्न जन (त्वा) तुझ को (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं। (उप-सेचनी) अभिषेक क्रिया (त्वाम् वेति) तुझे चाहती है और चमकाती और प्राप्त होती है। हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! अग्रणी! (ऋजीतिः) ऋजु, सत्य मार्ग से जाने वाली (आहुतिः) स्तुति, स्वीकृति, और दान (वि मदे) विशेष हर्ष और तृप्ति के लिये (त्वाम् वेति) तुझे प्राप्त होती है। तू (विवक्षसे) उसे धारण करता है, तू महान् है। (२) यज्ञ में (स्वाभुवः) दक्षिणा रूप स्व अर्थात् धन से उत्साहित होकर कार्य करने में प्रवृत्त जितेन्द्रिय ऋत्विग् जन अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, घृतसेचनी आहुति उसकी तृप्ति करती है।

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव। कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे॥ ३॥

भा०—हे विद्वन्! नायक! प्रभो! (सिञ्चतीः इव) वृष्टि द्वारा

सेचन करने वाली मेघमालाएं जिस प्रकार सूर्य पर आश्रित हैं, उसी प्रकार (त्वे) तेरे बल पर कुछ जन (धर्माणः) समस्त धर्म और राष्ट्र-पदों, व्रतों, अधिकारों को धारण करने वाले, शासक जन, (सिश्रतीः इव) अभिषेक कराने वाली जलधाराओं और प्रजाओं के समान ही (जुहूभिः) स्तुतिकारक वाणियों द्वारा (आसते) तेरे आश्रय पर खड़े होते हैं। और सूर्य जिस प्रकार सब को सुख देने के लिये (कृष्णा अर्जुना रूपाणि धत्ते) काले श्वेत रूप, रात्रि दिन को करता है उसी प्रकार तू भी (मदे) प्रजा के हर्ष, आनन्दित और सुखी करने के लिये (कृष्णा) दुष्टों को कर्षण वा पीड़ित करने वाले और (अर्जुना) श्वेत, धनादि अर्जन करने वाले क्षात्र और वैश्य सम्बन्धी (रूपा) नाना रुचि कर व्यवहारों को और (विश्वाः श्रियः) समस्त लक्ष्मियों, सम्पदाओं को (धिषे) धारण करता और (विवक्षसे) विशेष रूप से उनको वहन करता वा विशेष आज्ञा करने में समर्थ होता है, तू सब से महान् है। (२) सब लोग वाणियों द्वारा स्तुति करते हुए उस प्रभु की उपासना करते हैं। वह इन सब काले गोरे, चमकते न चमकते लोकों को और सब सम्पदों को धारता है, वही महान् है।

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञान के प्रकाशक! हे (सहसावन्) बलशालिन्! हे (अमर्त्य) अन्य मनुष्यों में असाधारण! तू (यं रयिं) जिस बल, ऐश्वर्य को (चित्रं) संग्रह योग्य अद्भुत और आश्चर्यकारक (मन्यसे) मानता है, तू (तम्) उसको (नः वाज-सातये) हमारे ऐश्वर्य, बल आदि की वृद्धि और (वि मदे) विशेष सुख और तृप्ति के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों में (नः आ भर) हमें प्राप्त करा। तू (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली है।

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे॥५॥४

भा०—(अथर्वणा) अहिंसक, प्रजापालक राजा या गुरु द्वारा (जातः) उत्पन्न (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (विश्वानि काव्या विदद्) समस्त विद्वानों के ज्ञानों को जाने। वह (काम्यः) सब के कामना योग्य, होकर (विवस्वतः यमस्य) विविध राजाओं वा प्रजाओं के स्वामी, प्रजा वा राष्ट्र के नियन्ता राजा का (दूतः) दूत भी (भुवत्) हो। हे प्रजाजनो ! वह (वः वि मदे) आप लोगों के नाना हर्ष, सुखों के लिये हो। वह (विवक्षसे) गुणों में महान् और कार्य भार उठाने में समर्थ है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे । त्वं वसूनि काम्या
वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! लोग (यज्ञेषु) सत्संगों, धार्मिक कार्यों में, और (अध्वरे) हिंसा-रहित, प्रजाहित यज्ञ के (प्रयति) होते हुए (त्वाम् ईषते) तेरी स्तुति करते हैं, तुझे चाहते हैं। और (त्वं) तू वह (विश्वा काम्या वसूनि) समस्त प्रकार के, कामना करने योग्य नाना धनों को (वि दधासि) विशेष रूप से धारण करता है। हे प्रजाजनो ! (वः मदे) तुम प्रजाओं, लोगों के सुख हर्ष के लिये (दाशुषे) दानशील आत्मसमर्पक प्रजाजन के हितार्थ (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली और पूज्य है।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने निषेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (यज्ञेषु) यज्ञों में (घृत-प्रतीकं) घृत से प्रदीप्त होने वाले अग्नि के समान तेज से चमकने वाले, (ऋत्विजं) "ऋतु" अर्थात् सदस्यों और अमात्यों से संगत, (चारुम्)

सुन्दर (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने में समर्थ, (चेतिष्ठम्) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (त्वां) तुझ को ही (मनुषः) मननशील जन यज्ञों में (नि-सेदिरे) स्थापित करते और तेरा ही आश्रय लेते हैं। हे प्रजाजनो ! (वः मदे विवक्षसे) वह महान् पुरुष ही आप लोगों को विविध प्रकार से हर्षित, और सुखी करने में समर्थ है।

अग्ने॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषो॒रु प्र॑थयसे बृ॒हत्।
अ॒भि॒क्रन्द॑न्वृषायसे॒ वि वो॒ मदे॒ गर्भं॑ दधासि जा॒मिषु॒ विव॑क्षसे॥८॥५

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी ! तू (बृहत्) महान् है। तू (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) कान्ति से (प्रथयसे) प्रख्यात है। वा अपना सामर्थ्य विस्तृत करता है (अभि क्रन्दन्) आक्रमण करता हुआ (वृषायसे) बलवान् होकर रहता वा मेघवत् आचरण करता है। तू (जामिषु) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ दाराओं में गृहपति के समान (जामिषु) ओषधि आदि की उत्पादक भूमियों में मेघ वा सूर्यवत् (जामिषु) ऐश्वर्योत्पादक प्रजाओं के बीच (गर्भं दधासि) गर्भ अर्थात् शासन, वश करता है अर्थात् प्रजा के बीच ऐश्वर्य धारण कराता है। हे प्रजाजनो ! वह (विवक्षसे) महान् यह सब (वः वि मदे) तुम्हारे नाना सुख, हर्ष के लिये ही करता है।

इन समस्त ऋचाओं में 'वि वो मदे, विवक्षसे' यह एक अनुष्टुप् का चरण विच्छिन्न रूप से पढ़ा है। शेष समस्त ऋचा अनुष्टुप् है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[२२]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वा वासुक्रः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः १,४,८, १०, १४ पादनिचृद् बृहती। ३, ११ विराड् बृहती। २, निचृत् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ७ आर्च्यनुष्टुप्। १५ निचृत् त्रिष्टुप्॥
पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥ १ ॥

भा०—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह श्रुतः) कहां सुना जाता है ? उसके विषय में कहां यथार्थ रूप से श्रवण किया जाता है ? (अद्य) आज भी (मित्रः न श्रूयते) वह मित्र के समान, स्नेहवान् (कस्मिन् जने श्रूयते) किस जनसमूह में श्रवण किया जा सकता है ? उत्तर-(यः) जो (ऋषीणां क्षये) मन्त्रद्रष्टा विद्वानों के निवास स्थल में वा (गुहा) गुहावत् बुद्धि में स्थित है वह (गिरा चर्कृषे) वाणी द्वारा प्रकाश और स्तवन किया जाता है ।

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (जनेषु मनुष्यों में (असामि) पूर्ण (यशः चक्रे) अन्न वा यश उत्पन्न करता है, (अद्य) आज भी जो (वज्री) बलशाली (ऋचीषमः) अपनी स्तुति के अनुरूप है, वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु हमारे द्वारा (इह श्रुतः) इस जगत् में श्रवण करने और (स्तवे) स्तुति करने योग्य है ।

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः शवसः पतिः) जो महान् बल का स्वामी है और (असामि) असाधारण, पूर्ण (महः नृम्णस्य) बड़े भारी धनैश्वर्य का (तूतुजिः) पालक और दाता है । वह (धृष्णोः वज्रस्य) दुष्टों का नाश करने वाले बल का (भर्ता) धारण करने वाला और (प्रियं पुत्रम् इव पिता) प्यारे पुत्र के प्रति पालक पिता के समान है ।

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (देवः) प्रकाशस्वरूप, सूर्यवत् होकर (देवस्य वातस्य) शक्तिप्रद वायु के बने, (धुनी) देह के प्रेरक संचालक (अश्वा) दोनों अश्वों के तुल्य (युजानः) उनको देह में संयुक्त करता हुआ और (वि-रुक्मता पथा) विशेष प्रकाश से युक्त मार्ग से (स्यन्ता) जाने वाले उन दोनों को (अध्वनः) मार्ग के पार (सृजानः) करता हुआ (स्तोषि) स्तुति किया जाता है । (२) योग का अभ्यासी वायु रूप प्राण के बने प्राण अपान, दोनों को योग द्वारा वश करता हुआ उनको कान्तियुक्त मार्ग से लेजाता हुआ प्रशस्त कहाता है ।

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥ ५ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों का (न देवः) न कोई प्रकाशयुक्त पिण्ड, (न मर्त्यः) और न कोई मरणधर्मा देहादि जड़ पदार्थ (यन्ता) नियमन कर सकता है और (नकिः) न कोई उनका (विदाय्यः) ज्ञान करने हारा है । (त्वं) तू (त्या चित्) उन दोनों (वातस्य अश्वा) वायु के बने अश्वों के समान देह के चालक (ऋज्रा) ऋजु मार्ग से जाने वाले प्राण अपान को (त्मना) अपने आत्म-सामर्थ्य से (वहध्यै) धारण करने के लिये (आ अगाः) प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार राजा भी अश्वों के तुल्य प्रजास्थ स्त्री पुरुषों को वा शास्य-शासकों को अपने सामर्थ्य से धारण करने के लिये प्राप्त है ।

अधग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥

भा०—(उशनाः) नाना भोगों की कामना करने वाला देहवान् मनुष्य (अध ग्मन्ता वां पृच्छते) जाते हुए तुम दोनों को लक्ष्य करके पूछता है कि (कदर्थाः) किस प्रयोजन से, तुम दोनों (पराकाद् दिवः) पर, दूरवर्त्ती तेजोमय सूर्य और (ग्मः च) भूमि से (नः) हम जीवों के इस (मर्त्यं गृहं आ जग्मतुः) मरण धर्मा गृह, देह को आते हो।

इनमें प्राण इन्द्र है और उदरवर्त्ती अपान जाठर-अग्नि है।

आ नं इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्।

तत्त्वां याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमांनुषम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों को नाश करने में समर्थ! तू (नः आपृक्षसे) हमें सब प्रकार से, सब ओर से अपने साथ जोड़े रख। (अस्माकं ब्रह्म) हमारा महान् स्तवन, महान धन, महान् ऐश्वर्य भी (उद्-यतम्) तेरे लिये ऊपर उठा हुआ है, तेरे लिये समर्पित है। (त्वा) हम तेरे से (तत् अमानुषं अवः) वही अमानुष रक्षण, बल, प्रेम और ज्ञान की (याचामहे) याचना करते हैं जिसको कोई मनुष्य नहीं दे सकता (यत्) जो (अमानुषं) अमानुष, मनुष्यों की सीमा से पार कर जाने वाले (शुष्णं) शोषणकारी आसुरी बल को (हन्) नाश कर सके।

अकर्मादस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रंतो अमांनुषः।

त्वं तस्यांमित्रहन्वधर्दासस्यं दम्भय ॥ ८ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) न स्नेह करने वाले, वा स्नेह करने वाले वर्ग से अतिरिक्त जनों को दण्डित करने हारे प्रभो! जो (अकर्मा) स्वयं कोई सत्कार्य न करने वाला, (दस्युः) प्रजा का नाश करने वाला, (अमन्तुः) सब का अपमान करने वाला, किसी को कुछ न गिनने वाला, (अन्य-व्रतः) शत्रुओं का सा काम करने वाला, (अमानुषः) मनुष्यों के बल,

आचार, धर्म आदि की सीमा से परे, राक्षसी स्वभाव का पुरुष (नः अभि) हमारे चारों तरफ़ हमें घेरे पड़ा है। (त्वं तस्य) तू उस (दासस्य) नाशकारी, सत्यानाशी का (वधः) दण्ड देने वाला होकर उसको (दम्भय) विनष्ट कर। वा (तस्य वधः दम्भयः) उसके वधकारी स्वभाव, साधन अस्त्रादि का नाश कर।

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों के नाश करने वाले! समस्त अन्नों के देने हारे! हे (शूर) दुष्टों के नाशक! शूरवीर! (बर्हणा) हिंसाकारी संग्रामादि के अवसरों में भी हम (त्वा-ऊतासः) तेरे बल से सुरक्षित रहें। (ते पूर्तयः) तेरे प्रजाजनों के अन्नादि से उदर और नाना कामनाएं पूर्ण करने के साधन भी (पुरुत्रा) बहुत से हैं। वे (यथा क्षोणयः) भूमियों के समान ही (वि नवन्त) विविध प्रकार से वर्णन किये जाते हैं। भूमियें जिस प्रकार नाना अन्नों से प्राणियों के उदर पूर्ण करती हैं उसी प्रकार तेरे नाना साधन भी जनों के उदर और कामनाएं पूर्ण करते हैं।

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक वीर! हे (वज्रिवः) बलशालिन्! सर्वशक्तिमन्! (यदि) जो तू (कवीनां) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, मेधावी जनों और (न-क्षत्र-शवसाम्) क्षात्रबल और धनबल से रहित (विशां) प्रजाजनों की (गुहा) हृदय और बुद्धि में विराजमान है वह (त्वं) तू (वृत्र-हत्ये) बढ़ते दुष्ट पुरुष के मारने वाले (कार्पाणे) तलवार आदि शस्त्रास्त्र से होने वाले संग्राम में (तान् नॄन्) उन नाना योद्धा नायकों को (चोदयः) प्रेरित करता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शत्रुहिंसक ! दुष्ट-दमनकारिन् ! शूरवीर ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (आक्षाणे) शत्रुहनन के कार्य में, (दानाप्नसः) शत्रु-खण्डन और प्रजा पर कृपाकारी दानरूप कर्म करने वाले (ते) तेरे (ता) वे नाना क[र्म] (मक्षु) अति शीघ्र हों । (यत्) क्योंकि तू (ह) ही निश्चय से (स-यावभिः) एक साथ मार्ग में आगे बढ़ने वालों के द्वारा (शुष्णस्य) प्रजा के शोषणकारी दुष्ट पुरुष के (विश्वं जातं) सब कुछ किये कराये वा उत्पन्न हुए बलादि को भी (दम्भयः) नाश करने में समर्थ है ।

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के दलन करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे) हमारी (अभिष्टयः) आशाएं, अभिलाषाएं और दान, सत्संग आदि कर्म और (वस्वीः) बसी हुई प्रजाएं वा बहुत २ धन सम्पदाएं भी (अकुध्र्यग्) तुच्छ, निष्फल (मा भूवन्) कभी न हों । हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (वयं-वयं) हम सब सदा (ते सुम्ने) तेरे दिये सुख वा रक्षा में (आसां) इन प्रजाओं के बीच (स्याम) सदा रहा करें ।

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे ता) हमारी वे नाना स्तुतियें, प्रार्थनाएं अभिलाषा और यज्ञ-याग आदि क्रियाएं (ते उपस्पृशः) तेरे तक पहुंचने वाली होकर भी (सत्या) सत्य फलजनक, निश्छल, सज्जनों का कल्याण करने वाली और (अहिंसन्तीः) किसी की हिंसा,

पीड़ा, वध, आदि न करने वाली (सन्तु) हों। हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (यासां) जिनके फलरूप (धेनूनां न) वाणियों वा गौओं के समान (भुजः विद्याम) नाना सुखजनक भोग्य पदार्थों को जानें और प्राप्त करें।

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः ॥ १४ ॥

भा०—(यद्) जिस प्रकार (वेद्यानां शचीभिः) विद्वानों के नाना कर्मों द्वारा (अहस्ता अपदी) अप्रशस्त और मार्ग रहित (क्षाः वर्धत) निवास योग्य भूमि बढ़ कर विस्तृत होजाती है और तब सूर्य जिस प्रकार (विश्वायवे) सब के जीवन पालन एवं अन्नोत्पादन के लिये (प्रदक्षिणित्) खूब प्रबल (शुष्णं) शोषणकारी, ग्रीष्मताप को भी (नि शिश्नथः) मेघादि से शिथिल करता है और भूमि में अन्नादि उत्पन्न होते हैं, प्रजा पलती है, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! (वेद्यानां शचीभिः) विद्वान् पुरुषों और वेदों की वाणियों से (अहस्ता) बे-हाथ और (अपदी) बे-पांव, निःशस्त्र, निर्बल, बेचारी अत्याचारादि से पीड़ित (क्षाः) भूमिवासिनी प्रजाएं भी (वर्धत) बढ़ती हैं, उत्साह बल से युक्त हो उठती हैं। तब तू भी (विश्वायवे) समस्त प्रजाजन के हितार्थ (प्रदक्षिणित्) सब को घेर कर बैठे बलशाली (शुष्णं) प्रजा के रक्त शोषण करने वाले दुष्ट जन को (नि शिश्नथः) सर्वथा शिथिल कर दे। शासक अत्याचारों, और धनी द्रव्य चूसने आदि की नीतियों से प्रजा का रक्त शोषण करते हैं। उनको विद्वान् पुरुष प्रजा की वृद्धि के लिये सदा शिथिल करता रहे।

वेद्या शची, वेदानां या वाणी। स्वार्थे यत् वेदा एव वेद्याः। विदन्ति वा येभ्योऽन्ये जना वेदयन्ति वा अन्यान् ते वेदाः। त एव वेद्याः। वेद्यम् एषाम् अस्तीति वा।

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥८॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुओं के दलन करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमं पिब-पिब) ऐश्वर्य और बल वीर्य का और प्रजावत् राष्ट्र का पालन और और उपभोग किया कर । हे (वसवान) और वसे प्रजाजनों को चाहने वाले ! तू स्वयं (वसुः सन्) देह में बसे आत्मा के समान राष्ट्र में स्वयं बसने और बसाने वाला, सब का सर्वोपरि वस्त्र के तुल्य आच्छादक, रक्षक होकर (मा रिषण्यः) प्रजा का नाश मत कर। (उत) बल्कि, (गृणतः मघोनः) स्तुति प्रार्थना करने वाले धनसम्पन्न जनों की भी (त्रायस्व) रक्षा कर। (नः) हमारे (महः रायः) बहुत २ धन हों और (नः रेवतः कृधि) हमें भी दान देने योग्य धनों से सम्पन्न बना। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ आर्ची भुरिग् जगती । ६ आर्ची स्वराड् जगती । ३ निचृज्जगती । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं१ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (वि व्रतानाम्) नाना काम करने वाले, (हरीणां) मनुष्यों के बीच में (रथ्यं) रथयोग्य अश्ववत् कार्यभार वहन करने में समर्थ उत्तम महारथी और (वज्र-दक्षिणम्) शस्त्र बलादि को, दायें हाथ में धारण करने वाले, बलशाली (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् दुष्टों के दमनकारी वीर पुरुष को हम (यजामहे) आदर सत्कार करें । उसके संग में

रहें। वह (राधसा वि दयमानः) अपने ऐश्वर्य के बल से प्रजाओं का विविध प्रकार से पालन रक्षण करता हुआ (सेनाभिः) स्वामी की आज्ञा पालन करने वाली सेनाओं, वा प्रजाओं सहित (श्मश्रु प्र दोधुवत्) शरीर में आश्रित केशों वा बाहुओं को कंपाता हुआ (वि) विविध प्रकारों से (ऊर्ध्वथा भूत्) सर्वोपरि विराजमान हो।

हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत्।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् २

भा०—(या हरी) जो स्त्री पुरुष वर्ग (अस्य वने) इसके ऐश्वर्यमय तेजोयुक्त भोग्य राष्ट्र में (वसुविदे) धन प्राप्त करते हैं (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (मघैः मघवा) उन्हों से स्वयं भी उत्तम धनों का स्वामी होकर (वृत्रहा भुवत्) बढ़ते शत्रु का नाश करने में समर्थ होता है। वह (ऋभुः) सत्य न्याय, तेज से चमकने वाला और (वाजः) बलशाली, (ऋभु-क्षाः) विद्वान् तेजस्वी और सत्य-न्यायशील पुरुषों का आश्रय, महान् होकर (शवः पत्यते) बल और धन का पालक राष्ट्रपति और अर्थपति हो जाता है। तब मैं प्रजा वर्ग भी (दासस्य) अपने नाशकारी दुष्ट जन के (शवः) बल और (नाम चित्) नाम तक को भी (अव क्ष्णौमि) नाश करने में समर्थ होता हूं।

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः॥३॥

भा०—(अस्य यं रथं) इसके जिस रथवत् राष्ट्र को (हरी वहतः) उत्तम सर्वदुःखहारी स्त्री और पुरुष धारण करते हैं। और (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सूरिभिः) उत्तम विद्वानों सहित (यदा) जब उस (वज्रं) बलस्वरूप (हिरण्यम्) हित और रमणीय (रथं) सब को सुख देने और रमाने वाले (यम्) जिस राष्ट्र पर (वि तिष्ठति, आ तिष्ठति)

विविध प्रकार से बैठता और शासन करता है तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सत्र-श्रुतः) दानादि से प्रख्यात और चिरकाल तक प्रसिद्ध, वा तप और सनातन वेद में बहुश्रुत होकर (वाजस्य दीर्घ-श्रवसः पतिः) दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य का पालक स्वामी हो जाता है। अध्यात्म में—वज्र ज्ञान, रथ देह, हरी प्राण-उदान, सूरिगण इन्द्रियगण, मघवा इन्द्र आत्मा, वाज ज्ञान।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी सूर्य (हरिता) अपने प्रखर तेज से (श्मश्रूणि) भूमि पर लोमवत् उगे वनस्पतियों को (अभि प्रुष्णुते) जल से सींचता है, (सो चित् नु वृष्टिः) वही उत्तम वर्षा कहाती है। उसी प्रकार (इन्द्रः) धन-ऐश्वर्य देने वाला राजा, प्रभु (स्वा सचा यूथ्या) अपने सहयोगी यूथ या समूहों को (अभि प्रुष्णुते) सेंचता और बढ़ाता है, (सो चित् नु वृष्टिः) राजा की अपने प्रजा के प्रति वही उत्तम वृष्टि है। इसीसे राजा मेघवत् है। वह (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होने या अभिषिक्त होने पर (सु-क्षयं अव वेति) उत्तम भवन को प्राप्त होता है, और (मधु वेति) मधुर, सुखप्रद जल, आतिथ्य, मधुपर्क और सुख-दायक अन्न प्राप्त करता है तब (यथा वातः वनम्) जिस प्रकार प्रबल वायु वन को कंपा देता है, उसी प्रकार वह भी (वनम्) स्व-सैन्य का प्रोक्षण जल के समान (उद् धुनोति) सर्वोपरि रह कर संचालित करता और परसैन्य को भय से त्रस्त करता है।

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५॥

भा०—(यः) जो प्रभु वा राजा (वि-वाचः) विपरीत, विविध

वाणी बोलने वालों और (मृध्र-वाचः) हिंसाकारिणी, मर्मवेधिनी वाणी का प्रयोग करनेवालों को (जघान) दण्ड देता है, और जो (पुरु) बहुत से (सहस्रा) हजारों, अनेक (अशिवा) अमंगलजनक, अकल्याणकारी दुःखों और दुष्टों को (जघान) नाश करता है, हम (अस्य) इसके ही (तत् तत् इत् पौंस्यं) उस २, नाना प्रकार के बल पराक्रम का (गृणीमसि) वर्णन करते हैं। वह राजा वा प्रभु (पिता इव) पिता के समान (तविषीं वावृधे) बल वा सेना को बढ़ाता है और (शवः वावृधे) बल, अन्न और ज्ञान की वृद्धि करता है।

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! समस्त जनों के राजन्! (वि-मदाः) मद से रहित, वा विशेष हर्ष वा तृप्ति योग से युक्त होकर विद्वान् लोग (ते सु-दानवे) उत्तम कोटि के पूजनीय, तुझ दाता के (अपूर्व्यं) अपूर्व, आश्चर्यजनक, (पुरु-तमं) सब से श्रेष्ठ (स्तोमं) गुणस्तवन को (अजीजनन्) प्रकट करते हैं। (अस्य इनस्य) उस तुझ स्वामी के (भोजनं विद्म हि) पालक ऐश्वर्य को हम जानें और प्राप्त करें और (पशुं न गोपाः) जिस प्रकार गोपालक पशु को सदा अपने सामने रखता और बुलाता है उसी प्रकार हम (गो-पाः) इन्द्रियों के पालक, जितेन्द्रिय होकर (त्वां पशुं आ करामहे) तुझ सर्वद्रष्टा को बुलावें और सदा अपने समक्ष रखें।

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७॥६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सब ऐश्वर्यों के देने हारे! जल अन्न के वितरण करने वाले! (वि-मदस्य तव) विशेष आनन्द, हर्ष आदि से

युक्त तेरा और (वि-मदस्य च ऋषेः) विशेष आनन्द और हर्ष-उल्लास से युक्त तेरे दर्शन करने वाले के (एना सख्या) ये नाना मैत्रीभाव (माकिः वि यौषुः) कोई भी न तोड़े और कभी भी न टूटें। हे (देव) सब सुखों के देने वाले! हम (ते प्र-मतिम्) तेरी सर्वोत्कृष्ट बुद्धि वा ज्ञान को (विद्म हि) अवश्य जानें, (जामिवत्) भाई के प्रति बहिन के समान, पति के प्रति सन्ततिजनक पत्नी के समान और बन्धु के प्रति बन्धु के समान, (ते) तेरे (सख्या) यह मित्रता, स्नेह और सौहार्द के भाव (अस्मे शिवा निसन्तु) हमारे लिये कल्याणकारी और सुखजनक हों। इसी प्रकार हमारे ये सब प्रेम भाव (ते शिवानि सन्तु) तेरे प्रति हमें बांधने वाले और कल्याणकारी हों। इति नवमो वर्गः ॥

[२४]

ऋषिः विमद ऐन्द्रः प्रजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवताः—१—३ इन्द्रः । ४—६ अश्विनौ ॥ छन्दः—१ आस्तारपंक्तिः । २ आर्ची स्वराट् पांक्तिः । ३ शङ्कुमती पांक्तिः । ४, ६ अनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र सोम॑मि॒मं पि॑ब॒ मधु॑मन्तं च॒मू सु॒तम् ।
अ॒स्मे र॒यिं नि धा॑रय॒ वि वो॒ मदे॑ सह॒स्रिणं॑ पुरूवसो॒ विव॑क्षसे॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! प्रभो! विभो! राजन्! तू (इमं सुतम्) इस उत्पन्न हुए (मधुमन्तं) मधुर मधु वा, अन्न जलादि से युक्त (सोमम्) अन्न के समान बलदायक, ऐश्वर्यमय (चमू) भूमि और आकाश में विद्यमान जगत् को पुत्रवत् (पिब) पालन कर। और हे (पुरु-वसो) समस्त जनों में बसने हारे, सर्वान्तर्यामिन्! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं रयिं नि धारय) सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। हे मनुष्यो! वह (विवक्षसे) महान् प्रभु (वः वि-मदे) तुम सब को विविध प्रकार से सुखी आनन्दित करता और नाना प्रकारों से तृप्त करता है।

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥ २ ॥

भा०—हे (शची-पते) शक्तियों और वाणियों के पालक ! हम लोग (यज्ञेभिः उक्थेभिः हव्येभिः) यज्ञों, मन्त्रों और खाद्य और आहुति योग्य पदार्थों सहित (त्वाम् इमहे) तुझे प्राप्त होते हैं ! तू (शचीनां श्रेष्ठं वार्यं नः धेहि) कर्मों का सर्वोत्तम वरणयोग्य फल प्रदान कर। हे मनुष्यो ! वह (विवक्षसे वः विमदे) महान् प्रभु आप सब को नाना प्रकार के आनन्द, तृप्ति-योग कराने में समर्थ है ।

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (वार्याणाम् पतिः असि) वरण करने योग्य धनों, ऐश्वर्यों का पालक और स्वामी है और (रध्रस्य चोदिता) साधक आराधक को भी सन्मार्ग में चलाने हारा और (स्तोतॄणाम् अविता) विद्वान्, स्तुतिशील, जनों का रक्षक है तू (नः द्विषः) हमें द्वेष करने वाले जनों (अहंसः) और पाप से (पाहि) बचा । (वि वः मदे विवक्षसे) प्रभु महान् है । हे मनुष्यो ! वह तुम्हें विविध प्रकार के सुख देने में समर्थ है ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मायाविना) बुद्धिमान्, सर्ग वा सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले परिपक्व रज वीर्य की शक्तियों से युक्त (शक्रा) हे शक्तियुक्त पति-पत्नी वा स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (समीची) उत्तम रीति से परस्पर मिलकर (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन करो (वि मदेन यद् ईडिता) विविध तृप्तिकारक अन्न, हर्ष प्रीतियोगादि से प्रेरित और इच्छावान् होकर हे

(नासत्या) परस्पर कभी असत्य आचरण न करनेवाले, सत्य व्रताचरणी जनो! आप (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन अर्थात् यज्ञादि का मन्थन कर अग्न्याधान करो एवं उत्तम गृहस्थ-स्थापन कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करो।

विश्वे॑ दे॒वा अ॑कृपन्त स॒मीच्यो॒र्नि॒ष्पत॑न्त्योः ।
नास॑त्यावब्रुवन् दे॒वाः पुन॒रा व॑हता॒दिति॑ ॥ ५ ॥

भा०—(समीच्योः) परस्पर एक दूसरे को आदरपूर्वक प्राप्त कर संगत हुए और (निष्पतन्त्योः) संसार मार्ग पर आने वाली दोनों व्यक्तियों पर (विश्वेः देवाः) सब विद्वान् जन (अकृपन्त) कृपा करें, उनपर प्रेम, दयाभाव बनाये रखें। (देवाः) वे विद्वान् जन (नासत्यौ अब्रुवन्) परस्पर असत्य आचरण न करने व सदा सत्य वचन कहने वाले स्त्री और पुरुष दोनों को उपदेश करें कि (पुनः आवहतात् इति) इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा के अनन्तर उत्साहित होकर पुनः २ निरन्तर गृहस्थ का भार धारण करो, परस्पर विवाह करो।

मधु॑मन्मे प॒राय॑णं॒ मधु॑म॒त्पुन॒राय॑नम् ।
ता नो॑ देवा दे॒वत॑या यु॒वं मधु॑मतस्कृतम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—(मे परा-अयनम्) मेरा दूर देश में गमन, घर से बाहर जाना (मधुमत्) मधुर, स्नेह से युक्त हो। और (पुनः आ-अयनम्) पुनः लौट आना भी (मधुमत्) मधुर, प्रीति से युक्त हो। हे (देवाः) उत्तम फल की कामना करने वाले स्त्री पुरुषो! इस प्रकार (युवं) आप दोनों (देवतया) दानशीलता के भाव से (नः मधुमतः कृतम्) हमें मधुर स्नेह से युक्त बनाओ। इति दशमो व र्गः ॥

अध्यात्म में—(४) उपास्य उपासक 'नासत्य' हैं उनमें परस्पर संगति होने पर ध्यान-निर्मथन द्वारा परस्पर साक्षात् होता है। (५) पुनः २ अभ्यास द्वारा परस्पर योग होता है। (६) मोक्ष में जाना और पुनः मोक्ष से आना, देह से जाना और देह में आना भी जीव को सुखद हो।

[२५]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपंक्तिः । ३—५ आर्षी निचृत् पंक्तिः । ७—९ आर्षी विराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (नः) हमें (भद्रं मनः अपि वातय) कल्याणकारी चित्त प्राप्त करा, हमें सुखदायी ज्ञान दे । (भद्रं दक्षम् उत क्रतुम्) सुखदायी बल और कर्मसामर्थ्य भी प्रदान कर । (यवसे न गावः) पशुगण जिस प्रकार चारे के लिये इच्छुक होते हैं वे उसे प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार जीवगण (ते सख्ये अन्धसः रणन्) तेरे मित्रभाव में रह कर नाना प्रकार से अन्न, भोग्य कर्मफल प्राप्त कर आनन्द लाभ करते हैं । हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगों को विविध आनन्द सुखादि देने हारा है ।

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक और प्रेरक ! (अध) और (इमे) ये सब (मम कामाः) मेरे कामनाशील (वसूयवः) वसने योग्य लोकों और ऐश्वर्यों की इच्छा करने वाले जन वा ऐश्वर्यादि की अभिलाषाएं (विश्वेषु धामसु) समस्त स्थानों में (हृदि-स्पृशः) हृदय में स्पर्श करने वाले, अतिप्रिय होकर (ते आसते) तेरी उपासना करते हैं और (वि तिष्ठन्ते) विराजते हैं, स्थिर रहते हैं। हे मनुष्यो ! वह प्रभु (विवक्षसे वः वि मदे) महान् और तुम्हें नाना प्रकार के हर्ष आनन्द देने वाला है ।

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळानो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे॥३॥

भा०—(उत) और हे (सोम) सर्वोत्पादक ! सर्वशासक ! (अहं पाक्या) मैं परिपक्व बुद्धि से (ते व्रतानि प्र मिनामि) तेरे समस्त कर्मों और व्यवस्थाओं को प्राप्त करूं, उनको यथावत् जानूं। और तू (वधात् अभि चित्) विनाश से बचा कर (सूनवे पिता इव नः मृड) पुत्र को पिता के समान हमें सुखी कर। हे मनुष्यो ! वह (विवक्षसे वः वि मदे) महान् प्रभु आप लोगों को विशेष और विविध सुख और आनन्द देवे ।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ४

भा०—(सर्गासः अवतान् इव) जल जिस प्रकार स्वभावतः कूप के समान नीचे भागों की ओर चले जाते हैं और (सर्गासः अवतान् इव) जिस प्रकार जलार्थी लोगों की रस्सियां कूपों की ओर जाती हैं और (सर्गासः अवतान् इव) जिस प्रकार जन्तुगण रक्षकों को लक्ष्य करके शरणार्थ जाते हैं उसी प्रकार हे (सोम) सर्वशक्तिमन् ! सर्वोत्पादक प्रभो ! (नः धीतयः) हमारी समस्त स्तुतियें (क्रतुं सं यन्ति उ प्र यन्ति) जगत् के विधाता तुझ को एक साथ प्राप्त होती और तुझ तक पहुंचती हैं। तू (नः) हमें (चमसान् इव जीवसे) प्राण और दीर्घ-जीवन देने के लिये अन्न से पूर्ण पात्रों के समान नाना भोग्य लोक, और पदार्थ (धारय) प्रदान कर। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः विमदे) वह महान् प्रभु आप सब को विविध सुख और आनन्द प्रदान करता है।

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे । गृत्सस्य
धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥११॥

भा०—हे (सोम) शक्तिमन् ! सर्वप्रेरक ! ऐश्वर्यप्रद ! (त्ये)

वे (नि-कामासः) तुझे निश्चय से चाहने वाले (धीराः) बुद्धिमान् जन (तवसः) अति बलशाली (गृत्सस्य) स्तुत्य, उपदेष्टा, आज्ञापक, एवं बुद्धिमान् (तव) तेरी (शक्तिभिः) शक्तियों से ही (गोमन्तम् अश्विनं व्रजं वि ऋण्विरे) गौवों और अश्वों से समृद्ध पशुशाला के समान ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों से सम्पन्न इस देह को विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं। (विवक्षसे) वह महान् प्रभु हे मनुष्यो ! (वः वि मदे) तुम्हें बहुत से आनन्द, सुख देने हारा हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत्। समाकृणोषि
जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) समस्त जगत् के उत्पन्न करने और चलाने हारे ! तू (नः) हमें (पशुं) पशु को गोपाल के समान (रक्षसि) रक्षा करता है। और तू (पुरुत्रा) बहुत प्रकारों से (वि-स्थितं जगत्) व्यवस्थित जगत् की भी (रक्षसि) रक्षा करता है। हे प्रभो ! तू (विश्वा भुवना) समस्त भुवनों को (सम्-पश्यन्) देखता हुआ (जीवसे) जीवगण के जीवन-सुख के लिये (सम् आकृणोषि) सब पदार्थों की उचित व्यवस्था करता है। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु तुम्हें बहुत से सुख देने में समर्थ है।

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के सञ्चालक प्रभो ! तू (अदाभ्यः) अविनाशी है। (नः विश्वतः गोपाः भव) तू हमारा सब प्रकार से रक्षक हो। हे (राजन्) राजन् ! सबके स्वामिन् ! शासक ! स्वयं प्रकाश और अन्यों को प्रकाशित करने हारे ! तू (स्रिधः अप सेध) हमारा नाश करने वाले दुष्टों को शत्रु-सेनाओं को राजा के तुल्य (अप सेध) दूर कर। (दुः-शंसः)

दुःखदायी कठोर वचन कहने वाले (नः मा ईशत) हम पर शासन न करें। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे) वह महान् प्रभु (वः वि मदे) आप लोगों को विविध आनन्द सुख देने के लिये हो।

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! ऐश्वर्यवन् ! विभो ! (त्वं सु-क्रतुः) तू उत्तम क्रियावान्, ज्ञानवान् और (क्षेत्रवित्-तरः) देहरूप निवासस्थान को प्राप्त कराने वाला, एवं प्रकृति तत्व को भली प्रकार जानने वाला है। तू (वयः-धेयाय) अन्न, बल और ज्ञान के लिये (जागृहि) सदा जाग। तू (नः) हमें (अहंसः मनुषः) पापी मनुष्य से और (द्रुहः मनुषः) द्रोही मनुष्य से (पाहि) बचा। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगों को विविध प्रकार का सुख दे।

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ९

भा०—हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों के सबसे बड़े नाशक ! हे धनों को प्राप्त होने हारे ! हे (इन्दो) परमैश्वर्यवन् ! (त्वं नः शिवः सखा) तू हमारा परम कल्याणकारी मित्र है और तू (इन्द्रस्य शिवः सखा) ऐश्वर्यवान् का भी परम सखा है। (यत्) क्योंकि (तोक-सातौ समिथे) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये संग्राम में (युद्ध्यमानाः) युद्ध करते हुए मनुष्य भी (सीं हवन्ते) सर्वप्रकार से तुझे रक्षार्थ पुकारते हैं। (विवक्षसे वः वि मदे) वह प्रभु हे मनुष्यो ! तुम्हें विविध सुखदेने में समर्थ है।

(२) अध्यात्म में सोम वीर्य है। वह सब दुःखों का नाशक, आत्मा, प्राण का शिव सखा है। (तोक-सातौ) सन्तान प्राप्ति के निमित्त यत्नशील जन भी उसी को प्राप्त करते हैं।

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे॥१०॥

भा०—(अयं घ) यह निश्चय से (तुरः) शीघ्र कार्य करने में चतुर (इन्द्रस्य मदः) समृद्ध राष्ट्र को और शत्रुहन्ता बल और इस जीव-आत्म-गण को सन्तुष्ट करने में समर्थ, (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (वर्धत) वृद्धि को प्राप्त होता है। और (अयं) यह (कक्षीवतः) कार्य करने के साधनों से युक्त (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (मतिं) बुद्धि को (वर्ध-यत्) बढ़ा देता है। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् शक्ति शाली तुम्हें सब सुख देने में समर्थ है।

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः। अयं सप्तभ्य
आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे॥११॥१२॥

भा०—(अयं) वह प्रभु (दाशुषे विप्राय) दानशील, आत्म-समर्पक (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष को (गोमतः वाजान्) वाणी से युक्त ज्ञानों, बलों और इन्द्रियों से युक्त भोग्य अर्थों को (इयर्त्ति) प्राप्त कराता है। (अयं) वह (सप्तभ्यः) सातों को (वरं) उनके वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान, ग्राह्य पदार्थ (आ) प्रदान करता है। और (विवक्षसे) वह महान् प्रभु (वः) आप लोगों के (अन्धं श्रोणं च प्रतारिषत्) चक्षु से हीन, और 'श्रोण' अर्थात् चरण आदि से हीन अर्थात् चक्षु, कर्ण आदि बाह्य अंगों से रहित जीव को (मदे) मोक्षानन्द प्राप्त कराने के लिये (प्र तारिषत्) पार पहुंचा देता है। अथवा-(अन्धं) प्राणधारक (श्रोणं) श्रवणशील बहुश्रुत को तार देता है। इति द्वादशो वर्गः॥

[२६]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः—१ उष्णिक् ४ आर्षी निचृदुष्णिक्। ३ ककुम्मत्यनुष्टुप्। ५—८ पादनिचृदनुष्टुप्। ९ आर्षी विराडनुष्टुप्। २ आर्ची स्वराडनुष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र ह्यच्छा॑ मनी॒षाः स्पा॒र्हा यन्ति॑ नि॒युतः॑ ।
प्र द॒स्रा नि॒युद्र॑थः पू॒षा अ॑विष्टु मा॒हिनः॑ ॥ १ ॥

भा०—(नियुतः) लक्षों (स्पार्हाः) प्रेमयुक्त मनभावनी (मनीषाः) मन की इच्छाएं और वाणियों (अच्छ प्र यन्ति) भली प्रकार स्वयं निकलती हैं (माहिनः पूषा) महान्, सर्वपोषक प्रभु (नियुद्-रथः) सहस्रों, लक्षों वेगवान् रथों, लोकों का स्वामी, महारथी सेनापति के समान (दस्रा) कर्म करने वाले जीवों की (प्र अविष्टु) अच्छी प्रकार रक्षा करे ।

यस्य॒ त्यन्म॑हि॒त्वं वा॒ताप्य॑म॒यं जनः॑ ।
विप्र॒ आ वं॑सद्धी॒तिभि॒श्चिके॑त सुष्टु॒तीना॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अयं जनः) यह मनुष्य (यस्य) जिस सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु के (वाताप्यं) प्रबल वायु वा प्राण द्वारा प्राप्त होने योग्य, मेघजल के तुल्य जीवनप्रद (त्यत् महित्वं) उस महान् सामर्थ्य को (धीतिभिः आ वंसत्) खान-पान क्रियाओं से भोजन जलादि के तुल्य ही स्तुतियों और ध्यान धारणाओं द्वारा प्राप्त करता है वह (विप्रः) परम मेधावी ही (सु-स्तुतीनां चिकेत) उत्तम स्तुतियों को भली प्रकार जानता है ।

स वे॑द सुष्टु॒तीना॒मिन्दु॒र्न पू॒षा वृषा॑ ।
अ॒भि प्सुरः॑ प्रुषायति व्र॒जं न॒ आ प्रु॑षायति ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इन्दुः न) ऐश्वर्यवान् वा द्रवित होने वाले मेघ वा दयार्द्र महानुभाव के समान (पूषा) सर्वपोषक (वृषा) सुखों को बरसाने वाला प्रभु (सु-स्तुतीनां वेद) समस्त उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करता है, वह सर्व स्तुतियों के योग्य है । वही (प्सुरः अभि प्रुषायति) रूपवान्, सुन्दर भूमियों के प्रति मेघ के तुल्य देहवान् प्राणियों पर कृपाजल का वर्षण करता है । और वह (व्रजं नः आ प्रुषायति) हमारे

गन्तव्य मार्ग वा गोष्ठवत् देह को भी सींचता है, उसे भी सुखप्रद बनाता है।

मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन्।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पूषन्) सब जगत् के पोषण करने वाले! प्रभो! हे (देव) सब सुखों के देने वाले! सब जगत् के प्रकाशक! (वयम्) हम (त्वा) तुझे (अस्माकं मतीनां) अपनी बुद्धियों, स्तुतियों को (साधनं) सफल करने वाला और (विप्राणां च) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों को (आधवं च) सब प्रकार से स्वामी और पवित्र करने वाला (मंसीमहि) जानते हैं।

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञानां प्रति-अर्धिः) समस्त यज्ञों का प्रत्यक्ष फल देने वाला, (रथानाम् अश्व-हयः) रथों में लगे वेगवान् घोड़े के समान समस्त रम्य पदार्थों और वेगवान् सूर्यादि लोकों का संचालक है। (सः) वह (ऋषिः) सब पदार्थों का द्रष्टा, (मनुः) ज्ञानमय, (विप्रस्य सखः) बुद्धिमान्, विद्वान् का परम मित्र (यवयत्) सब के दुःखों को दूर करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥ ६ ॥

भा०—(आ-धीषमाणायाः) सब प्रकार से धारण पोषण की गई (शुचायाः च) अत्यन्त शुद्ध, वा सत्व गुण से युक्त, कान्तिमती प्रकृति का और (शुचस्य च) शुद्ध, कान्तियुक्त, 'स्वप्रकाश' आत्मा का भी (पतिः) पुत्र और पत्नी के गृहस्वामिवत् पालक है। और जिस प्रकार (वासः-वायः

अवीनां वासांसि मर्मृजत्) वस्त्र बुनने वाला तन्तुवाय भेड़ की ऊनों के नाना वस्त्र स्वच्छ रूप में बनाता है उसी प्रकार वह प्रभु भी (वासः-वायः) समस्त प्राणियों के रहने योग्य लोक-परम्परा रूप जगत्-पट का बनाने वाला (अवीनाम्) अरक्षित जीवों के नाना (वासांसि आ मर्मृजत्) आच्छादक देह वा वसने योग्य नाना लोक, भूमि, सूर्यादि बनाता है। इसी प्रकार वह (अवीनां वासांसि आ मर्मृजत्) सूर्य, भूमियों और सूर्यों के वास रूप आवरणों को भी शुद्ध करता, प्रकाशित करता है।

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥ ७ ॥

भा०—वह प्रभु (वाजानां इनः) समस्त बलों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों, वेगवान् पदार्थों का स्वामी (पतिः) पालक (पुष्टीनां इनः) समस्त पशु, अन्न आदि समृद्धियों का स्वामी, (सखा) सब का मित्र है। वह (हर्यतः) अति कान्तिमान्, तेजस्वी (श्मश्रु वृथा प्र दूधोत्) देह में आश्रित अंगों या बालों के समान समस्त जगत् के पदार्थों को अनायास संचालित करता है और (यः अदाभ्यः) जो स्वयं अविनाशी है।

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) सब के पालन-पोषण करने हारे प्रभो ! तू (विश्वस्य-अर्थिनः) समस्त प्रार्थी जनों का (सखा) मित्र है। तू (सनः-जाः) अनादि, अजन्मा (अनपच्युतः) ध्रुव अविनाशी है। (ते रथस्य धुरं) तेरे अति वेग से जाने वाले वा जगत्-चक्र के धारक बल को (अजाः ववृत्युः) नित्य प्रकृति और आत्मागण तथा नाना प्रेरक बल अग्नि, वायु, विद्युत्, जल आदि चला रहे हैं।

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) वह सब जगत् का पालक पोषक प्रभु (माहिनः) सब से महान्, शक्तिशाली है । वह (अस्माकं रथं) हमारे (रथ) रमण करने योग्य इस जगत् और देह को (ऊर्जा) बल और शक्ति से (अविष्टु) संचालित करे । वह (वाजानां वृधे भुवत्) ऐश्वर्यों, बलों और ज्ञानों को बढ़ाने वाला हो । और वह (नः इमं हवम् शृणवत्) हमारी इस प्रार्थना को सुने । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२७]

वसुक्र ऐन्द्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,५,८,१०,१४,२२ त्रिष्टुप् । २, ९, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ११, १२, १५, १९—२१, २३ निचृत त्रिष्टुप् । ६, ७, १३, १७ पादनिचृत त्रिष्टुप् । २४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥ १ ॥

('वसुक्रः' वसु करोति तादृशः इन्द्र एव ऐन्द्रः, सोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः)

भा०—हे (जरितः) विद्वान् उपदेष्टः ! (मे सः अभि-वेगः सु असत्) मेरा वह उत्तम उत्साह और वेग बल सदा भली प्रकार बना रहे (यत्) कि मैं (सुन्वते यजमानाय शिक्षम्) यज्ञशील, देवोपासक को सदा दान दिया करूं, उसकी इच्छापूर्ति करूं । मैं ईश्वर, राजा, (अनाशीः-दाम्) आशा और कामनाओं के अनुरूप न देने वालों को (प्र-हन्ता अस्मि) अच्छी प्रकार नाश करने वाला हूं । और मैं (सत्य-ध्वृतं) सत्य के विनाशक और (वृजिनयन्तम्) पापाचरण करने वाले (आभुम्) शक्तिशाली को भी (प्र-हन्ता अस्मि) खूब अच्छी प्रकार नाश कर देता हूं ।

यदीदहं युधये सन्नयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

भा०—(यदि इत्) जब भी (अहं) मैं (युधये) युद्ध करने के निमित्त (तन्वा शूशुजानान्) देह या विस्तृत सेनादि से बढ़ते हुए (अदेवयून्) ईश्वर की पूजा न करने और देवों, विद्वानों को दान न देने वाले दुष्ट जनों को (सं-नयानि) लक्ष्य करके अपने सैन्य बल को एकत्रित करूं तब मैं हे प्रभो ! (ते) तेरे (तुम्रं) अति बलशाली (वृषभम्) वृष्टिकारक मेघ के तुल्य शत्रु पर शरवर्षण और प्रजा पर कृपा-वर्षण करने वाले बल को (पचानि) परिपक्व करूं, उसको खूब सधाऊं । वा उसका विस्तार से व ँन करूं । और (तीव्रं) अति तीक्ष्ण, (सुतं) अभिषेक योग्य (पञ्च-दशं) १५ वें पद पर स्थित, पूर्ण चन्द्रवत् विराजमान, बलवान् पुरुष को (नि-षिञ्चम्) मुख्य पद पर अभिषिक्त करूं ।

क्ष ं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तस्माद् राजन्यस्य पञ्चदशः स्तोमः ॥ ता० ६ । १ । ८ ॥ चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥ चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि वीर्यं पञ्चदशम् ॥ गो० पू० ५ । ३ ॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(अदेवयून्) देव, विद्वानों, और सर्व-सुखप्रद प्रभु को न चाहने वाले शत्रुओं को (सम्-अरणे) संग्राम में (जघन्वान्) विनाश करता हूँ (यः इति ब्रवीति) जो ऐसा कहता है (तं) उसको (अहं न वेद) मैं नहीं जानता । (यद् ऋघावत्) जो हिंसादि से युक्त (सम्-अरणम्) संग्राम को (अव-अख्यत्) देखता हूं । (आत् इत्) तभी विद्वान् लोग (मे) मेरे (वृषभा) मेघ-वर्षणादि और अनेक बलयुक्त कर्मों का (प्र ब्रुवन्ति) वर्णन करते हैं ।

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

भा०—(यत्) जब मैं (अज्ञातेषु वृजनेषु) अज्ञात मार्गों में (आसन्) होऊं तब (विश्वे मघवानः) सब उत्तम ऐश्वर्य से युक्त भी (सतः) सद्रूप से वर्त्तमान सज्जन (मे) मेरे ही (आसन्) रहें। और जिस प्रकार सूर्य (क्षेमे) जगत् के रक्षणार्थ, (आ सन्तं आभुं) सर्वत्र फैले जल राशि को एकत्र करता और उसे पर्वतों पर या मेघरूप में प्रेरित करता है उसी प्रकार (क्षेमे) जगत् के कुशलपूर्वक रक्षण के लिये (आ सन्तं आभुं) सब तरफ फैले महान् शत्रु को भी (जिनामि वा इत्) अवश्य पराजित करूं। और (पाद-गृह्य) उसका पैर पकड़ कर, उसका आश्रय छीन कर उसे (पर्वते प्र क्षिणाम्) पर्वत में खदेड़ दूं।

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥१५

भा०—(मां) मुझ को कोई लोग भी (वृजने) गन्तव्य मार्ग में (न वा उ वारयन्ते) नहीं वारण कर सकते, मुझे कोई भी रोक नहीं सकते। (यद् अहं मनस्ये) जब मैं चाहता हूं तो (पर्वतासः न) पर्वतों के समान अचल, विशाल पदार्थ भी मुझे करने से रोक नहीं सकते (मम स्वनात्) मेरे शब्द से (कृधु-कर्णः भयाते) छोटे उपकरण वाला, अल्पशक्ति जन भयभीत होता है। (एव इत् अनुद्यून्) इसी प्रकार सब दिनों, (किरणः) किरणों वाला सूर्य भी मुझ ईश्वर की शक्ति से (सम् एजात्) चला करता है। (२) इसी प्रकार बलवान् राजा की शक्ति से (किरणः) शत्रु को उखाड़ देने में समर्थ सैन्य भी चलता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (अत्र) इस जगत् में (अनिन्द्रान्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, परम प्रभु से रहित (श्रुत-पान्) परिपक्व फल का पान, उपभोग करने वालों को और (बाहु-क्षदः) बाधित या पीड़ित करने वाले साधनों से दूसरों को नाश करने वाले और (शरवे) हिंसाकारी बल को प्राप्त करने के लिये (पत्यमानान्) दौड़ते हुए, वा ऐश्वर्य पाने वालों को भी देखता हूँ। (वा) और उनको भी देखता हूँ (ये) जो (घृषुं सखायम्) अपने बड़े मित्र, सहायक प्रभु की (निनिदुः) निन्दा करते हैं (एषु) उन पर (उ नु) निश्चय से ही (पवयः अधि ववृत्युः) मेरे वज्र शासन करते हैं, उनका नाश करते हैं।

अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! परमैश्वर्यवन् ! तू (अभूः उ) अजन्मा ही है, जो (औक्षीः) जगत् को उत्पन्न करने के लिये, जगत् के उत्पादक बीज का वपन करता और उसको मेघवत् सेचन करके बढ़ाता है। तू (आयुः आनट्) समस्त जीव-सर्ग में व्यापक है। (पूर्वः दर्षत् नु) जो पूर्व विद्यमान या पूर्ण शक्तिशाली होता है वही सब का विदारण करता है, वही सब का विभाग करता है, (अपरः नु दर्षत्) और दूसरा कोई विदारण नहीं कर सकता। (द्वे) ये आकाश और भूमि, जीव और प्रकृति दोनों (पवस्ते) विस्तृत होकर भी (तं न परि भूतः) उसको नहीं ढांप सकते (यः) जो (अस्य रजसः पारे विवेष) इस लोक के पार, बाहर भी व्याप रहा है।

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥ ८ ॥

भा०—(सह-गोपाः गावः चरन्तीः यवम्) जिस प्रकार गोपाल के साथ चरती हुई गौएं यव आदि खाद्य पदार्थ को प्राप्त होती हैं उसी

प्रकार (सह-गोपाः) रक्षक के साथ, (गावः) ये भ्रमणशील जीव लोक, (चरन्तीः) गति करते हुए (प्रयुताः) लक्षों वा खूब व्यवस्थित होकर (यवं अक्षन्) अपना कर्मफल भोगते हैं। और मैं (अर्यः) स्वामी के समान (ताः अपश्यम्) उन सब को देखता हूँ। वे (अर्यः अभितः) स्वामी के चारों ओर (हवाः इत्) बुलाये हुए से (सम् आयन्) एकत्र हो जाते हैं (आसु) उनमें (स्व-पतिः) स्वयं सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (कियत् छन्दयाते) कितना ही उनके मनोऽनुकूल आनन्द, सुख प्रदान करता है और स्वयं रमता है, यह देखने योग्य है।

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद् ववन्वान् ॥९॥

भा०—(यत्) क्योंकि (वयम् जनानाम्) उत्पन्न होने वाले जीव गणों में से हम सब (यव-सादः) चारे के समान कर्मफल को भोगने वाले हैं। और (उर्वज्रे अन्तः) महान् आकाश के भीतर हम लोग (यव-अदः) अन्नवत् नाना भोग्यों को भोगने वाले हैं। (अत्र) इस लोक में (युक्तः) समाहित चित्त होकर मनुष्य (अव-सातारं) उस दाता प्रभु को (इच्छात्) चाहा करे। (अथो) और वह (ववन्वान्) सब का दाता प्रभु (अयुक्तं युनजत्) मनोयोग न देने वाले को भी सन्मार्ग में लगाता है।

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः १०॥१६

भा०—(अत्र इत् उ) यहां ही (मे) मेरे विषय में (उक्तम् सत्यं मंससे) हे जीव ! तू उपदेश किये को सत्य सत्य, ठीक ठीक जान ले कि (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च) जो भी दोपाये मनुष्य वा चौपाये जीव हैं उन सब को मैं ही (सं सृजानि) उत्पन्न करता हूँ। (अत्र) इस

संसार में (यः) जो (स्त्रीभिः) स्त्रियों के सदृश पराधीन वा संघात युक्त सेनाओं से युक्त होकर भी (वृषणं) बलवान् मुझ से (पृतन्यात्) युद्ध करता है मैं (अयुद्धः) विना युद्ध किये, वा उसका प्रहार विना सहे ही (अस्य वेदः वि भजानि) उसके धन को विविध प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर देता हूँ। इति षोडशो वर्गः ॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्। कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वावरेयात् ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य) जिसके अधीन (अनक्षा) अक्षि आदि ज्ञान साधनों से रहित वा अव्यापक, अपेक्षया स्थूल (दुहिता) सब ऐश्वर्यों को देने वाली प्रकृति पुत्रीवत् (जातु आस) है। (कः विद्वान्) कौन ज्ञानी (ताम् अन्धाम्) उस अन्धी, अचेतन प्रकृति को (अभि मन्याते) अपना जानेगा, उसको अपना कर कौन गर्व कर सकता है। (यः ईं वहाते) जो इसको धारण करता है और (यः ईं वरेयात्) जो इसको वारण करता या दूर करता है (तं) उस (मेनिं) वज्रवत् दृढ़ और माननीय श्रेष्ठ बल को (कतरः प्रति मुचाते) कौन धारण करता है।

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण। भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥ १२ ॥

भा०—(कियती योषा) कितनी स्त्री ऐसी हैं जो (वधूयोः मर्यतः) वधू की कामना करने वाले मनुष्य के (पन्यसा वार्येण परिप्रीता) स्तुति-युक्त वचन और धन से ही खूब सन्तुष्ट होजाती हैं। वस्तुतः (भद्रा वधूः भवति) वही वधू कल्याणकारिणी और सुख सौभाग्यवती होती है (यत् सुपेशाः) जो सुभूषित होकर (सा) वह (जने चित् मित्रं स्वयं वनुते) मनुष्यों के बीच अपने मित्र पुरुष को स्वयं सखा, पति रूप से स्वीकार करती है।

अध्यात्म में—वह स्त्रीवत् प्रकृति की कितनी मात्रा है जो मरणशील जीव के वचन और ऐश्वर्य से तृप्त है, अर्थात् उसके वश है। वस्तुतः वह

प्रकृति वधूवत् जगत् को धारण करने वाली, सूर्यादि आभूषण धारे, उत्पन्न जगत् के बीच उस प्रभुको ही मित्रवत् सेवती है। वही (भद्रा) सर्वसुख-जनक, सर्वैश्वर्यवती है।

पत्तो जंगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ।१३।

भा०—पुरुष प्रकृति को किस प्रकार व्यापता है। (पत्तः) व्याप्त होकर वह परम पुरुष (जगार) इस जगत् को अपने भीतर लील लेता है। और (प्रत्यञ्चम् अत्ति) उसके प्रति व्याप्त प्रकृति तत्व को वह मानो उपभोग करता है, इस जगत् के (शिरः वरूथम्) गृह की छत के समान आच्छादक शिरोवत् ऊर्ध्वतन भाग को (शीर्ष्णा प्रति दधौ) अपने शिरोवत् शिर के तुल्य आकाश रूप से धारण करता है। वह (ऊर्ध्वाम्) ऊपर विद्यमान प्रकृति को भी (उपसि आसीनः क्षिणाति) मानो उसके समीप बैठकर उसको प्रेरित करता है और (उत्तानाम् भूमिम्) उत्तान भूमि को भी (न्यङ् अनु एति) मानों स्वयं नीचे व्यापकर उसके प्रत्येक अवयव में व्याप्त होता है।

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः॥१४॥

भा०—वह प्रभु (बृहन्) महान् (अच्छायः) छाया, अन्धकार वा मृत्यु से रहित, तेजोमय अमृत, (अपलाशः) 'पल' अर्थात् कर्मफल के अशन अर्थात् भोग से रहित, अबद्ध, सदामुक्त (अर्वा) व्यापक, दुःखों का नाशक, (माता) सब जगत् का मातृवत् निर्माता और समस्त जगत् के पदार्थों का प्रमाता, ज्ञाता, (वि-षितः) सब प्रकार के बन्धनों से रहित, (गर्भः) और सब जगत् को अपने में धारण, आकर्षण और प्रलीन करने हारा होकर (अत्ति) इस चराचर जगत् को खाजाता है, अपने में ही लील लेता है।

वह (धेनुः) सब जीवों को सुख और आनन्द का रस-पान कराने वाला प्रभु (अन्यस्याः) अपने से भिन्न जड़ प्रकृति के (वत्सं) पुत्रवत् उससे उत्पन्न जगत् को (रिहती) मानो बच्चे को अति प्रेमसे चाटती गौके समान उस पर अनुग्रह करता है, (मिमाय) शब्द करता, वेदवाणी का उपदेश करता है, वह (कया भुवा) भला किस अभिप्राय या भाव से (ऊधः) जगत को पालन करने के लिये अन्तरिक्ष में, मेघ, सूर्य और रात्रि आदि सुखदायक, जीवनदायक पदार्थों को, बच्चे के प्रति स्तनवत् (नि दधे) प्रदान करता है।

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते। नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ।१५।१७।

भा०—उस (अश्नः) भोक्ता या व्यापक राजा के तुल्य आत्मा के (सप्त वीरासः) सात वीर, सात प्राण (अधरात्) नीचे, मूल भाग, नाभि से (उत् आयन्) ऊपर को उठते हैं। और (ते) वे ही (अष्ट) आठ होकर (उत्तरात्-तात्) खूब ऊपर से आकर (सम् अजग्मिरन्) एक स्थान पर ही एकत्र संगत होकर बैठते हैं। (ते) वे ही (पश्चात्तात्) पीछे की ओर (स्थिवि-मन्तः) स्थिर स्थिति वाले होकर (आयन्) प्राप्त होते हैं और वे ही (दश) दश संख्या वाले होकर (अश्नः) भोक्ता आत्मा को (सानु) नाना भोग्य कर्मफल, सुख-दुःखादि की (वि तिरन्ति) वृद्धि करते हैं। सप्त वीर शिरोगत सात प्राण नाभि से या मूल भाग से उद्गत होते हैं, वे उत्तर नाम शिरोभाग में वाक्रूप अष्टमी शक्ति सहित आठ होकर एक स्थान मूर्धाभाग में संगत होते हैं। पीछे पीठ की ओर से देखें तो वे नव द्वारवत् हैं वा पीठ के नव मोहरे रूप में ग्रीवा दशवीं हैं, भोक्ता शरीर के वश ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय उसके सुख-दुःख का भोग सम्पादन करते हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥

भा०—(दशानाम्) उन दशों के बीच में (एकं) एक, ग्यारहवें वा दशों में से एक दशवें को (समानम्) सब के प्रति समान भाव से रहने वाला, विशेष ज्ञान-शक्ति से सम्पन्न, (कपिलम्) सब को कंपित करने वाला, सब के संचालक रूप से जानते हैं। (तम्) उसको (पार्याय क्रतवे) परम स्थान में प्राप्त कराने वाले कर्म—यज्ञादि करने के लिये वा परम पद मोक्ष में स्थित सर्वकर्त्ता प्रभु को प्राप्त करने के लिये (हिन्वन्ति) योगी जन प्रेरित करते हैं । वह पुरुष आत्मा है । (माता) जगत्-निर्मात्री प्रकृति माता के समान ही उसके जीवात्मा को (अवेनन्तम्) विशेष कामना न करने वाले उस पुरुष को (वक्षणासु सुधितं गर्भम्) गर्भ-धारण में समर्थ नाड़ियों के बीच सुख से धारण किये गर्भ के समान ही, मानो (तुषयन्ती बिभर्त्ति) अति प्रसन्न होकर अपने में धारण करती है ।

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥

भा०—वे (वीराः) दशों प्राण (पीवानं) स्थूल, सब के पोषक, वृद्धिशील (मेषं) आनन्द के प्रदाता आत्मा को (अपचन्त) परिपक्व करते हैं, और वे ही (नि-उप्ताः अक्षाः) देह में विशेष रूप से निक्षिप्त वा अंकुरित इन्द्रियगण (अनु) उस आत्मा के इच्छानुसार (दीवे) उसके रमण, क्रीड़ा आदि सुख के लिये (आसन्) होते हैं । और (अप्सु अन्तः) प्राणों या रुधिर-धाराओं के बीच में व्यापक होकर (द्वा) दो मुख्य प्राण, अपान (पवित्रवन्ता) पवित्र शरीर को शोधन करने वाले बल से युक्त होकर (पुनन्ता) शरीर को निरन्तर पवित्र करते हुए (अन्तः

चरन्ति) शरीर के कण २ में विचरते हैं । प्राण और अपान की सूक्ष्म गति शरीर के कण २ में है ।

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥ १८ ॥

भा०—(क्रोशनासः) उस प्रभु परमात्मा की पुकार करते हुए (विष्वञ्चः) विविध मार्गों में जाने वाले जीवगण (वि आयन्) विविध रूपों में इस लोक में आते हैं । (नेमः) उनमें एक वर्ग तो (पचाति) पकाता है अर्थात् एक तो तपस्या करके ज्ञान साधन आदि करता है और (अर्धः नहि पक्षत्) दूसरा वर्ग तप आदि नहीं करता, वह केवल भोग ही करता है। (अयं) यह (देवः) सर्व सुख दुःखादि कर्म फलों का दाता (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी, जगत् का उत्पादक प्रभु ही (मे तत् आह) मुझे उस परम पद का उपदेश करे । वस्तुतः (द्रवन्नः इत्) जिस प्रकार काष्ठ को अन्नवत् खाने वाला अग्नि ही (सर्पिः-अन्नः) द्रुत घृत को भक्षण करने वाला होकर (वनवत्) आहुति के किये पदार्थों को खा जाता है, उसी प्रकार जो जीवगण (द्रवन्नः) नाना वनस्पतियों को अन्न वत् भोग करता है और जो (सर्पिः-अन्नः) सर्पणशील इस जगत् या संसार के जन्म मरण रूप सुख-दुःखों का भोग करता है वही जीव (वनवत्) नाना ऐश्वर्यों का भोग करता है । और जो इस भोगमय जगत् से विरक्त हो जाता है वह फिर कर्म का परिपाक नहीं करता है ।

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् १९

भा०—मैं (अचक्रया) स्वयं कोई कार्य न करने वाले, जड़ (स्वधया) अपने आप ही जगत् को बनाते और चलाते हुए और (आरात्) बहुत दूर से, अनादिकाल से प्रवाह रूप से (ग्रामं वहमानः) इस भूत-संघ को

वहन करते हुए उस प्रभुको (अपश्यम्) देख रहा हूं । वह (नवीयान्) सबसे अधिक स्तुत्य, (अर्यः) सब का स्वामी परमेश्वर (सद्यः) सदा ही (शिश्ना प्रमिनानः) आघातकारी, बाधक दुःखदायी कारणों का नाश करता हुआ (जनानां युगा) अनेक जीवों के जोड़ों को (प्र सिसक्ति) उत्पन्न करता और मिलाता है । इस प्रकार वह प्रभु जीव-जगत् को चला रहा है ॥

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्रसेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य विनशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ।२०।१८॥

भा०—हे प्रभो ! परमेश्वर ! (मे प्रमरस्य) प्राणों को त्याग कर मृत्यु को प्राप्त होने वाले मेरे (एतौ) ये दोनों (गावौ) प्राण और-अपान दोनों, रथ में लगे दो बैलों या घोड़ों के समान (युक्तौ) देह में जुड़े हैं, उन दोनों को (मो सु प्रसेधीः) तू कभी दूर न कर । प्रत्युत (मुहुः इत्) बार २ (ममन्धि) जोड़ कर । (अस्य) इस जीवगण के (आपः) प्राणमय, सूक्ष्म शरीर (चित्) ही (अस्य अर्थं विनशन्ति) इसको प्राप्य लोक तक पहुंचाते हैं । और वह प्रभु (सूरः च) सूर्य के समान और (मर्कः) समस्त जगत् को शोधन करने वाला (उपरः) मेघ के समान सब पदार्थ देने वाला (बभूवान्) होता है । ममन्धि-मन स्तम्भे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
अव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥

भा०—(अयं) यह (यः) जो (वज्रः) सब कष्टों, सब अन्धकारों और दुःखों को वारण करने वाला, सब का संचालक बल (पुरु-धा) बहुत जीवों और लोकों को धारण करने में समर्थ (वि-वृत्तः) विविध प्रकार से वर्त्त रहा है, जगत् को चला रहा है, वह (सूर्यस्य) सूर्य के सदृश सर्वसंचालक, सर्वोत्पादक, (बृहतः) महान् प्रभु के (पुरीषात्) महान् परिपूर्ण, अविकल, अनन्त, अखंड सामर्थ्य और ऐश्वर्य से ही (अवः)

हमें प्राप्त होता है। (एना परः) इस लोक में दृष्ट प्रभु के उस ऐश्वर्य से भी उत्कृष्ट, परम (अन्यत्) दूसरा भी (श्रवः इत् अस्ति) श्रवण करने योग्य परमैश्वर्य है (तत्) उसको (अव्यथी) पीड़ा, दुःख, बाधादि से रहित (जरिमाणः) बन्धनों को जीर्ण करने और प्रभु की स्तुति करने वाले भक्त जन ही (तरन्ति) प्राप्त करते हैं, वे ही उस में तरते, विहरते हैं।

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

भा०—(वृक्षे वृक्षे) मानो धनुष २ में (नियता) बंधी (गौः मीमयत्) बाण फेंकने वाली डोर झनकारती है और (ततः) उससे (पुरुषादः वयः प्रपतान्) देह-पुर में बसे जीवों को खाने वाले तीर निकल रहे हैं। (अथ इदं विश्वम् भुवनं) इसी से यह समस्त उत्पन्न जगत् (भयाते) भय अनुभव करता है और (इन्द्राय सुन्वत्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु की पूजा करता और उसी (ऋषये च) सर्वद्रष्टा के लिये (शिक्षत्) सर्वस्व दान देता है। भगवान् का ऐसा भय है।

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥ २३ ॥

भा०—(देवानां माने) दिव्य भावों से युक्त देव, अग्नि, विद्युत् सूर्य, भूमि या वायु आदि और अध्यात्म में इन्द्रिय आदि की तन्मात्राओं के निर्माण करने में (प्रथमाः) सब से प्रथम कारण रूप प्रकृति के परमाणु (अतिष्ठन्) विद्यमान थे। (एषां कृन्तत्रात्) इन कारण परमाणुओं के छेदन भेदन अर्थात् संयोग विभाग से प्रथम (उपराः) मेघ सदृश तत्व जो परम कारण के अति समीपतम, कार्य रूप होते हैं वे (उद् आयन्) उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् (त्रयः) तीन तत्व अग्नि, विद्युत् और सूर्य (अनूपाः) अनुकूल होकर जीवों की रक्षा करने में समर्थ होकर

(पृथिवीम् तपन्ति) विस्तृत भूमि को संतापित करते हैं। जिन में से (द्वा) दो विद्युत् और सूर्यस्थ अग्नि, (बृबूकम्) जल को (वहतः) धारण करते हैं, और (द्वा पुरीषं वहतः) दो मेघस्थ विद्युत् और भूमि मिल कर सर्वपोषक अन्न को धारण करते हैं।

स ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते
॥ २४ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो! परमात्मन्! (ते) तेरी ही (सा जीवातुः) वह प्राणदात्री जीवनदायक शक्ति है (उत) और तू ही (तस्य विद्धि) उस जीव जगत् को जानता है। (स-मर्ये) मरणधर्मा प्राणियों से युक्त लोक के निमित्त तू (एतादृग्) ऐसे अपने प्राणदायक स्वरूप को (मा अपगूहः स्म) मत छिपा। हे मनुष्य! (अस्य निर्णिजः) इस विशुद्ध तत्व का (सः पादुः) वह ज्ञानमय, चेतनामय स्वरूप (न मुच्यते) कभी नहीं समाप्त होता है, वह (स्वः आविः कृणुते) अपना प्रकाश और ताप, प्रकट करता है और (बुसं गूहते) जल को जिस प्रकार सूर्य वाष्परूप से भूतल से ले लेता है उसी प्रकार प्रभु भी अपने (स्वः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करता है, (बुसं गूहते) कर्म बन्धन को नष्ट कर देता है। इस प्रकार उस प्रभु का (सः) वह (पादुः) ज्ञान-प्रकाश-व्यापार कभी समाप्त नहीं होता। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[२८]

इन्द्रवसुक्रयोः संवादः। ऐन्द्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ७, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ६ त्रिष्टुप्। ४, ५, १० विराट् त्रिष्टुप्। ६, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

विश्वो॒ ह्य१॒॑न्यो अ॒रिरा॑ज॒गाम॒ ममेदह॒ श्वशु॑रो॒ ना ज॑गाम ।
ज॒क्षीयाद्धाना उ॒त सोमं॑ पपीया॒त्स्वा॑शितः॒ पुन॒रस्तं॑ जगायात् ॥१॥

भा०—(अन्यः) मुख्य व्यक्ति से अतिरिक्त, (विश्वः) समस्त नगर में, देह में आत्मा के समान प्रवेश करने वाला (अरिः) स्वामी (आ जगाम) आजावे, (अह) और (मम इत्) यह समस्त मेरा है इस प्रकार अधिकार करने वाला (श्व-शुरः) अति शीघ्र, सर्व प्रथम प्राप्त होने वाला सर्वोपरि नायक (न आजगाम) नहीं आवे । यह अनुचित है । वस्तुतः वही (धानाः जक्षीयात्) राष्ट्र की समस्त धारक शक्तियों का अन्नवत् उपभोग करता है, (उत) और वही (सोमं) ऐश्वर्य का अन्न ओषधिवत् (पपीयात्) पान करता वा ऐश्वर्य का पालन करता है, और (सु-आशितः) राष्ट्र को सुखपूर्वक प्राप्त होकर ही (पुनः अस्तं जगायात्) अस्त अर्थात् उत्तम गृह या पद को प्राप्त होता है ।

(श्वशुरः)–शु आशु अश्नोति आप्नोति इति श्वशुरः । शू उपपदे अश्नोतेर्हरन् औणादिकः । शावशेराप्तौ । उ० १ । १४४ । अथवा वेदवचनात् सु-आशितः श्वशुरः । सुखेन शीघ्रं वा प्राप्यते इति श्वशुरः ।

स रोरु॑वद्वृष॒भस्ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ वर्ष्म॑न्तस्थौ॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः ।
विश्वे॑ष्वेनं वृ॒जने॑षु पामि॒ यो मे॑ कु॒क्षी सु॒तसो॑मः पृ॒णाति॑ ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (वृषभः) मेघ के समान प्रजागण पर सुखों और ऐश्वर्यों का वर्षण करने वाला (तिग्म-शृङ्गः) सूर्यवत् तीक्ष्ण शत्रु-नाशक साधनों से सम्पन्न होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) अति विस्तृत (वर्ष्मन्) उन्नत, उत्तम पद पर (आ तस्थौ) आदरपूर्वक विराजे । और प्रतिज्ञा करे कि (सुत-सोमः) ऐश्वर्य अन्नादि का उत्पन्न करने वाला (यः) जो प्रजावर्ग (मे कुक्षी) मेरे दोनों पार्श्वों पर

विद्यमान सैन्यों को ।(पृणाति) पालन करता है। मैं (एनं) उसको (विश्वेषु वृजनेषु) समस्त मार्गों और संग्रामों में (पामि) रक्षा करूं।

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम्।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! हे ऐश्वर्य सुखों के देने हारे ! (मन्दिनः) स्तुतिशील जन (ते) तेरे ही लिये (अद्रिणा) विदीर्ण न होने वाले, दृढ़ क्षात्र बल से (तूयान्) आशुगामी (सोमान्) वीर पुरुषों का (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं। (त्वम् एषाम्) तू इनको (पिबसि) पालन करता है। (ते) तेरे लिये ही वे (वृषभान्) बलवान् पुरुषों को (पचन्ति) परिपक्व, दृढ़ करते हैं, तथा उनको विस्तृत ज्ञानोपदेश करते, विद्या से सम्पन्न करते हैं। हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवन्! तू (हूयमानः) आदरपूर्वक बुलाया वा प्रार्थना किया जाकर (तेषां पृक्षेण) उनके ही स्नेह-संपर्क से (अत्सि) इस महान् ऐश्वर्य का भोग करता है, वा उनको प्राप्त होता है।

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

भा०—हे (जरितः) शत्रुओं को नाश करने वाले ! वा हे स्तुतिशील विद्वन् ! तू (इदं) यह सत्य सामर्थ्य (मे) मेरा ही जान (हि) कि (नद्यः) नदियां भी (प्रतीपं शापं वहन्ति) विपरीत दिशा को जल बहाने लगती हैं। उसी प्रकार यह राजा ही का सामर्थ्य है कि (नद्यः) स्तुतियुक्त, वा समृद्ध, वा गर्जती सेनाएं वा प्रजाएं भी (शापं प्रतीपं वहन्ति) ललकारते हुए शत्रु को भी उलटा भगा देती हैं। (लोपाशः = रोपाशः) तृणचारी पशु भी (प्रत्यञ्चम् सिंहं) आगे आते सिंह के समान पराक्रमी हिंसक को भी (अत्सात्) नष्ट करता है, और (क्रोष्टा) शृगालवत् रोने वाला निर्बल

भी (वराहं) शूकर के समान बलवान् को (कक्षात् निर्-अतक्त) मैदान से निकाल देता है । आत्मा, वा नायक में बड़ा भारी बल होता है ।

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्संस्य पाकंस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे विद्वन् ! (गृत्सस्य) विद्वान्, मेधावी, स्तुत्य और (तवसः) सर्वशक्तिमान् (ते मनीषाम्) तेरे मन की इच्छा और (एतत्) इस सब को (कथा अहम् आ चिकेतम्) मैं किस प्रकार जान सकता हूं । (त्वं) तू ही (विद्वान्) सर्वज्ञ (नः) हमें गुरुवत् (ऋतु-था) समय २ पर (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करता है । हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्यवन् ! तू (यम् अर्धं) जिस अंश को (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करता है वही (क्षेम्याः धूः) रक्षणकारी और धारण करने में समर्थ आश्रयवत् होता है । तेरा प्रत्येक उपदेशांश हमारा मङ्गल-जनक होता है ।

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ६।२०

भा०—(एव हि) इस प्रकार (तवसं मां) बलशाली मुझ को लोग (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं । (बृहतः मे) महान् मेरी (दिवः चित्) सूर्य और आकाश से भी अधिक (उत्तरा धूः) उत्कृष्ट धारण शक्ति है । मैं (पुरु सहस्रा) अनेकों, सहस्रों शत्रुओं को (साकं) एक साथ (नि शिशामि) विनाश कर सकता हूँ । (जनिता) उत्पादक प्रभु मुझे (अशत्रुं जजान) विना शत्रु का करे । इस प्रकार राजा बलवान्, स्तुत्य, शत्रुरहित होने का यत्न करे । इति विंशो वर्गः ॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (देवाः) दानशील, नाना सुखों की अभिलाषा करने वाले प्रजाजन (मां एव तवसं) मुझ बलवान् पुरुष को ही (कर्मन्-कर्मन्) प्रत्येक काम में (उग्रं) शत्रुओं को भय देने वाला और (वृषणम्) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला (जज्ञुः) जानें। मैं (वज्रेण महिना) बड़े शक्तिशाली बल वीर्य से (मन्दसानः) खूब प्रसन्न होकर (वृत्रं वधीम्) मेघ को सूर्यवत्, दुष्ट शत्रु का नाश करूं और (दाशुषे व्रजं अप वम्) दानशील प्रजा के लिये मार्ग खोल दूं।

देवास॑ आयन्पर॒शूँर॑बिभ्र॒न्वना॑ वृ॒श्चन्तो॑ अ॒भि वि॒ड्भिरा॑यन्।
नि सु॒द्र्वं१॒ दध॑तो व॒क्षणा॑सु॒ यत्रा॒ कृपी॑ट॒मनु॒ तद्द॑हन्ति ॥ ८ ॥

भा०—(देवासः) विजय की कामना करने वाले मनुष्य (आयन्) आवें, और (परशून् अबिभ्रन्) शत्रु-नाशक हथियारों को धारण करें। वे (वना वृश्चन्तः) वनों के समान शत्रुदलों को काटते हुए (विड्भिः) प्रजाओं सहित (अभि आयन्) मुकाबला करें और (वक्षणासु) अंगुलियों में (सुद्र्वं) वेग से दौड़ने वाले अश्व को (नि दधतः) नियम में रखते हुए (यत्र) जिस संग्राम में (कृपीटम् अनु) अपने सामर्थ्य के अनुसार (तत्) उस शत्रु-सैन्य को (दहन्ति) दग्ध करते हैं।

श॒शः क्षु॒रं प्र॒त्यञ्चं॑ जगा॒राद्रिं॑ लो॒गेन॒ व्य॑भेदमा॒रात्।
बृ॒हन्तं॑ चिदृह॒ते र॑न्धयानि॒ वय॑द्व॒त्सो वृ॑ष॒भं शूशु॑वानः ॥ ९ ॥

भा०—(शशः) मृग के समान तीक्ष्ण गति से जाने वाला, वीर (प्रत्यञ्चं क्षुरं) मुकाबले पर आने वाले छुरे, शस्त्रादि को भी (जगार) सहर्ष खा सकता है। और मैं (लोगेन) जन समूह के बल पर वा (लोगेन = रोगेण) शत्रु को भग्न करने वाले सैन्य बल वा विशेष शस्त्र से, प्रकाश वा विद्युत् से (अद्रिं) मेघ वा पर्वत के तुल्य विशाल शत्रु को भी (आरात् वि अभेदम्) विशेष रूप से छिन्न भिन्न करूं। और (ऋहते)

बढ़ाने वाले स्वामी के लिये मैं तदधीन जन (बृहन्तं) बड़े भारी शत्रु को भी (रन्धयानि) वश करूं। (वत्सः) बच्चा भी (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (वृषभं वयत्) बड़े बैल से टक्कर लेता है। यह वसुक्र का वचन है। वसु अर्थात् धन के द्वारा क्रीत वेतन भोगी, अधीन राजपुरुष राजा से ऐसा कहता है।

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

भा०—वह नियुक्त बलवान् पुरुष (तस्मै) उस अपने स्वामी के लिये (सुपर्णः) उत्तम २ पालन और वेग से जाने के उत्तम रथ विमान आदि साधनों से सम्पन्न होकर बाज़ के समान (इत्था) इस प्रकार (नखम्) बांधने योग्य शस्त्र को (आसिषाय) ऐसे बांध लेता है जैसे (अवरुद्धः सिंहः) रुका हुआ सिंह (परिपदं न) अपना पंजा आक्रमण के लिये सदा तैयार रखता है। अर्थात् धन से क्रीत वेतन भोगी पुरुष अपने स्वामी के लिये सदा हथियार-बन्द होकर शेर के समान तैयार रहे। जिस प्रकार (निरुद्धः महिषः चित्) रुका हुआ भैंसा (तर्ष्यावान्) प्यासा अपने सींगों को सदा मारने को तैयार रखता है। (तस्मै) उसी ऐश्वर्यवान् के लिये (गोधाः) बाणादि फेंकने वाली धनुष डोरी को धारण करने वाली, चिल्ला सदा चढ़ाये सैन्य वा सैनिक (अयथं) असाधारण तौर पर (एतत् कर्षत्) उस धनुष को खैंचता है। अर्थात् बड़े पराक्रम से युद्ध करता है।

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

भा०—(ये) जो (अन्नैः) अन्नों के कारण (ब्रह्मणः प्रतिपीयन्ति) वेदज्ञ विद्वानों का नाश करते हैं और जो (अव-सृष्टान्) छोड़े

गये (सिमः उक्षणः) वीर्य सेचन में समर्थ समस्त सांड़ों को भी (अदन्ति) खाजाते हैं, और (स्वयं तन्वः) अपने ही शरीर के (बलानि श्रृणानाः) बलों को नाश करते हैं (तेभ्यः) उनके नाश करने के लिये (गोधाः) भूमि या धनुष की डोर को धारण करने वाला वा चर्मधारी लोग (अयथं कर्षत्) खूब धनुष का आकर्षण करे खूब पराक्रम करे।

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१॥

भा०—(ये) जो (उक्थैः) उत्तम वचनों से (सोमे तन्वः हिन्विरे) उत्तम ओषधिगण के आधार पर अपने शरीरों को बढ़ाते, पुष्ट करते हैं (एते) वे (शमीभिः) शान्तिदायक उत्तम कर्मों में (सुशमी अभूवन्) उत्तम कर्मवान् पुरुष हो जाते हैं। हे वीर पुरुष ! (वीरः) वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (नृवतः) उत्तम नायक के समान (नः उप वदन्) हमें उपदेश और आज्ञा देता हुआ (वाजान्) नाना ज्ञानों, बलों, ऐश्वर्यों और संग्रामों को (उप माहि) कर और (दिवि) भूमि पर (श्रवः नाम दधिषे) श्रवण करने योग्य नाम, कीर्त्ति अन्न और शत्रु को नमाने वाला बल धारण कर।

इस सूक्त में—'वसुक्र' वह पुरुष है जो इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् पुरुष के 'वसु' धन द्वारा अपने को बेच देता है, वह उसका ही भृत्य आदि वेतनभोगी होने से 'ऐन्द्र वसुक्र' कहाता है। ऐसे व्यक्तियों के बने सैन्य वा राष्ट्र को पालन करने वाली व्यवस्था 'वसुक्र-पत्नी' है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२६]

वसुक्र ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

भा०—(वने वायः स्तोमः न) 'वन' अर्थात् वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षियों का दल (चाकन्) नाना फल चाहता हुआ (भुरणौ) अपने धारक पोषक पक्षों को (अजीगः) संचालित करता है, उसी प्रकार (शुचिः) शुद्ध, स्वच्छ आचारवान् धार्मिक, (वायः स्तोमः) वेग से जाने वाले, ज्ञान और रक्षा करने वाले जनों का उत्तम दल, (चाकन्) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ (वने) सेवनीय राष्ट्र में (नि अधायि) स्थापित किया जावे। और हे (भुरणौ) राष्ट्र के पालने वाले राजा और अमात्य जनो! वह सब वीर और विद्वानों का दल (वां अजीगः) तुम दोनों को प्राप्त हो। (यस्य इत्) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता सेनापति (पुरु-दिनेषु) बहुत दिनों तक (होता) स्वीकार करने वाला और (नृणां नर्यः) मनुष्यों के बीच नेता पद के योग्य, (नृतमः) सब नायकों में श्रेष्ठ, और (क्षपावान्) शत्रुओं को विनाश करने वाली सेना का स्वामी हो।

अत्र मन्त्रे 'वायो' इत्यत्र 'वा। यः।' इति पदपाठः शाकल्याभिमतः। न यास्काभिमतः। 'वा। यः' इति च्छेदे अधायि इति यद्वृत्तान्निघाताभाव आपद्यते, सचानिष्टः। असुसमासश्चार्थो भवति।

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

भा०—(यः) जो तू (त्रि-शोकः) तीन ज्योतियों से युक्त, वा सूर्यवत् तीनों लोकों में व्याप्त प्रकाश वाला, तेजस्वी, मन्त्र, बल और धन तीनों से चमकने वाला होकर (अनु) अपने पीछे (शतं नॄन् अवहन्) सौ नायकों को लेकर चलता हुआ, (कुत्सेन) शत्रु को काटने में समर्थ

शस्त्र बल से (रथः) महारथ हाकर (ससवान्) शत्रुओं का अन्त कर देता है उस (नृणां नृतमस्य) नायकों में उत्तम नायक (ते) तेरे (अस्याः उषसः) इस शत्रुदाहक सेना और (अपरस्याः) और दूसरी सेना के (नृतौ) संचालन करने में हम (प्र प्र स्याम) खूब २ आगे बढ़ें। अथवा, उस तेरे शासन में (अस्याः अपरस्याः उषसः) इस दिन और अन्य दिनों भी खूब २ बढ़ें।

कस्ते मद॑ इन्द्र रन्त्यो॑ भूद्दुरो॒ गिरो॑ अ॒भ्यु१॒ग्रो वि धा॑व।
कद्वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा मनी॒षा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (कः मदः) कौन सा ह र्वा तृप्तिकारक पदार्थ (रन्त्यः) तुझे अधिक सुख देने वाला है। तू (उग्रः) बलवान् होकर (दुरः द्वारों को (अभि धाव) लक्ष्य कर वेग से जा। और (गिरः वि धाव) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त कर। (वाहः) सुख-समृद्धि को प्राप्त कराने वाला तू (कत् अर्वाक्) कब हमारे सन्मुख हा और (मा मनीषा उप कत्) उत्तम मन की अभिलाषा मुझे कब पूर्ण होगी, और मैं (उपमं) अपने समीप स्थित हुए (त्वा) तुझे (कद्) कब (अन्नैः) अन्नों द्वारा स्वामी को जैसे वैसे (राधः आ शक्याम्) आराधना द्वारा तुझे प्रसन्न कर सकूंगा ?

कद् द्यु॒म्नमि॑न्द्र त्वाव॑तो॒ नॄन्कया॑ धि॒या क॑रसे॒ कन्न॒ आग॑न्।
मि॒त्रो न स॒त्य उ॑रुगाय भृ॒त्या अन्ने॑ समस्य॒ यदस॑न्मनी॒षाः॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (कत् उ द्युम्नम्) वह तेजोमय ऐश्वर्य कब होगा ? और तू (कया धिया) किस प्रकार के कर्म और बुद्धि से (नॄन् त्वावतः करसे) सब मनुष्यों, नायकों वा जीवों को अपने जैसा सुखी, करता है। और तू (नः कत् आगन्) हमें कब प्राप्त होगा ? हे (उरु-गाय) बहुत कीर्त्ति वाले ! (समस्य भृत्यै) समस्त जगत् के

भरण पोषण के लिये (अन्ने) अन्न उत्पन्न करने और देने में (यत्) जो तेरी (मनीषाः असन्) चेष्टाएं हैं इससे प्रतीत होता है कि (सत्यः मित्रः न) तू सब का सच्चा, स्नेही मित्र के समान है।

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥२२॥

भा०—हे (तुवि-जात) बहुत से लोकों को उत्पन्न करने वाले! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ये) जो (जनिधाः-इव) पत्नी के धारण पोषण करने वाले गृहस्थों के समान (ते अस्य कामं ग्मन्) इस साक्षात् तेरे कामना योग्य वा कान्तियुक्त उज्ज्वल स्वरूप को प्राप्त होते, जान लेते हैं, और (ये) जो (नरः) मनुष्य (तेः पूर्वीः गिरः) तेरी ज्ञानपूर्ण सनातन वाणियों को (अन्नैः) अन्नों सहित (प्रति-शिक्षन्ति) अन्यों को देते और सिखाते हैं उनको तू (सूरः) सूर्य के समान सर्वप्रेरक होकर (अर्थं न) धन को धनस्वामी के तुल्य (अर्थं पारं) प्राप्तव्य परम पार मोक्ष पद को (प्रेरय) प्राप्त करा। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (द्यौः पृथिवी) आकाश वा सूर्य और भूमि दोनों (ते) तेरे (काव्येन मज्मना) क्रान्तदर्शी, विद्वानों द्वारा जानने योग्य बल से (सु-मिते) उत्तम रीति से बनी और (मात्रे नु) अन्य नाना लोकों और जीवों को माता के तुल्य बनाने वाली हैं। (ते) तेरे (सुतासः) बनाये हुए पदार्थ (घृत-वन्तः) घी से युक्त खाद्य पदार्थों के समान ही (घृत-वन्तः) जल और तेज से युक्त होकर (वराय स्वाद्मन् भवन्तु) श्रेष्ठ पुरुष के लिये सुख से भोग करने योग्य हों और (मधूनि) जल और मधुर अन्नादि पदार्थ (पीतये भवन्तु) पान करने के लिये हों।

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् के लिये (मध्वः पूर्णम् अमत्रम्) मधुर अन्न, मधुपर्क आदि पदार्थों से भरे पात्र को (आ असिचन्) आदर से प्रदान करें। (सः हि सत्य-राधाः) वह सत्य ज्ञान के धन से पूर्ण है। (सः नर्यः) वह सब मनुष्यों का हितकारी (पृथिव्याः वरिमन्) पृथिवी के बड़े भारी देश मे (क्रत्वा पौंस्यैः च) अपने ज्ञान, कर्म और पराक्रमों से (आ वावृधे, अभि वावृधे) सब ओर बढ़े और अपने शत्रुओं से भी बढ़े।

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८।२३।२

भा०—(सु-ओजाः) उत्तम पराक्रमी, बलवान्, सामर्थ्यवान्, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष (पृतनाः वि आनट्) स्व और पर समस्त मनुष्यों, सेनाओं वा संग्रामों को विशेष रूप से व्याप लेता है, (पूर्वीः) समस्त प्रजाएं (अस्मै सख्याय) इस के मित्र-भाव के लिये (आ यतन्ते) सब प्रकार से यत्न करती हैं। हे ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! तू (यं) जिस (रथं) रथ के समान राष्ट्र को (भद्रया) कल्याणकारिणी, प्रजा को सुखदायी (सु-मत्या) शुभमति से (चोदयासे) प्रेरित कर सके उस पर (पृतनासु) प्रजाओं और संग्रामों के बीच (आ तिष्ठ) विराज। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[३०]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—आप अपान्नपाद्वा ॥ छन्दः—१, ३, ६, ११, १२, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ८, १४ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र दे॑व॒त्रा ब्रह्म॑णे गा॒तुरे॑त्व॒पो अच्छा॒ मन॑सो॒ न प्रयु॑क्ति ।
म॒हीं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धा॒सिं पृ॑थु॒ज्रय॑से रीरधा सुवृ॒क्तिम् ॥१॥

भा०—(मनसः प्रयुक्ति न) मन के उत्तम योग के समान (ब्रह्मणे गातुः) 'ब्रह्म' ब्राह्मण वा परमेश्वर की वाणी, (अपः) आप्त प्रजाजनों को (देव-त्रा) विद्वान् अभिलाषी जनों द्वारा, (अच्छ प्र एतु) साक्षात् अच्छी प्रकार आवे, प्राप्त हो। (मित्रस्य वरुणस्य) सर्वस्नेही सर्वदुःख-वारक प्रभु की (सुवृक्तिम् महीं धासिं) सुखप्रद, महती, पूज्य अन्नवत् धारक-पोषक शक्ति को (पृथुज्रयसे) बड़े बलशाली के लिये हा (रीरधः) अपने वश कर। मित्रतापूर्वक दिये प्रभु के अन्नादि ऐश्वर्य का प्रयोग उसी के सत्कार्य में कर।

अध्व॑र्यवो ह॒विष्म॑न्तो॒ हि भू॒ताच्छा॒प इ॑तोश॒तीरु॑शन्तः ।
अव॒ याश्चष्टे॑ अरु॒णः सु॑प॒र्णस्तमास्य॑ध्वमू॒र्मिम॒द्या सु॑हस्ताः ॥२॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) हिंसारहित यज्ञ की इच्छा करने वा अपने नाश की इच्छा न करने वाले लोगो ! आप लोग (हविष्मन्तः हि भूत) उत्तम अन्न, हविष् से सम्पन्न होवो। स्वयं (उशन्तः) नाना काम्य सुखों की कामना करते हुए (उशतीः) उसी प्रकार के सुखों वा तुमको चाहने वाली (अपः) आप्त पत्नियों को (अच्छ इत) प्राप्त करो। (अरुणः) कान्तिमान्, तेजस्वी (सु-पर्णः) उत्तम पालक, वा उत्तम रथादि साधनों वाला, (याः अव चष्टे) जिनको विनय या प्रेम से देखता है, हे (सु-हस्ताः) उत्तम क्रियाकुशल पुरुषो ! (अद्य) आज (तम् ऊर्मिम्) उस तरंग के समान उन्नत पुरुष को लक्ष्य कर उनके साथ मिल कर (आ अस्यध्वम्) हवि आदि का आहुति द्वारा प्रक्षेप करो। अपः इति दारावत् बहुवचनम्। समान गुण कर्म स्वभाव तथा परस्पर प्रीति युक्त स्त्री पुरुषों को मिला कर गृहस्थ बनावें। राजा के पक्ष में—जो वीर

बाज़ के तुल्य आक्रान्ता (याः) जिन शत्रु सेनाओं को (अव चष्ट) तिरस्कार-बुद्धि से देखे (तम् ऊर्मिम् आ) उस उन्नत पुरुष का आश्रय लेकर (ताः अस्यध्वम्) उन पर शस्त्रादि प्रक्षेप करें, उन शत्रु सेनाओं को मार गिरावें।

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम्।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) अध्वर, यज्ञ वा अपनी रक्षा वा अविनाश चाहने वाले जनो ! आप लोग (अपः इत) आप्त प्रजाजनों का प्राप्त करो और (समुद्रम् इत) जलों के रक्षक समुद्र के समान उनके आश्रय रूप महापुरुष को भी प्राप्त करो। (सः) वह (अद्य) आज (वः) आप लोगों को (सु-पूतं) उत्तम पवित्र (ऊर्मिम्) जलतरंग वा मेघ-मयी मानसून के समान उत्साहमय जीवन से पूर्णभाव (ददत्) प्रदान करे, (तस्मै) उसके लिये (मधुमन्तं सोमं सुनोत) मधुर जल से युक्त ओषधिवत् सुखप्रद पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य का पद प्राप्त कराओ। और उस (अपां नपातम्) आप्त प्रजाजनों को एकत्र बांधने और धर्म मर्यादा से न गिरने देने वाले रक्षक को (हविषा यजध्वम्) उत्तम अन्न, कर और वचन से सत्कृत करो।

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अनिध्मः) विना काठ के (अप्सु अन्तः) जलों या अन्तरिक्ष के बीच विद्युत् के समान (दीदयत्) प्रजाओं के बीच प्रकाशित होता है (विप्रासः यं) विद्वान्, बुद्धिमान् जन जिसको (अध्वरेषु ईडते) यज्ञों और प्रजा के रक्षणादि कार्यों में चाहते और जिसकी स्तुति करते हैं वह (अपां नपात्) आप्त जनों को एकत्र बांधने वाला पुरुष मेघ के समान (मधुमतीः अपः) मधुर जलों से युक्त धाराओं के

समान ही मधुर अन्नादि से समृद्ध आप्त प्रजाओं का प्रदान करे, (याभिः) जिन से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा सूर्य के समान तेजस्वी होकर (वीर्याय चावृधे) वीर्य की वृद्धि के लिये और बढ़े।

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात्
॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(कल्याणीभिः युवतिभिः मर्यः न) कल्याणी, सुखदायक जवान धर्मपत्नी के साथ जिस प्रकार युवा पुरुष (मोदते हर्षते च) प्रसन्न होता और हर्ष अनुभव करता है, उसी प्रकार (याभिः) जिन (कल्याणीभिः) कल्याणकारिणी, आप्त प्रजाजनों के साथ (सोमः) उत्तम शासक (मोदते) आनन्द अनुभव करे और (हर्षते) हर्ष लाभ करे, हे (अध्वर्यो) प्रजापालन रूप कार्य के संचालक! तू (ताः अपः) उन आप्त जनों को (अच्छ परा इहि) दूर से भी प्राप्त कर। (यत् आ-सिञ्चाः) जिस प्रकार जलों से वृक्ष को सेचन किया जाता है और वृक्ष बढ़ता है, उन ओषधियों वा जलों से वृक्ष पवित्र होजाता है उसी प्रकार तू भी (यत् आ-सिञ्चाः) जिन आप्त जनों से उस राजा की वृद्धि करेगा उनको तू भी (ओषधीभिः) ओषधिवत् विशेष तेज धारण करने वाली प्रजाओं द्वारा (पुनीतात्) पवित्र कर, स्वच्छ आचारवान् बना, वा अभिषेक कर।

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ६ ॥

भा०—(यूने) युवा पुरुष को प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार (युवतयः नमन्त) युवती स्त्रियें झुकती हैं, (यत्) और जिस प्रकार (उशत्) कामनावान् पुरुष (उशतीः ईम् अच्छ एति) कामना वाली दाराओं को प्राप्त करता है; उसी प्रकार (अध्वर्युः)

प्रजाओं का हिंसन या पीड़न चाहने वाले जन (मनसा) मन से (देवीः) उत्तम आप्त प्रजाओं को (सं जानते) विचारते और (धिषणां संचिकित्रे) बुद्धिपूर्वक मिल कर विवेक करते हैं उसी प्रकार अध्वर अर्थात् गृहस्थ यज्ञ के इच्छुक जन मन और कर्म से प्राप्त देवियों को मन से चाहें और उनके साथ मिल कर गृह कार्यों को विचारा करें ।

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! जलवत् शान्तिदायक सहयोगी जनो वा व्यापक गुणों से युक्त प्रभो ! (यः) जो (वृताभ्यः) वरण किये गये (वः) जो आपके लिये (लोकं अकृणोत्) स्थान वा गृह बनाता है, (यः वः) जो आप लोगों को (मह्याः अभिशस्तेः) बड़ी निंदा और आक्रमण, कष्टादि से (अमुञ्चत्) सब प्रकार से मुक्त करता है, (तस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी वा आत्मा के लिये (देव-मादनं) सब उत्तम जनों, विद्वानों वा प्राणगण को सुखी, हर्षित करने वाले (मधुमन्तं ऊर्मिम्) मधुर मधु से युक्त उत्तम तरंग या उत्साह वा अन्न-जल से युक्त उत्तम पदार्थ (प्र-हिणोतन) प्रदान करो ।

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८ ॥

भा०—हे (सिन्धवः) नदीवत् बहने वाली ! वेग से जाने वाली, एवं नाना सम्बन्धों से बांधने वाली प्रजाओ ! जिस प्रकार नदियें या जल गण अपने जलमय सार सूर्य या समुद्र को प्रदान करती हैं उसी प्रकार (वः) आप लोगों का, (यः) जो (मध्वः) अन्नादि का (उत्सः) उत्तम भाग है, (उत मधुमन्तम् ऊर्मिम्) और मधुर गुणयुक्त

उत्तम भाग को (अस्मै प्र हिनोत) इसके लिये प्राप्त कराओ । (रेवतीः) हे उत्तम ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओ ! (अध्वरेषु) यज्ञों, हिंसा रहित प्रजा पालनादि कर्मों तथा दृढ़ कार्यों में (ईड्यम्) स्तुति योग्य (घृत-पृष्ठम्) अन्न जल, वा स्नेह से परिपुष्ट इसको प्राप्त होकर (मे हवं शृणुत) मेरा ग्राह्य वचन श्रवण करो ।

तं सिन्ध॑वो मत्स॒रमि॑न्द्र॒पान॑मू॒र्मिं प्र हे॑त॒ य उ॒भे इय॑र्ति ।
म॒द॒च्युत॑मौशा॒नं न॑भो॒जां परि॑ त्रि॒तन्तुं॑ वि॒चर॑न्त॒मुत्स॑म् ॥ ९ ॥

भा०—(सिन्धवः मत्सरम् इन्द्रपानम् ऊर्मि प्र हिन्वन्ति) जिस प्रकार नदियां आनन्द-संचारक, सूर्य द्वारा पान करने योग्य ऊर्ध्वगामी जल को बढ़ाती हैं उसी प्रकार हे (सिन्धवः) वेग से जाने वाले सैन्यादि प्रजाओ ! (तं) उस (मत्सरम्) हर्षदायक, (इन्द्र-पानं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालक, (ऊर्मिम्) उन्नत, आज्ञापक पुरुष को (प्र हेत) खूब बढ़ाओ, (यः) जो (उभे) राजा और प्रजा वर्गों को (इयर्त्ति) सन्मार्ग में चलाता है, और (मद-च्युतम्) हर्षजनक (औशानं) समृद्धि की कामना करते हुए (नभः-जाम्) आकाश में सूर्यवत् उदय होने वाले (त्रि-तन्तुम्) तीन तन्तुओं वाले, यज्ञोपवीती दीक्षित और (उत्सम्) उत्तम मार्ग पर चलने वाले, (परि वि-चरन्तं) सर्वोपरि विचरने वाले पूज्य को (प्र हेत) बढ़ाओ । (२) अध्यात्म में महान् आत्मा, प्रकृति के तीन गुणों को धारण करता, वह सर्वत्र व्यापता है ।

आ॒व॒र्वृ॑तती॒रध॒ नु द्वि॒धारा॑ गोषु॒युधो॒ न नि॑य॒वं चर॑न्तीः ।
ऋषे॒ जनि॑त्री॒र्भुव॑नस्य॒ पत्नी॑र॒पो व॑न्दस्व स॒वृध॑ः सयो॑नीः १०।२५

भा०—हे (ऋषे) यथार्थ ज्ञान के दर्शन कराने हारे ! तू (भुवनस्य) इस संसार को (जनित्रीः) उत्पन्न करने वाली और (पत्नीः) पालने वाला, (स-वृधः) समान रूप से बढ़ने वाली (स-योनीः) एक समान

या गृह में रहने वाली (अपः) प्रकृति की परमाणु रूप मूलकारण रूप जलों के तुल्य सृष्टि के प्रारम्भक, माताओं को (वन्दस्व) आदर से वर्णन कर, उनका अन्यों को उपदेश कर। जो (आवर्वृततीः) आवर्त्त रूप से संसार को उत्पन्न करती हैं, सर्वत्र व्यापती हैं। (अध नु) और (द्वि-धाराः) जिस प्रकार जल की धारा फट कर दोनों धाराओं को पूर्ण करती हैं, दोनों तटों को धारण करती हैं उसी प्रकार प्रकृति के उत्पादक मूल परमाणु भी (द्वि-धाराः) समष्टि व्यष्टि दोनों को धारण करते हैं उसी प्रकार स्त्रियें भी दोनों कुलों को वा सन्तान और पति दोनों को धारण करती हैं। (गोषु-युधः) मेघ की जल की धाराएं जैसे भूमियों पर आ पड़ती हैं वैसे प्राकृतिक परमाणु भी रश्मियों या गतिदायक शक्तियों के बल पर परस्पर मिलने वाली, (नियवं चरन्तीः) नियम से मेल संयोग करती हैं। उसी प्रकार स्त्रियें भी (गोषु-युधः) वाणीमात्र से प्रहार करने वाली, पतियों से मिल कर रहने वाली होती हैं। राष्ट्र में—वे ही उत्तम सेनाएं 'आप', हैं, वे राष्ट्र की पालक, होने से 'पत्नी' हैं। प्रजा राजा दोनों की रक्षा करती हैं, मिल कर विचरती हैं, भूमियों के विजयार्थ लड़ती हैं।

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

भा०—हे (आपः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसा रहित यज्ञ को वा अहिंसनीय प्रमुख पुरुष को (देव-यज्या) विद्वानों और मनुष्यों के आदर और संगति के लिये (हिनोत) प्रोत्साहित करो। और (धनानाम् सनये) हमें धन के प्राप्त करने के लिये (ब्रह्म) वेद का (हिनोत) अच्छी प्रकार उपदेश करो। हे (आपः) आप्त प्रजाजनो! (ऋतस्य योगे) जल के योग होने पर जिस प्रकार (ऊधः) मेघ या अन्तरिक्ष के प्रतिबन्ध दूर हो जाते हैं और पानी बरसता है उसी प्रकार आप लोग भी (ऋतस्य योगे) अन्न, ज्ञान आदि के प्राप्त होने पर (ऊधः

वि स्यध्वम्) उत्तम ज्ञानादि के धारक अन्तःकरण को खोलो, दिल खोल कर सत्य ज्ञान का उपदेश करो। और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (श्रुष्टीवरीः भूतन) वृष्टि-जल-धाराओं के तुल्य ही ज्ञान-सुखदायक होवो।

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् १२

भा०—हे (आपः) आप्त प्रजाजनो ! एवं प्राप्त करने योग्य (रेवतीः) समृद्ध गृह-लक्ष्मियो ! आप लोग (वस्वः हि क्षयथः) ऐश्वर्य की स्वामिनी होवो। और (क्रतुम् भद्रं) उत्तम सुखप्रद कर्म यज्ञ और ज्ञान और (अमृतं च) अन्न, जल, दीर्घ जीवन और सन्तान को (विभृथ) उत्पन्न और धारण करो। आप लोग (स्वपत्यस्य रायः) उत्तम सन्तान और ऐश्वर्य का (पत्नी) पालन करने वाली होवो, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त विदुषी भी वेदवाणी के समान ही (गृणते) विद्वान् को (तत् वयः) वह उत्तम अन्नवत् ज्ञान (धात्) प्रदान करे।

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ॥ १३ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त स्त्रीजनो ! (यद्) जब (पयांसि) जलों, पुष्टिकारक दुग्धों और (मधूनि) अन्नों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई और (अध्वर्युभिः) हिंसारहित यज्ञ वा प्रजापालन के इच्छुक विद्वानों के साथ (मनसा संविदाना) चित्त से उत्तम ज्ञान लाभ करती हुई और (इन्द्राय) अपने स्वामी पुरुष के लिये (सु-सुतं सोमं भरन्तीः) उत्तम सुस्नात वीर्यवान् पुरुष वा पुत्र को धारण करती हुई को (प्र अदृश्रम्) अच्छी प्रकार देखता हूं तो आप की स्तुति करता हूं।

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥ १३ ॥

भा०—(इमाः रेवतीः) ये उत्तम ऐश्वर्य से समृद्ध, (जीव-धन्याः) जीवित पुत्र, पति, पशु, आदि जीवों को धन समझने वाली, वा उनको पालन पोषण करने वाली, स्त्रियें (आ अग्मन्) आवें। हे (अध्वर्युः) यज्ञकर्त्ताजनो ! हे (सखायः) मित्रो ! (अपां नप्त्रा सं-विदानासः) आप्त दाराओं को अपने साथ बांधने वाले पति से संमन्त्रणा करती हुई और (सोम्यासः) उत्तम सोम, पुरुष के योग्य (एनाः) उनको (बर्हिषि नि धत्तन) उत्तम आसन पर बिठाओ। (२) राष्ट्र में उत्तम शासक राज-सदस्य भी समृद्ध राजा के प्रिय प्रजाओं को उत्तम आसन पर बिठावें, उत्तम शासित राष्ट्र में रखें और उनको पुष्ट करें।

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या॥१५॥२६

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञकर्त्ता जनो ! (उशतीः आपः अग्मन्) कामना करती हुई महिला जन आवें तो और (देवयन्तीः) पति की चाहना करती हुई (अध्वरे) यज्ञ में (इदं बर्हिः नि असदन्) इस आसन पर विराजें। आप लोग (सोमम् इन्द्राय सुनुत) सोम, ऐश्वर्य-युक्त जन को 'इन्द्र' अर्थात् स्वामीभाव के लिये प्रेरित करो, जिससे (वः) आप लोगों की (देव-यज्या) विद्वानों का आदर और उनकी संगति, तथा ईश्वरोपासना आदि (सुशका अभूत् उ) सुख से सम्पन्न हो। (२) राष्ट्र में स्त्री पुरुषों को उत्तम अधिकार प्राप्त हों और बलवान् पुरुष को इन्द्र पद के लिये चुनो जिससे विद्वानों के उपासना आदि कर्म सुख से हों। इति षड्विंशो वर्गः॥

[३१]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ५ ७, ११ त्रिष्टुप्। ३, १० विराट् त्रिष्टुप्। ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥ १ ॥

भा०—(देवानां शंसः) ज्ञान की कामना करने वाले मनुष्यों को उपदेश करने वाला विद्वान् आचार्य, उपदेष्टा (नः आवेतु) हमें प्राप्त हो और (यजत्रः) पूजनीय पुरुष (विश्वेभिः तुरैः) सब शत्रुनाशक उपायों सहित (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (उप वेतु) आवे । (तेभिः) उनसे ही (वयम्) हम (सु-सखायः भवेम) उत्तम मित्र होकर रहें । और (विश्वा दुरिता) समस्त दुःखदायी, बुरे आचारणों, पापों को (तरन्तः स्याम) पार करते रहें ।

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥ २ ॥

भा०—(मर्त्तः) मनुष्य (परि चित् द्रविणं) चारों ओर दौड़ने वाले मन को धन के तुल्य (ममन्यात्) स्तम्भित करे, वश करे और (नमसा) विनय, सत्कारपूर्वक (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के मार्ग से (आ विवासेत्) बड़ों की परिचर्या शुश्रूषा करे । (उत) और (स्वेन क्रतुना) अपने उत्तम ज्ञान से (सं वदेत) सम्यक् प्रकार बोले, ज्ञानपूर्वक भाषण करे । और (श्रेयांसं दक्षं) सर्वश्रेष्ठ कर्म को (मनसा जगृभ्यात्) मन से स्वीकार करे ।

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानाम भूम ॥३॥

भा०—(धीतिः) आनन्दप्रद पानयोग्य सुधा के समान (धीतिः अधायि) ध्यान धारणा को भी धारण करना चाहिये । (तीर्थेन) तीर्थ में (अंशाः) जलों के समान तारक प्रभु या गुरु के आश्रय (अंशाः अससृग्रम्) प्राप्त होने वाले शरणागत जीव शिष्यों के समान शरण आते

हैं। (ऊमाः दस्मं उप यन्ति) देश के रक्षक जनों के समान जीवगण दुःखों और दुष्टों के नाशक स्वामी को प्राप्त होते हैं। हम लोग (सुवितस्य शूषं) सुख से प्राप्त होने योग्य प्रभु वा सदाचार के सुख को (अभि आनश्म) सब ओर से प्राप्त करें। और हम (अमृतानाम् नवेदसः अभूम) मोक्ष-सुखों के प्राप्त करने वाले हों।

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

भा०—(यस्मै) जिस जीवगण के उपकार के लिये (देवः सविता) दानशील, ज्योतिर्मय, सूर्यवत् तेजस्वी, सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (जजान) जगत् के नाना पदार्थ उत्पन्न करता है (स्व-पतिः) समस्त धनों और स्वकीयों का पालक (दमूनाः) दमनशील, दान्तचित्त, (नित्यः) नित्य सनातन प्रभु (अस्मै चाकन्यात्) उसे सदा चाहता है। (सः) वह (भगः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (अर्यमा) न्यायकारी होकर (ईम्) इसके प्रति (गोभिः) वेद वाणियों से (अनज्यात्) सब ज्ञान प्रकाशित करता है। (उत) और (अस्मै) उसको (चारु) अच्छी प्रकार (छदयत् उत स्यात्) आच्छादन करने वाला, रक्षक भी होता है।

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन्।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः॥५।२७

भा०—(यत् ह) और जब (क्षुमन्तः) उत्तम उपदेश योग्य ज्ञान वाले, विद्वान् जन (शवसा) ज्ञान बल से युक्त होकर (सम् आयन्) संगत हों, प्राप्त हों, तब (उषसां क्षाः इव) प्रभात वेलाओं के आने पर जिस प्रकार भूमि प्रकट होती है और उनके सन्मुख होती है उसी प्रकार उन ज्ञान वालों के अभिमुख (इयं क्षाः भूयाः) यह भूमि-

वासिनी प्रजा भी उनके समक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये हो। और (अस्य जरितुः) इस अज्ञाननाशक उपदेष्टा के (स्तुतिं) उत्तम उपदेश को (भिक्षमाणाः) चाहते रहें और (शग्मासः) सुखप्रद (वाजाः) बल, अन्नादि ऐश्वर्य (नः आ उप यन्तु) हमें प्राप्त हों। इति सप्तविंशो वर्गः॥

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६॥

भा०—(अस्य इत् असुरस्य) सब को जीवन देने वाले, सब जगत् के संचालक, उस महान् प्रभु की (एषा) यह (सु-मतिः) उत्तम ज्ञान, बुद्धि से युक्त, (भूमना) बहुत बड़ी, (पूर्व्या) सनातन, ज्ञान में पूर्ण, (पप्रथाना) ज्ञान का विस्तार करती हुई (गौः) वेदवाणी (अभवत्) है। (स-नीडाः) उसके समान आश्रय में रहने वाले शिष्य-वत् जीवगण (समाने भरणे) एक समान धारण-पोषण में विद्यमान रह कर (बिभ्रमाणाः) उस वाणी को धारण करते हुए (समाने योनौ) एक समान गृह वा आश्रम में (आ यन्तु) प्राप्त हों।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
सन्तस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥ ७ ॥

भा०—(किं स्विद् वनं) वह कौनसा 'वन' और (कः उ सः वृक्षः आस) वृक्ष अर्थात् उपादान कारण कौन सा है (यतः) जिस में से (द्यावा-पृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों को (निः-ततक्षुः) बनाते हैं। ये दोनों (सं-तस्थाने) अच्छी प्रकार स्थिर (अजरे) नाश न होने वाली, (इतः-ऊती) इस लोक से ही रक्षा प्राप्त करने वाली, हैं। उन दोनों को (अहानि) सब दिन और (पूर्वीः उषसः) पूर्व की सब प्रभात वेलाएं भी (जरन्त) बतलाती हैं।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८॥

भा०—(एना परः अन्यत् न अस्ति) इससे परे दूसरा कुछ पदार्थ नहीं है, (उक्षा सः) वह समस्त जगत् को धारण करने और प्रकृति तत्त्व में जगत्-मूलक बीज निषेक करने वाला परम पुरुष ही (द्यावा पृथिवी) इस सूर्य और पृथिवी, दोनों को (बिभर्त्ति) धारण करता, उनको पालता पोषता भी है। वही (स्वधावान्) स्वयं समस्त जगतों को धारण, पालन, और पोषणकारिणी शक्ति का स्वामी होकर (पवित्रं त्वचं) व्यापक, तेजोमय आकाश रूप आवरण को (कृणुते) बनाता है, (यद् हरितः सूर्यं न) दिशाएं जिस प्रकार अपने भीतर प्रकाशक सूर्य को धारण करती हैं उसी प्रकार (ईम् वहन्ति) जगत् के समस्त पदार्थ उसको अपने भीतर धारण करते हैं।

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ६ ॥

भा०—(स्तेगः न) सूर्य जिस प्रकार (पृथ्वीं क्षां अति एति) विस्तृत भूमि को अतिक्रमण कर जाता है, (वातः न) और वायु जिस प्रकार (अति भूम) बहुत अधिक (मिहं वि वाति) वृष्टि को विविध प्रकार से लाता है। उसी प्रकार (स्तेगः) समस्त प्रकृति के परमाणु आदि का संघात करने वाला ईश्वर भी इस (पृथ्वीम्) अति विस्तृत (क्षाम् अति एति) सर्व निवास योग्य मूल प्रकृति से कहीं बढ़ कर है और इसे पार करके बैठा है। और वह (वातः) सर्वसंचालक प्रभु जीवगण पर (मिहं) नाना सुख-वृष्टि करता वा नाना जगत् का उत्पादक वीर्य-निषेक भी बहुत २ करता है, उसके बल से अनेक २ ब्रह्माण्डों में सृष्टि उत्पन्न होती है। (यत्र) जिसके आश्रय में (अज्यमानः) देदीप्यमान (मित्रः) जलों का स्वामी सूर्य वा दिन और (वरुणः) सूर्य द्वारा प्रकाशमान रात्रिकाल है, और (वनेन) वन में या काष्ठ में जिस प्रकार (अग्निः शोकं वि असृष्ट) अपने तेज को नाना प्रकार से प्रकट करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर

भी (अग्निः) तेजोमय, व्यापक होकर (वने) नाना रूपों में विभक्त इस जगत् वा मूल-कारण प्रकृति तत्त्व में अपने (शोकम्) तेजोमय वीर्य को (वि असृष्ट) विविध प्रकार से त्यागता और विविध सृष्टियां उत्पन्न करता है ।

स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अज्यमाना) वृषभ आदि द्वारा कामना की गई और निषिक्त हुई (स्तरीः) गौ (सूत) सन्तान उत्पन्न करती है, और वह स्वयं (व्यथिः) पीड़ा अनुभव करती हुई (स्व-गोपा) स्वयं अपने सामर्थ्य से रक्षित रह कर (अव्यथीः कृणुते) जीवों को व्यथा-रहित करती है, उसी प्रकार यह (स्तरीः) विस्तृत सर्वाच्छादक, धूमवत् व्यापक प्रकृति (सद्यः) अति शीघ्र (अज्यमाना) ब्रह्म बीज से युक्त होकर प्रकाशित होती हुई, (स्व-गोपाः) स्वतः रक्षित रह कर (व्यथिः) पीड़ित होकर, जीवों को (अव्यथीः कृणुते) कर्म भुगा कर व्यथारहित, मुक्त कर देती है । और जिस प्रकार मानो (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः पूर्वः) माता पिताओं के भी पूर्व विद्यमान हो इसी प्रकार वह (पुत्रः) बहुतों का पालक, प्रभु, प्राणियों के पालक सूर्य और पृथिवी दोनों के भी पूर्व ही (जातः) विद्यमान होता है । और जिस प्रकार (गोः शम्यां जगार) भूमि शमी आदि के वृक्ष को अपने भीतर लिये रहती है उसी प्रकार जो प्रभु (गोः) सर्वसंचालक प्रभु (शम्यां) कर्म करने वाले जीवगण को (जगार) वाणीवत् उपदेश करता है (यत् ह पृच्छान्) जिसके विषय में नाना विद्वान् सदा प्रश्न वा जिज्ञासा करते हैं, वही प्रभु है ।

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ।११।२८।

भा०—(उत) और (कण्वं) तेजस्वी, विद्वान् पुरुष को (नृ-सदः) मनुष्यों के ऊपर विराजने वाले वा मनुष्यों से अधिष्ठित राज्य का (पुत्रम् आहुः) पुत्र के समान, बहुतों का रक्षक, और उत्तरा-धिकारी कहा है। (उत) और (श्यावः) शक्तिशाली (वाजी) ऐश्वर्य-वान् ज्ञानी पुरुष ही (धनम् आदत्त) धन प्राप्त करता है। (कृष्णाय) शत्रुओं के नाशक और प्रजाओं के चित्ताकर्षक जन के लिये ही (रुशत् उधः) उज्ज्वल आकाशवत् प्रभु (ऋतम् अपिन्वत्) सत्य ज्ञान और न्याय की वृष्टि करता है, और (अत्र) इस लोक में (अस्मै) उसके (ऋतम्) धन वा तेज को (नकिः अपीपेत्) कोई नष्ट नहीं करता। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[३२]

कवष ऐलूष ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, २ विराड्जगती। ३ निचृज्जगती ४ पादनिचृज्जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। ६ त्रिष्टुप्। ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति॥१॥

भा०—(धियसानस्य) ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले पुरुष (सक्षणि) संग में (ग्मन्ता) जाते हुए स्त्री पुरुष दोनों को (इन्द्रः प्र जुजोषति) ऐश्वर्यवान् पुरुष अच्छी प्रकार प्रेम करता है और (प्र-सीदतः) प्रसन्न हुए विद्वान् के (वरेभिः) श्रेष्ठ कर्मों द्वारा वे दोनों स्त्री पुरुष (वरान् अभि सु) उत्तम सुखों को प्राप्त करें। (इन्द्रः) वह विद्वान् गुरु, राजा (अस्माकम्) हमारे (उभयं) हित और अहित, पाप और पुण्य दोनों को (जुजोषति) प्राप्त करता है। क्योंकि वह (सोम्यस्य-अन्धसः) ऐश्वर्य युक्त अन्न को (बुबोधति) अच्छी प्रकार जानता है।

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः।२।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दिव्यानि) आकाश के (रोचना) तेजोमय और (पार्थिवा) पृथिवी के समस्त लोकों और पदार्थों को (रजसा) तेज वा रजोगुण द्वारा (वि यासि) विशेष रूपसे व्यापता है। (ये) जो मनुष्य विद्वान् जन, (अध्वरान्) यज्ञों को तुझे लक्ष्य करके (मुहुः) बार २ (वहन्ति) धारण करते हैं (ते अराधसः) वे धनरहित होकर भी (वग्वनान्) वाणी द्वारा सेवन करने योग्य सुखों को (वन्वन्तु) चाहें, तेरे से प्रार्थना करें, तेरे से याचना करें।

तादिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः॥३॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः जानं अधीयति) माता पिता के पास अपना जन्म ग्रहण करता है (तत्) उसी प्रकार यह (मे) मेरा आत्मा भी (वपुषः वपुः-तरम्) सुन्दर से सुन्दर (जानं छन्त्सत्) जन्म प्राप्त करे। (जाया पतिम्) स्त्री अपने पालक पति को (सुमत् वग्नुना) उत्तम वचन से (वहति) विवाह करती है तब (परिष्कृतः वहतुः) सुशोभित दहेज (पुंसः इत्) पुरुष को ही (भद्रः) कल्याणकारी, सुखदायक होता है।

इन दोनों दृष्टान्तों का यही अभिप्राय है कि जैसे सुन्दर पुत्र और विवाहिता स्त्री पुरुष के ही ऐश्वर्य के लिये है उसी प्रकार जीव का जन्म लाभ और ऐश्वर्य सब आत्मा के ही लिये होता है।

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः॥ ४॥

भा०—हे प्रभो! आत्मन्! (धेनवः वहतुं न) गौएं जिस प्रकार

रथादि उठाने वाले बैल, वा शरीर में बल देने वाले घृत, दुग्ध, अन्नादि (शासन्) प्रदान करती है और (यत् गावः वहतुं शासन्) बैल या घोड़े आवाहन योग्य जीव जिस प्रकार गाड़ी आदि का शासन करते हैं। (तद् इत्) उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (चारु सधस्थम्) उत्तम स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर। (यत्) जिस प्रकार (पूर्व्या) प्रेम से परिपूर्ण, (मन्तुः) माननीय (माता) माता (पूर्व्यस्य अभि) अपने पुत्रसमूह के प्रति प्रेम से आती है और जिस प्रकार (जनः) (सप्त-धातुः वाणस्य) सात स्वरों को धारण करने वाले वाद्य यन्त्र को सुन उसकी ओर आकृष्ट होता है उसी प्रकार हे प्रभो ! हमें भी तू (चारु सधस्थम्) उत्तम ऐसा स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर (यत्) जिससे (वहतुं न) रथ के तुल्य (धेनवः शासन्) उत्तम रस पान कराने वाले इन्द्रियगण अनुशासन करें। (यत्) जिसे (पूर्व्या माता) सब से पूर्व विद्यमान ज्ञान कराने वाली प्रातृशक्ति (मन्तुः) मनन करने वाली बुद्धि (यूथस्य अभि शासन्) प्राणगण को अपने शासन में रखे। और (जनः) उत्पन्न हुआ प्राणी (इत्) भी (सप्त-धातुः) सात धारक रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद, शुक्र इन सात धातुओं से बने (वाणस्य) इस देह को (अभि शासत्) अपने वश करे।

प्र वोऽच्छा॑ रिरिचे देव॒युष्प॒दमेको॑ रु॒द्रेभि॑र्याति तु॒र्वणिः॑ ।
ज॒रा वा॒ येष्व॒मृते॑षु दा॒वने॒ परि॑ व॒ ऊमे॑भ्यः सिञ्च॒ता मधु॑॥५।२६॥

भा—हे विद्वानो ! जो (एकः) एक, अद्वितीय, (तुर्वणिः) अति शीघ्रगामी, दुष्टों और दुःखों का नाशक, होकर (रुद्रेभिः याति) दुष्टों को रुलाने, भगाने, दुःखों को दूर करने वाले जनों सहित प्रयाण करता है, वह (देव-युः) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, विजिगीषु जनों का स्वामी होकर (वः अच्छ) तुम्हें प्राप्त होकर (पदं) ज्ञान, एवं प्राप्तव्य पद को (प्र रिरिचे) आप लोगों के बीच प्राप्त करता है।

(वा) और (येषु) जिन (अमृतेषु) जीवित, दीर्घजीवी जनों के बीच में (जरा दावने) स्तुति वा उत्तम वाणी भी उत्तम ज्ञान, सुखादि देने के लिये है, उन (ऊमेभ्यः) रक्षाकारी गुरुजनों के लिये आप लोग (मधु परि सिञ्चत) सब प्रकार से अन्न और जल को प्रदान करो। उनका अन्न-जल, मधुपर्कादि से सत्कार करो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

नि॒धी॒यमा॑न॒मप॑गूळ्हम॒प्सु प्र मे॑ दे॒वानां॑ व्रत॒पा उ॑वाच ।
इन्द्रो॑ वि॒द्वाँ अनु॒ हि त्वा॑ च॒चक्ष॒ तेना॒हम॑ग्ने॒ अनु॑शिष्ट॒ आगा॑म् ॥ ६ ॥

भा०—(देवानां) देव, विद्याभिलाषी तेजस्वियों का (व्रत-पाः) व्रतपालन कराने वाला (मे) मुझे (अप्सु) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, और (आपः) जलों में गुप्त रूप से छुपे अग्नि-तत्ववत् आपोमय प्राणों वा लिङ्ग शरीरों के बीच (नि धीयमानम्) स्थापित हुए (अप-गूढम्) बाह्य इन्द्रियों से छुपे आत्मतत्त्व को (मे प्र उवाच) मुझे उपदेश करे। हे (अग्ने) जीव वा आत्मरूप अग्ने ! (हि) निश्चय से (इन्द्रः हि) आत्मा वा प्रभु उस तत्व को साक्षात् करने वाला योगी (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष ही (त्वा अनु चचक्ष) तेरा साक्षात् अनुभव रूप से प्रत्यक्ष करता है। (तेन अनु-शिष्टः) उससे अनुशासन, शिक्षण पाकर ही मैं (त्वा अनु आ अगाम्) तुझे प्राप्त होऊं, तेरा अनुगमन करूं।

अक्षे॑त्रवित्क्षेत्र॒विदं॒ ह्यप्रा॒ट् स प्रैति॑ क्षेत्र॒विदानु॑शिष्टः ।
ए॒तद्वै भ॒द्रम॑नु॒शास॑नस्यो॒त स्रु॒तिं वि॑न्दत्यञ्ज॒सीना॑म् ॥ ७ ॥

भा०—(अक्षेत्रवित्) क्षेत्र, वा मार्ग को न जानने वाला (हि) अवश्य (क्षेत्रविदं अप्राट्) क्षेत्र को जानने वाले पुरुष से प्रश्न करता है। (सः) वह (क्षेत्र-विदा) क्षेत्रज्ञ विद्वान् से (अनुशिष्टः) अनु-शासित, शिक्षित होकर (प्र एति) आगे उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है। (अनुशासनस्य) गुरु के किये अनुशासन वा शिक्षण का (एतत्

वै भद्रम्) यही उत्तम कल्याणदायक फल होता है कि वह अनुशासित, अज्ञ पुरुष भी (अञ्जसीनाम्) ज्ञान को प्रकाशित करने वाला वाणियों की (स्रुतिं) गति वा श्रुति को (विन्दति) प्राप्त करता है। (२) जिस प्रकार क्षेत्र-विद्या कृषि आदि को न जानने वाला पुरुष क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्रिक से ज्ञान को जान लेता है तब वह भी क्षेत्रज्ञ अर्थात् माली होकर आगे बढ़ता है। वह भी (अञ्जसीनां स्रुतिं विन्दति) धान्योत्पादक भूमियों के मार्ग, अथवा क्षेत्र में बहती जल-धाराओं की गति को जान लेता है। (३) उसी प्रकार क्षेत्र यह देह, या प्रकृति है अक्षेत्रज्ञ मूढ-आत्मा आत्मज्ञों से प्रश्नपूर्वक ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है तब वह भी ज्ञानप्रकाशक वाणियों, आत्मप्रकाशक प्रवृत्तियों की संगति समझने लगता है और ज्ञानप्रकाशक इन्द्रियों के मार्ग पर भी वश प्राप्त कर लेता है।

अ॒द्येदु॒ प्राणी॒दम॑मन्नि॒माहापी॑वृतो अधयन्मा॒तुरूधः॑ ।
एमे॑नमाप जरि॒मा युवा॑नमहे॑ळ॒न्वसुः॑ सु॒मना॑ बभूव ॥ ८ ॥

भा०—देखो इस जीवरूप अग्नि की गति। वह (अद्य इत् उ प्राणीत्) आज ही प्रथम दिन प्राण लेने लगता है (इमा अममन्) इन नाना संकल्पों को सोचता, नाना पदार्थों को जानने, चीन्हने भी लगता है। (अपि-वृतः) देह में आवृत रहकर वह (मातुः ऊधः अधयत्) माता का स्तन्य पान भी ठीक उसी प्रकार से करता है जैसे तेजों से आवृत अग्नि वा सूर्य माता पृथिवी का जलपान करता है। (ईम् एनम् युवानं) अनन्तर इस युवा को जिस प्रकार बुढ़ापा आता है उसी प्रकार (युवानम्) माता से पृथक् होते हुए नव-उत्पन्न इस बालक को भी (जरिमा) वाणी (आप) प्राप्त होती है। वह (अहेडन्) अनादृत होकर, वा गुरुओं का अनादर न करता हुआ, (वसुः) गुरु के अधीन वास करता हुआ, ब्रह्मचारी होकर (सुमनाः बभूव) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न होजाता है।

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ६।३०।७

भा०—हे (कलश) ज्ञान और शोडष कलाओं को धारण करने हारे ! विद्वन् ! हे (कुरु-श्रवण) 'यह कार्य कर, यह कार्य कर' ऐसी नाना कर्म करने योग्य प्रेरणाओं को सुनने वाले पुरुष ! अथवा क्रियाशील पुरुषों से श्रवणीय आज्ञा वाले ! गुरो ! (मघानि) उत्तम पूज्य ज्ञानों, धनों को (ददतः) देने वाले तेरे लिये हम (एतानि भद्रा क्रियाम) इन नाना सुखजनक कल्याणकारक कर्मों को करें, तेरी नाना सेवाएं करें । हे (मघवानः) पूज्य धन ज्ञान आदि के स्वामी जनो ! (सः वः दानः इत्) वह प्रभु तुम्हें देने हारा (अस्तु) हो और (अयं च सोमः) यह सोम, सत् शिष्य भी तुम्हें सुख ज्ञानादि देवे, (यं हृदि बिभर्मि) जिसको मैं अब अपने चित्त में धारण करता हूं । इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति सप्तमाष्टके सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अष्टमोऽध्यायः

[३३]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—१ विश्वे देवाः । २,३ इन्द्रः । ४,५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः ६—९ उपमश्र व।मित्रातिथिपुत्राः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् २ निचृद् बृहती । ३ भुरिग् बृहती । ४—७, ९ गायत्री । ८ पादनिचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वेदेवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

भा०—(प्र-युजः) मनुष्यों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले, उत्तम २ फलों को प्राप्त करने वाले लोग (मा प्र युयुज्रे) मुझे भी उत्तम मार्ग पर प्रेरित करें। मैं (जनानां पूषणम्) समस्त मनुष्यों के पोषक प्रभु को (अन्तरेण) अपने भीतर (वहामि) धारण करूं। (देवासः) विद्वान् और वीरजन भी (माम् अरक्षन्) मेरी रक्षा करें। (दुःशासुः आगात्) बड़ी कठिनता से शासन करने योग्य, वा जिसके विषय में कुछ भी कहा न जासके, अवर्णनीय एवं (दुःशासुः) अन्यों से वश न करने योग्य राजावत् प्रभु (आगात्) हमें प्राप्त हो, (इति घोषः आसीत्) इसी कारण उसके बतलाने के लिये घोष, वेदवाणी का उपदेश हमें प्राप्त है।

सं मा॑ तपन्त्य॒भित॑: स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः।
नि बा॑धते॒ अम॑तिर्न॒ग्नता॒ जसु॒र्वेर्न वे॑वीयते म॒तिः ॥ २ ॥

भा०—(सपत्नीः) सौतों के समान (पर्शवः) मेरे आत्मा से स्पर्श करने वाली, कुवासनाएं, आत्मा पर संग-दोष उत्पन्न करने वाली (मा अभितः तपन्ति) मुझे सब ओर से सन्ताप देती हैं। (अमतिः) अज्ञान (मा नि बाधते) मुझे बहुत पीड़ित करता है। और (नग्नता मा नि बाधते) वस्त्रादि न होने से नंगे शरीर को नंगापन जिस प्रकार लज्जित, व्यथित, शीत ग्रीष्मादि से पीड़ित करती है उसी प्रकार (नग्नता नि बाधते) मेरे पास हे प्रभो ! तेरी स्तुति करने योग्य वाणी नहीं है, वह वाणी का अभाव भी मुझे दुःख देता है। इसी प्रकार (जसुः नि बाधते) हिंसावृत्ति वा सर्वनाशक मृत्यु वा सबका नाश होना यह भय भी मुझे व्यथित, बेचैन कर रहा है। (वेः न मतिः) हे प्रभो ! पक्षी के समान उत्तम ज्ञानी वा रक्षक की (मतिः) शत्रुस्तम्भनकारिणी शक्ति और ज्ञानी की बुद्धि, (मा वे वीयते) मुझे निरन्तर प्राप्त हो। मेरी बराबर रक्षा करे। अथवा (वेः न मतिः वेवीयते) भयव्यथित पक्षी के तुल्य

मेरी बुद्धि भी निरन्तर भय से व्यथित हो कांपती और चंचल, अस्थिर रहती है। पर्शुः स्पृशतेः।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।

सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥ ३ ॥

भा०—(मूषः शिश्ना न) चूहा जिस प्रकार अन्न रस से भीगे सूतों को खा जाता है, उसी प्रकार हे (शत-क्रतो) अनेक बल और बुद्धियों वाले प्रभो ! (आध्यः मा वि अदन्ति) मानसी चिन्ताएं मुझे विविध प्रकार से खाए डालती हैं हे (इन्द्र) विघ्ननाशक ऐश्वर्यवन् प्रभो ! स्वामिन् ! हे (मघवन्) उत्तम दानयोग्य पदार्थों के स्वामिन् ! (नः सकृत् सु मृडय) हमें एक बार अच्छी प्रकार खूब सुखी कर। (अध पिता इव नः भव) और तू तो हमारे पिता के समान हो।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्।

मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥

भा०—मैं (ऋषिः) अतीन्द्रिय पदार्थ का देखने हारा होकर (वाघताम्) कार्य और ज्ञान को धारण करने वालों में (मंहिष्टम्) सब से अधिक दानी, (त्रासदस्यवम्) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले (कुरु-श्रवणम्) कार्य करने वाले जनों की सुनने वाले वा कर्त्तव्य कर्म के लिये उत्तम आज्ञा वचन के श्रवण करने वाले, तत्पर (राजानं) तेजस्वी, स्वामी प्रभु को (आ वृणि) सब प्रकार से वरण करता हूँ।

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया।

स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यस्य रथे) जिसके रमण योग्य रथ में (तिस्रः हरितः) तीन नाड़ियें (साधुया) साधु, उत्तम मार्ग में (मा वहन्ति) मुझे ले जाती हैं। उसी को मैं (सहस्र-दक्षिणे स्तवै) अनेक दातव्य पदार्थों के

देने के निमित्त स्तुति करता हूं। यह रथ देह है, इस में तीन नाड़ी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आत्मा को साधु मार्ग से ले जाती हैं। प्रभु ने अनेक सुख इस रथ में दिये हैं। उसी के निमित्त प्रभु की स्तुति करनी चाहिये। इति प्रथमो वर्गः ॥

यस्य॑ प्रस्वा॑दसो॒ गिर॑ उप॒मश्र॑वसः पि॒तुः ।
क्षेत्रं॒ न र॒ण्वमू॒चुषे॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस (पितुः) सर्वपालक, सब के पिता माता के तुल्य (उपम-श्रवसः) अति उत्तम ज्ञान से सम्पन्न प्रभु गुरु के (गिरः प्र-स्वादसः) निगलने योग्य अन्नों के समान, उपदेश द्वारा प्रदत्त वाणियां अति उत्कृष्ट स्वाद देने वाली अति सुखप्रद हैं और सेवन करने वाले आत्मा के लिये (यस्य क्षेत्रं रण्वं ऊचुषे) जिसका दिया क्षेत्र, निवासस्थान भी अति रमणीय क्षेत्र, उर्वरा भूमि के समान नाना दिव्य अन्न, कर्म फलादि का उत्पादक होता है, मैं उसी सहस्रों दक्षिणा अर्थात् अन्नादिवत् कर्म फल के देने के लिये प्रभु की स्तुति करूं।

अधि॑ पुत्रोपमश्रवो॒ नपा॑न्मित्रातिथेरिहि ।
पि॒तुष्टे॑ अस्मि वन्दि॒ता ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुत्र) बहुत सी प्रजाओं के रक्षक ! हे (उपम-श्रवः) अति उत्तम ज्ञान के देने हारे गुरो ! हे (मित्रातिथेः नपात्) मित्र, स्नेही और अतिथिवत् स्वल्प काल के लिये तेरे गृह पर आने वाले को नीचे न गिरने देने हारे तू (अधि इहि) हम पर अधिवक्ता होकर विराज। (ते पितुः) पिता के समान तुझ पालक का मैं (वन्दिता अस्मि) अभिवादन, स्तुति, प्रार्थना आदि करने वाला हूं।

आचार्य पक्ष में जिसके (रथे) रमणीय उपदेश में मुझ को (तिस्रः हरितः) तीनों वेद वाणियाँ साधु मार्ग से ले जाती हैं उस (सहस्र-दक्षिणे)

हजारों को दक्षिण दिशा में बैठा कर उपदेश करने वाले उस गुरु के अधीन मैं (स्तत्रै) वेद का अध्ययन करूं।

गुरु और शिष्य के परस्पर व्यवहार को इस सूक्त में उत्तम रीति से दर्शाया है। इसी प्रकार शौनक मुनि ऋक्-प्रातिशाख्य में लिखते हैं—

पारायणं वर्त्तयेद् ब्रह्मचारी गुरुः शिष्येभ्यस्तदनुव्रतेभ्यः।
अध्यासीनो दिशमेकां प्रशस्तां प्राचीमुदीचीमपराजितां वा॥
एकः श्रोता दक्षिणतो निषीदेद् द्वौ वा भूयांसस्तु यथावकाशम्।
ते ऽधीहि भो इत्यभिचोदयन्ति गुरुं शिष्या उपसंगृह्य सर्वे॥

अर्थ—गुरु स्वयं ब्रह्मचारी रहकर ब्रह्मचारी शिष्यों को वेद का अध्ययन करावे। प्राची, उदीची वा अपराजिता दिशा में स्वयं ऊंचे आसन पर विराजे। और दक्षिण में एक या दो श्रोता शिष्य, वा अधिक स्थान हो तो अधिक भी बैठें। वे सब शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करके 'अधीहि भोः' ऐसी प्रार्थना करें।

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्।
जीवेदिन्मघवा मम॥८॥

भा०—(यद्) यदि मैं (अमृतानाम्) न मरने वाले अविनाशी तत्त्वों (उत वा) और (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा, उत्पन्न और विनाश होने वाले पदार्थों का (ईशीय) स्वामी, उन पर भी शक्तिशाली होजाता हूँ तभी (मम मघवा) मेरा धनाधिपति आत्मा (जीवेत् इत्) प्राण धारण करने में समर्थ होता है।

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति।
तथा युजा वि वावृते॥ ९॥ २॥

भा०—(देवानां व्रतं अति) देवों, विद्वानों के स्थिर किये व्रत नियम आदि को अतिक्रमण करके कोई (शतात्मा चन) सौ बरस तक भी

(न जीवति) प्राण धारण नहीं करता। और (तथा) उसी प्रकार (युजा) अपने सहयोगी मित्र, बन्धु वा देहादि से (वि वबृते) वियुक्त हो जाता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३४]

कवष ऐलूषोऽक्षो वा मौजवान् ऋषिः। देवताः—१,७,९,१२,१३ अक्षकृषिप्रशंसा। २—६, ८, १०, ११ १४ अक्षकितवनिन्दा। छन्दः—१, ७, ८, १२, १३ त्रिष्टुप्। ३, ६, ११, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। ७ जगती॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्॥१॥

भा०—अक्षकृषि प्रशंसा और अक्ष-कितव निन्दा। (इरिणे वर्वृतानाः) सूखे कूप में उत्पन्न होते हुए, अथवा धन से रहित निर्धनता की दशा में लेजाने हारे, (प्र-वाते-जाः) नीचे देश में पैदा हुए, (प्रावेपाः) खूब कांपने और कंपाने वाले, भयोत्पादक, (बृहतः) बड़े भारी वृक्ष के फल के तुल्य जूए के पासे (मा मादयन्ति) मुझे हर्षित करते, मुझे मत्त कर देते हैं। यह (वि-भीदकः) बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न यह जूए का गोटा, (मौज-वतः सोमस्य-इव भक्षः) मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम-ओषधि लता के भक्षण योग्य रस के समान अस्वादन करने योग्य, (जागृविः) जीता जागता मानो (मह्यम् अच्छान्) मुझे बहलाता, फुसलाता है। जूआ आदि कृत्रिम साधन लोभी को इसी प्रकार फांसते हैं। (२) वस्तुतः, अध्यात्म में—(बृहतः) उस महान् पाप के ये फल या परिणाम (इरिणे वर्वृतानाः) धन जलादि शान्तिदायक साधनों से रहित दशा में मनुष्य को ले जाते हैं। वे राजस तामस भाव (प्रवाते-जाः) प्रबल वात के सदृश बलवान् मन के अधीन उत्पन्न होते हैं, वे (प्रावेपाः) मनुष्य को खूब इधर उधर नचाते

कंपाते हैं, वे तृष्णार्त्त विषयलोलुप को (मादयन्ति) खूब उन्मत्त कर देते हैं। वह विषयाभिलाष उसको (मौजवतः सोमस्य-इव भक्षः) मुंजवान् पर्वत में उत्पन्न उत्तम सोमपान के समान अति हर्षदायक प्रतीत होता है। अथवा, मुक्ति देने वाले मोक्षेश्वर प्रभु का परमानन्द सोम के समान ही विषय-रसास्वाद भी विषयी को परमानन्दवत् प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुतः वह है (विभीदकः) विविध प्रकार से शरीर और आत्मा को तोड़ डालने वाला, अति भयंकर, और (जागृविः) मनुष्य चूक जाय भले ही, परन्तु वह मनुष्य का मृत्युवत् सत्यानाश करने में नहीं चूकता, वही (मह्यम् अच्छान्) मुझ आत्मा को लुभाता है। अध्यक्ष पक्ष आगे स्पष्ट करेंगे।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा) यह (मा न मिमेथ) मुझे दुःख नहीं देती, (न जिहीड़े) न अनादर करती है। (सखिभ्यः उत मह्यम्) मेरे मित्रों और मेरे लिये सुखकारिणी, मंगलकारिणी (आसीत्) है, तो भी (एक-परस्य अक्षस्य) एक की प्रधानता वाले अक्ष अर्थात् जूए के (हेतोः) कारण से (अनुव्रताम् जायाम्) अनुकूल व्रत पालन करने वाली पतिव्रता स्त्री को भी (अप अरोधम्) मैं रख नहीं सकता, उसे भी हार देता हूं। (२) अध्यात्म में बुद्धि आत्मा की विशेष शक्ति जो न हिंसा करती, न क्रोध करती है। वह सब के लिये और अपने लिये शान्तिकारक मंगलजनक होती है परन्तु एक विषय की ओर जाने वाले अक्ष अर्थात् इन्द्रिय सुख के लिये मैं पतिव्रता स्त्रीवत् उस बुद्धि को भी खो बैठता हूं।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥३॥

भा०—जूए के दुष्परिणाम। जो जुआरी जूए में सर्वस्व खो चुकता

है उससे (श्वश्रूः) उसकी सास भी (द्वेष्टि) द्वेष करती है। (जाया अप रुणद्धि) स्त्री भी विरक्त होजाती है। (नाथितः) संतापित, दुःखित होकर भी (मर्डितारं न विन्दते) वह किसी को अपने पर कृपालु, दयालु, सुखदाता नहीं पाता वा मांगने वाला होकर भी किसी से धन नहीं पाता। ठीक है, (जरतः अश्वस्य-इव) बूढ़े घोड़े के समान और (जरतः वस्न्यस्य) फटे पुराने वस्त्र के समान (अहं) मैं भी (कितवस्य) जुआरी होने का (भोगं न विन्दामि) अब सुख और रक्षा नहीं पाता हूं।

अश्व्यं, वस्न्यं इति स्वा॰ यः॥

अ॒न्ये जा॒यां परि॑ मृशन्त्यस्य॒ यस्यागृ॑धद्वेद॑ने वा॒ज्य१॒॑क्षः।
पि॒ता मा॒ता भ्रात॑र एन माहु॒र्न जा॑नीमो॒ नय॑ता ब॒द्धमे॒तम्॥ ४॥

भा०—जुआख़ोर की दुर्दशा। (यस्य वेदने) जिसके धन पर (वाजी अक्षः) बलवान् जुए का व्यसन (अगृधत्) ललचा जाता है (अस्य) उसकी (जायां) स्त्री को भी (अन्ये परि मृशन्ति) दूसरे, उसके शत्रु, पराये लोग हथियाते हैं। (पिता माता भ्रातरः एनम् आहुः) पिता माता भाई लोग भी उसको लक्ष्य कर कहते हैं कि (न जानीमः) हम इसे नहीं जानते, पहचानते कि कौन है ? (एतम् बद्धम्) इसको बांध कर (नयत) लेजाओ। वह चोरी, कर्ज़ा आदि में जब दण्डभागी होता है तो उसके सगे भी उससे ऐसे किनारा किया करते हैं। (२) जिस पुरुष की इन्द्रियें काम्य सुख रूप स्त्रीसङ्ग, कुसंग, मद्यपानादि में धनको नाश करती हैं, उसकी स्त्री भी सुरक्षित नहीं रहती और पतित को सगे भी कीर्त्ति के नाश के भय से नहीं अपनाते।

यदा॒दीध्ये॒ न द॑विषाण्येभिः परा॒यद्भ्योऽव॑ हीये॒ सखि॑भ्यः।
न्यु॑प्ताश्च ब॒भ्रवो॒ वाच॒मक्र॑तँ॒ एमीदे॑षां निष्कृ॒तं जा॒रिणी॑व॥५॥३॥

भा०—मैं व्यसनी पुरुष (यद् आदीध्ये) जब ध्यान करता हूँ, उनकी

चिन्ता करता हूं तब (एभिः न दविषाणि) इनके द्वारा दुःखित या पश्चात्ताप से युक्त भी नहीं होता, प्रत्युत (परायद्भ्यः सखिभ्यः) दूर से आने वाले वा दूर गये मित्रों के समान उनके लिये (अव हीये) बड़ा ध्यान देता हूँ। (२) वे (बभ्रवः) लाल-पीले गब्रू रंग के (न्युप्ताः) फेंके जाकर (वाचम् अक्रत) मानो बतियाते हैं और मैं भी (एषां निष्कृतं) इनके स्थान को (जारिणी इव एमि इत्) व्यभिचारिणी स्त्री के समान चला ही जाता हूँ। व्यसनी मनुष्य रसों का भी इसी प्रकार लोलुप हो जाता है, वह उनका अनुचिन्तन किया करता है और व्यभिचारिणी स्त्री के समान लुक छिप कर व्यसनों में पड़ता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥६॥

भा०—(तन्वा) शरीर से (शूशुजानः) चमकता हुआ (पृच्छमानः) और पूछता हुआ, (कितवः) द्यूत का व्यसनी (सभाम् एति) द्यूतसभा में आता है और समझता है कि (जेष्यामि इति) 'मैं अब जीतूंगा'। (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी द्यूत खिलाड़ी को पराजय करने के लिये (कृतानि) कृत नामक अक्षों को (आ दधतः) रखने वाले (अस्य) इस द्यूत-व्यसनी की (अक्षासः) वे अक्ष (कामं वितिरन्ति) यथेष्ट धन-अभिलाषा को बहुत बढ़ाते हैं। (२)इसी प्रकार(कितवः) यह धन क्या तेरा है ? इस प्रकार धनके सम्बन्ध में विवाद करने वाला, नि 'यार्थी जन (तन्वा शूशुजानः) अपने देह से दीप्त, या संतप्त होकर (जेष्यामि इति) मैं इस मुकदमे को जीत जाऊंगा इस विचार से (पृच्छमानः) प्रतिवादी पर प्रश्न करता हुआ (सभाम् एति) धर्म-व्यवस्थापक-सभा को प्राप्त होता है। और (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी धनाकांक्षी को पराजित करने के लिये (कृतानि) अपने किये कर्मों या अधिकारों या प्रमाणों को (आ-दधतः) स्थापित करते हुए (अस्य) इसको (अक्षसः) सभा के अध्यक्षजन (कामं वितरन्ति) उसको मनचाहा धन

प्रदान करते हैं और उसकी अभिलाषा को बढ़ाते हैं। (३) इसी प्रकार तेरा क्या ? इस प्रकार गर्वी पुरुष (तन्वा शूशुजानः) देह में प्रकट होकर (सभाम् एति) इन्द्रियगण की सभा में आता है इन द्वारा इस भाव से (पृच्छमानः) सभी पदार्थों की जिज्ञासा करता है। और ये इन्द्रिगण उसको (कामं वि तिरन्ति) काम्य सुख प्रदान करते हैं। वह अपने अपने सब किये कर्म-फलों को देह धारण कर भोगता, और नाना कर्म करता है।

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा॥७

भा०—उत्तम अध्यक्षों का वर्णन । ये (अक्षासः) अध्यक्षजन (इत्) ही (अंकुशिनः) अंकुश, अर्थात् हाथी जैसे २ बड़े पशुओं के तुल्य बड़ों बड़ों को भी सन्मार्ग पर चलाने वाले, वशीकरण साधनों से सम्पन्न (नि-तोदिनः) अश्व, बैल आदि के समान कार्य-भार वहन करके चलाने वाले शासकों को भी व्यथित कर सन्मार्ग में प्रेरित करने के साधनों को सारथि के तुल्य रखने वाले, (नि-कृत्वानः) दुष्टों को जड़मूल से छेदन करने वाले, (तपनाः) सूर्य की किरणों के तुल्य तपाने वाले, तेजस्वी, और (तापयिष्णवः) दुष्टों को संतापित करने वाले, (कुमार-देष्णाः) कुत्सित भावों के नाशक शिष्यों को ज्ञान देनेवाले गुरुजनों के समान कुत्सित व्यवहार वालों के नाशक, वा युद्धक्रीड़ा करने वाले वीरों को धन पुरस्कारादि देने वाले और (जयतः) विजय करने वाले (कितवस्य) 'तेरा क्या २' इस प्रकार ललकारने वाले को (पुनर्-हणः) फिर से या बार २ दण्डित करने या मारने वाले, (मध्वा) मधुर वचन और शत्रु को कंपा देने वाले बल से (सम्पृक्ताः) युक्त वा (मध्वा सम्पृक्ताः) मधु अर्थात् अन्न के द्वारा अपने स्वामी से सम्बद्ध, वेतनबद्ध, (बर्हणा) स्वामी को बढ़ाने और शत्रु के नाश करने वाले हों।

त्रिप॒ञ्चा॒शः क्री॑ळति॒ व्रात॑ एषां दे॒व इ॑व सवि॒ता स॒त्यध॑र्मा ।
उ॒ग्रस्य॑ चिन्म॒न्यवे॒ ना न॑मन्ते॒ राजा॑ चि॑देभ्यो॒ नम॒ इत्कृ॑णोति ॥८॥

भा०—अध्यक्षों का पुनः वर्णन । (एषां) इनका (त्रि-पञ्चाशः व्रातः) ५३ का संघ (सत्य-धर्मा) सत्य धर्म का पालक (सविता) इनके प्रेरक नायक सूर्यवत् तेजस्वी (देवः) दाता स्वामी के समान (क्रीडति) खेलता है, विनोद से रण में जाता है। वह (उग्रस्य चित् मन्यवे) भयंकर से भयंकर के क्रोध के आगे (न नमन्ते) नहीं झुकते । (एभ्यः) इनके लिये (राजा चित् नमः इत् कृणोति) राजा भी नमस्कार, आदर ही करता है।

नी॒चा व॑र्तन्त उ॒परि॑ स्फुरन्त्यह॒स्तासो॒ हस्त॑वन्तं सहन्ते ।
दि॒व्या अङ्गा॑रा इरि॑णे॒ न्यु॑प्ताः शी॒ताः सन्तो॒ हृद॑यं॒ निर्द॑हन्ति ॥६॥

भा०—नीच अध्यक्षों का वर्णन । जो लोग (नीचाः) नीच प्रवृत्ति के लोग (वर्त्तन्ते) होते हैं। वे (उपरि) ऊंचे पदपर आकर (स्फुरन्ति) अधीनों को कष्ट देते हैं। वे (अहस्तासः) हनन साधनों से रहित होकर ही (हस्तवन्तं) हनन साधन, हथियारों वाले को (सहन्ते) सहते हैं, दबते हैं। वे (दिव्याः) क्रीड़ाशील, मोदप्रिय, मदमत्त, स्वप्न या आलस्ययुक्त होकर (इरिणे अङ्गाराः) कूए में जलते अंगारों के समान (इरिणे) अन्न-जल दाता के लिये भी (अंगाराः) अंगारों के तुल्य सन्तापदायक (न्युप्ताः) बने रहते हैं। वे (शीताः सन्तः) ठण्डे, निरपेक्ष और निर्दय हृदय होकर (हृदयं निर्दहन्ति) दिल को जलाया करते हैं।

जा॒या त॑प्यते कित॒वस्य॑ ही॒ना मा॒ता पु॒त्रस्य॒ चर॑तः॒ क्व॑स्वित् ।
ऋ॒णा॒वा बिभ्य॒द्धन॑मि॒च्छमा॑नो॒ऽन्येषा॒मस्त॒मुप॒ नक्त॑मेति ॥१०॥४॥

भा०—(कितवस्य) 'तेरा क्या' इस प्रकार अन्यों पर आक्षेप करके स्वच्छन्द विचरने वाले, उच्छृंखल वा द्यूतव्यसनी पुरुष की (हीना) त्यागी हुई, दुर्दशाग्रस्त (जाया) स्त्री भी (तप्यते) दुःखित होती है, और

(क्स्वित् चरतः) कहीं कहीं विचरते भ्रमते हुए व्यसनी पुत्र की (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है। वह (ऋणावा) ऋण ग्रस्त होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता हुआ, (बिभ्यद्) भय करता हुआ, (नक्तम्) रात के समय (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी के लिये (एति) जाता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

भा०—(कितवं = कितवः) तेरा क्या ? इस प्रकार अन्यों से छीन झपट करने वाला वा उच्छृंखल मनुष्य (स्त्रियं दृष्ट्वा तताप) स्त्री को देख कर भी दुःखित होता है। वह (अन्येषां जायां) औरों की स्त्री को और (सुकृतं योनिं च) औरों के पुण्य कर्म वा उत्तम रीति से बने घर को देख कर भी (तताप) दुःखी होता है। वह (पूर्वाह्णे) दिनके पूर्व भाग में (बभ्रून्) हृष्ट पुष्ट, (अश्वान्) वेगगामी अश्वोंके तुल्य अपने प्राणों को (युयुजे) जोड़ता है। (सो) वह (वृषलः) मूढ अधार्मिक (अग्नेः अन्ते) रात में आग के समीप (पपाद) पहुंच जाता है। वह दिन भर भटक करके भी अधबीच जंगल में पड़े पथिक के तुल्य रहता है, घर का सुख नहीं पाता।

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

भा०—हे विद्वान जनो ! (वः महतः गणस्य) आप लोगों के गुणों में महान् पुरुषों के समूह का जो (सेनानीः) सेनानायक है और जो (प्रथमः राजा बभूव) सर्वश्रेष्ठ राजा है (तस्मै अहं दश प्राचीः कृणोमि) मैं उसके आदरार्थ दशों अंगुली आगे करता हूं, उसे नमस्कार करता हूं। अथवा, (तस्मैः दश प्राचीः कृणोमि) उसके लिये मैं प्रभु दशों दिशाओं को प्राचीदिशा के समान आगे बढ़ने वा उदय होने के लिये करता हूं। (न धना

रुणध्मि) उसके लिये मैं धन भी रोक के नहीं रखता हूं। (तत् ऋतं वदामि) उसके लिये मैं ऋत अर्थात् न्यायानुसार वचन का उपदेश करता हूं।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥१३॥

भा०—हे (कितव) गर्वीले राजा ! तू अधिकार मद से आकर प्रजाको कह लेता है कि 'किं तव' तेरा क्या है, इसी से तू भी 'कितव' है। 'क्या तेरा' ऐसा कहने वाले हे गर्वीले शासक ! तू (अक्षैः मा दीव्यः) पासों से मत खेल, वा (अक्षैः मा दीव्यः) अपने इन्द्रियगण से काम-विलास की खेल मत करऔर (अक्षैः मा दीव्यः) और अपने अध्यक्ष जनों से मत, खेल, उनसे बढ़ जाने का गर्व वा स्पर्धा मत कर, उनके साथ मद, नशा-विनोद तथा उनके साथ रहकर स्वयं स्वप्न, आलस्यादि मत कर। प्रत्युत (कृषिम् इत् कृषस्व) तू खेती किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर और परिश्रम से धन धान्य उत्पन्न कर। और उसी को (बहु मन्यमानः) बहुत मानता हुआ (वित्ते रमस्व) प्राप्त धन में आनन्द लाभ कर, सुखी रह। हे (कितव) उत्तम कर्म करने हारे ! (तत्र गावः) उसी कर्म में तेरी गौएं, (तत्र जाया) उसी में स्त्री, अर्थात् गृहसुख प्राप्त होता है। (अयम् अर्यः सविता) यह सर्वप्रेरक स्वामी (मे तत् वि चष्टे) मुझे उसी का उपदेश करे।

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु॥१४॥५॥

भा०—हे अध्यक्ष जनो ! आप लोग (मित्रं कृणुध्वम्) हमें अपना और अपने को हमारा मित्र बनाओ। (नः मृडत खलु) हमें सुखी करो। (नः) हमें (धृष्णु) धर्षणकारी, अपमान और दुःखजनक (घोरेण) घोर, संतापजनक क्रोध से (मा अभि चरत) मत आक्रमण करो। (मन्युः अरातिः) अभिमानी और क्रोधी (वः नि विशताम्) आप लोगों के नीचे

रहे । अन्यः) पर शत्रु (बभ्रूणां) प्रजापालक अध्यक्षों के, (प्र-सितौ नु अस्तु) कड़े बन्धन में रहे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३५]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१,६,९,११ विराड्जगती । २ भुरिग् जगती । ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती । ४, ८ आर्चीस्वराड् जगती । ५ आर्ची भुरिग् जगती । १३ निचृत् त्रिष्टुप् । १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

भा०—(त्ये) वे (अग्नयः) अग्नियों के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् वा किरणों के समान विद्वान् जन (इन्द्र-वन्तः) उत्तम प्रभु वा गुरु को अपने बीच में रखते हुए, (उषसः व्युष्टिषु) प्रभात वेलाओं के प्रकट होने पर (ज्योतिः भरन्तः) अपने में तेज प्रकाश और ज्ञान को धारण करते हुए (अबुध्रम् उ) बोधवान् होजाते हैं । (मही) पूज्य (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता जन भी (अपः चेतताम्) कर्मों का ज्ञान करें, करावें । (अद्य) आज हम (देवानाम् अवः आवृणीमहे) विद्वान् पुरुषों का ज्ञान सत्संग उनकी रक्षा, प्रेम आदि प्राप्त करें वा विद्याभिलाषी शिष्यों का अपने पास आगमन चाहें ।

दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः॥२॥

भा०—हम (दिवः पृथिव्योः) सूर्य, भूमि, आकाश और भूमिवत् माता पिताओं के (अवः) उत्तम रक्षण, प्रेम, ज्ञान और बल की याचना करते हैं । और (मातृन्) ज्ञानवान्, एवं पुरुषों को उपदेश शिक्षादि द्वारा जीवन में दृढ़ बनादेने वाले, (सिन्धून्) महानदों के समान अगाध

जल वाले, एवं हृदयों से बांधने वाले प्रेमी, (शर्यणावतः) दुष्टों के नाश करने की शक्ति से युक्त (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ और पालकशक्ति के स्वामी पुरुषों और (सूर्यम् उषासम्) सूर्यवत् तेजस्वी, उषावत् कान्तियुक्त. पापों को दग्ध करने वाले जनको प्राप्तकर उनसे (अनागास्त्वं) पापरहित होने की (ईमहे) प्रार्थना करें। (सुवानः सोमः) अभिषेक, और विद्या व्रत आदि में निष्णात (सोमः) शासक विद्वान् जन वा प्रभु (अद्य नः भद्रं कृणोतु) आज हमारा कल्याण करे।

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(नः) हम (अनागसः) अपराध और पाप से रहितों को (द्यावा पृथिवी) सूर्यवत् तेजस्वी, और पृथिवी के तुल्य विशाल आश्रय देने में समर्थ, (मही) पूज्य बड़े (मातरा) माता पिता के तुल्य राजा राजसभा, दोनों (सुविताय) उत्तम मार्ग पर चलाने और सुख प्राप्त करने के लिये (त्रायेताम्) हमारी रक्षा करें। (उच्छन्ती) गुणों का प्रकाश करती हुई (उषा) कान्तियुक्त प्रभात वेला के तुल्य, कमनीय गुणों से अलंकृत विदुषी स्त्री और राज्य में सेना (अघम् अप बाधताम्) पाप को रोके और नष्ट करे, दूर करे। हम (समिधानम् अग्निम्) तेज से देदीप्यमान अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक नेताजन वा प्रभु से (स्वस्ति ईमहे) सुख कल्याण की याचना, प्रार्थना करें।

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

भा०—(इयं) यह (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ, (उस्रा) उत्तम पद को प्राप्त करने वाले, उदयशील, एवं पापों को दूर करने वाली, (रेवती) ऐश्वर्यवती, प्रभुशक्ति, (सुदेव्यं) उत्तम सुखजनक, उत्तम पुरुषों और

कामनावान् पुरुषों के योग्य (रेवत्) धनादि से समृद्ध, ऐश्वर्य और तेज वाली (नः सनिभ्यः) हमारे में से भजनशील वा ज्ञानादि के देने वाले जनों को (वि उच्छतु) उषावत् प्रकाशित करे। हम लोग (दुः-विदत्रस्य) दुखदायी धन वाले के (मन्युं) क्रोध और अभिमान को (आरे धीमहि) दूर करें। अथवा—(दुर्विदत्रस्य मन्युं) बड़ी कठिनता से ज्ञान करने योग्य, दुर्विज्ञेय प्रभु के ज्ञान को (आरे धीमहि) अति समीप धारण करें। (अग्निं समिधानम् स्वस्ति ईमहे) तेजोयुक्त, दीप्तिकारक अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक, प्रभु, नायक से हम सुख-कल्याण की याचना करते हैं।

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ५।६

भा०—जिस प्रकार (व्युष्टिषु) विशेष रूप से प्रकाश होजाने पर (उषसः सूर्यस्य रश्मिभिः ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) प्रभात वेलाएं सूर्य की किरणों के प्रकाश को अपने में धारण करती हुई आती हैं, उसी प्रकार (याः उषसः) जो उत्तम कामनायुक्त, अज्ञान पाप आदि की दाहक, नाशक विदुषी स्त्रियां (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु की (रश्मिभिः) प्रकाशक और नियामक व्यवस्थाओं और वाणियों वा वचनों से (ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) ज्ञान-प्रकाश को धारण करती हुई आगे बढ़ती हैं। वे आप (अद्य) आज (नः श्रवसे) हमें अन्न प्रदान करने, और श्रवण योग्य हमारे यश और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (भद्राः) अति कल्याण और सुखदेने वाली होकर (वि उच्छत) विविध गुणों का प्रकाश करें। (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) हम प्रकाश-स्वरूप प्रभु को सुखपूर्वक प्राप्त हों, उससे कल्याण की याचना करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत्।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं वा प्रातःकालिक प्रभाएं (नः) हमें (अनमीवाः आ चरन्तु) रोगरहित करें। प्रभात की प्रभाओं के समान उत्तम स्त्रियां (अनमीवाः) रोगरहित (नः आ चरन्तु) हमें प्राप्त हों। वे (अग्नयः) सूर्यादि अग्नियों के समान (बृहत् ज्योतिषा) बड़े भारी तेज, ज्ञान-प्रकाश से (उत् जिहताम्) उदय को प्राप्त हों। (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् पशुओं और यन्त्रों के स्वामी, वा जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (तूतुजिं रथं) वेग से जाने में समर्थ रथ को जोड़ें। हम (समिधानम् अग्निम् ईमहे) प्रकाशमान, अग्निवत् तेजोमय, सूर्य वा उसके समान, विद्वान् वा प्रभु से सुख और कल्याण की प्राप्ति वा याचना करें।

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

भा०—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पादक, हे स्वामिन्! तू (नः) हमें (अद्य) आज (श्रेष्ठं) सब से उत्तम (वरेण्यम्) वरण करने चाहने योग्य, उत्तम मार्ग में लेजाने वाला (भागम् आ सुव) सेवने योग्य सुख, धन आदि प्राप्त करा। (सः हि) वह तू (रत्न-धाः असि) रमणीय, सुखप्रद पदार्थों को धारण और प्रदान करने वाला है। हे मनुष्यो! मैं तुम लोगों को (रायः जनित्रीम्) धन के पैदा करने वाली (धिषणाम् उप ब्रुवे) वाणी वा विद्या का उपदेश करता हूं। (अग्निं समिधानं स्वस्ति ईमहे) अग्निवत् ज्ञान-प्रकाश से चमकते हुए गुरु वा प्रभु से हम कल्याण, सुख की याचना करते हैं।

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

भा०—हम (मनुष्याः) मनुष्य, विचारशील लोग (यत् अमन्महि) जिसका मनन, ज्ञान करते हैं (देवानां) विद्वान् जनों के (ऋतस्य)

सत्य ज्ञान, वेद, और यज्ञादि का (तत् प्र-वाचनम्) वह उत्तम उपदेश और अध्यापन आदि (मा पिपर्तु) मुझे पालन और ज्ञान से पूर्ण करे। (सूर्यः) सू ॑ के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाला (विश्वाः उस्राः स्पट्) समस्त किरणों के तुल्य, ऊपर उठने वाली वाणियों को प्रकाशित करता हुआ (उत् ऐति) उदय को प्राप्त हो। ऐसे (समिधानम् अग्निम् स्वस्ति ईमहे) प्रकाश करने वाले अग्निवत् ज्ञानी से हम कल्याण और सुख की प्रार्थना करें, और ऐसे तेजस्वी ज्ञानी को प्राप्त करें।

अ॒द्वे॒षो अ॒द्य ब॒र्हिषः॒ स्तरी॑मणि ग्राव्णां॒ योगे॒ मन्म॑नः॒ साध॑ ईमहे।
आ॒दि॒त्या॒नां॒ शर्म॑णि॒ स्था भु॑रण्यसि स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मि॒धा॒नमी॑महे ॥९॥

भा०—(अद्य) आज (बर्हिषः स्तरीमणि) वृद्धिशील राष्ट्र के विस्तार करने वाले, और (ग्रावणां योगे) उत्तम उपदेष्टा और शत्रु हिंसक वीरों के संयोग होने पर और (मन्मनः साधे) मनन करने योग्य ज्ञान के साधना-काल में हम (अद्वेषः ईमहे) द्वेष से रहित पुरुषों को प्राप्त करें, वा, उनसे ही द्वेष रहित होने की याचना करें। हे मनुष्य! यदि तू (भुरण्यसि) आगे बढ़ना चाहता है, वा अपने को पालन पोषण करना चाहता है तो तू (आदित्यानां) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान के प्रकाशक, और पृथिवी के उपासक कृषकों के तुल्य अन्नोत्पादक जनों के (शर्मणि) दिये सुख शरण में (स्थाः) रह। हम (समिधानम् अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रकाश देने वाले अग्निवत् ज्ञानी पुरुष से अपने कल्याण और सुख की याचना करते हैं।

आ नो॑ ब॒र्हिः स॑ध॒मादे॑ बृ॒हद्दि॒वि दे॒वाँ ई॑ळे सा॒दया॑ स॒प्त होतॄ॑न्।
इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णं सा॒तये॒ भगं॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मि॒धा॒नमी॑महे १०॥७॥

भा०—हे विद्वन्! मैं (बृहद् दिवि) बड़े भारी ज्ञान, प्रकाश के निमित्त (देवान् ईडे) किरणों के तुल्य विद्वान् पुरुषों का आदर सत्कार

करूँ। हे विद्वन्! (सध-मादे) एक साथ हर्षित होने के स्थान में (नः) हमारे (बर्हिः) वृद्धिकारक यज्ञ, राष्ट्र में तू (सप्त होतॄन्) यज्ञमें सात ऋत्विजों के समान सात विद्वान् पुरुषों को (सादय) स्थापित कर। हम लोग (सातये) धनादि लाभ के लिये (इन्द्रं मित्रं वरुणं भगं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, सर्वस्नेही, दुःखवारक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वसेवनीय, (समिधानम् अग्निम् ईमहे) सदा तेजस्वी अग्निवत् ज्ञानी प्रभु से कल्याण की प्रार्थना करें। इति सप्तमो वर्गः॥

त आ॑दि॒त्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये वृ॒धे नो॑ य॒ज्ञम॑वता सजोषसः।
बृह॒स्पतिं॑ पू॒षण॑म॒श्विना॒ भगं॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे॥११॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी ज्ञान, धन आदि के देने और स्वीकार करने वाले वा सूर्य-रश्मियों, सर्वोपकारक, आदित्य ब्रह्मचारी एवं वृद्ध पितामहादि के तुल्य पूज्य जनो! (ते) वे आप लोग (सर्व-तातये) सब के कल्याण के लिये (आगत) आइये। आप लोग (स-जोषसः) प्रेम और स्नेह से युक्त होकर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (यज्ञम् अवत) हमारे दिये अन्न, सेवा आदि और सत्संग यज्ञ आदि को भी प्रेम से स्वीकार करो, हमारे यज्ञ की रक्षा करो। (बृहस्पतिम्) बड़े राष्ट्र बल, ज्ञान और वाणी के पालक, (पूषणम्) सब के पोषक और वर्धक (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों, (भ ं) ऐश्वर्यवान् और (समिधानम् अग्निम्) तेजस्वी, दीप्तिदायक, ज्ञानप्रकाशक, नायक, प्रभु गुरु से हम (स्वस्ति ईमहे) सुख, कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

तन्नो॑ देवा यच्छत सुप्रवाच॒नं छ॒र्दिरा॑दित्याः सु॒भरं॑ नृ॒पाय्य॑म्।
पश्वे॑ तो॒काय॒ तन॑याय जी॒वसे॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे॥१२॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् ज्ञानदाता गुरुजनो! आप लोग (नः) हमें (तत्) वह उत्तम २ (सु-प्रवाचनं यच्छत) सुखदायक, उत्तम उत्कृष्ट

वचनोपदेश, प्रदान करो । हे (आदित्याः) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग (नृ-पाय्यम्) सब मनुष्यों के पालन करने में समर्थ (सु-भरं) उत्तम रीति से पालन पोषण करने में समर्थ (छर्दिः) गृह, शरण (यच्छत) प्रदान करो । (पश्वे) पशु, (तोकाय) पुत्र, (तनयाय) पौत्र इनके (जीवसे) जीवन और (स्वस्ति) कल्याण के लिये हम (अग्निं समिधानम्) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक आचार्य वा प्रभु से (ईमहे) याचना करते हैं उसको प्राप्त कर उसे ज्ञान, प्रकाश और आशीष् प्राप्त करते हैं ।

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे १३

भा०—(विश्वे मरुतः) बलवान् और शत्रुनाशक और वैश्य मनुष्य, (अद्य) आज (नः ऊती भवन्तु) हमारी रक्षा के लिये हों । और (विश्वे) सभी प्राणी (नः ऊतये भवन्तु) हमारी रक्षा और प्रीति के लिये हों। (विश्वे अग्नयः) समस्त ज्ञानी, अग्रणी जन (ऊतये) रक्षा, ज्ञान, प्रीति सत्संगादि के लिये (सम्-इद्धाः) अच्छी प्रकार तेजस्वी, अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक (उती भवन्तु) हमारी ज्ञानवृद्धि के लिये हों । (विश्वे देवाः) समस्त दानशील तेजस्वी जन (अवसा) ज्ञान और रक्षा और प्रेम सहित (नः आगमन्तु) हमें प्राप्त हों । और (अस्मे) हमें (विश्वम्) सब प्रकार का (द्रविणम्) धन-ऐश्वर्य, वीर्य और (वाजः अस्तु) ज्ञान और बल प्राप्त हो ।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः १४॥८

भा०—हे (देवासः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! (वाज-सातौ) संग्राम वा धनैश्वर्य के भोग और ज्ञान की प्राप्ति के अवसर पर (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते, जिसको प्रेम करते और जिसके

साथ सत्संग करते हो, और (यं त्रायध्वे) जिसको कष्ट या शत्रु आदि से बचाते हो, (यं अंहः अति पिपृथ) जिसको पाप से पार करते हो। और (यः वः गोपीथे भयस्य न वेद) जो आप लोगों की रक्षा में रहता हुआ किसी प्रकार का भय नहीं जानता ऐसे (ते) वे तीनों वर्गों के हम (तुरासः) अति शीघ्रकारी जन (देव-वीतये) सूर्यवत् तेजस्वी होने, राजा की रक्षा करने और उत्तम गुणों से चमकने वा सज्जनों की रक्षा वा यज्ञार्थ (स्याम) सदा समर्थ और तैयार हों। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३६]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८'११ निचृज्जगती। ३ विराड् जगती। ५, ९, १० जगती। १२ पादनिचृज्जगती। १३ त्रिष्टुप्। १४ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः॥१॥

भा०—(उषासा नक्ता) प्रभातवेला या दिन-रात्रिकाल के समान ज्ञान और कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुष, (बृहती) बड़े (सु-पेशसा) उत्तम रूपवान्, सुन्दर, ऐश्वर्ययुक्त, (द्यावा क्षामा) सूर्य, भूमि के तुल्य सर्वोपकारक, तेजस्वी सर्वाश्रय और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान्, (अर्यमा) दुष्ट पुरुषों के नियन्ता, न्यायाधीश, इनको और (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता, (मरुतः) वायुवत् बलवान्, (पर्वतान्) पर्वतों के समान अचल, मेघों के समान सर्वपालक, (अपः) जलों के समान शीतल, (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमिवत् तेजस्वी, सर्वाश्रय और (स्वः) आकाशवत् सुखप्रद, (अपः) अन्तरिक्ष के समान विशाल, इन सब जनों के मैं (हुवे) आदर से बुलाऊं। इसी प्रकार उन सब दिव्य पदार्थों को (हुवे) मैं अपने उपयोग में लूं।

द्यौश्च॑ नः पृथि॒वी च॒ प्रचे॑तस ऋ॒ताव॑री रक्ष॒ताम॑ह॑सो रि॒षः।
मा दु॒र्वि॑द॒त्रा निर्ऋ॑ति॒र्न ईशत त॒द्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ २॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी और उनके तुल्य तेजस्वी, ज्ञानप्रद, सर्वाश्रय और अन्नप्रद, (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञानवान्, बड़े उदार चित्त वाले, (ऋत-वरी) जलवत् शान्तिदायक और अन्नवत् पुष्टिकारक, सत्य ज्ञान से युक्त, जन (नः) हमारी (रिषः) नाशकारी (अंहसः) पाप से (रक्षताम्) रक्षा करें। (दुः-विदत्रा) दुःखदायक, (निर्ऋतिः) कष्टदशा, जल, अन्न और ज्ञान के अभाव की दुःखदायी दशा, (नः मा ईशत) हम पर अधिकार न करे। (तत्) इसी कारण (अद्य) आज हम (देवानाम्) विद्वानों और मेघ, भूमि, सूर्य, वायु आदि के (अवः) ज्ञान और रक्षा बल की (वृणीमहे) याचना करें और प्राप्त करें।

विश्व॑स्मान्नो॒ अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सो मा॒ता मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य रे॒वतः॑।
स्व॑र्व॒ज्ज्योति॑रवृ॒कं न॑शीमहि त॒द्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे॥ ३॥

भा०—(मित्रस्य) अति स्नेही, प्राणवत्, वायुवत्, प्रिय और जीवन के रक्षक और (वरुणस्य) सब दुःखों के वारक, राजा आदि और (रेवतः) ऐश्वर्यवान् की भी (माता) जननी के तुल्य उत्पादक, उनको भी शासक आदि बनाने वाली, (अदितिः) अखंड शक्तियुक्त, ब्रह्मशक्ति वा राजसभा (नः विश्वस्मात् अंहसः पातु) हमें समस्त प्रकार के पाप से बचावे। हम लोग (अवृकं) विविध प्रकार के हिंसाकारी कष्टों, वा छल कपट आदि से रहित (स्वर्वत् ज्योतिः) सुख, प्रकाश आदि से युक्त तेजःप्रकाश को (नशीमहि) प्राप्त हों। (तत् देवानां अवः अद्य) हम विद्वानों और दिव्य पदार्थों के उसी श्रेष्ठ ज्ञान और रक्षासामर्थ्य को (वृणीमहे) चाहें, पावें और प्राप्त करें।

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुःष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम्।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥४॥

भा०—(वदन्) आज्ञा और उपदेश देता हुआ, (ग्रावा) पत्थर के समान शत्रुओं को चूर्ण कर देने वाला क्षत्रिय और उत्तम उपदेष्टा विद्वान् पुरुष (रक्षांसि) विघ्नों और सन्मार्ग के बाधक दुष्ट पुरुषों को (अप सेधतु) दूर करे। वह (दुः-स्वप्न्यं) दुःखकारक शयन, (निर्ऋतिम्) पीड़ा, क्षुधा, अकाल आदि और (विश्वम् अत्रिणम्) सब प्रकार के प्रजाओं के भक्षक दुष्ट जनों को (अप सेधतु) दूर करे । हम लोग (आदित्यं) 'अदिति' अर्थात् सूर्य भूमि, माता पिता, पुत्र, राजा आदि से प्राप्त होने योग्य (मरुतां शर्म) विद्वान् जनों के सुख को (अशीमहि) प्राप्त करें। हम (देवानां तत्) विद्वान् जनों और दिव्य पदार्थों के उस (अवः) प्रेम, ज्ञान, और बल रक्षा आदि को (वृणीमहे) सदा चाहें, सदा प्राप्त करें ।

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (बर्हिः आसीदतु) आसनवत् प्रजा पर आ विराजे। (इडा) अन्न, भूमि, वाणी, ये (पिन्वताम्) सब को तृप्त, सुखी, करें। (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक (ऋक्वः) ऋचाओं, अर्चना के साधनों का जानने वाला, (सामभिः) साम गायनों से उद्गाता के समान (अर्चतु) पूज्यों का अर्चना करे और हम (जीवसे) जीवन के लाभ और रक्षा के लिये (मन्म) मनन करने योग्य (सु-प्र-केतम्) उत्तम, श्रेष्ठ ज्ञान और धन, गृह आदि को (धीमहि) धारण करें। (देवानां तत् अवः वृणीमहे) विद्वानों के हम उस परम ज्ञान, रक्षा, स्नेह आदि को नित्य चाहें। इति नवमो वर्गः॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या को प्राप्त करने वाले, सन्मार्ग पर चलने वाले और जितेन्द्रिय, उत्तम वेगवान् अश्वों के स्वामिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्माकम्) हमारे (इष्टये) इष्ट लाभ, इच्छापूर्त्ति और यज्ञादि की सफलता के लिये (यज्ञं) दान, सत्संग, पूजा, अर्चनादि को (दिवि-स्पृशम्) ज्ञानमय वा उत्तम कामनामय मार्ग में जाने वाला, और (जीराध्वरं) जीवनधारी प्राणियों को नाश न करने वाला और (सुम्नं) सुखदायक (कृणुतम्) करो और (प्राचीन-रश्मिम्) आगे बढ़ने वाले रश्मियों से युक्त अग्नि को (घृतेन) घृत से (आहुतम् कृणुतम्) आहुतियुक्त करो । (२) परमेश्वर पक्ष में–(दिवि-स्पृशं) तेज, ज्ञान में व्याप्त, (यज्ञं) सर्वपूज्य, (जीराध्वरं) सब जीवा के पोलक (सुम्नं) सुखमय, (प्राचीन-रश्मिम्) प्रकट रश्मियों से युक्त, अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी, (घृतेन आहुतं) तेज से व्याप्त प्रभु का (अस्माकम् इष्टये कृणुतम्) हमारी देवपूजा के लिये हमें उपदेश करो। हम (तद् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) देवों, विद्वानों के उस ज्ञान को प्राप्त करें ।

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ७ ॥

भा०—मैं (सु-हवं) उत्तम यज्ञशील, सुखप्रद, उत्तम नाम को धारण करने वाले, (मारुतं गणम्) वायुवत् बलवान् पुरुषों के तुल्य, देह में प्राणगण को (उप ह्वये) अपने समीप बुलाऊं, उनको प्राप्त करूं । और (सख्याय) मित्र भावके लिये (शं भुवम्) शान्तिजनक, (ऋष्वं) महान् (पावकम्) सबको पवित्र करने वाले प्रभु की (उप ह्वये) स्तुति करता हूं । और (सौश्रवसाय) उत्तम सुखपूर्वक अन्न, धन, ज्ञानादि के

लाभ के लिये हम (रायः पोषम् धीमहि) धन के परिपोषक को धारण करें। (देवानां तद् अवः अद्य वृणीमहे) विद्वानों के उस २ ज्ञान, धन, बलादि को हम प्राप्त करना चाहें।

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम्।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

भा०—हम लोग (अपां पेरुम्) जलों के पालक मेघ वा समुद्रवत् प्रजाओं, और प्राणों के रक्षक, (देव-अव्यम्) विद्वानों से प्राप्य, कामनावान् जनों से स्वामीवत् स्नेह करने योग्य, (सु-हवं) सुखप्रद, सुगृहीत नाम वाले उत्तम दाता, (अध्वर-श्रियम्) यज्ञ की शोभा को धारण करने वाले, अविनाशी सम्पदा से युक्त, प्रभु को (भरामहे) धारण करें। और हम (सु-रश्मिम्) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य वा अश्व, सारथिवत् (सोमम्) जगत् वा देह के प्रेरक स्वामी के तुल्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यों के स्वामी, इन्द्रियों के अध्यक्ष, प्रभु आत्मा को (यमीमहि) संयम द्वारा प्राप्त करें। (तत् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान, और प्राणों का वह बल भी प्राप्त करें।

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(वयम्) हम (अनागसः) पापरहित (जीव-पुत्राः) जीवित पुत्रों से युक्त, (जीवाः) स्वयं जीवित रहते हुए (सनित्वभिः) दानशील पुरुषों सहित, (सुसनिता तत् सनेम) सुखपूर्वक सेवन करने और दान आदि के द्वारा उस प्रभु का भजन, सेवा, आदि करें। और (ब्रह्म-द्विषः) विद्वानों, वेदों और आत्मा, परमात्मा के द्वेषी जन (एनः) पाप आदि अपराध को (विश्वक् भरेरत) सब प्रकार से भोगें, वे पाप का दण्ड प्राप्त करें। (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों और दानशील पुरुषों के उस उत्तम स्नेह को प्राप्त करें।

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्दधातन।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥१०॥१०॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (ये) जो (मनोः) मननशील ज्ञानमय आत्मा के (यज्ञियाः) पूजा करने में तत्पर, यज्ञ में रत (स्थ) हो, (ते) वे आप (शृणोतन) श्रवण करो, उस आत्मा का श्रवण करो। और हे (देवाः) दानशील, तेजस्वी पुरुषो! हम (वः यत् ईमहे) आप लोगों से जो ज्ञान आदि की याचना करते हैं तत् (दधातन) उसको धारण कराओ, उसका हमें दान करो। हमें (जैत्रं क्रतुम्) सब संकटों पर विजय प्राप्त कराने वाले ज्ञान और कर्म बल, और (रयिमत् वीरवत् यशः) धनों और पुत्रों, प्राणों से युक्त यश, अन्न, बल आदि प्रदान करो। (अद्य देवानाम् अवः वृणीमहे) हम ज्ञानी, दानशील विद्वानों का वह ज्ञान, बल, रक्षण प्राप्त करें। इति दशमो वर्गः॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम्।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥११॥

भा०—(अद्य) आज, हम लोग (महताम्) बड़े (अनर्वणाम्) अहिंसक और अनुपम, (बृहताम्) शक्ति, ज्ञान, आदि में बढ़े हुए (देवानाम्) विद्वानों, विजयार्थियों और दानियों का (अवः आवृणीमहे) शरण, रक्षण, सब ओर से चाहते हैं। (यथा) जिससे (वीर-जातं) हम वीर पुत्र, और (वीर-जातं वसु) वीरों से प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य को (नशामहै) प्राप्त करें। (देवानाम् अद्य तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के वही उत्तम बल ज्ञान, रक्षा आदि चाहते हैं।

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे॥१२॥

भा०—(महः) बड़े (समिधानस्य) अच्छी प्रकार से देदीप्यमान

उस प्रभु के (शर्मणि) परमानन्दमय सुख में रहें । हम (स्वस्तये) कल्याण को प्राप्त करने के लिये (मित्रे) स्नेहवान्, प्राणों के रक्षक (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ प्रभु के अधीन (अनागाः स्याम) पाप, अपराध से रहित होकर रहें। और (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक उस प्रभु के (श्रेष्ठे सवीमनि) सर्वश्रेष्ठ शासन में (स्याम) रहें। (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान, बल, स्नेह प्राप्त करें।

ये स॑वि॒तुः स॒त्यस॑वस्य॒ विश्वे॑ मि॒त्रस्य॑ व्र॒ते वरु॑णस्य दे॒वाः ।
ते सौभ॑गं वी॒रव॑द्गोम॒दप्नो॒ दधा॑तन॒ द्रवि॑णं चि॒त्रम॒स्मे ॥१३॥

भा०—(ये) जो (देवाः) विद्वान् जन (सत्य-सवस्य मित्रस्य) सत्य ऐश्वर्य के स्वामी, सर्वस्नेही, मृत्यु से बचाने वाले (वरुणस्य) सब दुःखों के वारणकर्त्ता, सर्वश्रेष्ठ प्रभु के (व्रते) व्रत में तत्पर हैं, (ते विश्वे) वे सब (वीरवत्) वीरों से युक्त (गोमत्) वाणियों, भूमियों और पशुओं से समृद्ध, (सौभगं) उत्तम ऐश्वर्य, और (अप्नः) उत्तम ज्ञान, कर्म और (चित्रं) संग्रह करने योग्य नाना, अद्भुत (द्रविणं) धन (अस्मे) हमें (दधातन) प्रदान करें।

स॒वि॒ता प॒श्चाता॑त्सवि॒ता पु॒रस्ता॑त्सवि॒तोत्त॒रात्ता॑त्सवि॒ताध॒रात्ता॑त् ।
स॒वि॒ता नः॑ सुवतु स॒र्वता॑तिं स॒वि॒ता नो॑ रासतां दी॒र्घमायुः॑ ॥१४।११॥

भा०—(सविता पुरस्तात्) समस्त जगत् का उत्पादक प्रभु हमारे आगे, (सविता पश्चातात्) सबका सन्मार्ग में संचालक प्रेरक प्रभु हमारे पीछे हो, (सविता उत्तरात्तात्) ऐश्वर्यदाता प्रभु हमारे उत्तर में, वायें या ऊपर हो और (अधरात्तात् सविता) वह सर्वैश्वर्य का उत्पादक हमारे दक्षिण में या नीचे हो। (सविता नः सर्वतातिं सुवतु) वह सर्वोत्पादक प्रभु हमारा सब अभिलषित सुख प्रदान करे। (सविता नः दीर्घम् आयुः रासतां) वह सर्वप्रेरक, सर्वप्रभु जगदीश्वर हमें दीर्घ आयु प्रदान करे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[३७]

अभितपाः सौर्य ऋषिः ॥ छन्दः—१–५ निचृज्जगती । ६–९ विराड् जगती ।
११, १२ जगती । १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तं स॑पर्यत ।
दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य शंसत ॥ १ ॥

भा०—(मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे) मित्र, दिन और वरुण रात्रि दोनों को दिखाने वा प्रकट करने वाले (महः देवाय) बड़े भारी प्रकाशक सूर्य के (ऋतम्) तेज को जिस प्रकार आप लोग सर्व श्रेष्ठ मानते और उस का उपयोग लेते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! (मित्रस्य वरुणस्य) परम स्नेही, मृत्यु से बचाने वाले और सर्वश्रेष्ठ रूप के (चक्षसे) दिखाने वाले (महः देवाय) बड़े भारी दाता, प्रकाशस्वरूप प्रभु के (तद् ऋतं) उस सत्य ज्ञान का (सपर्यत) पूजा, मान, आदर करो, उसका श्रद्धा-पूर्वक उपयोग लो । और (दूरे-दृशे) दूर से दीखने वाले, (देव-जाताय) समस्त प्रकाशमान पदार्थों और विद्वानों में प्रकट होने वाले (केतवे) ज्ञानस्वरूप, (दिवः पुत्राय) महान् आकाश के पुत्रवत् (सूर्याय) सूर्य के तुल्य तेजस्वी एवं (दिवः पुत्राय) ज्ञान-प्रकाश के द्वारा हृदय में प्रकट (सूर्याय) सबके प्रेरक प्रभु की ही (शंसत) स्तुति करो ।

सा मा॑ स॒त्योक्तिः॒ परि॑पातु वि॒श्वतो॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ त॒तन॒न्नहा॑नि च ।
विश्व॑म॒न्यं नि वि॑शते॒ यदेज॑ति वि॒श्वाहापो॑ वि॒श्वाहोदे॑ति॒ सूर्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(यत्र) जिसके आश्रय (द्यावा च अहानि च) दिन और रात्रियें भी (ततनन्) उत्पन्न होती हैं, (यद् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जड़से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय (नि-विशते) बसा है और जिसके आश्रय (आपः विश्वाहा) सर्वदा जल, नदी, समुद्रादि, प्राण, लिंग, शरीरादि, और समस्त प्रजाएं स्थित हैं, (विश्वाहा सूर्यः उदेति)

जिसके आश्रय पर सूर्य उदय को प्राप्त होता है। (सा सत्योक्तिः) वह सत्य वचन (मा विश्वतः परिपातु) मेरी सब प्रकार से रक्षा करे।

न ते अदेवः प्रदिवो निवासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य॥ ३॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार सूर्य (एतशेभिः पतरैः) अति वेग से जाने वाले अश्वों के तुल्य श्वेत किरणों से (रथर्यति) व्यापता, प्राप्त होता है, और कोई (अदेवः न निवासते) अप्रकाशित पदार्थ नहीं रह जाता है, (प्राचीनं रजः अनु वर्त्तते) तब उसका एक प्रकाश पूर्व दिशा की ओर प्रकट होता है, और (अन्येन ज्योतिषा याति) दूसरे, पश्चिमगामी, ज्योति से जाता, अस्त होता है। इसी प्रकार हे (सूर्य) सूर्यवत् उदय अस्त होने वाले आत्मन् ! (यत्) जो तू (पतरैः) गमनशील (एतशेभिः) अश्ववत् प्राणों से (रथर्यति) देह रूप रथ से प्राप्त होता है, तब (ते) तेरा कोई भी (प्रदिवः) पुराना अंश (अदेवः) आप्रकाशित वा अप्राणित (न निवासते) नहीं रह जाता। चक्षु, श्रोत्र आदि या प्रत्येक देह का अवयव प्राण से युक्त रहता है। हे (सूर्य) उत्पन्न होने वाले वा प्राणों के प्रेरक आत्मन् ! (अन्यत्) एक विशेष (प्राचीनं) अति उत्तम, प्रथम प्रकट होने वाले (रजः) तेज, जल वा उत्पादक वीर्य (अनु वर्त्तते) उत्पादक रूप से प्रकट होता, वही निरन्तर विकसित होकर प्राणिरूप में प्रकट होता है, और (अन्येन ज्योतिषा) एक दूसरे ही प्रकार के तेज से तू इस देह से (उत् यासि) उत्क्रमण करता है। आत्मा की देह में अवक्रान्ति सूर्य के उदय और अस्तमयवत् होती है। जिसका वर्णन बृहदारण्यक में याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद में वर्णित है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव॥ ४॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन् ! सर्वप्रेरक ! सर्वोत्पादक प्रभो ! तू (येन ज्योतिषा तमः बाधसे) जिस तेज से अन्धकार को दूर करता है और (येन भानुना) जिस तेजः-प्रकाश से (विश्वम् जगत् उत् इयर्षि) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है, (तेन) उस तेज से तू (अस्मत्) हमसे (विश्वाम्) समस्त (अनिराम्) अन्न जल के अभाव, (अनाहुतिम्) यज्ञादि के अभाव, (अमीवाम्) रोग व्याधि, (दुःस्वप्न्यं) दुःस्वप्न आदि के कारण को (अप सुव) दूर कर। पक्षान्तर में सूर्य का तेज अन्धकार को नाश करता, जगत् के प्राणियों को जगाता, जल, अन्न को प्रदान करता है, रोग और दुःस्वप्न आदि दोषों को दूर करता है।

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥ ५ ॥

भा०—हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (प्रेषितः) सब भक्तों द्वारा खूब चाहा जाता है। तू (अहेडयन्) किसी का अनादर न करता हुआ, (विश्वस्य हि व्रतम् रक्षसि) सबके व्रतों, कर्मों और जगत् के परम विधान, नियम, व्यवस्था की रक्षा करता है। हे प्रभो ! (अद्य) आज (यत् त्वा उप ब्रवामहै) जिस कर्म की हम तुझ से उपासना द्वारा प्रार्थना करते हैं (तत् क्रतुम्) उस कर्म की (देवा अनु मंसीरत) देव, विद्वान् गण हमें अनुमति देवें।

तं नो द्यावा पृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि६।१२

भा०—(द्यावापृथिवी) माता और पिता, (नः तं हवं श्रृण्वन्तु) हमारे उस आह्वान, ग्राह्य वचन आदि को श्रवण करें। (आपः) आप्त जन हमारे (तं) उस आह्वान को सुनें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीरजन और (मरुतः) वायुवद् बलवान्, विद्वान् लोग (नः वचः श्रृण्वन्तु) हमारे

वचन सुनें। (सूर्यस्य सं-दृशि) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु वा शासक के सम्यक् प्रकाशमय न्याय-दर्शन के अधीन हम (शूने मा भूम) शून्य, निस्सार वा बड़े दुःख में न रहें, प्रत्युत (भद्रं जीवन्तः) अति सुखदायी जीवन को व्यतीत करते हुए (जरणाम् अशीमहि) वृद्ध-अवस्था को प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य॥७॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य, सूर्यवत् सर्वोत्पादक सर्वप्रकाशक प्रभो! हम, (विश्वाहा) सदा, (सु-मनसः) शुभ मन वाले (सु-चक्षसः) उत्तम बाह्य नयन, और ज्ञान-नयनों से सम्पन्न, (प्रजावन्तः) उत्तम प्रजा वाले, सुसन्तानयुक्त, (अनमीवाः) रोगरहित, (अनागसः) निरपराध, निष्पाप हों। हे (मित्र-महः) स्नेही जनों से पूज्य! स्नेही जनों के आदर करने हारे वा मृत्यु से बचाने वाले महान्! हम तुझे (दिवे-दिवे उत् यन्तं पश्येम) दिन प्रतिदिन ऊपर उठता हुआ देखें। हम (जीवाः) जीवित रहते हुए प्राणिगण, (ज्योक् प्रति पश्येम) चिरकाल तक तेरा प्रत्यक्ष दर्शन करें।

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषे चक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य॥८॥

भा०—हे (विचक्षण) विविध प्रकारों से जगत् के देखने हारे! (चक्षुषे-चक्षुषे) प्रत्येक आंख के लिये (मयः) सुख और (महि ज्योतिः बिभ्रतम्) बड़े भारी तेज को धारण करते हुए (भास्वन्तं) अति प्रकाश से चमकते हुए और, (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी समुद्र के ऊपर उदय होते सूर्यवत् (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी बल से चलने वाले विश्व के संचालक काल के ऊपर (आरोहन्तं) चढ़े हुए, उसके भी शासक तुझको हे (सूर्य) सर्वसञ्चालक प्रभो! सूर्य! (त्वा) तुझे हम (प्रति पश्येम) प्रत्यक्ष साक्षात् करें।

यस्य॑ ते॒ विश्वा॒ भुव॑नानि के॒तुना॒ प्र चेर॑ते॒ नि च॑ वि॒शन्ते॑ अ॒क्तुभिः॑ ।
अ॒ना॒गा॒स्त्वेन॑ हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो॒ वस्य॑सावस्य॒सोदि॑हि ॥९॥

भा०—हे (हरि-केश) तेजोयुक्त किरणों वाले ! क्लेश समूहों को हरण करने वाले ! (यस्य ते) जिस तेरे (केतुना) ज्ञान-प्रकाश से (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (प्र ईरते च) अच्छी प्रकार चलते हैं और (ते अक्तुभिः) तेरे प्रकाशों से (प्रति विशन्ते च) अच्छी प्रकार स्थिर हैं। वह तू (अनागास्त्वेन) अपराध पाप आदि से रहित करता हुआ (वस्यसा-वस्यसा) अति श्रेयस्कर (अह्ना-अह्ना) दिनोंदिन (उत् इहि) उदय को प्राप्त हो।

शं नो॑ भव॒ चक्ष॑सा॒ शं नो॒ अह्ना॒ शं भा॒नुना॒ शं हि॒मा शं घृ॒णेन॑ ।
यथा॒ शमध्व॒ञ्छमस॑द्दुरो॒णे तत्सू॑र्य॒ द्रवि॑णन्धेहि चि॒त्रम् ॥ १० ॥

भा०—हे (सूर्य) सर्वप्रेरक ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (चक्षसा) सर्वप्रकाशक, सर्वशक्तिमान् तेज से (नः शं भव) हमें शान्तिदायक हो। (नः अह्ना शं) दिनवत् अविनश्वर बल से हमें शान्ति दे। (हिमा शं) तू शीतलस्वरूप से हमें शान्ति दे। (घृणेन शम्) अपने तापयुक्त तेजस्वी स्वरूप से हमें शान्ति दे। (भानुना शम्) हमें अपने कान्तिमय रूप से शान्ति दे। तू (तत्) वह परम (चित्रं द्रविणं धेहि) ज्ञानमय, सञ्चय-योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर (यथा) जिससे (अध्वन् शम् असत्) जीवन-मार्ग में हमें शान्ति प्राप्त हो। (दुरोणे शम् असत्) गृह में हमें शान्ति प्राप्त हो।

अ॒स्माकं॑ देवा उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ शर्म॑ यच्छत द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
अ॒दत्पिब॑दू॒र्जय॑मान॒माशि॑तं॒ तद॒स्मे शं योर॑र॒पो द॑धात॒न ॥ ११ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् तेजस्वी, किरणोंवत् प्रकाश, जल, अन्न, सुख, आरोग्यादि देनेहारे जनो ! आप लोक (उभयाय जन्मने) जन्म

लेने वाले दोनों प्रकार के (द्विपदे चतुष्पदे) दोपाये बन्धु, भृत्य आदि और चौपाये गौ, अश्व आदि सब को (शर्म यच्छत) सुख प्रदान करो। और (अदत्-पिबत्) खाया पिया हुआ और (आशितम्) प्राप्त किया गया, अन्यों द्वारा खिलोया गया पदार्थ भी (ऊर्जयमानम्) बल उत्पन्न करने वाला हो। आप लोग (अस्मे) हमें (अरपः) निष्पाप (शं योः) शान्तिदायक, दुःखनाशक वस्तु (दधातन) प्रदान करो।

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम्।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों के प्रति (जिह्वया) वाणी द्वारा (यत्) जो हम (गुरु देवहेडनम् चकृम) भारी विद्वानों का अनादर करें (वा) अथवा (मनसः प्रयुती) मन के प्रयोग से यदि अपराध करें तो (यः) जो (नः) हमारे बीच (अरावा) अदानशील, दुष्ट शत्रु (नः अभि) हम पर सब ओर से (दुच्छुनायते) दुःख कष्ट देना चाहता है, हम पर पापाचरण करता है (तस्मिन्) उसके निमित्त उस पर हे (वसवः) वसु, विद्वान् जनो! (तत् एनः) वह पाप (नि धेतन) स्थापित करो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[३८]

इन्द्रो मुष्कवान् ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती। ३, ४, विराड् जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य वा मेघ (यशस्वति शिमीवति)

अन्न जल से युक्त, कर्मवान् वायु से युक्त अन्तरिक्ष में (पृत्सुतौ क्रन्दसि) सब प्राणियों के पालक अन्न के उत्पत्ति के लिये गर्जता है और (गो-साता) भूमि पर पड़ते हुए (खादिषु धृषितेषु) जलग्राही रश्मियों के असह्य तापवान् होने पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती बिजुलियें पड़ती हैं, उसी प्रकार (यत्र) जिस (गो-साता) भूमि आदि के लाभ करने के निमित्त (नृ-साह्ये) नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य युद्ध में (धृषितेषु) बलात्कार करने वाले अति ढीठ, (खादिषु) एक दूसरे को खाजाने वाले शत्रुओं पर (दिद्यवः) चमचमाते, वा देह को खण्ड २ कर देने वाले अस्त्र-शस्त्र (पतन्ति) वेग से जाते हैं। (अस्मिन्) इस (पृत्सुतौ) नाना सेनादि सञ्चालन करने योग्य (यशस्वति) यशोदायक, (शिमीवति) नाना कर्मों वाले युद्ध में हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक, ऐश्वर्यवन् ! (नः क्रन्दसि) तू हमारे बीच मेघवत् गर्जता है, हमें (क्रन्दसि) बुलाता, आज्ञा देता है, वह तू (सातये) धनादि लाभ के लिये (नः प्र अव) हमारी खूब रक्षा कर ।

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सत्य-ज्ञान के दर्शन करने कराने हारे ! जिस प्रकार सूर्य (क्षुमन्तं गो-अर्णसं रयिम् वि ऊर्णोति) अन्नयुक्त भूमि के धनरूप ऐश्वर्य को प्रकट करता है उसी प्रकार (सः) वह तू (नः सदने) हमारे गृह, भवन, आश्रम में (क्षुमन्तम्) शब्द-उपदेश से युक्त, (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य (गो-अर्णसम्) वेदवाणी और भूमि रूप धन से सम्पन्न (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य को (वि ऊर्णुहि) विविध प्रकार से प्रकट कर। (जयतः ते) तेरे विजय करते हुए हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हम (मेदिनः स्याम) परस्पर स्नेही, बलवान् योद्धा हों। हे (वसो) सब को बसाने वाले ! सब में बसने वाले प्रभो !

स्वामिन्! (यथा वयम् उष्मसि) हम जिस प्रकार कामना करें तू (तत् कृधि) वह कर।

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ३

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतसी प्रजाओं द्वारा प्रस्तुत, मुख्य शासक! (यः) जो (नः) हमारे बीच (दासः) हमारा भृत्य, काम करने वाला, वा (आर्यः) श्रेष्ठ स्वामी, (अदेवः) आदानशील, हमारे अधिकार और ऋण आदि को न देता हुआ (युद्धये चिकेतति) युद्ध करने के लिये सोचता है, (ते) तेरे वे सब शत्रु लोग (अस्माभिः) हम द्वारा (सु-सहाः सन्तु) सुख से पराजित हों। और (त्वया) तुझ द्वारा (वयं) हम भी (तान्) उन शत्रुओं को (संगमे) संग्राम में (वनुयाम) विनाश करें।

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

भा०—(यः) जो (द भिः) छोटे या स्वल्पबल और (यः च) जो (भूरिभिः) बहुता से या बहुत बलशालियों से भी (हव्यः) स्तुति योग्य है, (यः) जो (नृ-साह्ये अभीके) वीर नायकों द्वारा विजय योग्य संग्राम में (वरिवः-वित्) उत्तम धन प्राप्त कराने हारा है, (वि-खादे) विविध प्रकार से मनुष्यों को नाश करने वाले संग्राम में (सस्निं) निष्णात (श्रुतं) प्रसिद्ध (तं) उस बहुश्रुत, (इन्द्रम्) तेजस्वी, सूर्यवत् ऐश्वर्यप्रद, सेनापति (नरम्) नायक को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (अर्वाञ्चं करामहे) अपने अभिमुख साक्षात् करें।

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम्।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ५।१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! (त्वाम्) तुझको मैं (स्व-वृजम्) स्वयमेव अपने सामर्थ्य से सब बन्धनों को काटने वाला, असङ्ग ही (शुश्रव) श्रवण करता हूँ। और तुझ को मैं (अनानुदम्) दूसरे के दान की अपेक्षा न करने वाला तथा (रध्र-चोदनम्) वशगामियों को सन्मार्ग में चलाने वाला (शुश्रवे) सुनता हूँ। हे (वृषभ) बलशालिन् नरश्रेष्ठ ! तू (कुत्सात्) निन्दित मार्ग से (प्र मुञ्चस्व) अपने को वा अन्यों को शीघ्र मुक्त कर (इह परि आगहि) यहां आ। (किम् उ) क्या (त्वावान्) तेरे जैसा ज्ञानी (मुष्कयोः बद्धः) मुष्कों, अण्डकोशों में बंधा अर्थात् भोग्य इन्द्रिय सुखादि में वा आत्मा पक्ष में—वा गर्भाशयादि स्थानों पर मनुष्य पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि योनियों में बंधा (आसते) रह सकता है।

(२) इसी प्रकार पूर्ण, विद्यावान् जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर वीर्यसेचन में समर्थ ब्रह्मचारी हो वह (कुत्सात्) उपदेष्टा आचार्य-गृह से पितृगृह में आवे। वह क्या अब सदा (मुष्कयोः बद्धः) अण्डकोशों में बद्ध, लंगोट बन्द ही रहेगा नहीं। वह पूर्व मन्त्रानुसार (सस्नि) स्नातक होकर गृहस्थ में प्रवेश करे। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३९]

घोषा काक्षीवती ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ६, ७, ११ १३ निचृज्जगती २, ८, ९, १२, जगती। ३ विराड् जगती। ४, ५ पादनिचृज्जगती। १० आर्ची स्वराड् जगती। १४ निचृत् त्रिष्टुप्॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे॥ १॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् वा प्रजा राजावत् अश्वों

इन्द्रियों के स्वामी जनो वा स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों में से (परि-ज्मा) सब ओर बलपूर्वक जानने वाला, (सुवृत्) उत्तम आचरणवान्, (सुवृत् रथः) सुखपूर्वक चलने वाले रथ के समान आनन्दपूर्वक उद्देश्य तक पहुंचाने वाला है, वह उत्तम नायक उपदेष्टा, (दोषाम् उषसः) रात दिन (हविष्मता) अन्नादि साधनों वाले जन से (हव्यः) आदर सत्कार करने योग्य है। (वाम्) आप में से (तं) उसी के (सुहवम् नाम) सुगृहीत नाम वाले (पितुः न नाम) पिता के वा अन्न के समान पालक स्वरूप को (इदम्) इस २ प्रकार (हवामहे) बुलाते, पुकारते और (पितुः इदं नाम) पिता, पालक के इस पद के लिये स्वीकार करें।

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् २

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा वेगवान् साधनों से सम्पन्न राजा सेनापति, वा सेनापति सैन्यादि जनो ! आप दोनों (सूनृताः) उत्तम २ सत्य वाणियों का (चोदयतम्) उपदेश करें। और (धियः पिन्वतम्) अनेक उत्तम कर्मों और प्रजापोषक, धारक उद्योगों को समृद्ध करें। (पुरम्-धीः उत् ईरयतम्) अनेक मतियों और सद्-विचारों का उपदेश करो। (उश्मसि) हम जो २ चाहते हैं (नः भागम्) हमारे उस सेवनीय, ऐश्वर्य को (कृणुतम्) प्रदान करो। और और (नः) हमारे (मघवत्सु) ऐश्वर्यवान् जनों के (सोमं न चारु) सोम, वैद्यों के तुल्य ओषधि के समान उत्तम ऐश्वर्य (कृतम्) उत्पन्न करो।

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ३

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख स्थान पर विराजने और कभी असत्य

भाषण और असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों परस्पर (अमा-जुरः) एक दूसरे के साथ जरावस्था को प्राप्त होने वाले सहचारी संगी के (भगः) सेवन करने, सुख देने वाले ऐश्वर्य के तुल्य एक दूसरे के धन और ऐश्वर्य-स्वामी के तुल्य एक दूसरे के धनी, मालिक (भवथः) होवो। आप दोनों (अनाशोः चित्) भोजन आदि से रहित भूखे वा मन्द गति वाले के भी (अविताग भवथः) रक्षा करने वाले होवो। आप दोनों (अपमस्य चित् अवितारा भवथः) जाति या गुणों आदि में निकृष्ट, जघन्य से जघन्य वर्ण के वा छोटे से छोटे जीव के भी रक्षक होवो। आप दोनों (अन्धस्य चित्) अन्धे के (कृशस्य चित्) कृश, दुर्बल तक के रक्षक होवो। (युवाम्) आप दोनों को (रुतस्य चित्) पीड़ित पुरुष के (भिषजा) रोग दुःखादि को वैद्यों की तरह से चिकित्सा कर दूर करने वाले (आहुः) कहते हैं। (२) इसी प्रकार वैद्य भी (अमाजुरः भगः) पीड़ा से जीर्ण रोगी के सर्वस्व सुखप्रद हैं। (अनाशोः) जिसको भूख न लगे, कण्ठशूक वा उदर-रोग आदि से खा न सकता हो, (अपमस्य) जिसकी 'मा' अर्थात् ज्ञानशक्ति, चेतना, सुध-बुध भी दूर होगई हो ऐसे अपस्मार आदि से पीड़ित, (अन्धस्य) नेत्रशक्ति से रहित, (कृशस्य) राजयक्ष्मा आदि से दुर्बल ऐसे (रुतस्य) पीड़ार्त्त रोगी के भी रक्षक होते हैं उनको (भिषजा) 'भिषक्' ऐसा नाम देते हैं।

युवं च्यवा॑नं स॒नयं॒ यथा॒ रथं॒ पुन॑र्युवा॑नं च॒रथा॑य तक्षथुः।
निष्टौग्र्यमूहथुर॒द्भ्यस्परि॒ विश्वेत्ता वां॒ सव॑नेषु प्र॒वाच्या॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे प्राण अपानो ! (यथा रथं पुनः चरथाय तक्षथुः) जिस प्रकार रथ को पुनः चलने के लिये गढ़ कर ठीक कर देते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (सनयं च्यवानं) उत्तम नीति से युक्त, आगे बढ़ने वाले नायक को (युवानं) जवान, बलवान् करके (पुनः) फिर भी (चरथाय) चलने के लिये समर्थ (तक्षथुः)

बनाओ। प्राण अपान ये दोनों सामर्थ्य ही (सनयं च्यवानम्) सनातन, नित्य आत्मा को पुनः-पुनः युवा बनाते, उसे कर्मफल भोगार्थ देह प्रदान कराते हैं। तुम दोनों अश्व रथ आदि वेगवान् साधनों के स्वामी जनो! (तौग्र्यम्) प्रजापालक पद पर विद्यमान राजा को (अद्भ्यः परि निर् ऊहथुः) आप्त प्रजाओं के ऊपर शासकवत् धारण करो। (वाम् ता) तुम दोनों के वे (विश्वा) सब कार्य (सवनेषु प्र-वाच्या) यज्ञ, अभिषेक आदि के अवसरों में उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य हैं।

पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ५॥१५

भा०—हे (अश्विनौ) उत्तम, विद्यासम्पन्न, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों के (पुराणा वीर्या) पूर्व काल के श्रेष्ठ २ वीर-जनोचित कार्यों का मैं (जने) मनुष्यों के बीच (प्र-ब्रव) अच्छी प्रकार कथन करूं। (अथो ह) और आप दोनों (मयः-भुवा) सुख उत्पन्न करने वाले, (भिषजा) रोगों को दूर करने वाले, (आसथुः) होवो। हे (नासत्या) नासिका में विद्यमान प्राणों के समान प्रमुख जनो! कभी असत्य आचरण न करने हारो! आप दोनों (नव्यौ) स्तुति योग्य जनों को (नु) शीघ्र ही (अवसे) रक्षार्थ नियुक्त (करामहे) करें। (यथा) जिससे (अयम् अरिः) यह स्वामी मनुष्य (श्रत् दधत्) सत्य को धारण करे। (२) इसी प्रकार प्राण और अपान भी शरीर के सुखप्रद और रोगनाशक हैं, वे दोनों शरीर के रक्षक हैं जिससे स्वामी आत्मा (श्रत्) अन्न को धारण करता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम्॥६॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में पारंगत गुरुजनो! (वां) आप

दोनों को (इयम्) यह मैं ब्रह्मचारिणी, राजा वा सेनापति को प्रजा के तुल्य (अह्वे) बुलाती, प्रार्थना करती हूँ। आप दोनों (पुत्राय इव पितरा) पुत्र को माता पिता के समान (मह्यं) मुझे (शिक्षतम्) ज्ञान प्रदान करो। मैं (अनापिः) बन्धुरहित, (अज्ञाः) ज्ञानरहित, (असजात्या) समान गुणादि वाले अनुरूप पुरुष से रहित, और (अमतिः) सन्मति से रहित हूँ। आप दोनों (तस्याः अभिशस्तेः पुरा) उस नाना प्रकार की 'अभिशस्ति' निन्दा आदि प्राप्त होने के पूर्व ही, मुझे (अव स्पृतम्) पालन करो। अज्ञान और अनाचारादि के कारण भावी में होने वाली निन्दादि से पूर्व ही शिक्षक जन शिष्य, शिष्या आदि प्रजा की रक्षा करें।

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥७॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (वि-मदाय) विशेष हर्षयुक्त, प्रसन्न पुरुष के सुख के लिये (पुरु-मित्रस्य) बहुतों के स्नेही, वा बहुत मित्रों से युक्त पुरुष की (शुन्ध्युवम्) शुद्ध हुई, निर्दोष, (योषणाम्) प्रेमयोग्य कन्या को (नि ऊहथुः) नियमपूर्वक विवाह द्वारा प्राप्त कराओ। और (युवम्) आप दोनों (वध्रिमत्याः) वशीभूत इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री के (हवम्) सादर आह्वान और प्रार्थना को (आ गच्छतम्) प्राप्त करो। (युवम्) तुम दोनों (पुरंधये) पुर के रक्षक के समान गृह की रक्षा करने वाले स्त्री वा पुरुष के लिये (सु-सुतिम्) उत्तम ऐश्वर्य वा अन्न वा उत्तम प्रेरणा (चक्रथुः) करो।

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥ ८ ॥

भा०—(युवं) आप दोनों (जरणाम् उपेयुषः) स्तुतिकारिणी वाणी को प्राप्त होने वाले (कलेः) ज्ञानवान् और (विप्रस्य) विविध ज्ञानों में

अन्यों को पूर्ण करने वाले पुरुष के (वयः) अन्न, जीवन और बल को (पुनः) बार २ (युवत्) हृष्ट पुष्ट, समृद्ध (अकृणुतं) करो। (युवं) तुम दोनों (वन्दनं) अभिवादन और स्तुति एवं ईश्वर का गुण वर्णन करने वाले भक्त जन को (ऋष्यदात्) कष्टदायी दुःख से (उद्-ऊपथुः) उद्धार करो। और (विश्पलाम्) प्रजा को पालन करने वाली सेना को (सद्यः एतवे) अति शीघ्र चलने में योग्य (कृथः) करो।

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृषणा) सुखों की वर्षा करने वाले बलवान् प्राणों के तुल्यवत् हे (अश्विना) विद्या में निष्णात स्त्री पुरुषो ! आप लोग (गुहा हितम्) देहरूप गुफा वा बुद्धि में स्थित, (ममृवासं) प्राण-त्याग करने वाले (रेभम्) शब्द वा उपदेश करने वाले, जीव को (उत् ऐरयतम्) ऊपर उठाओ। (युवं) तुम दोनों (सप्त-वध्रये) सातों को निर्बल कर अपने वश करने वाले (अत्रये) विविध कर्मफलों के भोक्ता जीव के लिये (उत) और (तप्तं) तपे हुए, संतापदायी (ऋबीसम्) आग वाले भाड़ के समान दुःखदायी देहादि-बन्धनकारी कारण को भी (ओमन्वन्तम्) नाना रक्षाओं से युक्त सुखदायी (चक्रथुः) बनाते हो।

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् १०।१६

भा०—हे (अश्विना) देह में व्यापक प्राण-उदानवत् (युवं) आप दोनों (पेदवे) ज्ञान करने वाले, वा कर्म फल प्राप्त करने वाले जीव को (नवभिः नवती) ९९ (वाजैः) बलों और सामर्थ्यों से युक्त (वाजिनम्) वेग, बल, ज्ञान और नाना वाणी वा विभूतियों से युक्त, (अश्वम्) नाना भोगों से सम्पन्न, कर्म फलों के भोक्ता, (श्वेतम्) वृद्धिशील, शुभ्र, और

(चर्क्रत्यं) नये कर्म करने में समर्थ देह वा वीर पुरुष को अश्व के समान (ददथुः) प्रदान करते हो। और इसी प्रकार (नृभ्यः) सभी जीवों को (द्रावयत्-सखं) अपने मित्र साथियों को द्रुतगति से चलाने वाले, (मयः-भुवम्) अति सुखदायक, (हव्यं) अति स्तुत्य, स्वीकार करने योग्य, अन्न के तुल्य (भगं न) सेवनीय, ऐश्वर्य के तुल्य कर्मफल के अनुरूप देह प्रदान करते हो। इति षोडशो वर्गः ॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम्।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

भा०—हे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त, प्राण अपानवत् देह और राष्ट्र में व्याप्त एवं आशुगामी प्राणों के तुल्य यानों पर वश करने वाले रथी सारथिवत् जनो! (सु-हवा) सुख देने वाले, शुभ नाम से पुकारने योग्य, सुगृहीत नाम वाले (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वा दुःखों को दूर करने वाले व्यवहारों वाले होकर (यम्) जिसको (पत्न्या सह) सब पालक शक्ति से सहित (पुरः-रथम्) अग्रगामी रथ वाला, वीर (कृणुथः) कर देते हो। हे (राजाना) राजा रानी, शुभगुणों से चमकने वालो! हे (अदिते) माता पितावत् सूर्यवत् तेजस्वियो! (तं) उसका (अंहः) पाप (कुतः चन) कहीं से भी (न अश्नोति) नहीं प्राप्त होता। (न दुरितं) न कोई दुष्ट कर्म उसको प्राप्त होता और (नकिः भयम्) न कोई भय उसे लगता है।

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः १२

भा०—हे (अश्विना) विद्यावान्, जितेन्द्रिय, अश्वों के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में लेजाने में कुशल स्त्री पुरुषो! (यं) जिस सुखदायक (रथं) गृहस्थरूप रथ को (ऋभवः चक्रुः) शिल्पी जनों के

तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले विद्वान् जन उपदेश करते हैं (तेन) उससे (मनसः जवीयसा) मन और ज्ञान के उत्तम वेग से चलने वाले, उस रथ से (आयातम्) आओ जाओ। और (यस्य योगे) जिसके योग होने वा जुड़ने पर (दिवः दुहिता जायते) तेजस्वी सूर्य की कन्या के तुल्य उषा के समान शुभगुणों से युक्त कन्या (सुदिने उभे अहनी) उत्तम सुखदायक दिन और रातों दोनों समय (विवस्वतः) विशेष ऐश्वर्य के स्वामी पति की (दिवः दुहिता) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली (जायते) हो जाती है।

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामम़ुञ्चतम्॥१३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो! हे राजा प्रजा वर्गों के नायक स्त्री पुरुषो! (ता) वे दोनों आप (जयुषा रथेन) जयशील रथ आदि साधन से (पर्वतं) पर्वत के समान उच्च स्थान के प्रति (वर्त्तिः) उत्तम मार्ग पर (यातम्) गमन करो। (शयवे) शान्ति चाहने वाले वा शिशुवत् अज्ञानी पुरुष के हितार्थ (धेनुम्) वाणी का (अपिन्वतम्) उपदेश करो। (वृकस्य चित् आस्यात् वर्त्तिकाम्) भेड़िये के मुख के भीतर पड़ी बटेरी के तुल्य चौर शासक वर्ग के मुख से (अन्तः ग्रसिताम्) भीतर ही निगली गई अत्यन्त पीड़ित प्रजा को (युवं) आप दोनों (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ।

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः॥१४॥१७॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो! हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे राजा प्रजावर्गों के नायक राजावत् राजप्रजा-सभाओं के पतियो! (भृगवः न रथम्) गतिमान् साधनों को वश

करने वाले विद्वान् लोग जिस प्रकार रथ को विवेक पूर्वक बनाते हैं उसी प्रकार हम भी (वां एतं स्तोमं अतक्षाम) आप दोनों के लिये यह गुण-वर्णन और उत्तम उपदेश योग्य वचन कहें। (मर्यै योषणां न) युवा पुरुष के अधीन जिस प्रकार प्रेमयुक्त स्त्री को सौंपा जाता है, उसी प्रकार हम भी आप दोनों समर्थ पुरुषों के अधीन (योषणां) प्रेम पूर्वक रहने वाली प्रजा वा राजसभा को (नि अमृक्षाम) आप दोनों को सौंपें और (तनयं दधानाः) पुत्र को धारण-पोषण करते हुए माता पिता जन (सुनुं न नित्यं नि अमृक्षन्त) जिस प्रकार अपने पुत्र को नित्य स्वच्छ करते, नहलाते-धुलाते, स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार हम (दधानाः) आप दोनों को स्थापित करते हुए (नित्यं सूनुं) नित्य, स्थायी, शासक रूप से (नि अमृक्षाम) नियमपूर्वक अभिषेक करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[४०]

ऋषिर्घोषा काक्षीवती ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, १२, १४ विराड् जगती। २, ३, ७, १०, १३ जगती। ४, ६ ११ निचृज्जगती। ६, ८ पादनिचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुवितायं भूषति।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविंशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि॥१॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायकवत् स्त्रीपुरुषो! (वां) आप दोनों के (सुविताय) सुख-सौभाग्य और अभ्युदय के लिये (यान्तं) गमन करते हुए (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, (प्रातर्यावाणं) प्रातः २ ही प्राप्त होने वाले, (विशे विशे वस्तोः वस्तोः) प्रत्येक प्रजा को दिन प्रतिदिन (विभ्वं वहमानं) प्रचुर धन-ऐश्वर्य सुखादि प्राप्त कराने वाले (रथं) रथ के प्रति (धिया शमि) मन या कर्म से भी (कुह कः) कहां और

कौन (प्रति भूषति) मुकाबले पर आ सकता है। अर्थात् उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता, उनका विरोधी कोई न हो।

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (दोषा कुह स्वित्) रात्रिकाल में कहां और (वस्तोः) दिन के समय कहां रहते हो ? और (अभिपित्वं कुह करतः) कहां आगमन करते हो। (कुह ऊषतुः) कहां वास करते हो ? (शयुत्रा देवरं विधवा इव) शयनस्थान में द्वितीय वर को विधवा स्त्री के समान और (सधस्थे मर्यं योषा न) एकत्र रहने के स्थान गृह सेज आदि पर पुरुष को स्त्री के समान (वां) तुम दोनों को भी (कः आ कृणुते) कौन आदरपूर्वक सत्कार करता है। इस बात का सदा विचार रखो।

जैसे विधवा स्त्री द्वितीय वर को नियोग आदि के विशेष २ अवसरों पर ही प्राप्त करता है और गृहपत्नी पति की नित्य ही सेवा करती है इसी प्रकार स्त्री पुरुष को भी यह ध्यान रखना चाहिये कि कौन उनको नैमित्तक विशेष अवसरों पर और कौन नित्य ही आदरपूर्वक बुलाता है उसके यहां यथासमय जाना चाहिये।

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम्।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः॥३॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायकवत् स्त्री पुरुषो ! (जरणा इव कापया) उत्तम स्तुति योग्य वाणी के योग्य वृद्ध पुरुषों के समान आप दोनों (प्रातः जरेथे) प्रातःकाल स्तुति उपदेश के योग्य होवो। (यजता) उत्तम आदर योग्य होकर (वस्तोः वस्तोः) दिन प्रतिदिन (गृहम् गच्छथः) गृह को प्राप्त होवो। और यह भी बराबर विचार रखो कि

आप दोनों (कस्य) किस २ दोष के (ध्वस्रा भवथः) नाश करने वाले होते हो और (राजपुत्रा इव) राजपुत्र राजपुत्री के तुल्य (कस्य सवना) किसके यज्ञों वा ऐश्वर्यों और अभिषेक योग्य अधिकारों को (अव गच्छथः) प्राप्त करते हो।

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मृगण्यवः) मृगया करने वाले (मृगा वारणा) सिंह सिंहिनी और हाथी हथिनी दोनों को (हविषा नि ह्वयन्ते) खाद्य पदार्थ द्वारा ग्रहण करते हैं उसी प्रकार हम लोग भी अभिषेकादि से शुद्ध, पवित्र, आचारवान्, नायक नायकादि को चाहने वाले (मृगा इव युवां) सिंह सिंहनी के तुल्य बलवान् तुम दोनों को और (वारणा युवां) दुःखों के वारण वा दूर करने वाले आप दोनों को (हविषा) उत्तम अन्न कर आदि द्वारा (नि ह्वयामहे) नियम से आदर पूर्वक बुलावें। हे (नरा) उत्तम नायको! (युवं) आप दोनों को लक्ष्य कर आप की हितकामना से (ऋतुथा होत्राम् जुह्वते) समय २ पर ऋतु २ में उत्तम वाणी को प्रदान करते हैं, तुमको लक्ष्य कर अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं, क्योंकि आप दोनों (शुभस्पती) जलों के पालक सूर्य मेघवत् शुभ गुणों, व्रतों वा कर्मों के पालक होकर (जनाय इषं वहथः) समस्त मनुष्यों के लाभार्थ सेना, अन्न और उत्तम इच्छा, प्रेरणा, संदेश, उपदेश आदि को धारण करते हो।

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥१८॥

भा०—हे (नरा) सभाओं के उत्तम नायक जनो ! हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो वा विद्यादि में कुशल जनो ! (परि यती) सब से ऊपर वा सब ओर जाती हुई, वा यत्न करती हुई (राज्ञः दुहिता घोषा)

तेजस्वी राजा के सब कार्यों को पूर्ण करती हुई, राजा की आज्ञा, घोषणा वा सभा, (वां पृच्छे)तुम दोनों को पूछती, आज्ञा लेती, प्रार्थना करती है, (अन्हः उत अक्तवे) दिन और रात आप दोनों (मे भूतम्) मेरे हित के लिये सदा तैयार रहें, और (अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम्) अश्व रथादि से युक्त हिंसक शत्रु के नाश के लिये समर्थ होवो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

भा०—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वानो ! हे (अश्विना) विद्या आदि में पारंगत जनो ! आप दोनों (कुत्सः न) शत्रुओं के गात्र काटने वाले वज्र के समान (जरितुः विशः) स्तुतिकर्त्ता, प्रजावर्ग के ऊपर (रथं परि स्थः) रथ पर सदा रह कर शासन करो। और (नशायथः प्रजा के दुःखों का नाश किया करो। हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो ! विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों के अधीन सभा सेना (मक्षा) मधु-मक्खी के समान (आसा) मुख द्वारा (मधु) मधु तुल्य मधुर वचन और उत्तम अन्न ज्ञान बल (परि भरतं) धारण करो। (योषणा न निष्कृतम्) स्त्री जिस प्रकार गृह को संभालती है उसी प्रकार प्रेमयुक्त प्रजा-सभा वा सेना और उनके पति (निष्कृतम्) देश को वा निष्पादित निर्णय वा ऐश्वर्य को सप्रेम धारण करें।

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में निपुण एवं जितेन्द्रिय ! रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषो वा सभा सेना के अध्यक्षो ! (युवं ह) आप दोनों निश्चय से (भुज्युम् उपारथुः) उत्तम पालक को प्राप्त होवो। (युवं) तुम दोनों (वशं) वश करने वाले, कान्तियुक्त तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करो (युवं शिंजारं) तुम दोनों उत्तम वचन कहने और उत्तम शब्द करने वालों को प्राप्त करो।

तुम दोनों (उशनाम्) अपने को चाहने वाले सहयोगी को प्राप्त करो। (युवोः ररावा) तुम दोनों का उत्तम दाता और उपदेष्टा (सख्यं परि आसते) मित्रभाव को प्राप्त करे। और (अहम्) मैं उपदेष्टा वा उपदेष्ट्री भी (अवसा) आप दोनों की रक्षाशक्ति, ज्ञान और स्नेह से (सुम्नम् आ चके) सुख चाहती हूं, वा चाहता हूँ।

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥ ८ ॥

भा०—(युवं ह) हे स्त्री पुरुषो ! विद्वानो ! आप दोनों (कृशम्) कृश, निर्बल की और (युवं शयुम्) तुम दोनों सोने वाले, अचेत की और (युवं विधन्तं) तुम दोनों उत्तम सेवा करनेवाले की और (विधवाम्) पतिहीन स्त्री की (उरुष्यथः) सदा रक्षा किया करो। हे (अश्विना) उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सनिभ्यः) ज्ञान के देने वाले गुरुजनों के लिये (स्तनयन्तम्) स्तनवत् मधुर ज्ञान धारा पिलाने वा उत्तम उपदेश करने वाले के प्रति (सप्तास्यम्) सात मुख वाले (व्रजम्) इन्द्रियगण को (अप ऊर्णुथः) उद्धार करो और उनको व्यसनों से बचा कर रखो।

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥ ९ ॥

भा०—(योषा जनिष्ट) स्त्री भूमिवत् सौभाग्यवती होकर सन्तान उत्पन्न करे। (कनीनकः पतयत्) उज्ज्वल बालक उसे प्राप्त हो। और (वीरुधः) जल-वृष्टियों के अनुरूप लताओं के समान स्त्री-जन वा प्रजाएं (दंसनाः अनु) अपने २ कर्मों के अनुरूप (वि अरुहन् च) विविध प्रकार से उन्नति पथ पर चढ़ें, बढ़ें। (निवना इव सिन्धवः) नीचे प्रदेशों की ओर जलधाराओं के समान वे प्रजाएं (अस्मै) इस तेजस्वी पुरुष

को (आ रीयन्ते) सब ओर से प्राप्त हों। और (अस्मे अह्ने) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य इस वीर पुरुष का (तत्) तब ही (पतित्वनम्) पतित्व, उत्तम स्वामित्व होता है। अर्थात् स्त्री का सौभाग्य उत्तम बालक जनना और पति का सौभाग्य, सौभाग्यतम स्त्री का लाभ तथा नाना प्रजाओं को प्राप्त करना है।

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥
॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—लोग (जीवं रुदन्ति) अपने प्रिय जीव को लक्ष्य कर रोते हैं, उसके लिये आंसू बहाते हैं। ऐसा करके वे (अध्वरे) पवित्र यज्ञ में (वि मयन्ते) विपरीत शब्द करते हैं। (ये) जो मनुष्य (इदम्) इस परस्पर विवाह आदि कर्म को (पितृभ्यः) अपने पूर्व पालक पिता आदि के लिये ही (वामम्) यह सुन्दर परस्पर-वरण रूप विवाह का कार्य करते हैं उन (नरः) मनुष्यों को चाहिये कि (दीर्घाम् प्रसितिम् अनु दीधियुः) वे दीर्घ, दूर तक फैले हुए उत्तम पारस्परिक बन्धन का विचार करें। और (जनयः) स्त्रियें भी (अनुदीधियुः) ऐसा विचार किया करें कि वे (परिष्वजे) आलिंगनादि कार्य में (पतिभ्यः मयः) अपने पतियों के लिये सुख प्राप्त करावेंगी और स्वयं भी उनसे सुख प्राप्त करेंगी। इस विचार से वधुएं अपने पिता आदि के वियोग में और उनके माता पिता आदि अपनी कन्या आदि के वियोग में न रोया करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि॥ ११॥

भा०—युवक युवति जन अपने आप्त माता पितादि से कहते हैं—

(यत्) जो (युवा) युवा पुरुष (युवत्याः योनिषु) युवती स्त्री के साथ गृहों में (क्षेति) निवास करता है हम अबोध, अननुभवी नवयुवक युवतिजन (तस्य न विद्म) उस गृहस्थ के विषय में कुछ नहीं जानते (तत् उ सु प्र वोचत) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमें उसका अच्छी प्रकार उत्तम रीति से उपदेश करो। हे (अश्विना) माता पिता आप्त जनो ! हम नवयुवतियां (प्रिय-उस्रियस्य) युवति वधू को प्रेम करने वाले, (वृषभस्य) प्रेम से बांधने वाले, बलवान् (रेतिनः) वीर्यवान् पति के (गृहं गमेम) घर को जावें, हम (तत् उष्मसि) सदा उसी को चाहा करें। नवयुवतियों का यही उचित विचार होना चाहिये कि वे गृहस्थ की सब बात जानें और पति को प्राप्त हो पतिगृह को चाहा करें।

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अयंसत।
अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्यां॑ अशीमहि १२

भा०—हे (वाजिनीवसू) अन्न, धन उत्पन्न करने वाले स्वामी स्वामिनी और गृहस्थ में बसने और उसे बसाने वाले वर वधू जनो ! (वाम्) आप दोनों को (सुमतिः आ अगन्) उत्तम शुभ मति प्राप्त हो। हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वश करने वाले विद्या और सुखों के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! (हृत्सु) हृदयों में (कामाः) नाना प्रकार की अभिलाषाएं (नि अयंसत) नियमपूर्वक उत्पन्न होवें। और तुम (गोपा) वाणी के रक्षक और परस्पर गृह के स्वामी स्वामिनी और (मिथुना) जोड़े और (शुभः पती) शुभ गुणों, धनों और सद्-विचारों के परिपालक वा पति पत्नी (अभूतम्) होकर रहो। और (प्रियाः) हम स्त्रियां अपने पतियों की प्यारी होकर (अर्यम्णः) स्वामी के (दुर्यान्) गृहों को (अशीमहि) प्राप्त हों और सुख भोग करें।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् १३

भा०—हे (शुभस्पती) शोभायुक्त गुणों, पदार्थों और जलों के रक्षा करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (मनुषः दुरोणे) मननशील विद्वान् के गृह में रह कर (मन्दसाना) उत्तम अन्न और ज्ञान से अपने को खूब तृप्त और परिपूर्ण करते हुए, (वचस्यवे) उत्तम वेद-वचन के धारक विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के (राये) ऐश्वर्य ज्ञानरूप धन को (आ धत्तम्) अपने में सब प्रकार से धारण करो और (सह-वीरं) वीर पुत्र और विद्वान् पुरुषों से युक्त (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य को भी प्राप्त करो। आप दोनों (शुभस्पती) शोभायुक्त उत्तम गुणों, व्रतों का पालन करते हुए (सु-प्र-पाणं तीर्थं) सुख से उत्तम रीति से जलपान करने योग्य नदी की धारा के समान (सुप्रपाणं तीर्थं) उत्तम रीति से व्रत पालन कराने वाले, जगत् के नाना कष्टों और अज्ञान सागर से पार करने वाले गुरु को (कृतम्) करो। (२) इसी प्रकार (पथेष्ठां स्थाणुम्) मार्ग में स्थित वृक्ष के समान आश्रय देने वाले, सुखद छायाप्रद, आश्रयदाता जन को स्वीकार करो। (दुर्मतिम् अप हतम्) इस प्रकार अपने कुमति, विपरीत ज्ञान को दूर करो।

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईं नियेमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम्॥
॥ १४ ॥ २० ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम विद्यावान् पुरुषो ! हे (दस्रा) दुष्टों और दुर्गुणों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! (अद्य) आज (क्वस्वित्) कहां और (कतमासु विक्षु) किन विशेष प्रजाओं के बीच (मादयेते) सब को प्रसन्न करो और स्वयं भी प्रसन्न होवो ? हे (शुभस्पती) शुभ

गुणों के पालक जनो ! (ईम् कः नियेमे) इन आप दोनों को कौन बांध वा, नियम में रख सकता है ? और (कतमस्य विप्रस्य) किस विद्वान् पुरुष के (गृहम्) गृह और (कतमस्य यजमानस्य गृहम्) किस धन ज्ञान आदि के दाता, स्वामी के गृह पर (जग्मतुः) जाओ, यह बात ठीक २ विवेक से जानो । इति विंशो वर्गः ॥

[४१]

३ सुहस्त्यो घौषेयः ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३ विराड् जगती ॥ तृचं सूक्तम् ॥

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (उषसः व्युष्टा) प्रातः-प्रभात वेला के प्रकट हो जाने पर (त्यम् उ) उस परम (समानम्) सबके प्रति समान (पुरु-हूतम्) बहुतों से स्तुति प्रार्थना करने योग्य, (उक्थ्यं) वेद द्वारा उपदिष्ट, (त्रिचक्रं रथं) तीन चक्र वाले रथ के समान भूत, भवत्, भविष्यत् तीनों चक्रों वाले, वा तीनों लोक वा तीनों सत्व, रज, तमरूप तीन चक्रवत् तीन महान् शक्तियों से युक्त, वेगवान्, रसस्वरूप, (सवना) समस्त ऐश्वर्यों और लोकों को प्राप्त व्यापक (परिज्मानं) सर्वत्र व्यापक, (विदथ्यं) ज्ञानमय प्रभु को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (हवामहे) हम प्रार्थना करें ।

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना॥२॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य मार्ग पर पैर न रखने वाले सत्याचरणशील स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (प्रातः युजे) प्रातःकाल

योगाभ्यास द्वारा समाहित चित्त से जानने योग्य, (प्रातर्यावाणं) प्रातः-काल, शुभ काल में जाने वा प्राप्त करने योग्य, (मधु-वाहनं) मधुर अन्न जलवत् सुख प्राप्त कराने वाले, (रथं) रथवत् सुखदायी, रमण करने योग्य प्रभु को (अधि तिष्ठथः) अपना आश्रय बनाओ । (येन) जिसके द्वारा (यज्वरीः) देव पूजा करने वाली, यज्ञशील प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होवो और हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) विद्या आदि शुभ गुण युक्त जनो ! और (कीरेः चित्) उत्तम उपदेष्टा पुरुष के (होतृमन्तं यज्ञम्) उत्तम होता से युक्त यज्ञ को भी (गच्छथः) प्राप्त होवो । इसी प्रकार स्त्री पुरुष यज्ञशील जनों तक जाने के लिये उत्तम रथ पर चढ़ कर जावें ।

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥
॥ ३ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय एवं विद्यादि में व्याप्त विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (मधुपाणिं) मधुर मधु, ब्रह्मविद्या, वेद का प्रवचन वा उपदेश करने वाले, (अध्वर्युं) यज्ञ करने, कराने में श्रेष्ठ (सु-हस्त्यम्) उत्तम हस्त क्रिया में कुशल, (अग्निधम्) अग्नि को धारण करने वाले, वा अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, विनीत शिष्यों को धारण करने में समर्थ (धृत-दक्षम्) उत्तम बल को धारण करने वाले, (दमूनसं) चित्त को दमन करने वाले, जितेन्द्रिय, पुरुष के पास (आ-यातम्) आओ । और (यत्) जो आप दोनों (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सवनानि) आज्ञा और अनुशासनों को (गच्छथः) प्राप्त होवोगे तभी (अतः) इससे (मधु-पेयम् आयतम्) वेद ज्ञान के उत्तम रस का पान भी प्राप्त कर सकोगे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४२]

ऋषिः कृष्णः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७—९, ११ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६, १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥

भा०—(अस्ता इव) बाण को फेंकने वाला उत्तम धनुर्धर जिस प्रकार (अस्यन्) बाण फेंकता हुआ (प्रतरम् लायं भरति = हरति) दूर के स्थित लक्ष्य पर भी अच्छी प्रकार प्रहार करता है और (भूषन् इव) जिस प्रकार आभूषणों से सजने वाला पुरुष आभूषणों को पहिन (सु प्र भरति) उत्तम रीति से सजता है उसी प्रकार हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषो ! और आप लोग (लायम्) सदा ग्रहण करने योग्य (प्रतरम्) अति उत्कृष्ट, एवं सब संकटों से पार उतार देने वाले उस प्रभु को (सु प्र भर) उत्तम रीति से धारण करो, उसे प्राप्त करो और सुभूषित करो। और उस (अर्यः वाचम्) स्वामी की वाणी को (वाचा प्र तरत) अपनी वाणी से पार करो उसका नित्य स्वाध्याय करो। हे (जरितः) उत्तम उपदेष्टा ! विद्वन् ! स्तोतः ! तू (सोमे) अपने आत्मा में (इन्द्रम् नि रमय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को नित्य रमा। 'सोममिन्द्रन्' इति क्वचित् पाठः। 'सोमे । इन्द्रम् ।' इति च पदपाठः ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्ता ! विद्वन् ! (दोहेन गाम्) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ की सेवा की जाती है उसी प्रकार (दोहेन) अपने अभीष्ट फलों को प्राप्त करने के हेतु (जारम्) विद्वान् (इन्द्रम्)

संशयों और कष्टों के उच्छेदन करने वाले, ऐश्वर्यवान् (सखायं) परम मित्र, ज्ञानवान्, समदर्शी प्रभु को (उप शिक्ष) प्राप्त कर, उसकी सेवा कर। (पूर्णं कोशं न) जल से पूर्ण मेघ के समान (वसुना नि-ऋष्टं) ऐश्वर्य से पूर्ण (शूरम्) शूरवीर प्रभु को (मघ-देयाय) उत्तम ऐश्वर्य दान के लिये (आ च्यवय) सब ओर से प्रेरित कर, उसकी ही उपासना कर।

'सखा'–समानं ख्यानं ज्ञानं दर्शनमुपदेशो वा यस्य स सखा।

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

भा०—(अङ्ग मघवन्) हे ऐश्वर्यवन्! (त्वां किम् भोजम् आहुः) विद्वान् लोग तुझको सब का पालक क्यों कहते हैं? तू (मा शिशीहि) मुझे तीक्ष्ण, कार्य करने में खूब उत्साहित और कुशल कर, वा मुझे शासन कर। (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे मैं अति तीक्ष्ण करने, उत्साह देने वाला उत्तम शासक सुनता हूँ। (मम धीः अप्नस्वती) मेरी बुद्धि कर्म करने वाली (अस्तु) हो। हे शक्र) शक्तिशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (नः) हमें (वसुविदं भगं आ भर) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला ऐश्वर्य प्राप्त करा। अध्यात्म में—वसु, आत्मा का ज्ञान कराने वाले सेव्य ज्ञान आदि का उपदेश कर।

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु के नाशक! (जनाः) लोग (त्वा) तुझ को (मम-सत्येषु) मेरा कथन सत्य है, प्रतिवादी का नहीं, इस प्रकार के वाद-विवाद के अवसरों में भी (वि ह्वयन्ते) विशेष आदर से बुलाते हैं, और तुझको (समीके सं तस्थानाः वि ह्वयन्ते) युद्ध में जाते

हुए तुझे ही पुकारते हैं। (अत्र) इस अवसर में भी (यः) जो मनुष्य (हविष्मान्) उत्तम हवि, अन्न, उत्तम वचन और उत्तम साधनों से युक्त होता है वही (त्वां युजं कृणुते) तुझे अपना सहयोगी बना लेता है। क्योंकि (असुन्वता) प्रार्थना, उपासना न करने वाले के साथ (शूरः) वह शूरवीर (सख्यं न वष्टि) मित्रता करना नहीं चाहता।

धनं॒ न स्प॒न्द्रं ब॑हु॒लं यो अ॑स्मै ती॒व्रान्त्सोमाँ॑ आ सु॒नोति॒ प्रय॑स्वान्।
तस्मै॒ शत्रू॑न्त्सु॒तुका॑न्प्रा॒तरह्नो॒ नि स्वष्ट्रा॑न्यु॒वति॒ हन्ति॑ वृ॒त्रम् ॥

॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—(यः) जो (प्रयस्वान्) उत्तम प्रयास करने वाला उद्योगी पुरुष (बहुलं) बहुत से (धनं न स्पन्द्रं) धन के तुल्य ही जंगम-पशु अश्वादि सैन्य को और (तीव्रान् सोमान्) तीव्र, वेग से जाने वाले उत्तम शासकों और उत्तम ऐश्वर्यों को भी (अस्मै आ सुनोति) इसके लिये प्रदान करता है, वह (तस्मै) उसके (सु-तुकान्) उत्तम हिंसाकारी साधनों से युक्त हथियारों वाले और (सु-अष्ट्रान्) उत्तम अश्वादि साधनों से युक्त (शत्रून्) शत्रुओं को भी (अह्नः प्रातः) दिन के पूर्व भाग में ही (युवति) दूर करता है और (वृत्रम् नि हन्ति) विघ्न आदि का नाश करता है। परमेश्वर के प्रति विश्वास करने वाले पुरुष के विघ्न प्रतिदिन कार्य प्रारम्भ करने से पहले ही दूर हो जाते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्मि॑न्व॒यं द॑धि॒मा शंस॒मिन्द्रे॒ यः शि॒श्राय॑ म॒घवा॒ काम॑म॒स्मे।
आ॒राच्चि॒त्सन्भ॑यतामस्य॒ शत्रु॒र्न्य॑स्मै द्यु॒म्ना जन्या॑ नमन्ताम् ॥६॥

भा०—(यस्मिन् इन्द्रे) जिस शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, वीर पुरुष के निमित्त (वयम् शंसम् दधिम) हम उत्तम स्तुति और शस्त्र धारण करते हैं आर (यः) जो (मघवा) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी होकर (अस्मे)

हमें (कामम्) अभिलषित धन (शिश्राय) प्रदान करता है। (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयताम्) उसका शत्रु दूर से ही भय करे। (अस्मै) उसको (जन्या सुम्ना) सब जन-हितकारी नाना धन भी (नि नयन्ताम्) खूब प्राप्त हों।

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्॥७॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत से प्रजाजनों से पुकारे एवं राजारूप से स्वीक... के किये गये राजन् ! (यः उग्रः शम्बः) जो उग्र, अति बलशाली, शत्रुओं का दमन करने और उनको मार कर सुला देने वाला शस्त्र-बल है (तेन) उससे तू (आरात्) दूर रहते ही (शत्रुम् अप बाधस्व) शत्रु को पीड़ित कर, दूर भगा। और (अस्मे) हमें (यवमत् गोमत्) अन्न और गौ आदि पशुओं से समृद्ध ऐश्वर्य प्रदान कर। और (जरित्रे) स्तुति करने वाले की (धियं) बुद्धि और कर्म को (वाज-रत्नां धेहि) ज्ञान और बल से सुशोभित कर।

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम्॥८॥

भा०—(यम् इन्द्रम्) जिस इन्द्र को (बहुल-अन्तासः) बहुत से ऐश्वर्य, जनसमूहादि से सम्पन्न, (तीव्राः) तीव्र स्वभाव वाले, (वृष-सवासः) बलवान् पुरुषों और अश्वों के भी सञ्चालक (सोमाः) उत्तम २ शासक (प्र अग्मन्) प्राप्त होते हैं वह (मघवा) महान् ऐश्वर्यवान् (दामानम् अह) दानशील पुरुष को (न नि यंसन्) नहीं बांधते, प्रत्युत (सुन्वते) सवन करने वाले, राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले के हितार्थ वह (भूरि वामम् नि वहति) बहुत सा उत्तम धन प्रदान करता है।

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥ ९ ॥

भा०—(यत् श्वघ्नी कृतं जयाति) जिस प्रकार कितव, जूआखोर 'कृत' नाम पासे को (काले वि चिनोति) अवसर पर प्राप्त करता है और (प्रहाम् अतिदीव्य जयति) अपने पासे को मारने वाले को अतिक्रमण करके जीत लेता है । इसी प्रकार (यत् श्वघ्नी) वीर पुरुष स्वकीय इष्ट जनों को प्राप्त करने और परस्व, शत्रुधन को आहरण करने वाला (कृतं) स्वोपार्जित राष्ट्र धनादि को वा कर्म, उद्योग द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को (काले वि चनोति) उचित समय पर संग्रह कर लेता है और (प्रहाम्) प्रहार करने वाले, कार्यनाशक विघ्न को अतिक्रमण कर उस पर भी विजय पा लेता है और (यः) जो (देवकामः) विद्वान् मनुष्यों वा प्रभु का प्रिय होकर उनके कार्य के लिये (धना न रुणद्धि) अपने धनैश्वर्यों को रोक नहीं रखता प्रत्युत खूब खुल कर दान देता है (तम् इत्) उस को ही (स्वधावान् राया सम् सृजति) बल, शक्ति से सम्पन्न ऐश्वर्यवान् जन धनैश्वर्य से युक्त कर देता है । 'कृतं न श्वघ्नी' इति च पाठः । 'कृतं । यत् । श्वघ्नी ।' इति च पदपाठः ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने, आपत्तिकाल में स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो ! राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखों के सहित आने वाले, कठिन उपायों से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों और गुरु-उपदेशों से पार करें। और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें । (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २

धनों को प्राप्त करें। अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु
॥ ११ ॥ २३ ॥ ३ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच में से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र, सब को समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी, ज्ञानी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४३]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९ निचृज्जगती। २ आर्ची स्वराड् जगती। ३, ६ जगती। ४, ५ ८ विराड् जगती। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये॥१॥

भा०—(मे) मेरी (स्वः-विदः) सुखजनक, सब इष्ट लाभों को देने वाली, ज्ञान-प्रकाशप्रद, (सध्रीचीः) परस्पर सुसम्बद्ध, (विश्वाः) सब प्रकार की, (उशतीः) प्रभु को चाहने वाली (मतयः) बुद्धियां और

वाणियां (इन्द्रम् अच्छ अनूषत) उसी प्रभु की खूब २ स्तुति करती हैं। (यथा जनयः पतिं मर्यं ऊतये) जिस प्रकार स्त्रियें अपने २ पुरुषों, पतियों को रक्षा, प्रेम, सुख समृद्धि के लिये (परि ष्वजन्ते) आलिंगन करती हैं उसी प्रकार (शुन्ध्युं मघवानम्) परम पावन, शुद्ध, ऐश्वर्यवान् प्रभु को ये वाणियां (ऊतये) रक्षा के लिये (परि ष्वजन्ते) प्राप्त करती हैं। वे उसी से सम्बद्ध हैं, उसी तक जाती हैं, श्लेष वृत्ति से उसी का वर्णन करती हैं।

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते॥२॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत मनुष्यों से पुकारे गये स्वामिन् ! प्रभो ! (त्वद्रिग्) तेरे प्रति लगा हुआ (मे मनः) मेरा मन (न घ अप वेति) अब तुझ से दूर नहीं जाता। प्रत्युत (त्वे इत् कामं शिश्रय) तुझ में ही मैं अपनी अभिलाषा को स्थापित करता हूँ। (राजा इव बर्हिषि) राजा जिस प्रकार आसन वा वृद्धियुक्त वा प्रजा पर विराजता है, उसी प्रकार हे (दस्म) दर्शनीय, दुष्टों वा दुःखों के नाशक ! तू (अस्मिन् बर्हिषि राजा इव नि षदः) इस लोक-समूह वा यज्ञ में राजा के तुल्य अधिष्ठित हो। (अस्मिन् सोमे) इस उत्पन्न जगत् में (ते सु अवपानं अस्तु) तेरा ही सर्वश्रेष्ठ परिपालन कार्य हो।

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३

भा०—(इन्द्रः) जिस प्रकार सूर्य जब (विषू-वृत्) विषुवत् वृत्तपर अतिक्रमण कर रहा होता है तब वह (मघवा) मघा नक्षत्र का योग करता हुआ (रायः वस्वः ईशते) अति अन्नप्रद वसु नक्षत्र का स्वामी

होता है और (अमतेः उत क्षुधः) दारिद्रय और क्षुधा, भूख, अकाल को वश करता है । अर्थात् अन्न उत्पन्न करता है। (इमे प्रवणे सप्त सिन्धवः) ये निम्न देश में बहने वाली जलधाराएं (तस्य इत् शुष्मिणः वृषभस्य वयः वर्धन्ति) उस ही बलशाली जलशोषक,वृष्टिकर्त्ता मेघ वा सूर्य के बल वा महिमा को बढ़ाते हैं। ठीक उसी प्रकार (वि-सु-वृत्) विविध उत्तम व्यवहार करने में कुशल, न्यायवर्त्ती, धर्मात्मा, (इन्द्रः) राजा (अमतेः) प्रजा के भीतर विद्यमान अज्ञान, दारिद्रय और (क्षुधः) भूख, अकाल पर वश करे, इन को मिटाने का यत्न करे। क्योंकि (सः इत्) वह ही (रायः) प्रजाओं के देने योग्य (वस्वः) प्रजाओं को सुखपूर्वक बसाने वाले धन, अन्नादि और राष्ट्र में बसाने वाले प्रजाजन का भी (ईशते) सब प्रकार से स्वामी है। (अस्य इत् इमे) उसके ही ये (प्रवणे) शत्रु को खूब मारने वाले सैन्य बल में, शत्रु के नाश के निमित्त (सप्त सिन्धवः) सात वा वेग से दौड़ने वाले वेगवान् अश्व सैन्य हैं जो (वृषभस्य) बलवान् (शुष्मणः) शत्रुशोषक, बलशाली पुरुष के (वयः) जीवन और बल को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ।

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

भा०—(वयः सुपलाशम् वृक्षं न) जिस प्रकार पक्षिगण उत्तम पत्तों से हरे भरे वृक्ष का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार (मन्दिनः) उत्तम रीति से स्तुति करने और उसके साथ हर्ष अनुभव करने और उसे हर्षित करने वाले, (चमू-सदः सोमासः) बड़ी २ सेनाओं पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले अभिषिक्त नायकगण (वयः) शत्रुनाशक, तेजस्वी, वेग से जाने में समर्थ होकर उस (वृक्षं) भूमि को वरण कर, अपनाकर विराजने वाले (सु-पलाशम्) शुभ गमन-साधन रथादि पर विराजने वा

उत्तम भोग्यों को प्राप्त करने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (आ असदन्) प्राप्त कर चारों ओर उसके समीप विराजते, उसका आश्रय लेते हैं। (एषाम् अनीकं) उनका मुख और सैन्य (शवसा) बलसे खूब (दविद्युतत्) चमकता है। और (मनवे) विचारपूर्वक शासन कार्य करने वाले, राष्ट्र-स्तम्भक, वा प्रबन्धक स्वामी को (आर्यम्) सर्वश्रेष्ठ, स्वामिजनोचित (ज्योतिः) तेज, प्रकाश, ज्ञान और (स्वः) सुख (विदत्) प्राप्त कराता है।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः॥५।२४॥

भा०—(श्वघ्नी देवने कृतं न) दूसरों के धनों को बाज़ी से मार लेने वाला कुशल द्यूतकार जिस प्रकार खेलने के समय 'कृत' नाम अक्ष को ही प्राप्त करता है उसी प्रकार (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् राजा (श्वघ्नी) शत्रु के ऐश्वर्यों को लूटने में समर्थ होकर (देवने) विजयकाल में (सं-वर्गं) उत्तम वर्ग के, उत्तम श्रेणी के, वा शत्रु को वर्जन करने में समर्थ (कृतं) कार्य करने में कुशल, अनुशिष्ट, कृतकर्मा, (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (वि चिनोति) विशेष रूप से संग्रह करता है और (जयत्) इसके द्वारा जय लाभ करता है (तत्) उस समय हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे राजन् (ते अन्यः) तेरे से दूसरा कोई (ते वीर्यं न अनु शकत्) तेरे बल वीर्य का मुक़ाबला नहीं कर सकता। (न पुराणः उत न नूतनः) ऐसा न कोई पुराना और न कोई नया ही होना सम्भव है।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः॥६॥

भा०—(मघवा उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी, राजा (विशं-विशं परि अशायत) प्रजा प्रजा के ऊपर सुख से शासन करता हुआ, उनकी वृद्धि

करे। और वह (वृषा) मेघ वा सूर्य के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने और उनका उत्तम प्रबन्ध करने वाला पुरुष (जनानां धेनाः अव चाकशत्) सब मनुष्यों की वाणियों, प्रार्थनाओं को देखे, सुने, उन पर ध्यान दे। (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (यस्य) जिस प्रजाजन के (सवनेषु) ऐश्वर्यों के बीच में (रण्यति) आनन्द सुख लाभ करता है, (सः) वह (तीव्रैः सोमैः) तीव्र, वेगगामी, उत्तम नायकों और विद्वान् पुरुषों द्वारा (पृतन्यतः सहते) सेनाओं द्वारा युद्ध करके शत्रुओं को भी पराजित करे।

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भा०—(आपः सिन्धुं न) नदियां वा जलधाराएं जिस प्रकार महानद वा समुद्र की ओर बह आती हैं, (कुल्याः इव ह्रदम्) जिस प्रकार छोटी २ नालियां बड़े तालाब की ओर बह आती हैं। उसी प्रकार (आपः) आप्त (कुल्याः) उत्तम कुलवान् (सोमासः) विद्वान् शासक जन (इन्द्रं सिन्धुम्) समुद्र के समान गम्भीर और (ह्रदं) आज्ञापक, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता के शरण ही (सम् अक्षरन्) भली प्रकार आते हैं। (वृष्टिः दिव्येन दानुना यवं न) वृष्टि जिस प्रकार आकाश के जल से यवों को बढ़ाती है उसी प्रकार (विप्राः) विद्वान् पुरुष भी (अस्य सादने) इसके शासन में रह कर (दिव्येन दानुना) युद्धार्थ दिये दान और शत्रुखण्डनकारी शस्त्र-बल से (अस्य यवं वर्धन्ति) इसके शत्रुहनन सामर्थ्य को बढ़ाते हैं।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

भा०—(रजःसु क्रुद्धः वृषा न) मट्टी के ढेरों पर जिस प्रकार

क्रुद्ध सांड (पतयत्) वेग से पड़ता है और (रजःसु क्रुद्धः वृषा न) रजोधर्मयुक्त गौओं के निमित्त साभिलाष सांड जिस प्रकार प्रतिद्वन्द्वी पर क्रुद्ध होकर पड़ता और विजयी हो उनके बीच पतिवत् आचरण करता है, उसी प्रकार (मघवा) नाना उत्तम धनों का स्वामी (वृषा) बलवान् राजा (क्रुद्धः) शत्रुओं के प्रति क्रोधयुक्त होकर ही (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजनों में (पतयत्) उनका पालक स्वामी होकर, उन पर शासन करे। वह (इमाः अपः) इन प्राप्त, जल-स्वभाव की, निम्न भाव से जानने वा विनय से झुकने वाली, प्रजाओं वा सेनाआ को (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों के समान स्वामी द्वारा पालन योग्य एवं स्वामी के पालकवत् (अकृणोत्) बना लेवे। (सः) वह (सुन्वते) ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले, (जीर-दानवे) सब को प्राणदायक अन्न देने वाले (हविष्मते) अन्न के स्वामिरूप, (मनवे) कृषक आदि मनुष्य वर्ग के लिये (ज्योतिः अविन्दत्) तेज, पराक्रम, और ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करे और करावे।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

भा०—(परशुः) दूसरे शत्रुओं का नाश करने वाला, इन्द्र राजा, (ज्योतिषा सह) तेज के साथ (उत् जायताम्) उन्नत पद को प्राप्त हो। हे राजन्! स्वामिन्! तू (सु-दुघा) उत्तम दुग्ध देने वाली, गौ के समान और (पुराणवत्) वृद्ध जन के समान, सब प्रजा का पालक, और ज्ञानप्रद होकर (ऋतस्य) धन, अन्न, ज्ञान का (सु-दुघाः) उत्तम रीति से देने वाला (भूयाः) हो। (अरुषः) स्वयं तेजस्वी और निष्क्रोध होकर (भानुना वि रोचताम्) तेज से विविध प्रकार से चमके और सब को प्रिय मालूम हो। वा (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, काम, अधर्म आदि सम्बन्ध में शुद्ध भाव वाला होकर (स्वः न शुक्रं) स्वच्छ

प्रकाश को सूर्य के समान (सत्पतिः) उत्तम पालक होकर (शुक्रं शुशु-चीत) शुद्ध तेज से प्रकाश करे, और (शुक्रं = शुक्लं) शुद्ध कर्म से आत्मा को पवित्र करे। और प्रजार्थ (शुक्रं) उत्तम जल अन्न प्रदान करे।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने, आपत्तिकाल में स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो! राजन्! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखों के सहित आने वाले, कठिन उपायों से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों और गुरु-उपदेशों से पार करें। और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २ धनों को प्राप्त करें। अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच में से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र, सबको समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी ज्ञानी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४४]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, १० विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ त्रिष्टुप् । ४ विराड्जगती । ५—७, ९ पादनिचृज्जगती । ८ निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों को देने वाला, (स्व-पतिः) स्वजनों और धनों का पालक पुरुष (यः) जो (धर्मणा) प्रजा को धारण करने वाले न्याय-बल से (तूतुजानः) शत्रुओं और दुष्टों का नाश और प्रजाओं को ऐश्वर्य दान करता हुआ (तुविष्मान्) बलवान् हो । वह (अपारेण) अपार, (महता वृष्ण्येन) महान् बल, वीर्य, पराक्रम से युक्त होकर (विश्वा सहांसि अति) समस्त शत्रु-सैन्यों को पार करके (प्र त्वक्षाणः) उनका खूब नाश करता हुआ हमें प्राप्त हो । (२) गृहस्थपक्ष में—स्त्री कहती है कि—मेरा अपना पति बलवान्, धर्म से मेरा (तूतुजानः) गृह बसाता हुआ हर्ष सुख के निमित्त आवे । वह अपार बल-वीर्य से सब कष्टों को दूर करे ।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

भा—हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! राजन् ! (ते रथः सु-स्थामा) तेरा रथ सुखपूर्वक ठहरने वाला, वा उत्तम बैठने के स्थान से युक्त हो, तेरा रथारोही बल युद्ध में खूब टिकने वाला हो । (ते हरी सु-यमा) तेरे दोनों अश्व सुख से नियन्त्रित हों, तेरे अधीन प्रजास्थ स्त्री पुरुष लोग उत्तम संयमी, सुप्रबद्ध रहें । (ते गभस्तौ) तेरी बाहु में (वज्रः मिम्यक्ष)

वज्र, शस्त्र-बल रहे, शस्त्र बल तेरे हाथ के नीचे हो। हे (राजन्) देदीप्यमान ! राजन् ! तू (शीभं) शीघ्र ही (सुपथा अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्ग से, उत्तम अश्व पर चढ़ कर जाया कर। हम (ते पपुषः) तुझ सर्वपालक, सर्वपोषक के (वृष्ण्यानि वर्धाम) बलों को बढ़ावें।

इन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

भा०—(अस्मत्रा) हम में से (इन्द्र-वाहः) ऐश्वर्य और बल को धारण करने में समर्थ, (उग्रासः) उग्र, (तविषासः) बलशाली (सध-मादः) एक साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करने वाले जन (नृपतिं) मनुष्यों के पालक, (वज्र-बाहुम्) तलवार से युक्त बाहु के समान शस्त्र-बल से शत्रु को पीड़ित करने वाले (उग्रम्) शत्रु को भयप्रद (प्र-त्वक्षसं) अति तेजस्वी; शत्रुनाशक, (सत्य-शुष्मम्) सत्य के बल से बलशाली (वृषभम्) नरश्रेष्ठ को (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

भा०—(एव) इसी प्रकार के द्रोण-साचं) राष्ट्र की सेवा करने वाले (स-चेतसम्) उत्तम, ज्ञानी सहृदय (ऊर्जः स्कम्भम्) बल पराक्रम को स्तम्भवत् धारण करनेहारे पुरुष को (धरुणे) धारण करने वाले प्रमुख पद पर हे प्रजाजन ! तू (आ वृषायसे) आदरपूर्वक बलशाली की कामना कर। हे राजन् ! तू (ओजः कृष्व) बल वीर्य सम्पादन कर (त्वे) तू अपने में ही हमें (सं गृभाय) अच्छी प्रकार ग्रहण कर, सब को धारण कर। (यथा) जिस प्रकार तू (केनिपानां इनः) सुखमय, आनन्द रस का

पान करने वाले विद्वानों का स्वामी होकर (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अपि असः) समर्थ हो ।

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! (वसूनि अस्मे गमन्) जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कराने वाले नाना धनैश्वर्य हमें प्राप्त हों । मैं तुझे (सु-आशिषं शंसिषम्) उत्तम २ कामना व आशीष् कहूँ । तू (सोमिनः भरम् आ याहि) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, सोम के स्वामी के यज्ञ वा प्रजापालक राष्ट्र कार्य को प्राप्त हो । (त्वम् ईशिषे) तू ही सब का स्वामी हो । तू ही (बर्हिषि आ सत्सि) इस वृद्धियुक्त आसन, लोक वा प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराज । (तव पात्राणि) तेरे प्रजा पालन के समस्त सैन्यादि साधन (धर्मणा) धर्म, राष्ट्र-प्रजा, न्याय आदि के धारण के बल से (अनाधृष्या) किसी से भी ध र्ण वा पराजय करने योग्य न हों । इति षड्विंशो वर्गः ॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रथमाः) ष्ठ (देव-हूतयः) देव, ईश्वर के स्तुति करने वाले देवोपासक जन (पृथक्) अलग २ (प्र अग्मन्) आगे बढ़ जाते हैं । वे (श्रवस्यानि) श्रवण करने योग्य (दुस्तरा) दुस्तर, अपूर्व कीतजनक कर्म और ज्ञानों को सम्पादन कर लेते हैं । और (ये) जो (यज्ञियाम् नावम्) सर्वपूज्य प्रभु की उपासनामयी स्तुतिमयी नौका पर (आरुहम् न शेकुः) आरुढ़ नहीं हो सकते (ते) वे (के-पयः) कुत्सित आचरणों में लिप्त रहकर (ईर्मा इव नि अविशन्त) मानो ऋण से बद्ध होकर यहां ही नीचे पड़े रहते हैं ।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

भा०—(एव एव) इस प्रकार हे (अपरे) दूसरे जो परब्रह्म की उपासना से रहित (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले जन हैं (येषां) जिनके (दुःयुजः अश्वाः) कुमार्ग में जाने वाले, सन्मार्ग में कठिनता से लगने वाले, अश्वों के तुल्य बलवान् इन्द्रियगण (आ युयुज्रे) इधर उधर के तुच्छ विषयों में लगते हैं । वे (अपाग् एव एव सन्तु) दूर वा नीचे ही नीचे पतित (सन्तु) हो जाते हैं । (यत्र) जिस में (पुरूणि वयुनानि) बहुत से ज्ञान और (पुरूणि भोजना) बहुत से भोग्य ऐश्वर्य और नाना रक्षा साधन हैं उस (परे) परम ब्रह्म में जो (दावने सन्ति) दान देने के लिये सदा तत्पर हैं वे (इत्था) सचमुच (प्राक् सन्तु) आगे बढ़ने वाले होते हैं ।

गिरीरज्रान्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे विष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि
शंसति ॥ ८ ॥

भा०—वह प्रभु (अज्रान्) गमनशील, (गिरीन्) मेघों और (रेजमानान्) बिजुली से कांपते हुओं को (अधारयत्) धारण करता है । (द्यौः क्रन्दत्) बिजुली शब्द करती है, तब मानो वह (अन्तरिक्षाणि) जलमय मेघों को लक्ष्य कर (कोपयत्) क्षुभित करता, मानो उन पर क्रोध करता है । (समीचीने) परस्पर मिले हुए (धिषणे) आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को (वि स्कभायति) विविध रूप से थामता है । और वह (वृष्णः पीत्वा) जलवर्षक रसों का मेघवत् पान करके (मदे) आनन्द में मानों (उक्थानि शंसति) स्तुत्य उपदेश वचनों का उपदेश करता है ।

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

भा०— हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (येन) जिससे तू (शफा-रुजः) दुर्वचनों से, वा समवाय बना कर दूसरों को पीड़ा देने वाले दुष्ट जनों को (रुजासि) पीड़ित वा नष्ट करता है मैं (ते) तेरे (सुकृतं) उत्तम रीति से बने उस (अंकुशं) अंकुश, वज्र को (बिभर्मि) धारण करूं । (ते अस्मिन् सवने) तेरे इस ऐश्वर्यमय शासन में (ओक्यं सु अस्तु) सुखपूर्वक गृह का सा निवास हो । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (आ-भगः) सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् और सेवनीय होकर (सुते इष्टौ) उत्तम रीति से सम्पादित यज्ञ में (बोधि) हमारी स्तुतियों को जान ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने, आपत्तिकाल में स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो ! राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखों के सहित आनेवाले, कठिन उपायों से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों और गुरु-उपदेशों से पार करें । और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें । (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २ धनों को प्राप्त करें । अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच में से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र सब को समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४५]

ऋषिर्वत्सप्रिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

दि॒वस्परि॑ प्रथ॒मं ज॑ज्ञे अ॒ग्निर॒स्मद् द्वि॒तीयं॒ परि॑ जा॒तवे॑दाः।
तृ॒तीय॑म॒प्सु नृ॒मणा॒ अज॑स्र॒मिन्धा॑न एनं जरते स्वा॒धीः ॥ १ ॥

भा०—(प्रथमं) पहले (अग्निः) अग्नि (दिवः परि) आकाश में प्रकट हुआ, वह सूर्यरूप अग्नि ब्रह्माण्ड में सब से मुख्य है। उसी प्रकार मूर्धा भाग में मुख्य प्राण ही मुख्य अग्नि है। और (द्वितीयं) दूसरा (जात-वेदाः) सब पदार्थों के भीतर विद्यमान (अग्निः) अग्नि स्वरूप दूसरे नम्बर पर प्रकट होता, उसी प्रकार दूसरे नम्बर पर यह जाठर अग्नि है। जो प्रत्येक उत्पन्न प्राणी को प्राप्त होता है और (तृतीयम्) तीसरा, (नृ-मणाः) नयन, सञ्चालक वा प्रेरक शक्ति से पदार्थों को स्तब्ध करने में समर्थ वा (नृ-मणाः) मनुष्यों के बीच मनन, ज्ञानशक्ति देने वाला, (अप्सु) अन्तरिक्षों वा जलों में विद्युत् रूप होता है। (एनं अजस्रम् इन्धानः) इस अग्नि को कभी न नष्ट होने देता हुए,

निरन्तर इसे प्रज्वलित रखता हुआ पुरुष (स्वाधीः सु-आधीः) सुखों को अपने में धारण करने वाला, स्वस्थ, सुखी और सुबुद्धि नीरोग होकर (जरते) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है।

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! (ते) तेरे हम (त्रेधा) तीन स्थानों में (त्रयाणि) तीन रूपों को (विद्म) जानें। (ते धाम) तेरे तेजों, नामों, जन्मों को भी (पुरुत्रा विभृता विद्म) बहुत प्रकार से, बहुत से स्थानों में विविध प्रकार से धारित रूपों को भी जानें। (गुहा ते यत् परमं नाम विद्म) बुद्धिस्थ जो निगूढ़ तेरा परम स्वरूप है उसको भी हम जानें। हम (तम् उत्सं विद्म) उस कारणरूप निकास को जानें (यतः आ जगन्थ) जहां से तू हमें प्राप्त होता है।

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वं१न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

भा०—(नृ-मणाः) मनुष्यों में मननशील, और (नृ-चक्षाः) मनुष्यों में सत्य ज्ञान का द्रष्टा हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा) तुझे, समुद्र में (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर से और (दिवः ऊधन्) आकाशस्थ मेघ में से प्राप्त करके प्रदीप्त कर लेता है। और (तृतीये रजसि तस्थिवांसम्) तीसरे लोक में स्थित सूर्यरूप (त्वा) तुझको (अपाम् उपस्थे) जलों के भी ऊपर (महिषाः) भूमि पर आने वाले किरण (अवर्धन्) तुझे अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। वे तेरे ही महान् सामर्थ्य को बतलाते हैं। (२) उसी प्रकार राजारूप अग्नि को साक्षी रूप से जनसमूह और राज सभा में, और उत्तम पद पर विराजते हुए को वीर पुरुष बढ़ावें।

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्यौः) आकाशगत तेजस्वी विद्युत् (स्तनयन्) गर्जती हुई (क्षामा रेरिहत्) भूमि तक पहुंचती है और जिस प्रकार (अग्निः) आग (वीरुधः) नाना वनस्पतियों को (सम् अञ्जन्) जलाता, चमकाता हुआ (अक्रन्दत्) गर्जता, या शब्द करता है। उसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, वीर और विद्वान् पुरुष (क्षामा रेरिहत्) भूमियों को, वा निर्बल शत्रु सेनाओं को प्राप्त करता हुआ और (वीरुधः) विपरीत रोक करने वाली बाधक सेनाओं का (सम् अञ्जन्) सान्मुख्य करता हुआ, उनको दग्ध या तेजस्वी करता हुआ वा (वीरुधः) विशेष वा विविध रूप से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं को (सम्-अंजन्) प्राप्त होता और उनको प्रकाशित करता हुआ (स्तनयन्-इव अक्रन्दत्) गर्जते मेघ के समान गर्जे, और विद्वान् भी उपदेश करे। और सूर्य जिस प्रकार (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (इद्धः) अग्निवत् प्रदीप्त होकर (भानुना) अपने प्रकाश से (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश के बीच क्षितिज पर (भाति) चमकता है और (सद्यः वि अख्यत्) एक साथ विशेष रूप से प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह भी (इद्धः) चमक कर (रोदसी अन्तः) शास्य-शासकों के बीच (भाति) प्रकाशित हो और (वि अख्यत्) विशेष आज्ञा, घोषणा, उपदेश आदि करे।

श्रीणामु॑दा॒रो ध॒रुणो॑ रयी॒णां म॑नी॒षाणां॒ प्राप॑णः॒ सोम॑गोपाः।
वसुः॑ सू॒नुः सह॑सो अ॒प्सु राजा॒ वि भा॒त्यग्र॑ उ॒षसा॑मिधा॒नः ॥५॥

भा०—वह राजा, विद्वान्, प्रभु, (श्रीणाम् उत्-आरः) नाना ऐश्वर्यों और आश्रितों को उन्नत करने वाला, (रयीणां धरुणः) नाना धनों को धारण करने वाला, (मनीषाणां प्रा ण:) उत्तम बुद्धियों को देनेवाला, (सोम-गोपाः) ऐश्वर्यों का रक्षक है। वह (वसुः) सब को बसाने वाला,

(सहसः) बलवान् सैन्य को (सूनुः) सन्मार्ग पर चलानेहारा, (अप्सु राजा) प्रजाओं में तेजस्वी राजा (इधानः) देदीप्त होकर (उषसाम् अग्रे विभाति) प्रभात वेलाओं के अग्र भाग में सूर्य के समान, विशेषरूप से शोभा देता है।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥२८॥

भा०—वह राजा, प्रभु (विश्वस्य भुवनस्य केतुः) समस्त जगत् का प्रकाशक, (गर्भः) सब को अपने वश करने वाला और सबके बीच में छुपा हुआ, (जायमानः) व्यक्त होकर (रोदसी आ अपृणात्) ज़मीन और आकाश सब को सब तरफ़ पूर्ण कर रहा है। वह (वीडुम् अद्रिम् अभिनत्)बलवान् मेघ को सूर्य के तुल्य अभेद्य तम को भी छिन्न भिन्न करता है, (यत् अग्निम्) जिस तेजस्वी नायक को (जनाः परायन्) मनुष्य परम जान कर आश्रय करते, (पञ्च) पांचों जन जिसको (अयजन्त) आदर, उपासना पूजा करते हैं।

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—वह राजा (पावकः) सब को पवित्र करने वाला, (उशिक्) सब को स्नेह से चाहने वाला, (अरतिः) महान् ज्ञानी, सब का स्वामी, वा असंसक्त (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान्, शक्तिशाली, यज्ञशील अन्नादि सम्पन्न, (अग्निः) सर्वनायक, प्रकाशक, ज्ञानी, (मर्तेषु) मरणधर्मा मनुष्यों में (अमृतः) अविनाशी रूप (नि धायि) स्थापित हो वह (अरुषम्) सब प्रकार से प्रकाशमान, तेजोमय रूप को (भरिभ्रत्) धारण करता हुआ, (धूमम् इयर्त्ति) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल को संचालित करे, और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध कान्ति से (द्याम् इनक्षन्)

आकाश को सूर्यवत् समाज में शिरोभाग रूप सभा को शोभित करे। अध्यात्म में—आत्मा, विराट् शरीर में सूर्य, जगत् में परमेश्वर और कुण्ड में अग्नि और राष्ट्र में राजा का इस मन्त्र में समान रूप से वर्णन है।

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः॥ ८॥

भा०—(दृशानः) प्रत्यक्ष देखने वाला, (रुक्मः) नाना रुचियों, इच्छाओं से युक्त, (उर्विया) महान् (वि अद्यौत्) यह आत्मा रूप अग्नि विविध रूप से प्रकाशित होता है। वह (दुर्मर्षम्) कठिनता से पराजय करने योग्य होकर (आयुः) जीवन, प्राणरूप, (श्रिये) शोभा कान्ति की वृद्धि के लिये (रुचानः) स्वयं कान्तिमान्, प्रकाशस्वरूप है। (२) खूब तेजस्वी सूर्य का प्रकाश इस अग्नि को उत्पन्न करता है, तो वही काष्ठों द्वारा बढ़कर नहीं बुझता, उसी प्रकार वह (अग्नि) ज्ञान-युक्त अग्निवत् तेजस्वी होकर भी (वयोभिः अमृतः अभवत्) अन्नों और प्राणों से अमृत, अर्थात् नहीं मरने वाला होजाता है। (यत्) जब कि (सु-रेताः द्यौः एनं जनयत्) उत्तम वीर्यवान् पिता इसको पुत्र रूप से उत्पन्न करता है।

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ॥ ९॥

भा०—हे (भद्र-शोचे) सुखदायक कल्याणकारक कान्ति से युक्त ! हे (देव) सुखप्रद ! तेजस्विन् ! (अद्य) आज (यः) जो (ते) तेरे लिये (घृतवन्तं अपूपं कृणवत्) घृत जलादि से युक्त अन्न करता है तू (तम् प्र नय) उसको उत्तम सुख प्राप्त करा और (तम्) उसको (अच्छ वस्यः प्रतरं नय) उत्तम २ ऐश्वर्य भी खूब प्रदान कर। हे

(यविष्ठ) बलवन् ! और (देव-भक्तम्) प्राणों से सेवने योग्य (सुम्नम् अभि नय) सब प्रकार से सुख प्रदान कर ।

आ तं भ॑ज सौश्रव॒सेष्व॑ग्न उ॒क्थउ॑क्थ॒ आ भ॑ज श॒स्यमा॑ने ।
प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वा॒त्युज्जा॒तेन॑ भि॒नद॒दुज्जनि॑त्वैः ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! शिष्य ! तू (सौश्रवसेषु) उत्तम श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेशों के अवसरों पर (तम् आ भज) उस प्रभु वा गुरु की सेवा, उपासना कर और (शस्यमाने उक्थे उक्थे) उच्चारण वा उपदेश योग्य प्रत्येक वेदमन्त्र में वा उसके निमित्त तू (तं भज) उसी प्रभु की गुरुवत् उपासना कर । वह सर्वप्रभु (सूर्ये प्रियः) सूर्य में भी प्रकाशरूप से चमकता है । वही (अग्नौ प्रियः भवति) अग्नि में भी तेज से चमकता है । वह (जातेन उत् भिनदत्) इस उत्पन्न हुए बीज से जैसे वृक्ष धरती को फोड़ कर निकलता है उसी प्रकार व्यक्त जीव से या पूर्व उत्पन्न कर्म-बीज से देहादि को उत्पन्न करता है और (जनित्वैः उत् भिनदत्) इसी प्रकार आगे भी उत्पन्न होने वाले बीजरूप कारणों से कार्यरूप देह, जगत् आदि कार्य को उत्पन्न करता रहेगा ।

त्वाम॑ग्ने॒ यज॑माना॒ अनु॒ द्यून्विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि ।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने, सर्वव्यापक सर्वज्ञ ! (अनु द्यून्) सब दिनों (त्वा यजमाना) तेरे उपासक जन तेरी उपासना करते हुए ही (विश्वा वसु दधिरे) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करते हैं । और वे (त्वया सह) तेरे साथ ही (द्रविणम् इच्छमानाः) धनैश्वर्य, ज्ञान की प्राप्ति करना चाहते हुए (उशिजः) विद्वान् मेधावी, नाना फलों की आकांक्षा करते हुए (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) नाना वाणियों से युक्त, गन्तव्य ज्ञान मार्ग का विवरण, या प्रसार करते हैं ।

अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥२९॥८।७

भा०—वह (नरां सु-शेवः) मनुष्यों में सुख से सेवने योग्य, उत्तम सुखदाता, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, सर्वनायक सर्वोपदेष्टा, सब से प्रशंसनीय (सोम-गोपाः) ऐश्वर्यों वा जीवों का रक्षक (अग्निः) तेजोमय ज्ञानमय प्रभु (अस्तावि) स्तुति किया जाता है। हम (अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम) द्वेषरहित, प्रेमयुक्त सूर्य-भूमि वत् माता पिता को आदर से प्रार्थना करते हैं और हे (देवाः) विद्वान् जनो! आप लोग भी (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) हमें उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति सप्तमोऽष्टकः ।

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थ-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
ऋग्वेदालोकभाष्ये सप्तमोऽष्टकः समाप्तः ॥